

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तररामचरितम् छन्दोऽलङ्कार

उत्तररामचरितम् छन्दोऽलङ्कार

उत्तररामचरितम् छन्दोऽलङ्कार



॥ सरस्वती नः सुमनसो भवतु ॥

उत्तररामचरितम् छन्दोऽलङ्कार

उत्तररामचरितम् छन्दोऽलङ्कार

उत्तररामचरितम् छन्दोऽलङ्कार

खण्ड-एक उत्तररामचरितम्

खण्ड-दो उत्तररामचरितम्

शान्तिपुरम् (सेक्टर - एफ) फाफामऊ

इलाहाबाद-211013



उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

UGST-02
संस्कृत

खण्ड-तीन

उत्तररामचरितम्

इकाई- 6

5

उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक की व्याख्या

परिचय-कार्यक्रम

इस पाठ्यक्रम में पाँच खण्ड हैं।

प्रथम खण्ड में चार इकाइयाँ हैं। इनमें क्रमशः नाटक, भवभूति, उत्तररामचरितम् की संक्षिप्त कथा तथा पात्रों के चरित्र का निरूपण किया गया है।

द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत पाँचवीं इकाई है, जिसमें उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक की सविस्तार व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

तृतीय खण्ड के अन्तर्गत छठीं इकाई है। जिसमें उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक की व्याख्या विस्तारपूर्वक दी गई है।

चतुर्थ खण्ड के अन्तर्गत सातवीं तथा आठवीं इकाइयाँ हैं, जिनमें क्रमशः उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक की विस्तृत व्याख्या तथा पाठ्यक्रम में निर्धारित सभी तीनों अंकों के सुभाषित वचनों की सप्रसङ्ग व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

पञ्चम खण्ड के अन्तर्गत कुल चार इकाइयाँ (9-12) हैं, जिनमें क्रमशः छन्द का सामान्य परिचय, प्रमुख छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण, अलङ्कार का सामान्य परिचय तथा प्रमुख अलङ्कारों के लक्षण, उदाहरण और उनमें पारस्परिक भेद विस्तार के साथ वर्णित हैं।

इकाई ६ — उत्तररामचरित द्वितीय अंक

इकाई की रूपरेखा —

६.० उद्देश्य

६.१ उत्तररामचरित के द्वितीय अंक की व्याख्या

६.२ अभ्यास प्रश्न

६.० उद्देश्य —

- प्रस्तुत इकाई में उत्तररामचरित के द्वितीय अंक की व्याख्या की जा रही है।
- व्याख्या के क्रम में श्लोकों का अन्वय, शब्दार्थ, अनुवाद, व्याकरणात्मक तथा काव्यात्मक टिप्पणी दी जायेगी।
- इस इकाई को पढ़कर आप उत्तररामचरित के द्वितीय अंक के घटना— संयोजन के सौष्ठव को जान सकेंगे।
- व्याख्या को पढ़कर काव्यांशों को विश्लेषित कर सकेंगे।
- उत्तररामचरित की शिल्पगत विशेषताओं को जान सकेंगे।
- संदर्भित पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से अवगत होंगे।

६.१ उत्तररामचरित के द्वितीय अंक की व्याख्या—

{पञ्चवटीप्रवेशः}

(नेपथ्ये)

{१} स्वागतं तपोधनायाः^१।

(ततः प्रविशत्यध्वगवेषा तापसी?)

तापसी— अये वनदेवतेय^२ फलकुसुमपल्लवाध्यैण मामुपतिष्ठते।

{१} शब्दार्थ— नेपथ्यं= जबनिका के पीछे नटों द्वारा वेष धारण करने का स्थान विशेष।
स्वागतं = शुभागमन। अध्वगवेशा= पथिक वेषवाली। तापसी= तपः परायणा नारी। अर्घ्यं = अर्घ्यार्थ
द्रव्य, पूजाद्रव्य। उपतिष्ठते= पूजा करती है।

अनुवाद— (नेपथ्य में) तपोधना (तपस्यारूप धनवाली) का शुभागमन है। (तब पथिक वेषवाली तापसी प्रवेश करती है?) तापसी— अरे, यह तो वनदेवता फलपुष्पपत्ररूप पूजाद्रव्य से मेरी पूजा करने आ रही है।

१. पाठा०— १.० नायै।

२. कुसुमगर्भेण पल्लवाध्यैण दूरान्नाम्।

टिपणी (Notes)

इस (द्वितीय) अंक में वर्णित घटनाओं का स्थल 'जनस्थान' नामक वन है। प्रथम अंक की तथा इस अंक की घटनाओं में बारह वर्ष का व्यवधान है। बीच में इस बारह वर्ष के समय की घटनाओं का संक्षेप में निर्देश करने के लिए अंक के आरम्भ में यह विष्कम्भक दिया गया है।

स्वागतं तपोधनायाः— नेपथ्य में कहा हुआ यह वचन पात्र तापसी के प्रवेश की सूचना देता है, इस प्रकार की पात्र प्रवेश की सूचना को 'चूलिका' कहते हैं। (दे०सा०द० ६)।

अर्घ्येण— अर्घाय इदम् अर्घ्यम्; 'अर्घ' शब्द का अर्थ है 'पूजाविधि' {'मूल्ये पूजाविधावर्घः' अ०को०}; अतः 'अर्घ' शब्द का अर्थ हुआ पूजाद्रव्य (जैसे— जल, अक्षत, पुष्प, फल, इत्यादि)। यहाँ यह अर्घ्य फल, पुष्प तथा पल्लवों से बनाया गया है। गृहागत अतिथि का पाद्य, अर्घ्य इत्यादि से सत्कार करना एक प्रकार का शिष्टाचार माना गया है। तपस्वियों के सत्कार के लिए फल, पल्लव, पुष्पादि युक्त अर्घ्य काम में लाया जाता है। 'फलपल्लवपुष्पाद्यं तापसेष्वर्घ्यमाहरेत्' धनश्यामद्वारा उद्धृत।

(प्रविश्य)

{२} वनदेवता— (अर्घ्य 'विकीर्य')

यथेच्छं भोग्यं वो वनमिदमयं मे सुदिवसः

सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति।

तरुच्छाया तोयं यदपि तपसो योग्यमशनं

फलं वा मूलं वा तदपि न पराधीनमिह वः।१॥

अन्वयः— इदं वनं वो यथेच्छं भोग्यम्। अयं मे सुदिवसः; हि सतां सद्भिः संगः कथमपि पुण्येन भवति। तरुच्छाया तोयं यदपि तपसो योग्यम् अशनं— फलं वा मूलं वा— तदपि इह वः न पराधीनम्।

{२}शब्दार्थ— विकीर्य= बिखेर कर। इदं वनं = यह वन। वः = आपका। यथेच्छं = इच्छानुसार। भोग्यं = उपभोग करने योग्य। अयं मे सुदिवसः = यह मेरा शुभ दिन है। हि = क्योंकि। सतां = सज्जनों का। सद्भिः = सज्जनों के साथ। संगः = समागम। कथमपि = किसी प्रकार से,

१. पाठा० ३. विकीर्य।

२. यथेच्छाभोग्यं।

बड़ी कठिनता से। पुण्येन = शुभकर्म के फल से। भवति = होता है। तरुच्छाया = वृक्षों की छाया।
तोयं = जल। यदपि = जो भी। तपसः योग्यं = इन्द्रियसंयमादि तप के अनुकूल। अशनं = भोजन।
फलं वा मूलं वा = फल अथवा मूल (कन्दादि)। तदपि = वह भी। इह = यहाँ, इस वन में। वः
= आपका। पराधीनं = परवश। न = नहीं है।

अनुवाद— (प्रवेश करके) वनदेवता — (अर्घ्य बखेरकर) यह वन आपका स्वेच्छा से
उपभोगयोग्य है। यह शुभ दिन है; क्योंकि सज्जनों के साथ समागम किसी पुण्य से होता है। वृक्षों
की छाया, जल, (और) जो भी इन्द्रियसंयमादितप के अनुकूल भोजन—फल अथवा कन्दमूल है,
वह भी यहाँ आपके लिये पराधीन नहीं है।

व्याकरण— विकीर्य— वि-√ कृ (विक्षेपे) ६ प० + ल्यप्। यथेच्छं— इच्छामनतिक्रम्य;
यथार्थे अव्ययीभावः। यथेच्छाभोग्यं (पाठा०)— यथेच्छम् — आ (समन्ताद्) भोग्यं। भोग्यम्— भोक्तुं
योग्यम्; √ भुज् ७ उ० + ण्यत्। कुत्वम्— [‘चजोः कु धिण्यतोः’ पा० ७/३/५२]। ‘भक्ष्य’ इस
अर्थ में ‘भोज्य’ होता है। [‘भोज्यं भक्ष्ये’ पा० ७/३/६८]। अशनं—√ अश् ९ प० + ल्युट्। पराध-
ीनं — परस्मिन् अधि; ‘अषडक्षा—’ (पा० ५/४/७) इस सूत्र के अनुसार समास में अद्युत्तरपद
से ‘ख’ (ईन) प्रत्यय होता है। ‘अधि’ शब्द शौण्डादिगण में पठित है। पाणिनि के अनुसार यद्यपि
‘अधीन’ शब्द (अधि+ख) समास के उत्तरपद में ही बनता है; किन्तु ‘अधीन’ शब्द का स्वतन्त्र भी
प्रयोग बहुत मिलता है (‘अधीनो निघ्न आयतः’ अ० को०)।

टिप्पणी (Notes)

सतां सद्भिः सङ्गः— तुल० ‘गृहानुपेतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः’ (शिशु० १
१४)। न पराधीनमिह वः — यह ‘भवदधीनं’ अर्थको सूचित करनेवाली विनयपूर्ण उक्ति है। इस
श्लोक में शिखरिणी— छन्द एवं अर्थान्तरन्यास अलंकार।

[३] तापसी—किमत्रोच्यते।

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः

प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।

पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं

रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते॥२॥

अन्वयः— प्रियप्राया वृत्तिः, (उपविशतः) विनयमधुरः वाचि नियमः, प्रकृत्या कल्याणी मतिः,

अनवगीतः परिचयः, इदम् तत् पुरो वा पश्चाद् वा अविपर्यासितरसम् अनुपधि विशुद्धं साधूनां रहस्यं

विजयते।

{३} शब्दार्थ— अत्र = यहाँ। प्रियप्राया = अतिशय प्रिय। वृत्तिः = व्यवहार। विनयमधुरः = विनय से मधुर (हृदयग्राही)। वाचि नियमः = वाणी विषयक संयम, मितभाषित्व। प्रकृत्या = स्वभाव से। कल्याणी = कल्याण करने वाली, मंगलरूपा। मतिः = बुद्धि। अनवगीतः = अनिन्दित। परिचयः = जान-पहिचान। तत् = वह, प्रसिद्ध। इदम् = यह, उक्त प्रकार का। अविपर्यासितरसं = अपरिवर्तित अनुराग वाला, सदा समरस। पुरः = पहले। पश्चाद् वा = अथवा बाद में। अनुपधि = निश्छल, कपटरहित। विशुद्ध = सर्वथा निर्दोष। साधूनां = साधुओं (सज्जनों) का। रहस्यं = गूढ़ चरित। विजयते = सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान रहता है।

अनुवाद— तापसी— इसमें कहना ही क्या है। अतिशय प्रीतिकर व्यवहार, विनय (अनौद्धत्य) के कारण हृदयग्राही वाक्संयम, स्वभाव से मङ्गलोन्मुखी बुद्धि, अनिन्दित प्रणय— यह प्रसिद्ध, पहले अथवा बाद में न परिवर्तित होने वाले अनुराग (अथवा) स्वरूपवाला, कपटरहित, सर्वथा शुद्ध, सत्पुरुषों का रहस्य (गूढ़ चरित) सबसे उत्कृष्ट होता है। (दोनों बैठती हैं)।

व्याकरण— प्रियप्राया— प्रायेण बाहुल्येन प्रिया; सुप्सुपेति समासः, 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' (पा० १/२/४४) इति 'प्राय' शब्दस्य परनिपातः। वाचि— विषयाधिकरणे सप्तमी। नियमः— √नि— यम् + अप् (वैकल्पिकः); पक्षे घञ् नियामः {'यमः समुपनिविषु च' (पा० ३/३/६३)}। प्रकृत्या— 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति तृतीया। अवगीतः— विरुद्धं गीयते यः सः अवगीतः; अव—√ गै १ प० + कर्मणि क्त। परिचयः— परि समन्तात् चयनं, परि—√ चि ५ उ० + अच्। अविपर्यासितः— न विपर्यासितः, विपर्यासः सञ्जातोऽस्येति विपर्यासितः, यद्वा वि—परि—√ अस् ४ प० + णिच् + क्त; यद्वा वि—परि—√ आस् २ आ० + क्त। रहस्यं— रहसि भवं, रहस् + यत्। विजयते— 'विपराभ्यां जेः' (पा० १/३/१९) इत्यात्मनेपदम्।

टिप्पणी (Notes)

विनयमधुरः— विनय से मधुर, न कि दम्भ तथा गर्व के कारण उपतापक।

तत् पुरो वा पश्चाद्वा— परिचय से पूर्व अथवा पश्चात्। इस श्लोक के साथ तुल० महावी० १/१२; तथा भर्तृ० नी० ६२-६५। इस श्लोक में अप्रस्तुत सत्यपुरुषों चरित्र सामान्य के वर्णन से प्रस्तुत वनदेवता के चरित्र विशेष के वर्णन को प्रतीति होती है, अतः यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है तथा शिखरिणी छन्द है।

{४} वन देवता— कां पुनरत्रभवतीमवगच्छामि।

तापसी— आत्रेय्यस्मि।

वनदेवता— आर्ये आत्रेयि, कुतः पुनरिहागम्यते। किंप्रयोजनो^१ वा दण्डकारण्यप्रचारः?

{४} शब्दार्थ— अत्रभवतीम् = आप पूजनीयको। अवगच्छामि = जानती हूँ (जानूँ)। आर्ये = हे पूज्ये। इह = यहाँ। आगम्यते = आया जाता है। किंप्रयोजनः = किस प्रयोजन से। दण्डकारण्यप्रचारः = 'दण्डका' नामक वन में भ्रमण।

अनुवाद— वनदेवता — आप पूज्या को मैं कौन (नामवाली) जानूँ? तापसी— मैं आत्रेयी हूँ।

वनदेवता— पूज्य आत्रेयि, तो कहाँ से यहाँ आना हुआ? तथा दण्डकारण्य में भ्रमण किस प्रयोजन वाला है?

व्याकरण— आत्रेयी— अत्रेः अपत्यं स्त्री आत्रेयी; अत्रि + ङक् ('इतश्चानिजः' पा० ४/१/१२२) + डीप्। आगम्यते — आ—√ गम्—भावे लट्। प्रचारः— प्र√ चर् + भावे घञ्।

टिप्पणी (Notes)

आत्रेयी— अत्रिगोत्र में उत्पन्न होने के कारण इसी नाम से इसकी प्रसिद्धि हुई। 'आत्रेयी' शब्द रूढ़ भी है; ब्राह्मणोचित संस्कारों से संस्कृता स्त्री आत्रेयी कहलाती है ("जन्मप्रभृति संस्कारैः संस्कृता ब्रह्मवच्च या। गर्भिणी वा तथा वा स्यात् तामात्रेयीं विनिर्दिशेत्॥" यम०)।

{५} आत्रेयी—अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे

भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।

तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां

वाल्मीकिपार्श्वदिह पर्यटामि॥३॥

अन्वयः— अस्मिन् प्रदेशे अगस्त्यप्रमुखाः भूयांसः उद्गीथविदः वसन्ति। तेभ्यः निगमान्तविद्याम् अधिगन्तुं वाल्मीकिपार्श्वदिह पर्यटामि।

{५} शब्दार्थ— अगस्त्यप्रमुखाः = अगस्त्यादि। भूयांसः = बहुत से। उद्गीथविदः = उद्गीथ

को जाननेवाले, वेद के ज्ञाता। ('उद्गीथ' शब्द का अर्थ है— प्रणव (ओंकार), अथवा सामवेद का भाग।) तेभ्यः— उनसे। निगमान्तविद्यां = वेदान्त विद्या को। अधिगन्तुम् = प्राप्त करने के लिए। वाल्मीकिपार्श्वार्त् = वाल्मीकि के पास से। इह = यहाँ। पर्यटामि = पर्यटन (भ्रमण) करती हूँ।

अनुवाद— आत्रेयी— इस प्रदेश में अगस्त्यादि बहुत से उद्गीथ जाननेवाले (ब्रह्मवेत्ता) रहते हैं। उनसे वेदान्तविद्या को प्राप्त करने के लिए वाल्मीकि के पास से यहाँ विचरण कर रही हूँ।

व्याकरण— भूयांसः — अतिशयेन बहवः भूयांसः, बहु + ईयसुन् (ईयस्, Comparative); ईयसुन् प्रत्यय परे हो तो 'बहु' शब्द को 'भू' आदेश हो जाता है, तथा प्रत्यय के आदिवर्ण (ई) का लोप हो जाता है {'बहोर्लोपो भू च बहोः' पा० ६/४/१५८}। उद्गीथः — उच्चैर्गीयते इत्युद्गीथः, उद्— गै √+ भावे कर्मणि वा थक्। अधिगन्तुम्— अधि—√गम्—तुमुन्। पर्यटामि— परि—√अट् (गतौ) १ प०—लट्।

टिप्पणी (Notes)

उद्गीथविदः— सामवेद का द्वितीय भाग 'उद्गीथ' कहलाता है, जो यज्ञ में उद्गातृ द्वारा गाया जाता है। 'उद्गीथ' शब्द विशेषपरक होने पर भी यहाँ सामान्यपरक माना जा सकता है, अतः इसका अर्थ 'सामवेद' ऐसा भी किया जा सकता है। छान्दोग्योपनिषद् में 'उद्गीथ' प्रणव (ओम्) के लिए भी प्रयुक्त हुआ है ('ओमित्यक्षरमुद्गीथमुपासीत' 'ओमित्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्'); अतः 'उद्गीथविदः' का अर्थ 'उपनिषद् (वेदान्त) में प्रतिपादित ब्रह्मविद्या को जानने वाला' ऐसा भी है (तुल०— "उद्गीथविदः 'ओमित्युद्गीथमुपासीत' इति परात्मन् ब्रह्मणि उद्गीथदृष्टिं कुर्वन्त इत्यर्थः; दहरविद्यादीनामुपलक्षणम्; सकल— वेदान्ततात्पर्यपर्यालोचनशील इति भावः।" वी०रा०) और यह अर्थ अधिक समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि आत्रेयी उनसे निगमान्तविद्या को प्राप्त करने के लिए आई है।

निगमान्तविद्या— वेदान्तविद्या, अर्थात् वेदान्तों (उपनिषदों) द्वारा प्रतिपाद्य ब्रह्मविद्या। निगच्छति (वेत्ति) अनने इति निगमः वेदः। वेदों में वर्णनीय विषय दो भागों में विभक्त किया गया है— कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। ज्ञान की प्राप्ति के लिये ही कर्म किये जाते हैं, इसलिए वह भाग जिसमें कर्मों का प्रतिपादन है पूर्वभाग या पूर्वमीमांसा कहा जाता है। कर्मों की सिद्धि के अनन्तर ज्ञान होता है और उस ज्ञातव्य (आत्मा) का सम्यग्विवेचन जिस अन्तिम भाग में है उसे वेदान्त, ज्ञानकाण्ड या उत्तरमीमांसा कहते हैं। उपनिषदों में इसी का संकलन किया गया है।

वाल्मीकि: — वाल्मीके भवः (इज्); दीर्घकाल तक निरन्तर 'राम राम' जप करते हुए
वाल्मीक (बाँबी) से ढक जाने के कारण इनका यह नाम पड़ा।

{६} वनदेवता— यदा तावदन्येऽपि मुनयस्तमेव पुराणब्रह्मवादिनं प्राचेतसमृषिं ब्रह्मपारायणायोपासते
तत्कोऽयमार्याया दीर्घप्रवासप्रयासः?

आत्रेयी— तत्र महानध्ययनप्रत्यूह इत्येष दीर्घप्रवासोऽङ्गीकृतः।

वनदेवता— कीदृशः?

आत्रेयी— तस्य भगवतः केनापि देवताविशेषेण सर्वप्रकाराद्भुतं स्तन्यत्यागमात्रके वयसि वर्तमानं
दारकद्वयमुपनीतम्। तत्खलु न केवलमृषीणामपि तु चराचराणां भूतनामान्तराणि तत्त्वान्युपस्नेहयति।

{६} शब्दार्थ— पुराणब्रह्मवादी = पुरातन ब्रह्मोपदेष्टा। {'ब्रह्म' शब्द का अर्थ है — 'परमात्मा'
अथवा 'वेद'।} प्राचेतसः = प्रचेतस् (वरुण) का पुत्र, वाल्मीकि मुनि। ब्रह्मपारायणं = ब्रह्म (वेद) का
पारायण (आदि से अन्त तक अध्ययन)। उपासते = समीप बैठते हैं, सेवा करते हैं। दीर्घप्रवासप्रयासः
= लम्बे समय तक विदेश में रहने का प्रयास (प्रयत्न, उद्योग)। प्रत्यूहः = विघ्न। अङ्गीकृतः =
स्वीकृत। स्तन्यं = दूध। वयसि = अवस्था में। दारकद्वयम् = शिशुयुगल (दो बालक)। उपनीतम् =
समीप में लाया गया (लाकर दिया गया)। चराचराणाम् = चर (जंगम) तथा अचर (स्थावर)। भूतानाम्
= प्राणियों के। आन्तराणि तत्त्वानि = मन, बुद्धि आदि अन्तःकरणों को। उपस्नेहयति = स्नेहयुक्त
करता है।

अनुवाद— वनदेवता— जब दूसरे मुनि भी उसी पुरातन ब्रह्मोपदेष्टा प्राचेतस् (वाल्मीकि)
ऋषि के वेद का पूर्ण अध्ययन के लिए सेवा करते हैं, तब आर्याका दीर्घकालीन विदेशवास के
लिए यह उद्योग क्यों?

आत्रेयी— वहाँ बड़ा अध्ययन में विघ्न है, इसी कारण दीर्घकालीन विदेशवास स्वीकार किया है।

वनदेवता— कैसा?

आत्रेयी— उस भगवान को किसी विशेष देवता ने सब प्रकार से अनोखा, (माता के) दूध छोड़ने
योग्य अवस्था में वर्तमान, शिशुयुगल लाकर दिया है। वह (शिशुयुगल) न केवल ऋषियों के,
पितु जंगम और स्थावर सभी प्राणियों के भी अन्तःकरणों को स्नेहयुक्त करता है।

टिप्पणी (Notes)

ब्रह्मवादिन्— ब्रह्मविद्या का उपदेश देनेवाला अथवा वेद का अध्यापन करनेवाला।

चेतसः— प्रचेतस् (वरुण) का दसवां पुत्र, वाल्मीकि मुनि। (दे० रामा० उत्तरकाण्ड ९६/१८)।

आन्तराणि तत्त्वानि— “आन्तराणि बाह्येतराणि, तत्त्वानि करणानि अङ्गानि वा, तथा च अन्तःकरणानि अन्तरङ्गानि वेत्यर्थः, ‘तत्त्वं तु करणाङ्गयोः’ इति संसारावर्त्तः।” (घनश्याम)। वीराधवने ‘अपितु तिरश्चामप्यन्तः करणानि तत्त्वान्युपस्नेहयति’ ऐसा पाठ माना है, तात्पर्य दोनों का एक ही है किन्तु रचना की दृष्टि से ‘आन्तराणि तत्त्वानि’ यह पाठ उचित प्रतीत होता है।

{७} वनदेवता— अपि तयोर्नामसंविज्ञानमस्ति?

आत्रेयी— तयैव किल देवतया तयोः कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यातः।

वनदेवता— कीदृशः प्रभावः।

आत्रेयी— तयोः किल सरहस्यानि जृम्भकास्त्राण्या जन्मसिद्धानीति।

वनदेवता— अहो नु भोश्चित्रमेतत्।

{७} शब्दार्थ— नामसंविज्ञानं = नाम का संविज्ञान (सम्यक् विज्ञान, विशेषबोध) प्रभावः = असाधारण शक्तिविशेष। सरहस्यानि = मन्त्रसहित। जृम्भकास्त्राणि = जिनके प्रयोग से शत्रु को जंभाई आने लगती है, ऐसे अस्त्र। आजन्मसिद्धानि = जन्म से प्राप्त हैं। चित्रम् = आश्चर्य।

अनुवाद— वनदेवता— क्या उनके नाम का सम्यक् ज्ञान है?

आत्रेयी— कहा जाता है कि उसी देवता द्वारा उन दोनों (बालकों) के ‘कुश’ और ‘लव’ ये दो नाम (प्रसिद्ध किये गये) तथा प्रभाव बतलाया गया।

वनदेवता— किस प्रकार का प्रभाव?

आत्रेयी— ‘उन दोनों को मन्त्रसहित जृम्भक अस्त्र जन्म से ही सिद्ध हैं’ ऐसी चर्चा है।

वनदेवता— अहो, यह तो आश्चर्य है।

टिप्पणी (Notes)

नामनी प्रभावश्चाख्यातः— नामनी आख्याते, प्रभावश्चाख्यातः।

कुशलवौ— इस नामकरण में कालिदास ने यह हेतु दिया है— “स तौ कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ तदाख्यया। कविः कुशलवावेव चकार किल नामतः।” (रघु० १५/३२), [कुश द्वारा गर्भक्लेद दूर किये जाने के कारण बड़े भाई का ‘कुश’ नाम रखा गया, तथा लव (गोपुच्छलोम) द्वारा गर्भक्लेद दूर किये जाने के कारण छोटे भाई का नाम ‘लव’ रखा गया।

[८] आत्रेयी— तौ च भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्म वस्तुतः परिगृह्य पोषितौ रक्षितौ च। निर्वृत्तचौलकर्मणोश्च तयोस्त्रयीव जेमितरास्तिस्त्रो विद्याः सावधानेन परिनिष्ठापिताः। समनन्तरं च गर्भैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय गुरुणा त्रयीविद्यामध्यापितौ। न ह्येताभ्यामति प्रदीप्तप्रज्ञामेध आभ्यामस्मदादेः सहाध्ययनयोगोऽस्ति।

[८] शब्दार्थ— धात्रीकर्म = धात्री (उपमाता, Nurse) का कर्तव्य। वस्तुतः = वास्तविक रूप से। परिगृह्य = स्वीकार करके। पोषितौ = (वे दोनों) पालन—पोषण किये गये। निर्वृत्तचौलकर्मणोः = निष्पन्न हो गया है चूडाकर्म नामक संस्कार जिनका ऐसे [उन दोनों को]। त्रयीवर्जम् = [वेद] त्रयी को छोड़कर। इतराः तिस्रः विद्याः = तीन विद्याएँ (आन्वीक्षिकी, वार्ता, दण्डनीति)। परिनिष्ठापिताः = सम्पूर्णरूप से पढ़ा दी गई। क्षात्रेण = क्षत्रियोचित। कल्पेन = विधि से। उपनीय = उपनयन संस्कार करके। प्रज्ञा = बोधशक्ति, बुद्धि। मेधा = धारणावती बुद्धि, स्मृति। अस्मदादेः = हम जैसों का। सहाध्ययनं = साथ—साथ पढ़ना। योगः = संयोग, संबन्ध, अथवा युक्ति। [यद्वा सह = साथ। अध्ययनयोगः = एकत्रपठन]।

अनुवाद— आत्रेयी— और वे दोनों (बालक) भगवान् वाल्मीकि द्वारा धात्री के कर्तव्य को स्वरूपतः स्वीकार करके पालित—पोषित किये गये, और रक्षा किये गये। फिर, निष्पन्न हो गया है चूडाकर्म (संस्कार) जिनका, ऐसे उन दोनों को त्रयी (ऋक्, यजु, साम) छोड़कर अन्य तीनों विद्याएँ सावधानता से युक्त हुए (भगवान् वाल्मीकि) द्वारा सम्पूर्णतः पढ़ाई गई। हम जैसों का अतिप्रखर बुद्धि तथा स्मृतिवाले इन दोनों के साथ एकत्र पठन (अध्ययन योग) (सम्भव) नहीं है।

टिपणी (Notes)

धात्री कर्म वस्तुतः— काले ने यही पाठ रखा है, वीरराघव तथा घनश्याम ने 'धात्रीकर्मतः' ऐसा पाठ रखा है (जिसका अर्थ है 'धात्रीकर्म से आरम्भ करके')।

चौलकर्म— अथवा चूडाकर्म (मुंडन) नामक संस्कार बच्चे के प्रथम वर्ष में अथवा तृतीय वर्ष में किया जाता है [चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः। प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्।" मनु०]। चूडा एव चौडः (अथवा चौलः); चूडा अर्थात् शिखा, इस संस्कार में स्वकुलाचार के अनुसार एक तीन अथवा पाँच शिखा छोड़ कर गृह्यसूत्रोक्त विधि से शिर का मुंडन कराया जाता है।

त्रयीवर्जम्— 'त्रयी' शब्द का अर्थ 'वेद' तथा 'ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद नामक तीनों वेद' हैं, दे०अ०को०। उपनयन संस्कार से पूर्व वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त नहीं होता दि० मनु—

‘नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते’।] इतराः तिस्रः विद्याः — कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा कामन्दकीय नीति के अनुसार लोक संस्थिति की हेतुभूत चार विद्याएँ हैं— आन्विक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती। विद्याश्चतस्र एवैता लोकसंस्थितिहेतवः।” (काम०नी० २/५), आन्वीक्षिकी = न्याय; अथवा आत्मविद्या, त्रयी = वदेत्रयी; वार्ता = कृषि, व्यापार इत्या०, दण्डनीति = राजनीतिशास्त्र (Politics)।

गर्भैकादशे वर्षे — दे० मनु० २/३६— “गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्यो— पनायनम् गर्भादिकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥”

कल्पः— प्रक्रम्यते विधीयते वाऽनेन विनियोगशास्त्रेणेति कल्पः; ‘कल्प’ शब्द का अर्थ है ‘विधि’ (अर्थात् विधान); भिन्न—भिन्न वर्णों के लिए विहित भिन्न—भिन्न विधियों को भी ‘कल्प’ कहते हैं; ये विधि मनु० २/४२-४६ में वर्णित हैं।

गुरुणा— जो विधायक के रूप में वेद पढ़ावे उन्हें गुरु कहते हैं। “स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति”

{९} वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्या यथैव तथा जडे

न च खलु तयोऽज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।

भवति च तयोर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा

प्रभवति शुचिबिम्बग्राहे मणिर्न मृदां चयः॥४॥

अन्वयः— गुरुः यथैव प्राज्ञे विद्यां वितरति तथा जडे, न च खलु तयोः ज्ञाने शक्तिं करोति अपहन्ति वा। तयोः फलं प्रति भूयान् भेदः भवति च, तद् यथा शुचिः मणिः बिम्बग्राहे प्रभवति, मृदां चयः न।

{९} शब्दार्थ— गुरुः = आचार्य। यथैव = जिस प्रकार। प्राज्ञे = बुद्धिमान् (शिष्य) में। विद्याम् = विद्या को। वितरति = प्रदान करता है। तथा = उसी प्रकार। जडे = बुद्धिहीन, मूढ़ में। च = किन्तु। तयोः = उन दोनों (प्राज्ञ तथा जडे) के। ज्ञाने = ज्ञान में। शक्तिं = शक्ति को। न करोति = नहीं करता है। न अपहन्ति वा = अथवा न नष्ट करता है। फलं प्रति = फल के प्रति। तयोः = उन दोनों में। भूयान् = बहुत अधिक। भेदः = वैषम्य, अन्तर। भवति = होता है। तद् = वह भेद का होना। (ऐसा होता है)। यथा = जैसे। बिम्बग्राहे = प्रतिबिम्ब के ग्रहण करने में। शुचिः = स्वच्छ; निर्मल। मणिः = रत्न। प्रभवति = समर्थ होता है। मृदां चयः = मिट्टी का ढेर, लोष्ट्र इत्यादि। न = नहीं (समर्थ होता है)।

अनुवाद— गुरु जैसे बुद्धिमान् (शिष्य) को विद्या प्रदान करता है, उसी प्रकार मन्दबुद्धि (शिष्य) को भी, किन्तु उन दोनों के ज्ञान में (स्थित) शक्ति को न तो (उत्पन्न) करता है, और न नाश करता है। तो भी उन दोनों के फल के प्रति बहुत अधिक वैषम्य (भेद) हो जाता है; वह (भेद) इस प्रकार हो जाता है} जैसे कि निर्मल मणि प्रतिबिम्ब के ग्रहण करने में समर्थ होता है, मिट्टी का ढेर (ढेला) नहीं।

व्याकरण— वितरति — वि√ तृ १ प०—लट्। प्रजानाति प्रज्ञः— (प्र—√ ज्ञा + क), प्रज्ञ एव प्राज्ञः (स्वार्थे अण्)। भूयान्— बहु + इयसुन्, 'बहोर्लोपो भू च बहोः' (पा०)। ग्राहः—√ ग्रह + घञ्।

टिप्पणी (Notes)

इस श्लोक के भाव के साथ तुल० 'पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः। पय इव समुद्रशुक्तो मुक्ताफलतां पयोदस्य' (मालवि० १); तथा 'क्रियाहि वस्तूपहिता प्रसीदति' (रघु० ३।२९)। तद्यथा— इस पाठ के स्थान में 'तत्तथा'— भी पाठ है जिसका अर्थ है— तत् भेदभवनं तथा निश्चितमेव। इस श्लोक में दृष्टान्तालंकार है तथा हरिणी छन्द है।

{१०} वनदेवता— अयमसावध्ययनप्रत्यूहः।

आत्रेयी— अन्यच्च।

वनदेवता— अथापरः कः?

आत्रेयी— अथ स ब्रह्मर्षिकदा माध्यंदिनसवनाय नदीं तमसामनुप्रपन्नः। तत्र युग्मचारिणोः क्रौञ्चयोरेकं व्याधेन विध्यमानं ददर्श। आकस्मिकप्रत्यवभासां च देवीं वाचमव्यतिकीर्णवर्णां मानुष्युभेन छन्दसा परिणतामभ्युदैरयत्।

{१०} शब्दार्थ— माध्यंदिनसवनाय = मध्याह्नस्नान के लिए। अनुप्रपन्नः = पहुँचा, गया। युग्मचारिणोः — जोड़ें में विचरण करनेवाले। क्रौञ्चयोः = नर और मादा दो क्रौञ्च पक्षियों में। एकम् = एक को (नर को)। व्याधेन = व्याध (बहेलिया) द्वारा। विध्यमानं = बाँधे जाते हुए का। आकस्मिकप्रत्यवभासाम् = अकस्मात् स्फुरण (आविर्भाव) हुआ है जिसका ऐसी, (वाणी को)। अव्यतिकीर्णवर्णाम् = असंकीर्ण (विस्पष्ट) वर्णवाली। मानुष्युभेन छन्दसा परिणताम् = अनुष्टुप् छन्द में परिवर्तित हुई। देवीं वाचम् = वाग्देवी को। अभ्युदैरयत् = उच्चारण किया।

अनुवाद— वनदेवता— वह अध्ययन का विघ्न यह है।

आत्रेयी— और भी।

वनदेवता— और क्या है?

आत्रेयी— वह ब्रह्मर्षि एक समय मध्याह्नस्नान के लिए तमसा नदीपर गये। वहाँ उन्होंने जोड़ें में विचरने वाले क्रौञ्च पक्षियों में से एक (नर) को व्याध द्वारा बीधा जाता हुआ देखा और अकस्मात् प्रकाश (स्फुरण) हुआ है जिसका ऐसी, तथा असंकीर्ण (सूस्पष्ट) वर्णों वाली, और अनुष्टुब् वृत्त में परिवर्तित हुई वाग्देवी को उच्चारित किया।

टिप्पणी (Notes)

माध्यदिनसवनाय— मध्याह्न के समय किया जानेवाला स्नान तथा संध्यावन्दनादि कर्म ('सवन' शब्द का अर्थ है 'स्नान' तथा यज्ञादि धार्मिक कृत्य)। छान्दोग्योपनिषद् में दिन में किये जाने वाले तीन सवनों का उल्लेख है— "ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद् वसूनां प्रातः सवनं, रुद्राणां माधयन्दिनं सवनम्, आदित्यानां च विश्वेषां देवानां तृतीयसवनम्।" (२।१४।१), अपि च दे० रामा० बालकाण्ड १४।५।७।

आनुष्टुभ छन्दः— (अथवा अनुष्टुभ छन्दः) = यह चार चरणों वाला छन्द है, इसके प्रत्येक चरण में आठ—आठ अक्षर होते हैं, तथा प्रत्येक चरण का पाँचवाँ वर्ण लघु तथा छठा गुरु होता है।

आनुष्टुभेन छन्दसा परिणताम्— रामायण के अनुसार निषाद द्वारा विधे हुए क्रौञ्चपक्षी को देखकर वाल्मीकि के हृदय में उत्पन्न हुआ शोक ही बाहर आकर अनुष्टुभ छन्द के रूप में परिणत हो गया, तुल०— "निषादबिद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।" (रघु० १५।७०)

{११} मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।५॥

अन्वयः— हे निषाद, त्वं शाश्वतीः समाः प्रतिष्ठां मा अगमः, यत् क्रौञ्चमिथुनात् काममोहितम् एकम् अवधीः।

{११} शब्दार्थ— निषाद = हे निषाद (व्याध)। त्वम् = तू। शाश्वतीः = अनन्त, चिरन्तन। समाः = वर्षों तक। प्रतिष्ठाम् = स्थिति को, यश को। मा = मत। अगमः = प्राप्तकर। यत् = जो, क्योंकि। क्रौञ्चमिथुनात् = क्रौञ्च तथा क्रौञ्च के जोड़ें में से। काममोहितम् = काम से मोहित, कामासक्त। एकम् = एक (नर) को। अवधीः = (तूने) वध कर दिया, मार दिया।

अनुवाद— हे व्याध तू अनन्त वर्षों तक प्रतिष्ठा (स्थिति, यश) को मत प्राप्त हो, जो तूने क्रौञ्च (पक्षियों) के जोड़ें में से काम से मोहित तक (नर) को मार दिया।

व्याकरण— प्रतिष्ठा— प्रति स्था + अच्, षत्वम्। मा अगमः — माङ् योगे लुङ् ('माङि लुङ्' पा० ३।३।१७५), 'न माङ्योगे' (पा० ६।४।७५) इस सूत्र के अनुसार 'माङ्' के योग में 'अट्' का आगम नहीं होता, अतः यहाँ 'अगमः' में 'अट्' के आगम को आर्षप्रयोग मानना चाहिए। टीकाकारों ने 'मा त्वमगमः' का पदच्छेद 'मा तु अम गमः' इस प्रकार करके इस अनुपपत्ति को दूर करने का प्रयत्न किया है {अम— मा (लक्ष्मी) रहितः, हे अलक्ष्मीक}, अथवा 'मा' को 'माङ्' से भिन्न निपात माना है, जिसके योग में कोई भी लकार हो सकता है। अवधी: — हन् २ प० लुङ्, म० पु० ए० व०, 'हनो वध लिङि' 'लुङि च' (पा० २।४।४२-४३) के अनुसार आशीर्लिङ् तथा लुङ् में हन् धातु को 'वध' आदेश हो जाता है।

टिप्पणी (Notes)

यह श्लोक रामा० (बालकाण्ड २।५१) में आया है। इसको रामायण का बीज माना गया है। अतः इसकी व्याख्या राम के पक्ष में भी इसी प्रकार की गई है— मानिषाद् — मा लक्ष्मीः निषीदति अस्मिन् तत्संबोधनं हे मानिषाद लक्ष्मीपते, यत् यस्माद्धेतोः क्रौञ्चमिथुनात् मन्दोदरीरावणरूपात् रामं काममोहितं रावणम् अवधीः हतवानसि, तस्मात् त्वं शाश्वतीः समाः वत्सरान्, यावत्संसारमिति— भावः, प्रतिष्ठाम् अखण्डैश्वर्यानन्दावाप्तिम् अगमः प्राप्नुहि ['भाव्यर्थे भूतवदङ्गीक्रियते' इतिन्यायात् प्रार्थनाया लुङ्] तेन 'अर्थत् शब्दतो वाऽपि मनाक् काव्यार्थसूचनम्' इत्युक्तेः श्री रामकृतरावणवधरूपकाव्यार्थः काव्यादौ अवश्यकर्तव्याशीर्वादश्च सूचितः। (दे० रामायण पर तीर्थकृत टीका)।

निषाद— अमरकोश में निषाद पुलिन्द, चाण्डाल, मातङ्ग, श्वपच ये सब पर्यायवाची हैं। इनका व्यवसाय प्रायः जीवहिंसा है।

भागमः इत्या०— वाल्मीकि के इस शाप के कारण ही निषाद जाति के लोग कहीं भी न बसाकर स्थिर नहीं रहते हैं' ऐसा कहा जाता है।

समाः— यह शब्द 'संवत्सर' का पर्याय है, तथा स्त्रीलिङ्ग बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है।

[१२] वनदेवता— चित्रमागनायादन्यो नूतनच्छन्दसामवतारः।

आत्रेयी— तेन खलु पुनः समयेन तं भगवन्तमाविर्भूतशब्दब्रह्मप्रकाशमृषिमुप— संगम्य भगवान् भूतभावनः पद्मयोनिरवोचत्— 'ऋषे, प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि तद् ब्रूहि रामचरितम्। अव्याहतज्योतिरार्ष ते प्रातिभं चक्षुः। आद्यः कविरसि' इत्युक्त्वान्तर्हितः। अथ स भगवान् प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय।

वनदेवता— हन्त तर्हि मण्डितः संसारः।

आत्रेयी— तस्मादवोचं तत्र हि महानध्ययनप्रत्यूह इति।

वनदेवता— युज्यते।

{१२} शब्दार्थ— चित्रम् = आश्चर्य है। आम्नायः = वेद। नूतनच्छन्दसाम् = नवीन छन्दों का। अवतारः = आविर्भाव, प्रकाश। आविर्भूतशब्दब्रह्मप्रकाशम् = आविर्भूत (प्रकट) हो गया है शब्दरूप ब्रह्म का प्रकाश (ज्योति) जिसको, उस। भगवन्तम् = भगवान् (वाल्मीकि) को। उपसंगम्य = निकट आकर। भूतभावनः = प्राणियों को उत्पन्न तथा पालन करनेवाला। पद्मयोनिः = ब्रह्मा। वागात्मनि ब्रह्मणि = शब्दरूप ब्रह्म में। अव्याहतज्योतिः = अप्रतिहत प्रकाशवाला। आर्ष = ऋषि— सम्बन्धी, योगजन्य। प्रातिभं = प्रतिभात्मक। चक्षुः = नेत्र। आद्यः = प्रथम। अन्तर्हितः = नेत्रों से ओझल हो गया। अथ = तदनन्तर। प्राचेतसः = वाल्मीकि। विवर्त = अतात्त्विक अन्यथाभाव (जैसे अंधेरे के कारण रज्जु का सर्परूप से प्रतीत होना), किन्तु यहाँ इसका अर्थ है— 'परिणाम', 'रूपान्तर'। इतिहासः = पुरावृत्त। प्रणिनाय = निर्माण किया। हन्त = हर्ष है। तर्हि = तब तो। मण्डितः = अलंकृत। युज्यते = ठीक है।

अनुवाद— वनदेवता— आश्चर्य है, वेद से भिन्न नये छन्दों का आविर्भाव हो गया है।

आत्रेयी— तब उस समय तक प्रकट हो गई है शब्दरूप ब्रह्म की ज्योति जिसको ऐसे भगवान् [वाल्मीकि] ऋषि के पास आकर प्राणियों के विधाता भगवान् कमलयोनि (ब्रह्मा) बोले— “हे ऋषि, तुम शब्दरूप ब्रह्म के विषय में जागरित हो गये हो, अतः रामचरित को कहो। तुम्हारा प्रज्ञात्मक चक्षुः अप्रतिहत प्रकाशवाला (हो गया) है। तुम अदिल्लुवि हो।” ऐसा कहकर (भगवान् ब्रह्मा) अन्तर्धान (अदृश्य) हो गये। तदनन्तर उस भगवान् प्राचेतस (वाल्मीकि) ने सर्वप्रथम लोक में शब्द के उस प्रकार के विवर्त (रूपान्तर) इतिहास रूप रामायण का निर्माण किया।

वनदेवता— हर्ष है, तब तो संसार अलंकृत हो गया। आत्रेयी— इसीलिए मैंने कहा है कि वहाँ अध्ययन में बड़ा विघ्न है।

वनदेवता— ठीक है।

टिप्पणी (Notes)

आम्नाया.....वतारः— वेदों में गायत्री, त्रिष्टुभ्, जगती इत्यादि छन्दों के समान अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग भी है (जैसे पुरुष सूक्त में), किन्तु वैदिक अनुष्टुभ् में लघुगुरु का क्रम नियत नहीं है, यह क्रम वाल्मीकि द्वारा रामायण में प्रयुक्त अनुष्टुभ् में ही सर्वप्रथम मिलता है, रामायण के पश्चात् अन्य लौकिक काव्यों में भी इस प्रकार के छन्दों का प्रचार हुआ।

आर्ष—वैदिक ऋषियों के चक्षु के समान अतिमानुष। प्रातिभं—प्रतिभायाः इदं प्रातिभम्।
प्रतिभाचक्षुः (पाठा०—प्रतिभंचक्षुः)।

आद्यः कविः—वाल्मीकि को 'आदिकवि' तथा रामायण को 'आदिकाव्य' कहा जाता है।

विवर्त—यह वेदान्त का एक पारिभाषिक शब्द है। अविद्या के कारण स्वरूप का परित्याग किये बिना वस्तु की अन्य रूप में प्रतीति होना विवर्त है, रज्जु में सर्प की प्रतीति (इसमें रज्जु अधिष्ठान) है, तथा सर्प उस अधिष्ठान में विवर्त है। इस प्रकार ब्रह्म (अधिष्ठान) में संसार की मिथ्याप्रतीति हो रही है, विद्या द्वारा विवर्त का उच्छेदन हो जाता है। किन्तु भवभूति ने यहाँ विवर्त शब्द का प्रयोग इस अर्थ में न करके 'परिणाम' अर्थ में किया है, कारण का अपने स्वरूप को त्याग कर कार्यरूप में परिणत हो जाना 'परिणाम' कहलाता है। 'वागात्म ब्रह्म' शब्द का प्रयोग के साथ-साथ भवभूति ने रामायण के लिए भी 'विवर्त' शब्द का प्रयोग कर दिया। अंक ३ (श्लो० ४७), तथा अंक ६ (श्लो० ६) में 'विवर्त' शब्द अपने पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

रामायणं—रामस्य अयनं (चरितं) अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः अथवा रामएव अयनम् आश्रयः उपजीव्यत्वेन यत्र।

मण्डितः संसारः—अर्थात् रामायण संसार का भूषण है।

{१३} आत्रेयी—विश्रान्तास्मि भद्रे। संप्रत्यगस्त्याश्रमस्य पन्थानं ब्रूहि।

वनदेवता—इतः पञ्चवटीमनुप्रविश्य गम्यतामनेन गोदावरीतीरेण।

आत्रेयी—(सास्त्रम्) अप्येतत् तपोवनम्। अप्येषा पञ्चवटी। अपि सरिदियं गोदावरी। अप्ययं गिरिः प्रस्रवणः। अपि जनस्थानवनदेवता वासन्ती त्वम्।

वनदेवता—तथैव तत्सर्वम्।

{१३} शब्दार्थ—विश्रान्ता अस्मि = मैंने विश्राम कर लिया है। संप्रति = अब। इतः = यहाँ से। अपि = क्या।

अनुवाद—आत्रेयी—हे शुभे, मैं विश्राम कर चुकी हूँ। अब अगस्त्य के आश्रम का मार्ग बताओ।

वनदेवता—यहाँ से पञ्चवटी में प्रवेश करके इस गोदावरी तट से जाइये।

आत्रेयी—(आँसू भरकर) क्या यह तपोवन है? क्या यह पञ्चवटी है? क्या यह नदी गोदावरी है? क्या यह पर्वत प्रस्रवण है? क्या तुम जनस्थान वन की देवता, वासन्ती हो?

वनदेवता—यह सब (जैसा आप कहती हैं) वैसा ही है।

टिप्पणी (Notes)

अप्येषा— 'अपि' का संभावना, प्रश्न, शङ्का, गर्हा, समुच्चय, युक्तपदार्थ तथा कामचारक्रिया, इन अर्थों में प्रयोग होता है, यहाँ प्रश्न अर्थ में प्रयोग किया गया है, पञ्चवटी और गोदावरी का नाम सुनते ही तापसी पूछती है क्या यह पञ्चवटी है? आदि।

{१४} आत्रेयी— हा वत्से जानकि।

स एष ते वल्लभबन्धुवर्गः

प्रासङ्गिकानां विषयः कथानाम्।

त्वां नामशेषामपि दृश्यमानः

प्रत्यक्षदृष्टामिव नः करोति॥६॥

अन्वयः— प्रासङ्गिकीनां कथानां विषयः स एष ते वल्लभबन्धुवर्गः दृश्यमानः नामशेषामपि त्वां नः प्रत्यक्षदृष्टामिव करोति।

{१४} शब्दार्थ— वल्लभ = प्रिय। प्रासङ्गिकानां = प्रसङ्ग से प्राप्त। नामशेषाम् = नाम ही शेष रह गया है जिसका ऐसी, (अर्थात् मृत)। दृश्यमानः = दिखाई देता हुआ। प्रत्यक्षदृष्टाम् इव = नेत्रों के सामने दीखती हुई सी।

अनुवाद— हा पुत्रि सीते! प्रसङ्गप्राप्त बातचीतों का विषय यह वही तेरे प्रिय बन्धुओं का समूह प्रत्यक्ष दीखता हुआ, नाम ही शेष रह गया है, जिसका इस प्रकार की भी तुझको हमारे लिए प्रत्यक्ष दीखती हुई सी कर रहा है।

टिप्पणी (Notes)

वल्लभबन्धुवर्गः — बन्धूनां वर्गः बन्धुवर्गः, वल्लभश्चासौ बन्धुवर्गः (कर्मधारय), अथवा वल्लभाश्च बन्धवश्च वल्लभबन्धवः (द्वन्द्व०), तेषां वर्गः (तत्पु०)। यहाँ आत्रेयी ने पूर्वकथित तपोवन, पञ्चवटी, गोदावरी प्रस्रवणगिरि तथा वनदेवतावासन्ती को सीता का प्रियबन्धुवर्ग कहा है। यद्यपि प्रायः वृक्षों तथा प्राणियों को ही बन्धुरूप में वर्णित किया जाता है। (तुल० 'यत्र द्रुमा अपि मृगाः अपि बन्धवो मे' अंक ३, श्लो० ८), किन्तु भवभूति ने भूमिभागों को भी बन्धुरूप में वर्णन किया है (तुल० 'तान् पूर्वसुहृदो भूमिभागान्यश्यामि' अंक २)।

नामशेषान्— कवि ने इस शब्द का यहाँ साभिप्राय प्रयोग किया है, इससे सीताविवासन की सूचना मिलती है, तथा आत्रेयी और वासन्ती के बीच सीताविवासनविषयक संलाप आरम्भ हो जाता है।

[१५] वासन्ती— (सभयं स्वगतम्) कथं नामशेषमित्याह। (प्रकाशम्) आर्ये, किमत्याहितं सीतादेव्याः?

आत्रेयी— न केवलमत्याहितं सापवादमपि। (कर्णे) एवमेवम्।

वासन्ती— अहह! दारुणो दैवनिर्घातः। (इति मूर्च्छति)।

आत्रेयी— भद्रे, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

वासन्ती— हा प्रियसखि! हा महाभागे! ईदृशस्ते निर्माणभागः। हा रामभद्र! अथवा अलं त्वया। आर्ये आत्रेयि, अथ तस्मादरण्यात् परित्यज्य निवृत्ते लक्ष्मणे सीतादेव्याः किं वृत्तमिति काचिदस्ति प्रवृत्तिः?

आत्रेयी— नहि नहि।

{१५} शब्दार्थ— अत्याहितं = महाभय, प्राणसंकट। सापवादम् = अपवाद सहित। दारुण = भीषण अथवा निष्ठुर। दैवनिर्घातः = विधि का वज्रप्रहार। महाभागे = हे महापुण्यशीले। निर्माणभागाः = उत्पत्ति का परिणाम। प्रवृत्तिः = वार्ता।

अनुवाद— वासन्ती— (भय के साथ, स्वगत) 'नाम ही शेष रह गया है जिसका' ऐसा क्यों कहती है। (प्रकाश) आर्ये, सीतादेवी का कौन सा प्राण संकट हुआ?

आत्रेयी— केवल प्राण संकट ही नहीं, किन्तु अपवाद सहित भी। (कान में) इसप्रकार, इसप्रकार।

वासन्ती— अहह, विधि का भीषण प्रहार है! (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)।

आत्रेयी— कल्याणि, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये।

वासन्ती— हा प्यारी सखी! हा महापुण्यशीले! तुम्हारी उत्पत्ति का यह परिणाम हुआ। हा रामभद्र! अथवा तुमसे कोई प्रयोजन नहीं। आर्ये आत्रेयि, तब छोड़ कर उस वन से लक्ष्मण के लौटने पर सीतादेवी का क्या हुआ, इसकी कोई खबर है?

आत्रेयी— नहीं, नहीं।

टिप्पणी (Notes)

वासन्ती— कवि ने अब तक 'वनदेवता' शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु अब आत्रेयी तथा वनदेवता संलाप से यह सूचित हो गया है कि वनदेवता का नाम वासन्ती है, अतः यहाँ से 'वनदेवता' शब्द के स्थान में 'वासन्ती' शब्द का प्रयोग हुआ है।

अत्याहितम्— ऐसी आपत्ति जिसमें प्राण जाने का भय है, 'अत्याहितं महाभीतिः कर्म जीवानपेक्षि च' अ०को०।

निर्घातः— इस शब्द का वास्तविक अर्थ 'दो वायुओं के टकराने का शब्द' ('वायुना निहतो वायुर्गगनाच्च पतत्यधः। प्रचण्डघोरनिर्घोषो निर्घात इति बुध्यते') किन्तु यहाँ इसका अभिप्राय है चोट प्रहार अर्थात् विधाता ने दारुण प्रहार सीता के ऊपर किया है।

निर्माणभागः— वीर राघव ने इसका अर्थ किया है 'सृष्टिफलम्'। उसका तात्पर्य है कि तुम जैसी सर्वोत्कृष्ट रूपगुणशालिनी की यह दुर्दशा? क्या यही तुम्हारी उत्पत्ति का परिणाम है अर्थात् क्या यही भोगने के लिए तुम्हारी सृष्टि हुई? अन्य टीकाकारों ने 'निर्माणे भागः' यह सप्ती समास किया है जिसका अर्थ है कि क्या तुम्हारी उत्पत्ति के समय विधाता ने तुम्हारे भाग्य में यही लिखा था? (भागो रूपाद्ध के भाग्यैकदेशयोः— हेम)।

{१६} वासन्ती— हा कष्टम्। अरुन्धतीवशिष्टाधिष्ठितेषु रघुकदम्बकेषु जीवन्तीषु च प्रवृद्धासु राज्ञीषु कथमिदं जातम्?

आत्रेयी— ऋष्यशृङ्गाश्रमे गुरुजनस्तदासीत्। संप्रति तु परिसमाप्तं तद्द्वादश— वार्षिकं सत्रम्। ऋष्यशृङ्गेण च संपूज्य विसर्जिता गुरवः। ततो भगवत्परुन्धती नाहं वधूविरहितामयोध्यां गमिष्यामीत्याह। तदेव राममातृभिरनुमोदितम्। तदनुरोधाद्भगवतो वसिष्ठस्य परिशुद्धा वाचो वाल्मीकितपोवनं गत्वा तत्र वत्स्याम इति।

{१६} शब्दार्थ— रघुकदम्बकेषु = श्रेष्ठ रघुवंशीय लोग। द्वादशवार्षिकं = बारहवर्षों तक होने वाला। सत्रं = यज्ञ। वधूविरहिताम् = वधू (अर्थात् सीता) से रहित। अनुमोदितम् = समर्थित किया गया। अनुरोध = अनुवर्तन। परिशुद्धाः = सर्वथा निर्दोष।

अनुवाद— वासन्ती— हा! दुःख है। श्रेष्ठ रघुवंशीयों के अरुन्धती तथा वसिष्ठ से अधिष्ठातृ (कर्तव्योपदेशद्वारा परिचालित) होते हुए तथा बूढ़ी रानियों के जीवित होते हुए यह कैसे हुआ?

आत्रेयी— गुरुजन उस समय ऋष्यशृङ्ग के आश्रम में थे। अब वह बारहवर्षों में पूरा होनेवाला यज्ञ समाप्त हो गया और ऋष्यशृङ्गद्वारा सम्यक् प्रकार से पूजे जाकर गुरुजन बिदा कर दिये गये। तब भगवती अरुन्धती ने 'मै वधू (सीता) से शून्य अयोध्या नहीं जाऊँगी' ऐसा कहा। वही राम की माताओं से भी समर्थित किया गया। उसके अनुरोध से भगवान् वसिष्ठ ने 'वाल्मीकि के तपोवन में जाकर, वहाँ रहेंगे' ऐसे स्पष्ट वचन (कहे)।

टिप्पणी (Notes)

रघुकदम्बकेषु— 'कदम्बक' शब्द का अर्थ 'समूह' तथा 'कदम्बपुष्प' दोनों हैं। पुष्पवाची

कदम्बक शब्द कमल इत्यादि के समान ही समास में उत्तरपद के रूप में प्रयुक्त होने पर श्रेष्ठार्थवाचक होता है, दे० अ० को० — “स्युस्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः” (३१ १७९), तथा ‘उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे’ (पा० २१ १५६)।

वधूः— ‘वधू’ शब्द का अर्थ ‘पत्नी’, ‘स्नुषा’ (पुत्रवधू) तथा ‘नारी’ होता है। यहाँ अरुन्धती ने आत्मीयता के कारण सीता को ‘वधू’ (स्नुषा) कहा है।

{१७} वासन्ती— अथ स राजा किमाचारः संप्रति?

आत्रेयी— तेन राज्ञा क्रतुरश्वमेधः प्रकान्तः।

वासन्ती— हा धिक्! परिणीतमपि।

आत्रेयी— शान्तं पापम्। नहि नहि।

वासन्ती— का तर्हि यज्ञे सहधर्मचारिणी।

आत्रेयी— हिरण्यमयी सीताप्रकृतिः।

{१७} शब्दार्थ— किमाचारः = किस आचरण वाला है (अर्थात् क्या कर रहा है?)। क्रतुः = यज्ञ। प्रकान्तः = आरम्भ किया गया है। परिणीतम् = विवाह कर लिया है। सहधर्मचारिणी = पत्नी। हिरण्यमयी = स्वर्णमयी, सोने की बनी हुई। प्रतिकृतिः = प्रतिमूर्ति।

अनुवाद— वासन्ती— इसके अनन्तर अब वह राजा किस प्रकार के आचारवाला है?

आत्रेयी— उस राजा से अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया गया है।

वासन्ती— हा, धिक्कार है। विवाह भी कर लिया है।

आत्रेयी— पाप शान्त हो। नहीं, नहीं।

वासन्ती— तो यज्ञ में सहधर्मचारिणी (पत्नी) कौन है?

आत्रेयी— सीता की स्वर्णमयी प्रतिमूर्ति।

टिप्पणी (Notes)

किमाचारः— तुल० ‘किंप्रयोजनः’। क्रतुः— ऐसा श्रौतयज्ञ जिसमें पशुहिंसा का विधान है।

अश्वमेधः— अश्वः मेध्यते हिंस्यतेऽत्र, √ मेध् (मेधाहिंसानयोः)। प्राचीन काल में यह यज्ञ

राजाओं द्वारा सन्तान के निमित्त किया जाता था, किन्तु बाद में सार्वभौम आधिपत्य को सूचित करने के लिए जाने लगा। रामायण के बालकाण्ड (सर्ग १२, १४) में दशरथ द्वारा किये हुए अश्वमेध का सविस्तार वर्णन है।

प्रक्रान्तः — यह शब्द प्रायः श्रौत तथा स्मार्त कर्मों की आरम्भिक विधियों के अनुष्ठान करने में अर्थ में प्रयुक्त होता है।

परिणीतम्— अश्वमेधादि यज्ञों में सपत्नीक का ही अधिकार है।

सधर्मचारिणी— पति के साथ धर्माचरण करनेवाली, अर्थात् सहधर्मिणी। सपत्नीक पुरुष के लिए ही यज्ञों का विधान है (तुल० 'सस्त्रीको धर्ममाचरेत्') अतएव 'पत्नी' शब्द का एक पर्याय 'सहधर्मिणी' भी है (दे० अ० को०); तुल० पा० ४१।३३ ('पत्युर्नो यज्ञसंयोगे')।

{१८} वासन्ती— हन्त भोः!

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।

लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति॥७॥

अन्वयः— वज्रादपि कठोराणि तथा कुसुमादपि मृदूनि लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुम् अर्हति।

{१८} शब्दार्थ— लोकोत्तराणम् = अलौकिक महापुरुषों के। चेतांसि = हृदयों को। को नु = भला कौन। विज्ञातुम् अर्हति = जान सकता है।

अनुवाद— वासन्ती— ओह! अलौकिक (महापुरुषों) के वज्र से भी कठोर तथा पुष्प से भी कोमल हृदयों को भला कौन जान सकता है?

व्याकरण— लोकोत्तराणां — लोकेभ्यः उत्तराणाम्; यहाँ 'व्यवस्था' (अर्थात् उत्तर दिशा) अर्थ न होने के कारण 'उत्तर' शब्द की सर्वनाम संज्ञा नहीं है; अतः 'उत्तरेषां' न होकर 'उत्तराणाम्' रूप हुआ यहाँ शेषेष्टी है। उत्तराः — अशियेन उद्गता उद् (उर्ध्व) + तरप्।

टिप्पणी (Notes)

इस श्लोक के भाव के साथ भट्टहरि-नीतिशतक के ६६ वें श्लोक की तुलना की जा सकती है— "संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्। आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम्॥"

{१९} आत्रेयी— विसृष्टश्च वामदेवाभिमन्त्रितो मेध्योऽश्वः। उपकल्पिताश्च यथाशास्त्रं तस्य रक्षितारः।

वासन्ती— (सस्नेहकौतुकास्त्रम्) कुमारलक्ष्मणस्यपि पुत्रः। हन्त मातर्जीवामि।

[१९] शब्दार्थ— विसृष्टः = छोड़ा गया है। अभिमन्त्रितः = मन्त्रों से पवित्र किया हुआ। मेधयः = यज्ञीय, यज्ञ में वध्य। उपकल्पिताः = नियुक्त किए गये। अधिष्ठाता = अधिनायक। आत्मजः = पुत्र। अवाप्तदिव्यास्त्रसंप्रदायः = प्राप्त किया है दिव्यास्त्रों का सम्प्रदाय परम्परागत (अर्थात् उपदेश) जिसने ऐसा। चतुरङ्गसाधनान्वितः = चतुरङ्ग (हस्ति, अश्व, रथ तथा पदाति इन चार अङ्गोंवाली) सेना से अनुगत। अनुप्रहितः = पीछे पीछे भेजा गया है। सस्नेहकौतुकास्त्रम् = वात्सल्य तथा हर्ष के अश्रुओं के साथ। हन्त = हर्षसूचक अव्यय।

अनुवाद— आत्रेयी— और वामदेव (मुनि) से मन्त्रों द्वारा संस्कार किया हुआ यज्ञीय अश्व छोड़ा गया है और शास्त्र के अनुसार उसके रक्षक नियुक्त किये गये हैं। और अधिनायक लक्ष्मण का पुत्र, चन्द्रकेतु, जिसने दिव्यास्त्रों का परम्परागत उपदेश ग्रहण किया है, तथा जो चतुरङ्ग सेना से युक्त है, पीछे-पीछे भेजा गया है।

वासन्ती— (स्नेह तथा हर्ष के आँसुओं के साथ) कुमार लक्ष्मण का भी पुत्र है। हर्ष है, माता, मैं जी गई।

टिप्पणी (Notes)

वामदेवाभिमन्त्रितः— वसिष्ठ ऋषि कौशल्यदि के साथ वाल्मीकि मुनि के तपोवन में रहने लगे थे, अतः उनकी उपस्थिति में वामदेव ही यज्ञ के ऋत्विज् बनाये गये। वामदेव ऋषि ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के सूक्तों के द्रष्टा हैं।

सम्प्रदाय— गुरुद्वारा शिष्य को सम्यक् (विधिपूर्वक) विद्याप्रदान (गुरुपरम्परागतसदुपदेश)।

माताजीवामि— “मातर्जीवामीति द्राविडस्त्रीस्वभावोक्तिः। एवं वदता कविना निजं द्राविडत्वं प्रकटीकृतम्” (घनश्याम टीका)।

[२०] आत्रेयी— अत्रान्तरे ब्राह्मणेन मृतं पुत्रमुत्क्षिप्य राजद्वारे सोरस्तडमब्रह्मण्यः— मुद्मोषितम्। ततो न राजापचारमन्तरेण प्रजास्वकालमृत्युः संचरतीत्यात्मदोषं निरूपयति करुणामये रामभद्रे सहस्रैवाशरीरिणी वागुदचरत्—

शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः।

शीर्षच्छेद्यः स ते राम तं हत्वा जीवय द्विजम्॥८॥

इत्युपश्रुत्यैवाकृष्टकृपापाणिः पुष्पकं विमानमारुह्य सर्वा दिशो विदिशश्च शूद्रतपसान्वेषणाय
जगत्पतिः संचरितुमारब्धवान्।

वासन्ती— शम्बूको नाम धूमपः शूद्रोऽस्मिन्नेव जनस्थाने तपश्चरति। तदपि नाम रामभद्रः
पुनरपीदं वनमलङ्कुर्यात्।

अन्वयः— शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तपः तप्यते। हे राम, स ते शीर्षच्छेद्यः, तं हत्वा
द्विजं जीवय।

[२०] शब्दार्थ— उत्क्षिप्य = फेंककर। सोरस्ताडम् = छाती पीटते हुए। अब्रह्मण्यं =
'ब्राह्मणपर महान् संकट आया है, रक्षा करो' इस प्रकार का शब्द। उद्घोषितम् = उच्च स्वर से
उच्चारित किया। राजापचार = राजा का धर्मव्यतिक्रम। अन्तरेण = बिना। निरूपयति = विचारते हुए।
अशरीरिणीवाक् = आकाशवाणी। उदचरत् = प्रादुर्भूत हुई। वृषलः = शूद्र। शीर्षच्छेद्यः = शिर काटने
योग्य। द्विजम् = ब्राह्मण के (पुत्र) को। उपश्रुत्य = सुनकर। आकृष्टकृपापाणिः = खिंची हुई तलवार
है हाथ में जिसके ऐसा। विदिशः = दिशाओं के मध्यभाग। धूमपः = धूममात्र पीनेवाला। तद् =
इसलिए। अपिनाम = सम्भव है। पुनः अपि = फिर भी।

अनुवाद— आत्रेयी— इसी बीच में (किसी) ब्राह्मण द्वारा, मरे हुए पुत्र को राजद्वार पर फेंक
कर, छाती पीटते हुए 'ब्राह्मण पर महान् संकट आया है, रक्षा कीजिये' ऐसा उच्चस्वर से घोषित
किया गया। तब 'राजा के धर्मव्यतिक्रम के बिना प्रजाओं में अकाल मृत्यु नहीं होती' इस प्रकार
दयामय रामभद्र के विचार करते हुए अकस्मात् आकाशवाणी आविर्भूत हुई। शम्बूक नाम का शूद्र
पृथ्वी पर तप कर रहा है। हे राम, वह तुम्हारे द्वारा शिर काटे जाने योग्य है; उसे मारकर ब्राह्मण
(पुत्र) को जीवित करो। ऐसा सुनते ही, खिंची हुई तलवार है हाथ में जिसके ऐसे जगदीश्वर (राम)
ने पुष्पक विमान पर चढ़कर शूद्र तपस्वी को ढूँढने के लिए सब दिशाओं तथा विदिशाओं में घूमना
आरम्भ कर दिया है।

वासन्ती— शम्बूक नाम का धूमपीने वाला शूद्र इसी जनस्थान में तप कर रहा है। अतः सम्भव
है रामभद्र फिर भी इस वन को शोभित करें।

व्याकरण— राजापचारमन्तरेण— राज्ञः अपचारः राजापचारः (षष्ठी तत्पु०), तमन्तरेण,
'अन्तरान्तरेण युक्ते' (पा० २।३।४) इति द्वितीया। अपचारः— अप √ चर् + घञ्। निरूपयति—
नि— √ रूप् १० उ०+शतृ, भावे सप्तमी। अशरीरिणी— शरीरं विद्यते यस्याः सा शरीरिणी
(शरीर—इनि—झीप्), न शरीरिणी अशरीरिणी। उदचरत्— उद्— √ चर्—लङ्; 'उद्' उपसर्गपूर्वक

अकर्मक √ चर् परस्मैपदी है; किन्तु सकर्मक √ चर् आत्मनेपदी है; जैसे धर्ममुच्चरते (उल्लङ्घ्य गच्छति) (दे० पा० १।३।५३—‘उदश्वरः सकर्मकात्’। तप्यते तपः—‘तपस्तपः कर्मकस्यैव’ (पा० ३।१।८८) इस सूत्र के अनुसार ‘तपस्’ कर्मवाली तप् धातु (१.५०) के कर्ता को कर्मवद्भाव होता है, अर्थात् उस कर्ता के योग में क्रिया के रूप कर्मवाच्य होते हैं। शीर्षच्छेदः—शिरश्छेदं नित्यमर्हति, शीर्षच्छेद+यत् (‘शीर्षच्छेदाद् यच्च’ पा० ५।१।६५); ‘शिरस्’ शब्द का ‘शीर्ष’ निपातन से होता है। आकृष्टकृपाणपाणिः—आकृष्टः कृपाणः पाणौ यस्य, व्यधिकरणबहुब्रीहिः, ‘प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ भवतः’ (वा०) इसके अनुसार सप्तम्यन्त ‘पाणि’ का परनिपात हुआ। धूमपः—धूमं पिबति, √ पा + क (‘आतोऽनुपसर्गे कः’ पा०)

टिप्पणी (Notes)

अब्रह्मण्यं—की टिप्पणी देखें। राजापचारमन्तरेण—तुल० रघु० १५।४७।

अशरीरिणीवाक्—रामायण में इसका उल्लेख नहीं है, रामायण के अनुसार नारद मुनि ने आकर राम को शम्बूक के तपश्चरण के विषय में सूचना दी।

पुष्पकं—यह प्रसिद्ध विमान रावण ने कुबेर से छीन लिया था, रावणवध के पश्चात् राम इसी विमान में बैठकर अयोध्या लौटे, और अयोध्या आकर उन्होंने इस विमान को कुबेर के पास भेज दिया, तथा भेजते समय इसे चिन्तन किये जाने पर पुनः उपस्थित होने के लिए कहा, दे० उत्तरकाण्ड ४१।

विदिशः—दिग्भ्यां विनिर्गता विदिक्; ‘दिशोर्मध्ये विदिक् स्त्रियाम्’ (अ० को०)।

अपिनामः—अपि यहाँ ‘सम्भावना’ के अर्थ में प्रयुक्त है। सम्भावनार्थक ‘अपि’ के साथ ‘नाम’ शब्द भी प्रायः जोड़ा जाता है।

{२१} आत्रेयी—भद्रे, गम्यतेऽधुना।

वासन्ती—आर्ये आत्रेयि, एवमस्तु। कठोरीभूतस्तु दिवसः।

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन संपातिभिः—

धर्मस्य सितबन्धनैः स्वकुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।

छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः

कूजत्वलान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्भुमाः॥१॥

(इति परिक्रम्य निष्क्रमन्ते ।)

इति शुद्धविष्कम्भः ।

अन्वयः— छायापस्करमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः कूजत्वलान्तकपोतः कुक्कुटकुलः
कूले कुलायदुमाः कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभिः धर्मस्त्रसितबन्धनैः स्वकुसुमैः
गोदावरीम् अर्चन्ति ।

[२१] शब्दार्थ— कठोरीभूतः = पूर्णता को प्राप्त हो गया है; अर्थात् मध्याह्न हो गया है।
कण्डूल = कण्डूयुक्त, खानवाले। द्विप = हाथी। गण्डपिण्ड = पिण्डाकार गजकपोल। कषण =
घर्षण, रगड़। उत्कम्प = संचलन। सम्पातिभिः = एक साथ गिरनेवाले। धर्मस्त्रसितबन्धनैः = ऊष्मा से
ढीले कर दिये गये हैं बन्धन (वृन्त) जिनके ऐसे (पुष्पोऽसे)। गोदावरीम् अर्चन्ति = गोदावरी की पूजा
कर रहे हैं (यहाँ 'अर्चनित का कर्ता 'दुमाः' है')। छाया = अनातप, छाँह। अपस्करमाण = जीविका
के लिए (चोंच तथा नखों से) किरोदते हुए। विष्किर = पक्षी। मुख = चोंच। व्याकृष्ट = खींचकर
निकाले हुए। त्वच् (क्) = (वृक्षों की) छाल। विष्किरः... त्वचः = पक्षियों की चोंचों द्वारा खींचे
गये हैं कीट जिनसे ऐसी छालों वाले (द्रुम)। क्लान्त = (मध्याह्न की धूप से) खिन्न। कपोत =
कबूतर। कुक्कुट = मुर्गे। कुल = समूह। कूल = तट। कुलायदुमाः = पक्षियों के घोंसले से युक्त
वृक्ष।

अनुवाद— आत्रेयी— हे कल्याणि, अब मैं जाती हूँ।

वासन्ती— आर्ये आत्रेयि, ऐसा ही हो। दिन भी कठोर (मध्याह्न) हो गया है। छाया में जीविका के
लिए (चोंच तथा नखों से) किरोदते हुए पक्षियों की चोंचों से खींचकर निकाले गये हैं कीट जिनसे
ऐसी छालोवालें, कूजते हुए और (धूप के कारण) खेदयुक्त कबूतरों तथा मुर्गों के समूह हैं जिनपर
ऐसे, तटपर स्थित, पक्षियों के घोंसलों से युक्त वृक्ष, हाथियों की कण्डूयुक्त कपोलभित्तियों के घर्षण
के कारण हिलने से समूहरूप में नीचे गिरनेवाले और घाम के कारण शिथिल वृन्तोंवाले अपने पुष्पों
से गोदावरी को पूजते हैं। (घूमती हुई दोनों बाहर निकल जाती हैं)।

टिप्पणी (Notes)

कण्डूल— हाथियों के गण्डस्थल से मद चूने के समय खुजलाया करते हैं।

छाया.....त्वचः— यह बहुव्रीहि गर्भित बहुव्रीहि है।

कुल— सजातीयों के समूह को 'कुल' कहते हैं (दे० अ० को०)।

इस श्लोक में अनुप्रास ध्यान देने योग्य है। अन्तिम चरण का प्रत्येक पद 'क्' वर्ण से आरम्भ हुआ है। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है (दे० टीका); उत्प्रेक्षावाचक शब्द के न होने से उत्प्रेक्षा गम्य है।

शुद्धविष्कम्भक— अङ्ग के आदि में बीते हुए तथा आगे होने वाले कथांशों का निर्देश करनेवाला दृश्य विष्कम्भक कहा जाता है; यह दो प्रकार का होता है— शुद्ध विष्कम्भक मध्यम पात्रों द्वारा प्रयोजित होता है और इसकी भाषा केवल संस्कृत होती है। संकीर्ण विष्कम्भक में नीच तथा मध्यम दोनों प्रकार के पात्र संभाषण करते हैं, और उसकी भाषा संस्कृत तथा प्राकृत मिली हुई होती है। यहाँ वासन्ती तथा आत्रेयी दोनों मध्यम पात्र हैं और उनकी भाषा संस्कृत है, अतएव यह शुद्ध विष्कम्भक है।

(ततः प्रविशति पुष्कस्थः सदयोद्यतखड्गो रामः।)

{२२} रामः— रे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य

जीवातवे विसृज शद्रामुनौ कृपाणम्।

रामस्य गात्रमसि निर्भरगर्भखिन्न—

सीता विवासनपटोः करुणा कुतस्ते।१०॥

(कथंचित् प्रहृत्य) कृतं रामसदृशं कर्म। अपि जीवेत् स ब्राह्मणपुत्रः।

अन्वयः— रे दक्षिणहस्त, द्विजस्य मृतस्य शिशोः जीवातवे शूद्रमुनौ कृपाणं विसृज। निर्भरगर्भखिन्नसीताविवासनपटोः रामस्य गात्रम् असि, ते करुणा कुतः।

शब्दार्थः— सदयं = दया सहित। उद्यत = उन्नमति, ऊपर को उठाया हुआ। सदयोद्यतखड्ग = दया सहित उठाये हुए खड्गवाला। जीवातवे = जीवन के लिये। शूद्रमुनि = शूद्रतपस्वी। कृपाण = तलवार। गात्रं = अंग। निर्भर = पूर्ण। पटु = निपुण। सीताविवासनपटोः = सीता के निवासन में निपुण। कथंचित् = अति कष्ट से। प्रहृत्य = प्रहार करके। अपि = शङ्कायुक्तसंभावना के अर्थ में प्रयुक्त।

अनुवाद— (तब पुष्क विमान में स्थित, दया से उठाये हुए कृपाण से युक्त राम प्रवेश करते हैं)। राम— हे दक्षिण हाथ, ब्राह्मण के मृत बालक के जीवन के लिए शूद्रमुनिपर तलवार छोड़। पूर्ण गर्भ से अलसाई हुई सीता के निवासन में निपुण राम का तू अङ्ग है, तुझे दया कैसे आ सकती है।) (किसी प्रकार प्रहार करके) यह राम के योग्य काम किया है। क्यों वह ब्राह्मण बालक जीवित हो गया?

टिप्पणी (Notes)

रामस्य गात्रमसि— यहाँ 'मम' इस पद के स्थान में 'रामस्य' इस पद का ग्रहण अकरुणत्व के अतिशय का व्यञ्जक है।

प्रहत्य— संस्कृत नाटकों में युद्ध, वध, मृत्यु, राज्यभ्रंश आदि दृश्य उद्वेगजनक होने के कारण प्रत्यक्ष नहीं दिखाये जाते (दे०सा०द० ६।१६)। भवभूति ने यहाँ इस नियम का उल्लंघन किया है।

रामसदृशं कर्म— "रामसदृशं कर्म न तु दशरथसदृशं कर्म। दशरथो ह्यबुद्धिपूर्वकं शूद्रतापसवधं कृतवान्। तथा च पितुः शतगुणः पुत्रः' इति न्यायेन दोषविषय एव न तु गुणविषय इति स्वोपालम्भ इह व्यज्यते।" (वीर०)।

अपि जीवेत्— यहाँ 'सम्भावना' में लिङ् है, तथा 'अपि' से आशङ्का का भाव सूचित होता है। राम को निरपराध शूद्रतापस का हनन करते समय अपने इस कर्मपर अत्यन्त घृणा हुई। किन्तु राम जीवन का एकमात्र लक्ष्य है लोकाराधन, जिसके लिए वे अपना सब कुछ त्याग देने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं और सीता जैसी निष्कल्मष प्राणप्रिया का परित्याग कर चुके हैं। इसी लोकभावना का आदर करने के लिए उन्होंने यह तपस्वी का वध रूप जघन्य कृत्य किया है। इसलिये यहाँ सम्भावना में लिङ् लकार का प्रयोग किया है। अर्थात् यदि इस शूद्र के तपस्या करने से ब्राह्मण पुत्र मरा हो (जैसा कि लोग समझते हैं), तो मैंने इसे मार दिया अतः अब वह जी उठे, यह तात्पर्य है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द तथा काव्यलिङ्ग अलंकार है।

{२३} दिव्यपुरुषः— जयतु जयतु देवः।

दत्ताभये त्वयि यमादपि दण्डधारे

संजीवितः शिशुरसौ मम चेत्यमृद्धिः।

शम्बूक एष शिरसा चरणौ नतस्ते

सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति।११॥

अन्वयः— यमाद् अपि दत्ताभये त्वयि दण्डधारे सति असौ शिशुः संजीवितः, मम च इयम् ऋद्धिः। एष शम्बूकः ते चरणौ शिरसा नतः। सत्सङ्गजानि निधनानि अपि तारयन्ति।

{२३} शब्दार्थ— यमाद् अपि = यम से भी। दत्ताभये = दिया है अभय जिसने ऐसे। त्वयि = आपके। दण्डधारे {सति} = दण्डधारण करने वाले होने पर। ऋद्धिः = दिव्यशरीर प्राप्तिरूप

समृद्धि। नतः = प्रमाण करता है। सत्सङ्गजानि = साधुसंसर्ग से प्राप्त। निधनानि अपि = विनाश (मरण) भी। तारयन्ति = उद्धार कर देते हैं।

अनुवाद— (प्रवेश करके) दिव्यपुरुष— महाराज की जय हो जय हो। यमराज से भी दिया है अभय जिसने ऐसे, आपके दण्ड देनेवाले होने पर वह बालक जीवित हो गया है, तथा मेरी यह समृद्धि (हुई)। यह शम्बूक आपके चरणों में शिर से प्रणाम करता है। साधुसंगति से प्राप्त हुए विनाश (मरण) भी (भवसागर से) पार उतार देते हैं।

व्याकरण— यमाद्—अपादाने पञ्चमी, 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' (पा०) इति अपादानत्वम्। संजीवितः सम्— जीव् + कर्मणि क्तः। ऋद्धिः— √ ऋध् + क्तिन्। नतः— नम् + कर्तरि क्तः (गत्यर्थत्वात्)। निधन— नि— √ धा + क्यु (उणादि)। तारयन्ति— त + णिच्, रुट्।

टिप्पणी (Notes)

दिव्यपुरुष— भगवान् राम के हाथ से मृत्यु होने के कारण शम्बूक ने शूद्रदेह को छोड़कर दिव्यरूप धारण कर लिया, वहीं देवरूप होकर कृतज्ञता प्रकट कर रहा है। इस श्लोक में दण्डरूप कारण से उसके विरुद्ध सम्पत्तरूप कार्य के होने के कारण हेतुविरुद्धकार्योत्पत्तिरूप विषमालङ्कार है, द्वितीयार्थ में विशेष का सामान्य द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है, तथा इन दोनों का अङ्गान्निभाव होने से संकर है तथा वसन्ततिलका छन्द है।

{२४} रामः— द्वयमपि प्रियं नः। तदनुभूयतामुग्रस्य तपसः फलम्।

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च संपदः।

वैराजा नाम ते लोकास्तैजसा सन्तु ते शिवाः॥१२॥

अन्वयः— यत्र आनन्दाश्च (यत्र) मोदाश्च यत्र पुण्याः सम्पदश्च, तै तेजसाः शिवाः वैराजाः नाम लोकाः ते सन्तु।

{२४} शब्दार्थ— द्वयम् = दोनों (बातें)। उग्रस्य तपसः = अति कठोर तपका। यत्र = जहाँ (जिन लोकों में)। आनन्द = आध्यात्मिक सुख। मोद = दिव्य त्रिषयों के भोग का सुख। संपदः = संपत्तियों, अणिमादि सिद्धियों। वैराजाः = विराज् सम्बन्धी (अर्थात् ब्रह्मलोक)। तैजसाः = तेजोमय। शिवाः = मङ्गलकारी।

अनुवाद— राम— दोनों ही बातें हमें प्रिय हैं। अतः अति कठोर तपस्या के फल को अनुभव कीजिये। जहाँ आध्यात्मिक तथा दिव्यविषयों के भोग का सुख है और जहाँ पवित्र संपदाएँ

(अणिमादि विभूतियाँ) हैं वे ज्योतिर्मय तथा मङ्गलकारी वैराजनामक लोक (ब्रह्मलोक) तुम्हारे होवें।

टिप्पणी (Notes)

पुण्याः सम्पदः— जो किसी का अहित करनेवाली न हों।

पुण्याभिसंभवाः (पाठा०) — पुण्यात् अभिसंभवो येषां, धर्माचरण से जन्य, 'आनन्दा' तथा 'मोदाः' का विशेषण।

वैराजाः — ये ब्रह्मलोक अथवा सत्यलोक भी कहलाते हैं, जिसे प्राप्त करनेवालों का पुनर्जन्म नहीं होता। अनुष्टुप छन्द तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

{२५} शम्बूकः— युष्मत्प्रसादादेवैष महिमा। किमत्र तपसा। अथवा महदुपकृतं तपसा।

अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने भूतनाथः शरण्योः।

मामन्विष्यन्निह वृषलकं योजनानां शतानि।

क्रान्त्वा प्राप्तः स इह तपसां संप्रसादोऽन्यथा चेत्

क्वायोध्यायाः पुनरुपगमो दण्डकायां वने वः। १३॥

अन्वयः— भुवने अन्वेष्टव्यः, भूतनाथः, शरण्यः, (त्वं) वृषलकं माम् अन्विष्यन् योजनानां शतानि क्रान्त्वा यद् इह प्राप्तोऽसि, स तपसां संप्रसादः, अन्यथा चेत् अयोध्यायाः दण्डकायां वने वः पुनः उपगमः क्व।

{२५} शब्दार्थः— प्रसाद = अनुग्रह। महिमा = माहात्म्य। अन्वेष्टव्यः = ढूँढ़े जाने योग्य। भुवने = जगत् में। भूतनाथः = प्राणियों का स्वामी। शरण्यः = रक्षा करनेवाला। अन्विष्यन् = खोजता हुआ। वृषलकं = अधम वृषल (शूद्र) को। योजन = चार क्रोश या आठ मील। क्रान्त्वा = अतिक्रमण करके, लाँघकर। संप्रसादः = अनुग्रह, फल। अन्यथा चेत् = नहीं तो। क्व = कहाँ। पुनः उपगमः = फिर आना। वः = तुम्हारा (आदर के अर्थ में बहुवचन)।

अनुवाद— शम्बूक— आपके अनुग्रह से ही यह उत्कर्ष है। इसमें तप से क्या? अथवा तप ने बड़ा उपकार किया। लोक में ढूँढ़ने योग्य, प्राणियों के स्वामी, शरणागत की रक्षा करनेवाले (आप) मुझ अधम शूद्र को (स्वयं) ढूँढ़ते हुए सैकड़ों योजन लाँघकर जो यहाँ आए हैं, वह तपस्याओं का फल है; नहीं तो अयोध्या से दण्डकारण्य में आपका फिर आना कहाँ (होता)।

प्रसादोपायः (पाठा०) — (दे० टीका), यह पाठ उपयुक्त नहीं है।

प्रसादोपादानः (पाठा०)— प्रसादः उपादानं यस्य; सम्भवतः यही मूल पाठ रहा होगा, तुल०
'प्रकृष्टपुण्यपरिपाकोपादान एष महिमा' मालवि० IV.।

अन्वेष्टव्यः — तुल० 'य आत्मा अपहतपाप्मा..... सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः'

छा०उप० ८।७।१।

वृषलक— यहाँ कुत्सा के अर्थ में कन् जोड़ा गया है। असमान वर्णों वाले माता—पिता
की सन्तान को वृषल कहते हैं।

योजनानां शतानि— इसका अर्थ है सैकड़ों योजन। यद्यपि अयोध्या और दण्डकारण्य के
बीच की दूरी निश्चित हो सकती थी किन्तु आकाशवाणी ने 'शम्बूकोनाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः'
कहा था और राम पुष्पक में बैठकर उसे इधर—उधर खोजते हुए दण्डका में पहुँचे थे। इसलिए उन्हें
सैकड़ों योजन का चक्कर काटना पड़ा। मन्दाक्रान्ता छन्द तथा काव्यलिङ्गलंकार है।

{२६} रामः — किं नाम दण्डकेयम्? (सर्वतोऽवलोक्य) हा कथम्—

स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरूक्षाः

स्थाने स्थाने मुखरकुभो झाङ्कृतैर्निर्झराणाम्।

एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्वर्तकान्तरमिश्राः

संक्षयन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागाः।१४॥

अन्वयः— क्वचित् स्निग्धश्यामाः, अपरतः भीषणाभोगरूक्षाः, स्थाने स्थाने निर्झराणां
झाङ्कृतैः मुखरकुभः, तीर्थाश्रमगिरिसरिद्वर्तकान्तरमिश्राः एते परिचितभुवः दण्डकारण्यभागाः संक्षयन्ते।

{२६} शब्दार्थ— क्वचित् = कहीं तो। स्निग्धश्यामाः = स्निग्ध (चिकने) अर्थात् रमणीय,
तथा श्याम (नील) अर्थात् हरेभरे। अपरतः = दूसरी ओर। भीषणभोगरूक्षाः = भयंकर विस्तार
(आभोग) के कारण; रूखे अर्थात् उद्वेगजनक। निर्झराणां झाङ्कृतैः = झरोतों (झरनों) के झंकारयुक्त
शब्दों से। मुखरकुभः = शब्दायमान (मुखर) दिशाओं वाले। गिरि = पर्वत। सरित् = नदी। गर्त =
श्वभ्र, गड्ढा। कान्तार = वन, अथवा दुर्गम पथ। परिचितभुवः = जाने—पहिचाने हैं भूभाग जहाँ के ऐसे।
दण्डकारण्यभागाः = दण्डक नामक वन के भाग।

अनुवाद— राम— क्या यह वस्तुतः दण्डका है? (सब ओर देखकर) हा! कैसे— कहीं तो रमणीय तथा हरे-भरे, और दूसरी ओर भयंकर विस्तार के कारण रूखे (उद्वेगजनक), स्थान—स्थान पर झरनों के झंकारयुक्त शब्दों से प्रतिध्वनित दिशाओं वाले, (तथा) तीर्थ, आश्रम, पर्वत, नदी, गड्ढे और दुर्गम मार्गों से युक्त, ये परिचित भूमियों वाले दण्डकारण्य में भाग दिखाई पड़ रहे हैं।

व्याकरण— स्निग्ध— स्निह् + क्त। आभोगः— आभुज्यते इति, आ— √भुज् + घञ्। मुखर — मुख + र ('खमुखकुब्जेभ्यः उपसंख्यानम्' वा०)। मिश्र— √ मिश्र (संपर्के) १०३० + अच्। संक्षयन्ते— सम्— √ दृश्—कर्मणि लट्।

टिप्पणी (Notes)

किं नाम दण्ड०— राम ने पुष्पक को उन्हें उस स्थान पर ले जाने के लिए कहा था, जहाँ शूद्रतापस तपस्या कर रहा था। अतः पुष्पक राम को दण्डकारण्य में ले आया, किन्तु उस शूद्रतापस की हत्या करने से उत्पन्न चित्तविक्षोभ के कारण, राम का ध्यान उस प्रदेश की ओर नहीं गया, अतएव उन्होंने ऐसा प्रश्न किया।

हा! कथम्— इसके स्थानपर 'आम्' पाठान्तर है; 'आम्' एक अव्यय है, जो पूर्वानुभूत किन्तु विस्मृत विषय को उसके चिह्नादि देखकर पुनः स्मरण करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है— (हाँ, याद आ गया)।

स्थाने स्थाने— उचित स्थानों पर, यहाँ अवधारण है, वीप्सा नहीं, वीप्सा होनेपर इसका अर्थ होगा 'प्रत्येक स्थान पर' किन्तु यह अर्थ संभव नहीं है।

झाङ्कृतैः— 'झाङ्' यह अव्यक्तानुकरणात्मक शब्द है; ऐसा अनुकरणात्मक शब्द जिसके परे 'इति' शब्द न हो, गतिसंज्ञक होता है। (पा० १।४।६२), अतः 'झाङ्कृतैः; गतिसमास है।

सारदुर्गर्भ० (पाठा०)— सरितः गर्भे येषां ते च कान्तरमिश्राश्च, अथवा गर्भभूताः कान्ताराः गर्भकान्ताराः (छोटे छोटे वन) तैर्मिश्रः।

कान्तार— क—अन्त—आर, कस्य, अम्भसः अन्तं नाशम् ऋच्छति (क्षी० स्वा०)। इस शब्द के अर्थ 'दुर्गम मार्ग' तथा 'महारण्य' दोनों हैं, ('महारण्ये दुर्गपथे कान्तारं पुनर्पुंसकम्' अ० को०)। प्रकृत में इसका अर्थ 'दुर्गम मार्ग' ही उपयुक्त है। इस श्लोक का अन्वय इस प्रकार भी हो सकता है— 'एते..... दण्डकारण्यभागाः परिचितभुवः संक्षयन्ते'— दण्डकारण्य के प्रदेश परिचित भूमिवाले दिखाई पड़ते हैं। यहाँ मन्दाक्रान्ता छन्द तथा स्वभावोक्ति अलंकार है।

{२७} शम्बूकः — दण्डकैवैषा। अत्र किल पूर्व निवसता देवेन—

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।

त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्धानो रणे हताः। १५॥

येन सिद्धक्षेत्रेऽस्मिञ्जनस्थाने माद्यशामपि जानपदानामकुतोभयः संचारो जातः।

अन्वयः चतुर्दश सहस्राणि चतुर्दश च राक्षसाः त्रयः दूषणखरत्रिमूर्धानः च
रणे हताः।

{२७} शब्दार्थः— दण्डकैवैषा = यह दण्ड का ही है। भीमकर्मणाम् = भीषण (क्रूर)
कर्मवाले। रक्षसाम् = राक्षसों के। चतुर्दश सहस्राणि = चौदह सहस्र। रणे = संग्राम में। हताः = मारे
गये। सिद्धक्षेत्र = सिद्धिदायक पुण्यस्थान। जानपद = जनपदवासी। अकुतोभयः = जिसको कहीं से
भी भय न हो, निर्भय। संचार = विचरण।

अनुवाद— शम्बूक— यह दण्ड वन ही है। कहते हैं यहाँ पहले निवास करते हुए महाराज
द्वारा क्रूर कर्मवाले राक्षसों में से चौदह हजार, तथा दूषण, खर और त्रिमूर्धा ये तीन भी संग्राम में
मारे गये। जिससे इस सिद्धक्षेत्र जनस्थान में, मुझ जैसे जनपदवासियों का भी विचरण (शक्य) हुआ।

टिप्पणी (Notes)

रक्षसां इत्या०— यह पाठ अरण्यकाण्ड (२६।३५) के इस पाठ के अनुसार है— “चतुर्दश
सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्। हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना।” इसके स्थान पर चतुर्दश
राक्षसाः। यह पाठ रामायण में दिये हुए विस्तृत वर्णन के अनुसार है— शूर्पणखा के कहने पर खर
ने पहले चौदह राक्षस राम से लड़ने के लिए भेजे, किन्तु वे सब रामद्वारा मारे गये, तब उसने अपने
सेनापति दूषण को १४००० राक्षसों के साथ भेजा, वे सब भी मारे गये, बचे हुए दोनों राक्षस—खर
तथा त्रिशिरा को सबके साथ भेजा, वे सब भी मारे गये, बचे हुए दोनों राक्षस खर तथा त्रिशिराः सबके
अन्त में आये और उनका भी राम के हाथों से अन्त हुआ; दे० अरण्यकाण्ड २१।८, ९।

त्रिमूर्धनोरणोहताः — समासान्त विधि को अनित्य मानने से ‘त्रिमूर्धानः’ बनता है, किन्तु
समासान्त ‘ष’ जोड़ें तो ‘त्रिमूर्धा’ ऐसा पाठ बनेगा (दे० व्याकरण); अतः कुछ टीकाकारों ने ‘त्रिमूर्ध
नि रणे’ (‘त्रिमूर्धाः नः रणे’) पाठ मानकर ‘नोरणोहताः’ का अर्थ ‘अस्माकम् रणे हताः’ ऐसा किया
है, तथा दूसरे कुछ टीकाकारों ने ‘नो रणोहताः’ का अर्थ काकु से ‘न रणे हताः किम्?’ ऐसा किया
है। यह श्लोक महावीरचरित (१३) में भी आया है।

सिद्धक्षेत्र— 'सिद्धानां क्षेत्रम्'; सिद्ध = तपःसिद्धयोगी जिन्हें अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो गई हैं; अथवा सिद्धनामक देवयोनि के जीव।

{२८} रामः — न केवलं दण्डका, जनस्थानमपि।

शम्बूकः— बाढम्। एतानि खलु सर्वभूतरोमहर्षणान्युन्मत्तचण्डश्वापदकुल— संकुलगिरिगह्वराणि जनस्थानपर्यन्तदीर्घारण्यानि दक्षिणां दिशमभिवर्तन्ते।

{२८} शब्दार्थः— बाढम् = अङ्गीकारसूचक अव्यय (= हाँ)। लोमहर्षणानि = रोमाञ्चकारक। उन्मत्त = मदोद्धत। चण्ड = उग्रकोपवाले। श्वापद = हिंस्र पशु। कुल = सजातीय समूह। संकुल = आकीर्ण, व्याप्त। गह्वर = गुहा। पर्यन्त = प्रान्तभाग। दक्षिणां दिशम् अभिवर्तन्ते = दक्षिण दिशा का वर्तमान हैं।

अनुवाद— राम— न केवल दण्डका, (किन्तु) जनस्थान भी? शम्बूक— हाँ, सब प्राणियों का रोमाञ्चकारक, तथा मदोद्धत और उग्रकोपवाले हिंस्र पशुओं के सजातीय समूहों से व्याप्त पर्वत की गुफाएँ हैं जिनमें ऐसे, ये जनस्थान के प्रान्तभागों में (स्थित) लम्बे वन दक्षिण दिशा तक चले गये हैं।

टिप्पणी (Notes)

इन वर्णनों से राम की मनःस्थिति का पता चलता है। जिन स्थानों में वे १४ वर्षतक रहे वे ही केवल १२ वर्ष बाद उन्हें इतने विसर जाते हैं कि शम्बूक के बताने पर याद आ रहे हैं।

{२९} शम्बूकः— तथाहि—

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः

स्वेच्छासुप्तगभीरघोरभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः।

सीमानः प्रदरोदरेषु विलसत्स्वल्पाभसो यास्वयं

तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते॥१६॥

अन्वयः— सीमानः क्वचित् निष्कूजस्तिमिताः क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः स्वेच्छासुप्तगभीरघोरभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः प्रदरोदरेषु विलसत्स्वल्पाभ्यासः (सन्ति) यासु तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैः अयम् अजगरस्वेद द्रव पीयते।

{२९} शब्दार्थः— निष्कूजस्तिमिताः = पक्षियों की ध्वनि (कूज) से रहित तथा निश्चल

(स्तिमित)। क्वचित् = कहीं पर। प्रोच्चण्ड = अत्यन्त उग्र। सत्त्व = जन्तु, श्वापद। स्वन = शब्द। स्वेच्छा से सोये हुए। गभीर = गहरे अर्थात् बड़े। घोर = भयानक। सीमानः = सीमाएँ, प्रान्भूमियाँ। प्रदरोदरेषु = बिलों के मध्यभागों में। विलसत्स्वल्पाभसः = प्रकाशमान (विलसत्) हैं, थोड़े जल जिनमें ऐसी। यासु = जिन (सीमाओं) में। अयम् = यह। अजगरस्वेदद्रवः = अजगरों (सर्पविशेषों) के पसीने का जल। तृष्यद्भिः = प्यासे। प्रतिसूर्यकैः = कृकलासों (गिरगिटों) द्वारा। पीयते = पिया जाता है।

अनुवाद— शम्बूक— जैसा कि कहीं तो (पक्षियों के) कूजनों से रहित और निश्चल, कहीं श्वापदों के अति भयानक शब्दोंवाली, अपनी इच्छा के अनुसार सोये हुए बड़े तथा भयानक सपों के श्वासों से प्रदीप्त अग्नियोंवाली (तथा) बिलों के मध्य भागों में विद्यमान थोड़े जलोंवाली प्रान्तभूमियाँ हैं, जिनमें प्यासे कृकलासों द्वारा यह अजगरों के पसीने का जल पिया जा रहा है।

टिप्पणी (Notes)

स्तिमित— निश्चल अर्थात् वातरहित, जहाँ एक भी पत्ता न हिल रहा हो।

स्वेच्छासुप्त०— स्वेच्छया सुप्ताः गभीराश्च ते घोराश्च, यद्वा गभीरं यथा स्यात् तथा घोराः ये भुजगाः।

गभीरभोग (पाठा०)— 'भोगः' का अर्थ है सर्प का शरीर अथवा फण।

घोष (पाठा०)— गभीरः घोषः एषां, जो श्वास के समय गहरा शब्द कर रहे थे।

प्रतिसूर्यक— हलायुध की 'अभिधानरत्नमाला' में 'प्रतिसूर्यशयानकः' शब्द आया है ('सरटः कृकलासः स्यात् प्रतिसूर्यशयानकः')। सूर्य प्रति (लक्ष्य) शयानः इति प्रतिसूर्यशयानकः, सम्भव है बाद में लाघव की दृष्टि से 'शयानक' शब्द का लोप हो गया हो। यह सूर्यकिरणों के रंगों के समान अपना रंग बदलता रहता है।

अजगर— अजं गिरति इति। इस श्लोक में भयानक तथा बीभत्स रस हैं।

[३०] रामः — पश्यामि च जनस्थानं भूतपूर्वखरालयम्।

प्रत्यक्षानिव वृत्तान्तान्पूर्वाननुभवामि च।१७॥

(सर्वतोऽवलोक्य) प्रियारामा हि सर्वथा वैदेह्यासीत्। एतानि तानि नाम कान्ताराणि। किमतः परं भयानकं स्यात्?

अन्वयः— भूतपूर्वखरालयं जनस्थानं च पश्यामि। पूर्वान् वृत्तान्तान् प्रत्यक्षानिव अनुभवामि च।

{३०} शब्दार्थ— भूतपूर्व = प्राचीन काल का। खरालय = खर नामक राक्षस का निवास स्थान। अनुभवामि = अनुभव कर रहा हूँ। प्रियारामा = प्रिय हैं आराम (उपवन, कुञ्ज) जिसको ऐसी (वैदेही)। कान्तार = अरण्य महावन।

अनुवाद— राम— और मैं खर के पूर्वकालीन निवास जनस्थान को देखता हूँ तथा पहले वृत्तान्तों को प्रत्यक्षों के जैसा अनुभव कर रहा हूँ। (सब ओर देखकर) वैदेही सब प्रकार से वनों से प्रेम रखने वाली थी और ये वे ही वन हैं। इससे अधिक भयानक क्या होगा।

व्याकरण— भूतपूर्व — पूर्वभूतः इति भूतपूर्वः, सुप्सुपेति समासः, 'भूतपूर्वे चरट्' (पा० ५।३।५३) इति ज्ञापकात् 'पूर्व' शब्दस्य पूर्वनिपातः। प्रियारामा—प्रियः आरामः यस्याः सा प्रियारामा, 'आरामप्रिया' ऐसा भी रूप होता है, क्योंकि बहुव्रीहि में 'प्रिय' शब्द का पाक्षिक निपात भी होता है। आरामः— आ— √रम् — अधिकरणे घञ्।

टिप्पणी (Notes)

प्रियारामा— 'आराम' शब्द का अर्थ उपवन अर्थात् कृत्रिम वन होता है, ('आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव तत्' अ०को०) किन्तु यहाँ लक्षणा से इसका अर्थ 'कुञ्ज' करना चाहिए, वनों में स्थित लतादि के कुञ्ज नैसर्गिक होते हैं, कृत्रिम नहीं। यदि 'आराम' शब्द का अर्थ 'उपवन' किया जावे, तो 'प्रियारामा' का अर्थ होगा— जिसको (अयोध्या में) उपवन प्रिय थे, किन्तु वह मेरे कारण वन में आई।

प्रियारामा (पाठा०)— 'प्रियः रामः यस्याः', किन्तु इस पाठ से कोई विशेष अर्थ सूचित नहीं होता। यहाँ अनुष्टुप छन्द तथा भाविक अलंकार है।

{३१} रामः— (सास्त्रम्)

त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगन्धिषु।

इतीहारमतैवासौ स्नेहस्तस्याः स तादृशः। १८८॥

अन्वयः— 'त्वया सह मधुगन्धिषु वनेषु निवत्स्यामि' इति असौ अत्र अरमत एव, तस्याः स स्नेहः तादृशः।

{३१} शब्दार्थ— त्वया सह = तेरे (राम के) साथ। निवत्स्यामि = निवास करूँगी।

मधुगन्धिषु = मकरन्द के जैसे गन्धवाले। वनेषु = वनों में। इतीहारमतैवासौ = (इति) इस प्रकार (कहती हुई) (असौ) वह (इह) यहाँ (अरमत एव) आनन्दित ही होती थी। तस्याः = उस (सीता) का।

अनुवाद— (आँसुओं के साथ)— तुम्हारे साथ मकरन्द के जैसे गन्धवाले वनों में निवास करूँगी, इस प्रकार (कहती हुई) वह यहाँ (वन में) आनन्दित ही होती थी। उसका वह स्नेह उस प्रकार था।

टिप्पणी (Notes)

मधुगन्धिषु— इसका विग्रह दो प्रकार से हो सकता है— 'मधुनः गन्ध इव गन्धो येषां येषु वा' इसमें 'उपमानाच्च' (पा०५।४।१३७) इस सूत्र के अनुसार 'इ' समासान्त है; इस विग्रह में विशेष चमत्कार है, क्योंकि इससे सीता का राम के प्रति अतिशय स्नेह सूचित होता है। राम के साथ निवास करने पर भयानक वन भी सीता को मकरन्द के जैसे गन्धवाले प्रतीत होंगे; दूसरा विग्रह इस प्रकार होगा— 'मधुगन्धः अस्ति एषां एषु वा' इसमें मतुबर्थक 'इनि' प्रत्यय है, जिससे 'मधुगन्धिन्' ऐसा तद्धितान्त शब्द बनेगा। ऐसा विग्रह करने पर यह स्वरूप कथन मात्र होगा।

इतीहारमतैवासौ— इसके अनेक पाठान्तर हैं, जो पाद टिप्पणी के रूप में दे दिये हैं, उन सबमें यही पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। यहाँ अनुष्टुप छन्द है।

{३२} रामः— न किंचिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।

तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः।१९॥

अन्वयः— यः यस्य प्रियः जनः, तत् तस्य किमपि द्रव्यम्। (सः) किंचिदपि न कुर्वाणः सौख्यैः दुःखानि अपोहति हि।

{३२} शब्दार्थ— न किंचिदपि कुर्वाणः = कुछ भी न करता हुआ। सौख्यैः = सुखों द्वारा। दुःखानि = दुःखों को। अपोहति = दूर करता है। हि = क्योंकि। किमपि = अनिर्वचनीय, असाधारण।

अनुवाद— राम— जो जिसका प्रीतिभाजन है, वह (प्रीतिभाजन) उसका अनिर्वचनीय द्रव्य है। (वह) कुछ भी न करता हुआ, सुखों से (उसके) दुःखों को दूर करता है।

टिप्पणी (Notes)

न किंचिदपि कुर्वाणः— भयंकर वनों में भी सीता राम के साथ रहना क्यों चाहती थी, इसके लिए राम ने यहाँ हेतु दिखाया है— राम पर सीता का अकृत्रिम प्रेम था, अतः सीता के लिए

कुछ न करते हुए भी वे स्वसंनिधि मात्र से ही उसे अलौकिक सुख देते थे।

अकिंचदपि कुर्वाणः (पाठा०)— यहाँ नञ् (अ) का अन्वय 'कुर्वाणः' के साथ है 'किंचिद्' के साथ नहीं, अतः यहाँ 'अकिंचिद्' यह तत्पुरुष समास अयुक्त होगा, किन्तु कहीं कहीं 'असूर्यपश्या', 'अश्राद्धभोजी' इत्यादि के समान ऐसा समास भी युक्त मान लिया जाता है।

तत्— यहाँ विधेय ('द्रव्य') के प्रधान होने के कारण, उसके नपुंसक होने से 'तत्' शब्द नपुंसक लिङ्ग में ही प्रयुक्त हुआ है, 'प्रियजन' यहाँ 'प्रियजन' न माना जाकर 'किमपि द्रव्य' माना गया है, अतः विधेय की प्रधानता है, तथा विधेयप्राधान्यात्क्लीबत्वम्। यहाँ अनुष्टुप छन्द है तथा अप्रस्तुत प्रशंसा और अर्थान्यास अलंकार है।

{३३} शम्बूकः— तदलमेभिर्दुरासदैः। अथैतानि मदकलमयूरकण्ठकोमलच्छ— भिरवकीर्णानि पर्वतैरविरलनिविष्टनीलबहलच्छायतरुणतरुषमण्डितान्यसंभ्रान्तविध— गयूथानि पश्यतु महानुभावः प्रशान्तगम्भीराणि मध्यमारण्यकानि।

{३३} शब्दार्थ— दुरासदैः = दुर्धर्ष, दुर्गम। मदकल = मद (हर्ष) से अव्यक्त मधुर ध्वनि करनेवाले। कोमलच्छविभिः = मनोहर कान्तिवाले (पार्वती से)। अवकीर्णानि = व्याप्त, आच्छादित। अविरलनिविष्ट = घनभाव से (अविरल) अवस्थित, अर्थात् घन उगे हुए। नीलबहलच्छाय = नीली और गाढ़ी छायावाले। तरुण = नवीन। तरुषमण्डितानि = वृक्षों के समूहों से शोभित। असंभ्रान्त = (मनुष्यों से परिचित होने के कारण उनको देखकर) न घबड़ाते हुए, त्रासरहित। मृगयूथानि = मृगों के झुंड हैं जिनमें ऐसे। प्रशान्तगम्भीराणि = निरुपद्रव तथा गहन। मध्यमारण्यकानि = (जनस्थान के) बीचवाले वन।

अनुवाद — शम्बूक— तब इन दुर्गमों (पर्यन्तवनों) को रहने दें। अब महानुभाव (आप) इन निरुपद्रव तथा गहन बीचवाले वनों को देखे, जो हर्ष से अव्यक्तमधुरध्वनिवाले मयूरों के कण्ठों की जैसी कान्तिवाले पर्वतों से व्याप्त हैं, जो घनभाव से अवस्थित (घन के उगे हुए) तथा नीली और गाढ़ी छायावाले नवीन वृक्षों के समूहों से शोभित हैं, तथा जो अनेक प्रकार के निःशङ्क मृगों के झुंडोवाले हैं।

टिप्पणी (Notes)

पर्वतैः— इसके स्थानपर 'पर्यन्तैः' भी पाठ मिलता है, किन्तु यह ठीक नहीं जँचता है क्योंकि शम्बूक राम को पर्यन्तों को देखने से तो पहले ही निवारण कर चुका है, फिर 'पर्यन्तैः' के साथ 'अवकीर्णानि' की संगति भी नहीं बैठती।

छायातरु० पाठा०— छायाप्रधानाः तरवः छायातरवः, अविरलं निविष्टाः ये नीलाः बहलाश्च
छायातरवः।

यूथ— पशुपक्षियों के समूह को 'यूथ' कहते हैं। ('यूथं तिर्यक्समूहेऽस्त्री' मेदिनी)।

{३४} शम्बूकः— इह समद—शकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत्—

प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।

फलभरपरिणामश्यामजम्बूकनिकुञ्ज—

स्खलनमुखरभूरिस्त्रोतसो निर्झरिण्यः॥२०॥

अन्वयः— इह समद—शकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत् प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोयाः, (तथा)
फलभरपरिणामश्यामजम्बूकनिकुञ्जस्खलनमुखरभूरिस्त्रोतसो निर्झरिण्यः वहन्ति।

{३४} शब्दार्थ— इह = यहाँ, मध्यमारणको में। निर्झरिण्यः = झरनों से निकली हुई नदियाँ।
समद = मदमत्त, मतवाले। शकुन्ताक्रान्त = पक्षियों से आक्रान्त अर्थात् आरुढ़। वानीरवीरुत् =
वेतसलता। प्रसव = पुष्प। सुरभि = सुगन्धित। फलभर = फलों का भार, अर्थात् फलों की राशि।
परिणाम = परिपाक। श्याम = साँवले। जम्बूकनिकुञ्ज = जामुन के वृक्षों के कुञ्ज। स्खलन = प्रतिघात।
मुखर = शब्दायमान। भूरि = बहुत। स्त्रोतस् = प्रवाह।

अनुवाद— शम्बूक — यहाँ मद वाले पक्षियों से आरुढ़ लताओं के पुष्पों से वासित,
शीतल तथा निर्मल जल वाली, तथा फलों की राशि के कारण श्याम वर्ण वाले जामून वृक्षों की
कुञ्जों में टकराकर गिरने से शब्दायमान हैं प्रबल (अथवा बहुत से) प्रवाह जिनके ऐसे
निर्झरिण्या—पहाड़ी नदियाँ बहती हैं।

टिप्पणी (Notes)

यह श्लोक तथा इससे अगला श्लोक भी महावीरचरित (५।४०।४१) में आया है। इस
श्लोक का प्रधान वाक्य 'इह निर्झरिण्यः वहन्ति' है। दे० शब्दार्थ। यहाँ मालिनी छन्द तथा
स्वभावोक्ति अंलकार है।

{३५} शम्बूकः— अपि च—

दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना—

मनुरसितगुरूणि स्थानमम्बूकृतानि।

भिभदलितविकीर्णग्रन्थिष्यन्दगन्धः ॥२१॥

अन्वयः— अत्र कुहरभाजां भल्लूकयूनाम् अनुरसितगुरुणि अम्बुकृतानि स्त्यानं दधति।
सल्लिकानां शिशिरकटुकषाय इभदलितविकीर्ण ग्रन्थिनिष्यन्द— गन्धस्त्यायते।

{३५} शब्दार्थ— अत्र = यहाँ, मध्यमारण्यों में। कुहरभाजां = बिलों में रहने वाले।
भल्लूकयूनां = तरुण भालुओं के। अनुरसितगुरुणि = प्रतिध्वनियों से बड़े हुए। अम्बुकृतानि = थूक
से युक्त शब्द। स्त्यानं = गाढ़ापन, वृद्धि। दधति = धारण करते हैं। सल्लकीनाम् = हाथियों से खाई
जाने वाली एक प्रकार की लताओं का। शिशिरकटुकषायः = ठंडा तीव्र तथा सुरभि। इभदलितविकीर्ण
= हाथियों द्वारा मर्दित तथा बिखरे हुए। ग्रन्थि = पर्व, गाँठ। निष्यन्द = निखव, रस। स्त्यायते = बढ़
रहा है, अथवा फैल रहा है।

अनुवाद— और भी— यहाँ बिलों में रहने वाले तरुण भालुओं के, प्रतिध्वनियों से बड़े
हुए, थूकयुक्त शब्द वृद्धि को धारण करते हैं। (अर्थात् बढ़ रहे हैं)। (तथा) गजभक्ष्या नामक लताओं
का, हाथियों द्वारा मर्दित तथा बिखरे हुए पर्वों (गाँठ) के रस से उद्धूत, गन्ध बढ़ रहा है।

टिप्पणी (Notes)

अम्बुकृतं— थूकने का शब्द; भालू स्वभावतः निष्ठीवनयुक्त शब्द करते हैं, अम्बूशब्द
उपचारात् तद्वति, अनम्बु अम्बुकृतं अम्बुकृतम्।

सल्लकी— तुल० विक्रमो० २३। यह श्लोक मालतीमाधव (६) में भी है। यहाँ मालिनी
छन्द तथा काव्यलिङ्ग अलंकार है।

{३६} रामः— (सवाष्पस्तम्भ) भद्र, शिवास्ते पन्थानो देवयानाः। प्रलीयस्व पुण्येभ्यो लोकेभ्यः।

शम्बूकः— यावत्पुराणब्रह्मवादिनमगस्त्यऋषिमभिवाद्य शाश्वतं पदमनुप्रविशामि।

(इति निष्क्रान्तः)

{३६} शब्दार्थ— सवाष्पस्तम्भ = आँसुओं के, अथवा कण्ठवाष्प के निरोध सहित। शिवाः
= कल्याणकारक। देवयानाः पन्थानः = देवयाननामक मार्ग। प्रलीयस्व = विलीन हो जाओ।
पुण्येभ्यः लोकेभ्यः = पुण्यलोकों के लिए। यावत् = पहले। ब्रह्मवादिन् = ब्रह्म (अथवा वेद) का
उपदेष्टा। शाश्वतं पदं = अमरपद (ब्रह्मलोक)।

अनुवाद— राम— (अश्रुनिरोधसहित) भद्र, तुम्हारे देवयाननामक मार्ग कल्याणकारक होंगे। पुण्यलोकों को प्राप्त करने के लिए विलीन हो जाओ। शम्बूक— पहले, पुरातन ब्रह्मोपदेष्टा अगस्त्य ऋषि को अभिवादन करके, अक्षयलोक में प्रवेश करूँगा।

टिप्पणी (Notes)

देवयान— मृत्यु के उपरान्त परलोक को जाने के लिए दो प्रकार के मार्गों का वर्णन गीता तथा छान्दोग्य उपनिषद् में मिलता है। निष्कामभाव से तपस्या करनेवाले आत्मज्ञानी लोग देवयान—मार्ग से गमन करके ब्रह्मलोक में पहुँचते हैं, जहाँ से वे पुनः लौटकर नहीं आते, किन्तु सकामभाव से यज्ञ तथा दान इत्यादि करनेवाले लोग पितृयान से गमन करके चन्द्रलोक में पहुँचते हैं, जहाँ वे अपने पुण्यकर्मों के फलों का भोगकर पुण्यों के क्षीण होने पर पुनः इस लोक में लौटते हैं। गीता में इन्हीं को क्रमशः शुक्लगति तथा कृष्णगति कहा गया है।

पुण्यलोक— पुण्यात्माओं द्वारा प्राप्तव्य लोक, पुराणों में भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः एवं सत्यं इन सात लोकों का वर्णन है, जो उत्तरोत्तर एक दूसरे से उत्कृष्ट हैं, यहाँ सत्यलोक से तात्पर्य ब्रह्मलोक है, जहाँ जाकर पुनरावर्तन नहीं होता।

अगस्त्यमृषिभिवाद्य— तुल० 'अनतिक्रमणियानि श्रेयांसि' (शकु० अङ्क ७)।

शाश्वतं पदं— ब्रह्मलोक को ही यहाँ 'शाश्वत पद' कहा गया है क्योंकि वहाँ से पुनरावृत्ति नहीं होती, देवयान मार्गद्वारा गमन करने पर इस पद की प्राप्ति होती है। (दे० छा० उप० ४।५।६)।

{३७} रामः — एतत्तदेव हि वनं पुनरद्य दृष्टं

यस्मिन्नभूम चिरमेव पुरा वसन्तः।

आरण्यकाश्च गृहिणश्च रताः स्वधर्मे

सांसारिकेषु च सुखेषु वयं रसज्ञाः॥२२॥

अन्वयः— तदेव हि एतत् वनम् अद्य पुनः दृष्टम्, यस्मिन् पुरा चिरम् एव वसन्तः वयं स्व धर्मे रताः आरण्यकाः, सांसारिकेषु सुखेषु रसज्ञाः गृहिणश्च अभूम।

{३७} शब्दार्थ— चिरं = दीर्घकाल तक। पुरा = पूर्व समय में। वसन्तः = निवास करते हुए। आरण्यकाः = अरण्य में रहनेवाले वानप्रस्थ। गृहिणः = गृहस्थ। स्वधर्मे रताः = अपने (मुनिजनोचित अथवा क्षत्रियोचित) धर्म में तत्पर रहते हुए। रसज्ञाः = रस का अनुभव करनेवाले।

अनुवाद— राम— यह वहीं वन आज पुनः देखा है जहाँ पहिले दीर्घकाल तक बसते हुए हम, स्वधर्मों में तत्पर वानप्रस्थ तथा सांसारिक सुखों के स्वाद का अनुभव करने वाले गृहस्थ भी हुए थे।

टिप्पणी (Notes)

आरण्यकाश्च गृहिणश्च— यहाँ दो चकार क्रिया का यौगपद्य सूचित करते हैं। वन में रहते हुए वे एक साथ ही वानप्रस्थ तथा गृहस्थ दोनों थे।

रताः स्वधर्मे— स्वधर्म (राक्षसों से मुनियों की रक्षा करने के क्षत्रियोचित धर्म, अथवा फलमूलादि पर निर्वाह करने के मुनिधर्म) में तत्पर।

रसज्ञाः — गृहस्थोचित सुख का आस्वादन करनेवाले। यहाँ वसन्ततिलक छन्द तथा आरण्यकाः और गृहिणः इन दो प्रस्तुतों का स्वधर्मे रता इस एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने से तुल्योगिता है — वनवास के साथ ही दैवात् गृहस्थ धर्म का भी पालन हो जाने से विशेष अलंकार है।

{३८} रामः— एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा—

स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।

आमञ्जुवञ्जुललतानि च तान्यमूनि

नीरन्ध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि ॥२३॥

अन्वयः— एते ते एव विरुवन्मयूराः गिरयः, तानि एव मत्तहरिणानि वनस्थलानि; अमूनि च तानि आमञ्जुवञ्जुललतानि नीरन्ध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि (सन्ति)।

{३८} शब्दार्थ— विरुवन्मयूराः = कूजते हुए मोरोंवाले। मत्तहरिणानि = मदयुक्त हरिणों वाले। वनस्थलानि = वनभूमियाँ। आमञ्जु = सब प्रकार से मनोहर। वञ्जुललतानि = वेतस लताओं वाले। नीरन्ध्र = रन्ध्ररहित, अविरल, घनसन्निविष्ट। नील = श्याम। निचुलानि = हिज्जल वृक्षों वाले। सरित्तटानि = नदियों के तट।

अनुवाद— राम— ये वे ही कूजते हुए मयूरों वाले पर्वत हैं, वे ही मदयुक्त हरिणों वाली वनभूमियाँ हैं, और ये दूर पर दिखाई देनेवाले परम मनोहर वेतसलताओं से युक्त, तथा अवकाशरहित और श्याम हिज्जलवृक्षवाले, नदीतट हैं।

टिप्पणी (Notes)

आमञ्जु— 'मञ्जु' शब्द √ मञ्ज् (शब्दे) १०३० से बना है, अतः इसका अर्थ है 'कर्णप्रिय', किन्तु इसका प्रयोग 'रमणीयमात्र' के लिए होने लगा है; तुल० 'मनोहर' जो प्रायः श्रेष्ठों अथवा नेत्रों को प्रिय लगनेवाली वस्तु के लिए ही प्रयुक्त होता है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द तथा तुल्योगिता अलंकार है।

{३९} रामः— मेघमालेव यश्चायमारादपि विभाव्यते।

गिरिः प्रस्रवणः सोऽयं यत्र गोदावरी नदी॥२४॥

अन्वयः— अयं च यः आरादपि मेघमालेव विभाव्यते, सोऽयं प्रस्रवणः गिरिः, यत्र गोदावरी नदी।

{३९} शब्दार्थ— आरात् = समीप से। विभाव्यते = प्रतीत हो रहा है।

अनुवाद— राम— और यह जो समीप से भी (उच्चशिखरों वाला होने के कारण) मेघों की श्रेणी के समान प्रतीत हो रहा है, वहीं यह 'प्रस्रवण' पर्वत है, जिसके समीप गोदावरी नदी (बहती) है।

टिप्पणी (Notes)

मेघमालेव— अधिक ऊँचे शिखरों के कारण प्रस्रवण गिरि मेघमाला के समान प्रतीत होता है।

आरादपि— समीप होने पर भी, 'आराद् दूरसमीपयोः' (अ०को०), यद्यपि 'आरात्' शब्द का प्रयोग के कारण इसका अर्थ समीप ही उचित है। अन्य पर्वत तो दूर से ही मेघमाला के समान प्रतीत होते हैं, किन्तु प्रस्रवण पर्वत समीप से भी मेघमाला के समान प्रतीत हो रहा है। यह पर्वत जनस्थान के बीच में स्थित बतलाया गया है (दे० अङ्क १), परन्तु रामायण में इसकी स्थिति कष्किन्धा के समीप बताई गई है (दे० किष्किन्धा काण्ड, २७)।

यत्र — यहाँ आधार में सप्तमी है, और आधार का अर्थ यहाँ लक्षणा से सामीप्य लेना चाहिए (तुल० गङ्गायां घोषः)। इस श्लोक में उपमा अलंकार स्फुट है तथा अनुष्टुप छन्द है।

{४०} रामः — अस्यैवासीन्महति शिखरे गृध्रराजस्य वास—

स्तस्याधस्ताद्वयमपि रतास्तेषु पर्णोद्वेजेषु।

रन्तः कूजन्मुखर शकुनो यत्र रम्यो वनान्तः॥२५॥

अन्वयः— अस्य एव महति शिखरे गृध्रराजस्य वासः आसीत्। तस्य अधस्तात् वयम् अपि तेषु पर्णोदजेषु रताः; यत्र गोदावर्याः पयसि विततश्यामलानोकहश्रीः (किञ्च) अन्तः कूजन्मुखरशकुनः रम्यः वनान्तः।

{४०} शब्दार्थ— महति शिखरे = बड़े (अथवा ऊँचे) शिखरपर। गृध्रराजस्य = गृध्रराज (जटायु) का। वासः = निवास। अधस्तात् = नीचे। तेषु = उन पूर्वपरिचित। पर्णोदजेषु = पर्णशालाओं में। रताः = रमण करते (सुखपूर्वक रहते) थे। वितता = फैली हुई थी। श्यामल = हरे। अनोकहानां = वृक्षों की। श्रीः = शोभा, कान्ति। अन्तःकूजन्मुखरशकुनः = भीतर कूजते हुए तथा शोर करते हुए (गाते हुए) पक्षी हैं जिसके, ऐसा। रम्यः = रमणीय। वनान्तः = वनप्रदेश।

अनुवाद— राम— इस (प्रस्रवण गिरि) के ही बड़े (अथवा ऊँचे) शिखर पर गृध्रराज (जटायु) का निवास था। उसके नीचे हम भी उन्हीं (पूर्वपरिचित) पर्णशालाओं में रमण करते थे; जिन (पर्णशालाओं) के समीप गोदावरी के जल में फैली हुई हरे वृक्षों की कान्ति है जहाँ पर ऐसा, (तथा) (पत्तों के) बीच में कूजते हुए हैं गाने वाले पक्षी जहाँ पर ऐसा रमणीय वनप्रदेश है।

व्याकरण— वासः— वसति अत्र इति, √ वस् + अधिकरणे घञ्। अधस्तात् — अधर् + अस्तातिः, 'अध्' आदेश (पा० ५।३।३९, ४०)। रताः — √ रम् + कर्तरि क्त। वितत— वि— √ तन् (विस्तारे) ८ उ० + क्त। अनोकहः— अनसः शकटस्य अकं गतिं हन्ति इति, अनस्— √ अक्— हन् + ड। श्रीः— √ श्रि + क्विप्, दीर्घश्च ('क्विब्वचिप्रच्छि—' वा०)। मुखर— मुखं लक्षणया वाग् अस्त्यस्य, मुख + र ('खमुखकुञ्जेभ्यो रो वक्तव्य' वा०)। शकुनः— शक्नोतीति, √ शक् + उन ('शक्नेरुनोन्तोन्त्युनयः' उणा० शक् से उन, उन्त, उन्ति, उनि प्रत्यय होते हैं); रम्यः — √ रम् + यत् ('पोरदुपधात्' पा०)।

टिप्पणी (Notes)

पर्णोदज— 'उदज' शब्द का अर्थ ही 'पर्णकुटी' होता है ('उटैर्देश्यां तृणपर्णेर्जायते' क्षी० स्वा०); 'पर्णशालोदजोऽस्त्रियाम्' अ० को०; किन्तु 'पर्ण' शब्द का पृथक् प्रयोग होने के कारण यहाँ इसका अर्थ केवल 'कुटी' ही लेना चाहिए; जिस प्रकार 'कुण्डल' शब्द का अर्थ 'कर्णभूषण' होने पर भी 'कर्णकुण्डल' प्रयोग होता है, ऐसा ही यह प्रयोग भी है।

पयसि वितत०— 'पयसि' शब्द का अन्वय 'वितत.....श्रीः' समास के केवल एक देश

‘वित्त’ के साथ है, अतः यहाँ एकदेशी अन्वय है।

अन्तःकूजन्मुखरशकुनः— किसी—किसी ने यहाँ दो पद (अन्तः कूजन्, मुखरशकुनः)

मानकर इसकी इस प्रकार की व्याख्या की है— ‘मुखराः शकुनाः यत्र स मुखरशकुनः अतएव अन्तःकूजन् अन्तः कूजन्निव’। इस व्याख्या में दोनों पद ‘वनान्तः’ के विशेषण होंगे, तथा इसमें ‘इव’ शब्द के न होने से प्रतीयमान उत्प्रेक्षा मानी जायेगी। यहाँ मन्दाक्रान्ता छन्द है।

{४१} रामः— अत्रैव सा पञ्चवटी, यत्र चिरनिवासेन विविधविश्रम्भातिप्रसङ्गसाक्षिणः प्रदेशाः, प्रियायाः प्रियसखी च वासन्तो नाम वनदेवता। किमिदमापतितमद्य रामस्य।

चिराद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः

कुतश्चित्सवेगात्प्रचल इव शल्यस्य शकलः।

व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हन्मर्मणि पुनः

घनीभूतः शोको विकलयति मां मूर्च्छयति च॥२६॥

अन्वयः— चिराद्वेगारम्भी प्रसृतः तीव्रः विषरस इव, कुतश्चित् संवेगात् प्रचलः शल्यस्य शकलः इव, रूढग्रन्थिः पुनः स्फुटितः हन्मर्मणि व्रणः इव, घनीभूतः शोकः मां विकलयति मूर्च्छयति च।

{४१} शब्दार्थ— विश्रम्भ = विश्वास अर्थात् विश्रम्भविलास। अतिप्रसङ्ग = अत्यारूढि, आधि-
क्य। साक्षिणः = साक्षी, देखनेवाले। वेगारम्भी = वेग के साथ आरम्भ होनेवाला। प्रसृतः = (शरीर
के अवयवों में) व्याप्त, फैलते हुए। तीव्रः = अत्युग्र, दुःसह। विषरसः इव = विषद्रव के समान।
कुतश्चित् = कहीं से। संवेगात् = अतिशय वेग से। प्रचलः = हिला हुआ। शल्यस्य = वाण के
अग्रभाग के। शकलः इव = फोड़े के समान। रूढग्रन्थिः = जिसमें गाँठें पड़ गई हैं, अर्थात् जो ऊपर
से भर गया है। पुनः = फिर। स्फुटितः = फूटे हुए। हन्मर्मणि = हृदय के मर्मस्थल में। व्रणः इव =
फोड़े के समान। घनीभूतः = गाढ़ा बना हुआ। शोकः = सीता वियोगजन्य दुःख। मां = मुझको।
विकलयति = विह्वल कर रहा है। मूर्च्छयति च = और चेतनाशून्य कर रहा है।

अनुवाद— राम— यही वह पञ्चवटी है, जहाँ बहुत समय तक रहने के कारण (किए हुए)
अनेक प्रकार के विश्रम्भविलासों के आधिक्य को साक्षात् देखनेवाले प्रदेश हैं और प्रिया (सीता)
की प्यारी सखी वासन्ती नाम की वनदेवता (रहती है)। आज राम पर यह क्या आ पड़ा? क्योंकि
इस समय—बहुत समय के पश्चात् वेग के साथ आरम्भ होने वाले और (शरीर में) फैलते हुए

अत्युग्र विषरस के समान, किसी भी हेतु से जोर से हिले हुए वाणाग्र के खण्ड के समान, तथा उगे हुए ग्रन्थिवाले (अर्थात् भरे हुए) (किन्तु) फिर फूटे हुए हृदयमम के फोड़े के समान, गाढ़ शोक मुझे विह्वल बना रहा है, और चेतनाशून्य कर रहा है।

व्याकरण— विश्रम्भः— वि—√ श्रम्भ् + घञ्, 'विस्त्रम्भ' (वि—√ स्त्रम्भ् + घञ्) भी प्रायः प्रयुक्त होता है। अतिप्रसङ्ग— अति—प्र—√ सञ्ज् + घञ्। साक्षिणः— 'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' (पा० ५।२।११) के अनुसार साक्षात् + इनि (निपातन)। रूढ—√ रुह् + क्त। घनीभूतः— अधनः घनः भूतः इति घनीभूतः, च्वि। विकलयति (ना०धा०)— विकलं करोति इति विकलयति, 'तत्करोति तदाचष्टे' (गण सू०) इति णिच्।

टिप्पणी (Notes)

विश्रम्भ (अथवा विस्त्रम्भ)— इसका अर्थ 'विश्वास' तथा 'प्रणय' (शृङ्गार प्रार्थना) है (दे०अ०को०), यहाँ इसका अर्थ 'विश्रब्ध होकर किये हुए विलास' है।

अतिप्रसङ्ग— अतिशय सम्बन्ध, दीर्घकाल तक लगे रहना, आधिक्य।

चिराद्वे०— यह 'शोकः' का भी विशेषण हो सकता है।

हृन्मर्माण— 'हः' हृदयस्य 'मर्म' कोमलभागः हृदेव वा मर्म तस्मिन्।

घनीभूतः— पञ्चवटी को देखने से राम को अतीत बातों का स्मरण हो आया और इससे उनका सीताविरहजन्य शोक घनीभूत हो गया। यहाँ शिखरिणी छन्द तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

{४२} रामः— तथापि तान् पूर्वसुहृदो भूमिभागान् पश्यामि। (निरुप्य) अहो अनवस्थितो भूमिसंनिवेशः। तथा हि—

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां

विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।

बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं

निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति॥२७॥

अन्वयः— पुरा यत्र सरितां स्रोतः, अधुना तत्र पुलिनम्। क्षितिरुहं घनविरलभावः विपर्यासं यातः। बहोः कालात् दृष्टम् इदं वनं अपरमिव मन्ये, शैलानां निवेशः 'इदं तत्' इति बुद्धिं द्रढयति।

{४२} शब्दार्थ— पूर्वसुहृदः = पूर्वकाल के मित्रों को। अनवस्थितः = अस्थिर, अथवा परिवर्तनशील। भूमिसंनिवेशः = भूभागों का विन्यास। स्रोतः = जल का प्रवाह। पुलिनं = जल से

निकाला हुआ वालुकामय तट। क्षितिरुहां = वृक्षों का। घनविरलभावः = घनाभाव (एक दूसरे से मिले हुए होना) तथा विरलभाव (एक दूसरे के बीच में अवकाश का होना)। विपर्यासं = वैपरीत्य को। यातः = प्राप्त हो गया है। बहोः कालात् = बहुत समय के पश्चात्। अपरम् इव = अन्य जैसा। मन्ये = समझता हूँ। शैलानानिवेशः = पर्वतों की संस्थिति। तद् इदम् इति = वह यह (वन) है इस प्रकार की। बुद्धिं = बुद्धि को। द्रढयति = दृढ़ (पुष्ट) करता है।

अनुवाद— राम— तो भी उन पुराने मित्र भूमिप्रदेशों को देखूँगा। (देखकर) 'अहो भूमि की स्थिति अनियत है'। जैसा कि— पहिले जहाँ नदियों का प्रवाह था, वहाँ अब जल से निकला हुआ तट है, वृक्षों की सघनता तथा विरलता वैपरीत्य को प्राप्त हो गई है। बहुत समय के पश्चात् देखा हुआ यह वन मुझे अन्य जैसा लग रहा है, (केवल) पर्वतों का (अपरिवर्तित) अवस्थान 'यह वहीं है' इस प्रकार के विचार को दृढ़ कर रहा है।

व्याकरण— अनवस्थितः— न अवस्थितः, अव— √ स्था + क्त। संनिवेशः— सम्— नि— √ विश् + घञ्। विपर्यास— वि—परि— √ अस् ४ प० + घञ्। घन— √ हन् + अप्, 'मूर्तौ घनः' (पा० ३।३।७७) इति 'घन' आदेशः। बहोः कालात्— अनन्तरार्थे पञ्चमी। द्रढयति— (ना०धा०)— दृढां करोति, 'तत्करोति तदाचष्टे' (ग०सू०) इति दृढ + णिच्, ऋकारस्य रत्वं (दे० पा० ६।४।१६१ परकाशिका)।

टिप्पणी (Notes)

अनवस्थितः— जो पूर्ववत् अवस्थित न रहा हो, अर्थात् परिवर्तित।

इस श्लोक को क्षेमेन्द्र ने अपने 'औचित्यविचारचर्चा' नामक ग्रन्थ में देशौचित्य के उदाहरण रूप में उद्धृत किया है। इस श्लोक में शिखरिणी छन्द तथा काव्यलिङ्ग और उत्प्रेक्षा अलंकार है।

{४३} रामः— हन्त परिहरन्तमपि मामितः पञ्चवटी स्नेहो बलादाकर्षतीव। (सकरुणम्)

यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे

यत्संबन्धिकाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयत।

एकः संप्रति नाशितप्रियतमस्तामद्य रामः कथं

पापः पञ्चवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसंभाव्य वा॥२८॥

अन्वयः— यस्यां ते दिवसाः तया सह मया यथा स्वे गृहे नीताः, दीर्घाभिः यत्संबन्धिकाभिः

एव सततम् आस्थीयत, संप्रति तां पञ्चवटीं नाशितप्रियतमः पापः रामः अद्य एकः कथं विलोकयतु,

असंभाव्य वा कथं गच्छतु।

{४३} शब्दार्थ— हन्त = विषादसूचक अव्यय। परिहन्तं = परिहार करते हुए, (पञ्चवटी को) छोड़ते हुए। इतः = यहाँ से। यस्याम् = जिस (पञ्चवटी) में। ते = वे। तया सह = उस (सीता) के साथ। नीताः = बिताये गये। सततं = निरन्तर। आस्थीयत = रहा गया। एकः = एकाकी, अकेला। नाशितप्रियतमः = विनाश को प्राप्त करा दी गयी है जिससे ऐसा (राम)। ताम = उस पंचवटी को। पाप = पापी। असंभाव्य = विना संत्कार किये हुए।

अनुवाद— राम— खेद है; मुझे त्यागते हुए को भी पंचवटीका प्रेम यहाँ से मानों बलपूर्वक खींच रहा है। (करणासहित) जिस (पंचवटी) में वे दिन उस (सीता) के साथ मुझसे ऐसे बिताए गए जिस प्रकार अपने घर में जिस पंचवटी सम्बन्धी लम्बी—लम्बी कथाओं से निरन्तर हम दोनों से अयोध्या में रहा गया अब उस पंचवटी को अब उस पंचवटी नाशको प्राप्त करा दी है प्रियतमा जिसने ऐसा पापी राम आज अकेला कैसे देखे अथवा बिना संत्कार किए कैसे जाय?

टिप्पणी (Notes)

यथा— इसके स्थान में 'पुनः' पाठान्तर है, ऐसा होने पर 'नीताः' पर वाक्य पूरा हो जाता है, तथा 'स्वेगृहे' का अन्वय आगेवाले शब्दों के साथ होगा। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडितं छन्द तथा (प्रविश्य) स्वे गृहे में उपमा अलंकार है। राम के पापी होने में नाशितप्रियतमः कारण है अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है।

{४४} शम्बूकः— जयतु जयतु देवः। देव, भगवानस्त्यो मत्तः श्रुतभवत्सन्निधानस्त्वमाह परि कल्पितविमानावतरणमङ्गला प्रतीक्षते वत्सला लोपामुद्रा सर्वे च महर्षयः। तदेहि संभावयास्मान्। अथ प्रजविना पुष्पकेण स्वदेशमुपगम्याश्वमेधाय सज्जो भविष्यसीति।

रामः— यथाज्ञापयति भगवान्।

शम्बूकः— इतस्तर्हि देवः प्रवर्तयतु पुष्पकम्।

रामः— (पुष्पकं प्रवर्तयन्) भगवति पञ्चवटि, गुरुजनो परोधात् क्षणं क्षम्यतामयतिक्रमो रामस्य।

{४४} शब्दार्थ— मत्तः = मुझसे। सन्निधान = सामीप्य। परिकल्पितविमाना— वतरणमङ्गला = आयोजित किया गया है विमान से उतरन के समय का माङ्गलिक अनुष्ठान जिसके द्वारा ऐसी।

वत्सला = स्नेहवती। संभावय अस्मान् = हमारा सम्मान कीजिये। अथ = अनन्तर। प्रजविना = अतिदेग वाले। अश्वमेधाय = अश्वमेधयज्ञ को संपादन करने के लिए। सज्जः = तैयार, योग्य। प्रवर्तयतु = प्रेरित कीजिये। उपरोध = आग्रह। क्षण = क्षणभर के लिए। अतिक्रमः = उपेक्षा करके चले जाना।

अनुवाद— (प्रवेश करके)— शम्बूक— महाराज की जय हो। महाराज, मुझसे सुन लिया गया है आपका समीप होना जिसके द्वारा ऐसे, भगवान् अगस्त्य ने आपको कहा है— आयोजित किया गया है विमान से उतरने का माङ्गलिक अनुष्ठान जिसके द्वारा ऐसी, (राम के प्रति माता के जैसा) स्नेहवाली लोपामुद्रा प्रतीक्षा कर रही है और सब महर्षि लोग भी। अतः आइये, हमें सम्मान दीजिये। अनन्तर प्रकृष्ट वेगवाले पुष्पक द्वारा स्वदेश (अयोध्या) में पहुँचकर अश्वमेध के लिए आप उद्यत हो जायेंगे।

राम— जैसी भगवान् आज्ञा दें।

शम्बूक— तो इस ओर को महाराज पुष्पक को प्रेरित करें।

राम— (पुष्पक को प्रेरित करते हुए) भगवति पञ्चवटि, गुरुजनों के अनुरोध से (किए हुए) राम के इस (उचित आचार के) उल्लङ्घन को क्षण भर के लिए क्षमा किया जावे।

टिप्पणी (Notes)

अवतरणमङ्गल— माङ्गलिक द्रव्यों से परछन करना जैसे आरती उतारना इत्यादि।

लोपामुद्रा— अगस्त्य की पत्नी, तथा विदर्भ के एक राजा की अयोनिजा पुत्री।

उपरोध— इसका मुख्य अर्थ 'रुकावट' 'बाधा' अथवा 'नियन्त्रण' है अतः लक्षणा से 'दूसरे की इच्छा का अनुवर्तन' ऐसा अर्थ भी होता है, क्योंकि दूसरे की इच्छा के अनुवर्तन से अपने कार्य में कुछ बाधा पड़ने की संभावना रहती है।

{४५} शम्बूकः— देव पश्य पश्य—

कूजत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाधूत्कारवत्कीचक—

स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकूलः क्रौञ्चावतोऽयं गिरिः।

एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै—

अन्वयः— अयं कूजत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचकस्तम्बाडम्बरमूक— मौकुलिकुलः क्रौञ्चावतः गिरिः। एतस्मिन् प्रचलतां प्रचलाकिनां कूजितैः उद्वेजिताः कुम्भीनसाः पुराणरोहिणितरुस्कन्धेषु उद्वेल्लन्ति।

{४५} **शब्दार्थ—** कूजत् = कूजते (अव्यक्त शब्द करते) हुए। कुञ्ज = लतादि से आच्छन्न स्थान। कुटीर = छोटी कुटी, (अर्थात् कुञ्जकुटीर)। कौशिक = उल्लू पक्षी। घटा = समूह। घूत्कार = उल्लू का 'घूत्' जैसा शब्द। कीचक = ऐसे बाँस जो वायु से भरने पर शब्द करते हैं। स्तम्ब = गुच्छ, झाड़। आडम्बर = तुमुलध्वनि। मूक = निःशब्द। मौकुलिकुल = काकसमूह। प्रचलतां = चलते हुए। प्रचलाकिनां = मयूरों के। कूजितैः = कूजन शब्दों से। उद्वेजिताः = डराये हुए। कुम्भीनसाः = एक प्रकार के भयंकर सर्प। उद्वेल्लन्ति = रेंगते हैं। रोहिणितरु = चन्दनवृक्ष। स्कन्ध = प्रकाण्ड, तना।

अनुवाद— शम्बूक— महाराज, देखिये देखिये— यह कुञ्जरूपकुटीरों में कूजते हुए उल्लू पक्षियों के समूहों के घूत्कार शब्दों से युक्त, कीचकों (वायु से गूँजने वाले बाँसों) के गुच्छों की तुमुलध्वनि से निःशब्द (बने हुए) कौवों के समूहों वाला 'क्रौञ्चावत' नामक पर्वत है। इस (पर्वत) में इतस्ततः चलते हुए मयूरों को कूजनध्वनि से डराये हुए अजगर पुराने चन्दनवृक्षों के तनों पर इधर उधर रेंग रहे हैं।

व्याकरण— कुटीर— ह्रस्वा कुटी कुटीरः, 'कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः' (पा० ५।३।८८) इति ह्रस्वार्थे रः। प्रचलाकिन्— प्रचलाकः शिखण्डः अस्त्यस्य, प्रचलाक + इनि। प्रचलताम्— प्र—√ चल् + शतृ, वि०। उद्वेजिताः— उद्—√ विज् + णिच् + क्त (कर्मणि)। कूजितैः—√ कूज् + नपुंसके भावे क्तः। उद्वेल्लन्ति— उद्—√ वेल् चल्ने (१ प० लट्)। कुम्भीनसाः— कुम्भी इव नासिकां येषां ते कुम्भीनसाः, 'अञ् नासिकायाः संज्ञायां नसश्चास्थूलात्' (पा० ५।४।११८) सूत्र से बहुव्रीहि समास के अन्त में 'नासिका' को 'नस' आदेश तथा 'अच्' समासान्त हो जाता है, यदि 'स्थूल' शब्द पूर्व न हो और उस समास से किसी संज्ञाका बोध होता हो।

टिप्पणी (Notes)

घटा— इस शब्द का अर्थ हाथियों का समूह है ('घटा घटने गजसंहतौ'); तथा 'कारिणां घटना घटा' (अ० को०)। किन्तु यहाँ इसका अर्थ समूह मात्र है।

स्तम्ब— इस शब्द का अर्थ 'गुल्म' (गुच्छ, झाड़ी) है ('स्तम्ब आलानगुल्मयोः' है)।
आडम्बरः— इसका अर्थ 'भेरी का शब्द' तथा 'हाथियों का गर्जन' है ('आडम्बरस्तूर्यरवे गजेन्द्राणां

च गर्जिते' अ०को०), परन्तु यहाँ इसका अर्थ 'तुमुलशब्द' है।

पुराणरोहिणतः— पुराणा चन्दन वृक्ष अतिशय सौरभयुक्त होता है अतएव मयूरो के शब्दों से डरे हुए होने पर भी कुम्भीनस उन वृक्षों को नहीं छोड़ते हैं, केवल उनपर डोलते रहते हैं। रौहिण (पाठा०)— रौहिण एव रौहिणः, स्वार्थे अण्। इस श्लोक में अनुप्रास की सुन्दर छटा है और शब्द चित्र काव्य का यह एक अच्छा उदाहरण है। यहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

{४६} शम्बूकः — अपि च—

एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो

मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभूतो दाक्षिणाः।

अन्योन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलै—

रुतालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः॥३०॥

इति पञ्चवटीप्रवेशो नाम द्वितीयोऽङ्कः।

अन्वयः— एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयः, मेघालम्बित— मौलिनीलशिखराः दाक्षिणाः क्षोणीभूतः। इमे ते अन्योन्यप्रतिघातसङ्कुल— चलत्कल्लोलकोलाहलैः उतालाः गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः।

{४६} शब्दार्थ— कुहर = गुहा। गद्गद = अस्पष्ट। नदत् = शब्द करते हुए। मौलि = चूड़ा, अग्रभाग। शिखर = पर्वतशृंग। क्षोणीभूतः = पर्वत। दाक्षिणाः = दक्षिणदिशावर्ती। अन्योन्यप्रतिघात = परस्परका आघात। सङ्कुल = संकीर्ण। महातरङ्ग = बड़ी लहरें। उतालाः = उत्कट। गभीरपयसः = अगाध जलों वाले। सरित्सङ्गमाः = नदियों के संगम।

अनुवाद— शम्बूक— और भी— ये वे (पूर्वदृष्ट) दक्षिणदिशावर्ती भूधर (पर्वत) हैं, जो गुफाओं में अव्यक्त शब्द करते हुए गोदावरी के जलों वाले हैं। (तथा) जो मेघों से आक्रान्त अग्रभागोंवाले नील शिखर हैं जिनके, ऐसे हैं। ये वे अगाध जलवाले पवित्र नदी संगम हैं, जो परस्पर के संघर्ष से संकीर्ण (मिश्र) तथा चञ्चल महातरङ्गों के कालाहलों से मुखर (अथवा विकराल) हैं। [दोनों चले जाते हैं]।

व्याकरण— क्षोणीभूतः— क्षोणीं विभ्रति, क्षोणी—√ भृ + क्विप्, “ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्” (पा०) इति तुक्। अन्योन्येषाम्— ‘कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वेवाच्ये समासवच्च बहुलम्’ (वा०) के अनुसार द्वित्व तथा बहुलग्रहण से असमासवद्भावे पुनः ‘असमासद्भावे पूर्वपदस्य सुप् सुर्वक्तव्यः’ (वा०) पूर्वपद के सुप् को सु (स) आदेश हुआ। प्रतिघात— पति— √ हन् + घञ्, जित् तथा णित्

प्रत्यय होने पर √हन् को 'ह' को 'घ' (कृत्व) तथा 'न्' को 'त्' आदेश हो जाता है (दे० पा० ७।३।३२, ५४)।

टिप्पणी (Notes)

कुहरेषु गद्गद— एकदेशान्वय। गद्गद— 'गद्' इति अव्यक्तं गदति, गद्—√गद् + अच्, शोक, हर्ष, अथवा क् इत्यादि के कारण कण्ठरुद्ध होने से शब्द का अस्पष्ट उच्चारण करना, रुं ो हुए कण्ठ से बोलना।

मौलि— अमरकोश के अनुसार इस शब्द के अर्थ— 'चूड़ा' 'किरीट' तथा 'संयतकेश' है, यहां इसका अर्थ शिखर या अग्रभाग (अर्थात् सबसे ऊँचा भाग) है। 'पर्वताग्र शिखरं, शिखराग्रं मौलिः', वी० रा०। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है तथा शिखरों का अपने रूप को छोड़कर मेघों के नीलवर्ण को धारण करने से तद्गुण अलंकार है।

॥ पञ्चवटीप्रवेश नाटक दूसरा अङ्क समाप्त ॥

६.२ अभ्यास प्रश्न —

क. अतिलघुत्तरीय प्रश्न:

१. दूध छोड़ने के बाद लवकुश कहाँ रहते हैं?
२. द्वितीय अंक में वर्णित घटना सीता—परित्याग के कितने वर्ष बाद की है?
३. शम्भूकवध के लिए राम कहाँ जाते हैं?
४. सीता किसके संरक्षण में पाताल में रहती है?
५. जृम्भकादि अस्र लवकुश को किस प्रकार प्राप्त होते हैं?
६. द्वितीय अंक का क्या नाम है?

ख. निम्नलिखित श्लोकों की व्याख्या कीजिए।

१, २, ११, १३, १४, २६, २७, ३०।

ग.

१. द्वितीय अंक का सारांश लिखिये।
२. द्वितीय अंक के आधार पर प्रकृति चित्रण कीजिए।
३. द्वितीय अंक के आधार पर राम के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।



उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

UGST-02
संस्कृत

खण्ड-चार

उत्तररामचरितम्

इकाई-7	5
उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक की व्याख्या	
इकाई-8	71
सुभाषित वाक्य	

परिचय-कार्यक्रम

इस पाठ्यक्रम में पाँच खण्ड हैं।

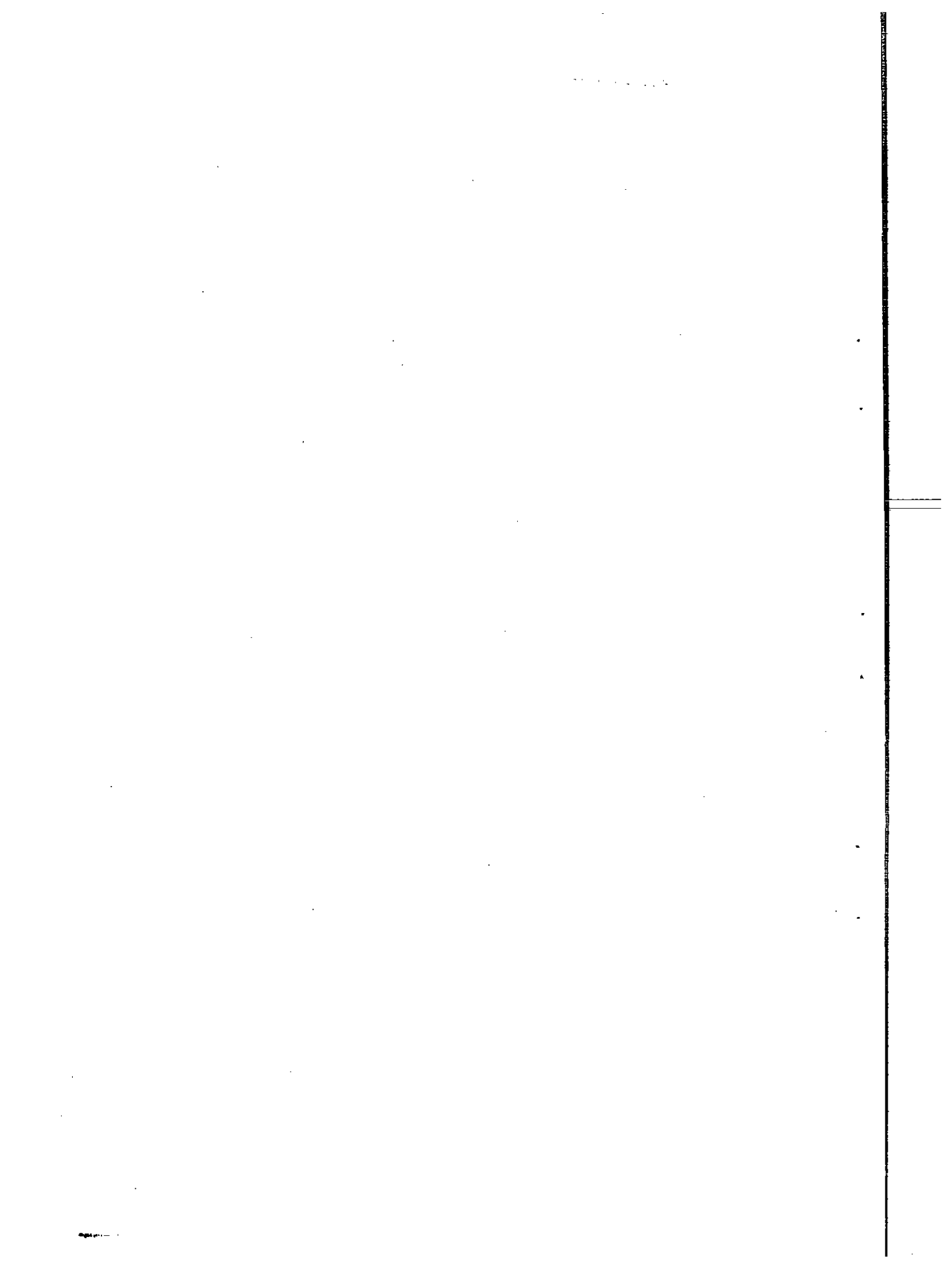
प्रथम खण्ड में चार इकाइयाँ हैं। इनमें क्रमशः नाटक, भवभूति, उत्तररामचरितम् की संक्षिप्त कथा तथा पात्रों के चरित्र का निरूपण किया गया है।

द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत पाँचवीं इकाई है, जिसमें उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक की सविस्तार व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

तृतीय खण्ड के अन्तर्गत छठीं इकाई है। जिसमें उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक की व्याख्या विस्तारपूर्वक दी गई है।

चतुर्थ खण्ड के अन्तर्गत सातवीं तथा आठवीं इकाइयाँ हैं, जिनमें क्रमशः उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक की विस्तृत व्याख्या तथा पाठ्यक्रम में निर्धारित सभी तीनों अंकों के सुभाषित वचनों की सप्रसङ्ग व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

पञ्चम खण्ड के अन्तर्गत कुल चार इकाइयाँ (9-12) हैं, जिनमें क्रमशः छन्द का सामान्य परिचय, प्रमुख छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण, अलङ्कार का सामान्य परिचय तथा प्रमुख अलङ्कारों के लक्षण, उदाहरण और उनमें पारस्परिक भेद विस्तार के साथ वर्णित हैं।



इकाई ७ - उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

- ७.० उद्देश्य
- ७.१ उत्तररामचरित के तृतीय अंक की व्याख्या
- ७.२ अभ्यास प्रश्न

७.० उद्देश्य—

इस इकाई में तृतीय अंक की व्याख्या की जा रही है।

प्रस्तुत इकाई में उत्तररामचरित के तृतीय अंक के श्लोकों का अन्वय, अनुवाद, शब्दार्थ, व्याकरण तथा काव्यात्मक टिप्पणी के साथ व्याख्या की जा रही है। इस अंक को पढ़कर आप—

- तृतीय अंक को छाया अंक क्यों कहा गया है, इस तथ्य से अवगत हो जायेंगे।
- राम और सीता की मानसिक स्थिति को जान सकेंगे।
- 'तृतीय अंक वस्तुतः उत्तररामचरित का प्राणस्वरूप है। यही अंक है जहाँ पर भवभूति ने करुण रस की मुक्त हृदय से अभिव्यक्ति की है— इस तथ्य से अवगत हो जायेंगे।

७.१ उत्तररामचरित के तृतीय अंक की व्याख्या:—

{छाया}

(ततः प्रविशति नदीश्च द्वयम्)

{१} एका— सखि मुरले, किमसि संप्रान्तेव!

मुरला— सखि तमसे, प्रेषितास्मि भगवतोऽगस्त्यस्य पत्न्या लोपामुद्रया सरिद्वरां गोदावरीमभिधातुम्।
जानास्येव यथा वधूपरित्यागात्प्रभृति—

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।१॥

अन्वयः— गभीरत्वाद् अनिर्भिन्नः, (अतएव) अन्तर्गूढघनव्यथः रामस्य करुणो रसः
पुटपाकप्रतीकाशः अस्तीति शेषः।

{१} शब्दार्थ— संप्रान्तेव = व्याकुल सी, हर्षभयादि के कारण शीघ्रतायुक्त सी। प्रेषितास्मि = मैं भेजी गई हूँ। सरिद्वरां = श्रेष्ठ नदी। अभिधातुम् = कहने को। वधू = पतोहू। गभीरत्वात् = गम्भीरता (धैर्यातिशय) के कारण (पुटपाक के पक्ष में) गाढ़ लेप से युक्त होने के कारण। अनिर्भिन्नः = भेदन करके बाहर न आया हुआ। अन्तर्गूढघनव्यथः = भीतर छिपी हुई है गाढ़ व्यथा जिसकी ऐसा। करुण रसः = (इष्टजन के वियोग से उत्पन्न हुआ) शोक का आवेग। पुटपाकप्रतीकाशः =

पुटपाक के सदृश।

अनुवाद— (तब दो नदी देवता प्रवेश करती हैं)। एक— सखि मुरले, क्यों घबराहट युक्त शीघ्रता में हो? मुरला— सखि, तमसे भगवान् अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा द्वारा मैं नदीश्रेष्ठ गोदावरी को (यह) कहने के लिए भेजी गई हूँ— आप जानती ही हैं कि वधू (सीता) के परित्याग के बाद से गाम्भीर्य के कारण बाहर अप्रकाशित, (अतएव) भीतर ही भीतर छिपी हुई गाढ़ वेदन वाला राम का करुण रस (सीतावियोगजन्य शोक) पुटपाक के सदृश है।

व्याकरण— संध्रान्ता— सम्— $\sqrt{\text{भ्रम्}} + \text{क्त}$, उपधादीर्घः (अनुनासिकस्य क्लिब्धलो क्लिति' पा०)। प्रेषिता— प्र— $\sqrt{\text{इष्}} (गतौ) \times \text{प०} + \text{क्त}$ (कर्मणि)। अनिर्भिन्नः— न निर्भिन्नः, निर्— $\sqrt{\text{भिद्}} + \text{क्त}$ । गूढ— $\sqrt{\text{गुह्}} (संवरणे) \times \text{उ०} + \text{क्त}$ । पुटपाकः— पुटे पाकः पुटपाकः, सुप्सुप समासः। पाकः— पच् + घञ् कर्मणि। प्रतीकाशः— प्रति— $\sqrt{\text{काश्}} + \text{घञ्}$, 'प्रतीकाशः' भी होता है।

टिप्पणी (Notes)

तृतीय अङ्क का आरम्भ तमसा तथा मुरला नामक दो नद्यभिमानिनी देवताओं के संवा से होता है, जिससे अदृश्यरूप में उपस्थित सीता का राम के साथ मिलन सूचित होता है, जो इस अङ्क का विषय है। इस अङ्क के दृश्यों का स्थान पञ्चवटी है।

अनिर्भिन्नगम्भीरत्वात् (पाठा०)— अनिर्भिन्न तद्गम्भीरत्वं च तस्मात्, (ऐसे गाम्भीर्य के कारण जिसका निर्भेद नहीं किया जा सकता था); इस पाठ में 'अनिर्भिन्न' गम्भीरत्व का विशेषण है, अतः राम के करुण रस के लिए 'अनिर्भिन्न' पद का अध्याहार करना पड़ेगा।

पुटपाकप्रतीकाशः— रुद्धपात्र में अथवा मिट्टी लपेटे हुए पत्तों के बीच में औषधियों को रखकर उसे अग्नि में पकाने को पुटपाक कहते हैं। 'प्रती (ति) काशः' शब्द का अर्थ चमक, कान्ति छाया इत्यादि होता है, किन्तु समास के अन्त में यह उपमावाचक होता है (तुल० 'स्युक्तरपदे त्वमी निभसंकाशनीकाशप्रतीकाशोपमादयः' अ०को०)। राम के हृदय में छिपे हुए शोक की पुटपाक से उपमा दी गई है, अपनी गम्भीरता के कारण राम अपने शोक को किसी से प्रकट नहीं करते थे अतः वह भीतर ही भीतर हृदय को जलाता रहता था, जिस प्रकार पुटपाक द्रव्य भीतर जलत रहता है, और उसका जलना बाहर प्रकट नहीं होता।

{२} मुरला— तेन च तथाविधेष्टजनकष्टविनिपातजन्मना प्रकर्षगतेन दीर्घशोकसंतापेन संप्रत्यतितर परिक्षीणो रामभद्रः। तमवलोक्य कम्पितमिव मे सबन्धनं हृदयम्। अधुना च प्रतिनिवर्तमा न रामभद्रेण नियतमेव पञ्चवटी वने वधू सहवासवित्तम्भसक्षिणः प्रदेशा द्रष्टव्याः। तेषु च निसर्गध गिरस्याप्येववि धायामवस्थायामतिगम्भीराभोगशोकचोभसवेगात्पदे पदे महान्ति प्रमादस्थानानि शङ्कनायानि रामभद्रस्य। तद्भगवति गोदावरि, तत्र त्वया सावधानया भवितव्यम्।

{२} अर्थ—तथाविधेष्टजनकष्टविनिपातजन्मना = इस प्रकार के प्रियजन (सीता) के

ऊपर विपत्ति के पड़ने से जन्म हुआ है जिसका ऐसे। प्रकर्षगतेन = पराकाष्ठा को प्राप्त हुए। दीर्घशोकसन्तापेन = लम्बे (समय तक रहने वाली) शोक की ज्वाला से। अतितराम् = अत्यन्त। परिक्षीण = अति कृश। सबन्धनं = बन्धसहित। प्रतिनिवर्तमानेन = (अगस्त्याश्रम से अयोध्या को) लौटते हुए। नियतमेव = अवश्य ही। विस्त्रम्भ = स्वच्छन्द विहारादि के रूप में विश्वस्त व्यापार। निसर्गधीरस्य = स्वभाव से ही धैर्यवान्। अतिगम्भीराभोग = अत्यन्त गहन है परिपूर्णत्व जिसका ऐसा। क्षोभ = चित्तविकार। सवेग = वेगातिशय, प्राबल्य। प्रमादस्थानानि = अनवधानता (अर्थात् संज्ञा लोप) के अवसर।

अनुवाद— मुरला— और उस प्रकार के प्रियजन (सीता) पर विपत्ति पड़ने से जन्म हुआ है जिसका ऐसे, पराकाष्ठा को प्राप्त हुए, उस लम्बे शोक के सन्ताप से अब श्रेष्ठ राम अत्यन्त दुबले हो गये हैं। उनको देखकर मेरा हृदय अपने बन्धनों सहित काँप सा गया है। और अब (यहाँ से अयोध्या को) लौटते हुए श्रेष्ठ राम द्वारा पञ्चवटी वन में वधू (सीता) के साथ निवास के समय के (स्वच्छन्द विहार आदि) विश्वस्त व्यापारों के साक्षी प्रदेश अवश्य ही देखे जायँगे। और उन (प्रदेशों) में स्वभाव से ही धैर्यवाले भी राम के, (अपनी) इस प्रकार की दशा में, अति गहन विस्तार है जिसका ऐसे शोक से (उत्पन्न) क्षोभ के प्राबल्य के कारण, पद पद पर अनवधानता (संज्ञालोप) के बड़े-बड़े अवसरों की संभावना है। अतः हे भगवति गोदावरि, ऐसे अवसरों पर आपकी सावधानता (सतर्क) रहना चाहिए।

टिप्पणी (Notes)

कष्टविनिपातः— कष्टस्य विनिपातः पतनं इसकी व्याख्या इस प्रकार भी हो सकती है—
कष्टः कष्टकरः विनिपातः विनाशः, रामस्य संबन्धे कष्टकरत्वं विनिपातस्य।

सबन्धनं— इसका तात्पर्य है मन और बुद्धि के सहित मेरा चित्त कम्पित हो रहा है अर्थात् मन में अनेक प्रकार की अनिष्ट कल्पनाये आती हैं और बुद्धि उनकी चरितार्थता की सम्भावना से भयभीत हो उठती है और चित्त कम्पायमान हो जाता है। वीर रा० के पाठ का अर्थ है जैसे वृन्त के हिलने पर पंखुड़ियाँ झड़ने लगती हैं ऐसे ही मेरा हृदय भी नष्ट होने की स्थिति में आ गया है।

प्रकृष्टगद्गदेन (पाठा०)— प्रकृष्टः अत्यधिकः गद्गदः गद्गदशब्दः येन, अत्यधिक। काव्यक्तशब्दकारिणा इतिभावः। पदे—पदे— यहाँ वीप्सा में द्विरुक्ति है।

{३} मुरला— वीचीवातैः शीकरक्षोदशीतैः—

राकर्षद्भिः पद्मकिञ्जल्कगन्धान्।

मोहे मोहे रामभद्रस्य जीवं

स्वैरं स्वैरं प्रेरितैस्तर्पयेति॥२॥

अन्वयः— शीकरक्षादशीतैः पद्मकिञ्जल्कगन्धान् आकर्षद्भिः स्वैरं स्वैरं प्रेरितैः वीचीवातैः

रामभद्रस्य जीवं मोहे मोहे तर्पय, इति।

{३} शब्दार्थ— वीचीवातैः = तरङ्गों से (उठी हुई) वायुओं से। शीकरक्षोदशीतैः = जलकणों के चूर्ण से शीतल। पद्मकिञ्चल्क = कमलकेशर। मोहे मोहे = प्रत्येक मूर्च्छा में। जीवं = जीवन को, चेतना को। स्वैरं स्वैरं प्रेषितैः = मन्द—मन्द प्रेषित किए हुए। तर्पय = प्रीणित (तृप्त) करना। इति = मुरला द्वारा कहलाये हुए अगस्त्य पत्नी के वाक्य की समाप्ति का सूचक अव्यय।

अनुवाद— मुरला— जलकणों के चूर्ण से शीतल, कमलों के केशरों के हरण करनेवाले, (तथा) मन्द मन्द प्रेषित किये हुए तरङ्गवायुओं से श्रेष्ठ राम की चेतना को प्रत्येक मूर्च्छा में प्रीणित करना।

टिप्पणी (Notes)

वीचीवातैः — किसी—किसी ने इसकी व्याख्या 'वीचीजनकैः वातैः' इस प्रकार की है, किन्तु 'वीचीसंपृक्तैः वातैः' ऐसी व्याख्या अधिक उपयुक्त है, तुल० रघु० (१।४३, १३।३५)। जीव— जीवन अथवा चेतनाधातु। इस श्लोक में समुच्चय अलंकार तथा शालिनी छन्द है।

{४} तमसा— उचितमेव दाक्षिण्यं स्नेहस्य। संजीवनोपायस्तु मौलिक एव रामभद्रस्याद्य संनिहितः।

मुरला— कथमिव?

तमसा— श्रूयताम्। पुरा किल वाल्मीकितपोवनोपकण्ठात्परित्यज्य निवृत्ते लक्ष्मणे सीता देवी प्राप्तप्रसववेदनम् अतिदुःखसंवेगादात्मानं गङ्गाप्रवाहे निक्षिप्तवती। तदैव तत्र दारकद्वयं प्रसूता। भगवतीभ्यां पृथ्वीभागीरथीभ्यामभ्युपपन्ना रसातलं च नीता। स्तन्यत्यागात्परेण च दारकद्वयं तस्याः प्राचेतसस्य महर्षिगङ्गादेवी स्वयमर्पितवती।

{४} शब्दार्थ— दाक्षिण्यं = उदारता। संजीवनोपायः = संज्ञा प्राप्त कराने (संजीवन) का उपाय। मौलिक = मूलसम्बन्धी, मूल (सीता) में रहने वाला। संनिहितः = निकटस्थ। उपकण्ठ = समीपवर्ती स्थान। निवृत्ते लक्ष्मणे = लक्ष्मण के लौट जाने पर। प्राप्तप्रसववेदनं = प्राप्त की है प्रसव (शिशुजनन) की वेदना जिसने ऐसे। आत्मानं = अपने आपको। निक्षिप्तवती = फेंक दिया। दारकद्वयं = दो बालकों को। प्रसूता = जन्म दिया। अभ्युपपन्ना = अनुगृहीता। रसातलं = पाताल को। स्तन्य = 'स्तन में होनेवाला' दूध। स्तन्यत्यागात्परेण = दुग्धत्याग के पश्चात्।

अनुवाद— तमसा— स्नेह की उदारता उचित ही है परन्तु संजीवन (होश में लाने) का उपाय तो मूल से ही रामभद्र के आज निकट उपस्थित है। मुरला— कैसे? तमसा— सुनिये। कहते हैं पूर्वकाल में वाल्मीकि के तपोवन के समीप से, (सीता को) छोड़कर, लक्ष्मण के लौट जाने पर सीता देवी ने, प्राप्त की है प्रसव की वेदना जिसने ऐसे, अपने आपको अत्यन्त दुःख (वेगातिशय) के कारण, गङ्गा की धारा में फेंक दिया। तभी वहाँ (उसने) दो बच्चों को जन्म दिया और भगवती पृथ्वी तथा भगवती भागीरथी द्वारा अनुगृहीत हुई (वह सीता) पाताल को ले जाई गई और दूध छूटने के अनन्तर उसके दोनों बच्चे गङ्गादेवी ने महर्षि वाल्मीकि को स्वयं अर्पित कर दिये।

ईदृशानां विपाकोऽपि जायते परमाद्भुतः।

यत्रोपकरणीभावमायात्यवविधो जनः॥३॥

अन्वयः— ईदृशानां विपाकः अपि परमाद्भुतः जायते, यत्र एवंविधो जनः उपकरणीभावम् आयाति।

{५} शब्दार्थ— विपाकः = विषम परिणाम, दुखस्था बुरे दिन। परमाद्भुतः = अत्यन्त विस्मयजनक। यत्र = जिस (विपाक) में। एवंविधो जनः = इस प्रकार का व्यक्ति। उपकरणीभावम् = उपकारकत्व को। आयाति = प्राप्त होता है।

अनुवाद— मुरला— (आश्चर्य के साथ)— ऐसे व्यक्तियों की दुखस्था भी अत्यन्त विस्मयजनक होती है, जिसमें इस प्रकार के लोग (पृथ्वी और गंगा जैसे) लोग सहायक होते हैं।

टिप्पणी (Notes)

ईदृशानां०— इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि बड़े आदमियों की सभी बातें बड़ी ही होती हैं। भगवान् राम और भगवती सीता इस दारुण विपत्ति में पड़े तो वहाँ भी उनके सहायक पृथ्वी, गङ्गा और वाल्मीकि जैसे व्यक्ति हुए। इस श्लोक में काव्यालिङ्ग अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द है।

{६} तमसा— इदानीं तु शम्बूक वृत्तान्तेन संभावितजनस्थाना गमनं रामभद्र सरयूमुखादुपश्रुत्य भगवती भागीरथी यदेव भगवत्या लोपामुद्रया स्नेहादाशङ्कितं तदवाशङ्क्य सीता समेता केनचिदिव गृहाचारव्यपदेशेन गोदावरीं विलोकयितुमागता।

{६} शब्दार्थ— संभावितजनस्थानागमनं = सम्भावना की गई है जनस्थान में आने की जिनके, ऐसे। उपश्रुत्य = सुनकर। गृहाचार = कुलाचार, कुलक्रमागत अनुष्ठान। व्यपदेश = बहाना।

अनुवाद— तमसा— और अब शम्बूक के इस वृत्तान्त से जिसके जनस्थान में आने की संभावना की गई है, ऐसे रामभद्र को सरयू के मुख से सुनकर भगवती भागीरथी, जिस (बात) की भगवती लोपामुद्रा से वात्सल्य के कारण आशङ्का की गई थी, उसी की आशङ्का करके किसी कुलाचार के बहाने से सीतासहित गोदावरी से मिलने के लिए आई हैं।

{७} मुरला— सुचिन्तितं भगवत्या भागीरथ्या राजधानीस्थितस्यास्य खलु तैस्तैर्जगतामाभ्युदयिकैः कार्यैर्व्यापृतस्य रामभद्रस्य नियताश्चित्तविक्षेपाः। अव्यग्रस्य पुनरस्य शोकमात्रद्वितीयस्य पञ्चवटीप्रवेशो महाननर्थ इति। तत्कथमिदानीं सीतादेव्या रामभद्र आश्वासनीयः स्यात्।

{७} शब्दार्थ— तैस्तैः = उन-उन, अर्थात् अनेक प्रकार के। आभ्युदयिकैः = अभ्युदय (प्रजा की समृद्धि) के निमित्त किये हुए। कार्यैः = कार्यों से। व्यापृत = व्यापारयुक्त, संलग्न। नियताः = नियन्त्रित। चित्तविक्षेपाः = चित्त के क्षोभ। विक्षेप = विविध प्रकार से फेंका जाना, चञ्चलता। अव्यग्र

= अव्यापृतः। शोकमात्रद्वितीय = शोक ही साथी जिसका ऐसा। अनर्थः = अनर्थकारी।

अनुवाद— मुरला— भगवती भागीरथी द्वारा अच्छा सोचा गया क्योंकि राजधानी में रहते हुए, (तथा) लोकों के विविध कल्याणकारक कार्यों में लगे हुए इन रामभद्र के चित्त के क्षोभ नियन्त्रित थे, परन्तु अब (उन कार्यों में) असंलग्न, (अतएव) केवल शोक ही है साथी जिसका ऐसे इन (राम) का पञ्चवटी में प्रवेश बड़ा अनिष्टकारी है तो अब सीतादेवी द्वारा रामभद्र कैसे आश्वासित किए जायेंगे।

टिप्पणी (Notes)

राजधानी०— वीरराघव ने इसके स्थान में 'राजनीतिस्थितस्य' पाठ रक्खा है और इसकी व्याख्या इस प्रकार की है— 'क्षत्रियोचितराज्यपरिपालनात्मकधर्मनिष्ठस्य। किन्तु 'राजधानीस्थितस्य' पाठ ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि इससे राजधानी (अयोध्या) में राम की स्थिति के साथ पञ्चवटी वाली उनकी स्थिति का मिलान किया गया है।

इति— यह अव्यय 'राजधानी....अनर्थः' इस वाक्यसमूह को परामृष्ट करता है, तथा सुचिन्तितं भगवत्या भागीरथ्या' इस वचन का हेतु सूचित करता है।

{८} तमसा— उक्तमत्र भगवत्या भागीरथ्या— “वत्से देवयजनसंभवे सीते, अद्य खल्वायुष्मतोः कुशलवयोर्द्वादशस्य जन्मसंवत्सरस्य संख्यामङ्गलग्रन्थिरभिवर्तते। तदात्मनः पुराणश्वसुरमेतावतो मानवस्य राजर्षिवंशस्य प्रसवितारं सवितारमपहतपाप्मानं देवं स्वहस्तावचितैः पुष्पैरुपतिष्ठस्व। नच त्वामवनिपृष्ठचारिणीमस्मत्प्रभावाद् वनदंता अपि द्रक्ष्यन्ति किं पुनर्मर्त्याः” इति। अहमप्याज्ञापिता— “तमसे त्वयि प्रकृष्टप्रेमैव वधूर्जानकी। अतस्त्वमेवास्याः प्रत्यनन्तरीभव” इति। साऽहमधुना यथादिष्टमनुतिष्ठामि।

रुमुरला— अहमप्येतं वृत्तान्तं भगवत्यै लोपानुद्रायै निवेदयामि। रामभद्रोऽप्यागत एवेति तर्कयामि।

{८} शब्दार्थ— देवयजन = यज्ञभूमि। द्वादश = बारहवाँ। संवत्सर = वर्ष, साल। संख्यामङ्गलग्रन्थि = वर्षसंख्याबोधक मङ्गलार्थ ग्रन्थि (गाँठ)। आत्मनः = अपने। मानवस्य = मनुसम्बन्धी, वैवस्वत मनु से उत्पन्न। राजर्षिवंशस्य = राजर्षियों के वंश के। प्रसवितारं = उत्पन्न करनेवाले को। अपहतपाप्मानं = नाश कर दिया है पाप जिसने उसको। सवितारम् = सूर्य को। स्वहस्तावचितैः = अपने हाथों तोड़े हुए। पुष्पैः = पुष्पों से। उपतिष्ठस्व (लोट्) = पूजो। अवनि = पृथ्वी। मार्त्य = मनुष्य। प्रत्यनन्तरीभव = सन्निहित रहो, समीप में रहो। यथादिष्टम् = आदेशानुसार। तर्कयामि = अनुमान करती है।

अनुवाद— तमसा— यहाँ भगवती भागीरथी ने कहा— “बच्ची, यज्ञभूमि में उत्पन्न हुई सीते, आज चिरंजीव कुश तथा लव की बारहवें जन्मवर्ष की संख्याबोधक मङ्गलग्रन्थि है। अतः अपने पुरातन श्वसुर, वैवस्वत मनु से उत्पन्न इतने बड़े राजर्षियों के वंश के उत्पादक, पापनाशक, सूर्यदेव को अपने हाथों द्वारा चुने हुए पुष्पों से पूजो और पृथ्वी के ऊपर विचरण करती हुई तुझे, हमारे प्रभाव से, वनदंता भी नहीं देखेंगे, फिर मनुष्य तो कैसे (देख सकेंगे)।” मुझे भी आज्ञा दी

गई है— “हे तमसे, वधू जानकी तुझमें अत्यन्त प्रेमवाली है; अतः तू ही इसकी साथी हो।” सो मैं अब आदेशानुसार करती हूँ। **मुरला**— मैं भी इस वृत्तान्त को भगवती लोपामुद्रा से निवेदन करती हूँ। रामभद्र भी आ गये हैं ऐसा अनुमान करती हूँ।

टिप्पणी (Notes)

संख्यामङ्गलग्रन्थिः — प्रतिवर्ष बालक की जन्मतिथि पर उसकी आयु के अतीत वर्षों की संख्या को सूचित करने के लिए एक सूत्र में गुग्गुलु, गोरोचन, श्वेतसर्षप, दूर्वा आदि मङ्गल वस्तुओं से युक्त ग्रन्थि बाँधने का उत्सव। विद्यासागर ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है— ‘संख्याबोधको मङ्गलार्थो ग्रन्थिः, अतीतवर्षसमसंख्याकग्रन्थिमत् सूत्रमिति यावत्। जन्मतिथौ हस्ते सूत्रमभिबध्यते तच्च सूत्रं जन्मग्रन्थिरुच्यते।’

पुराणसुरस्य— इक्ष्वाकुवंश के, जिसमें राम उत्पन्न हुए थे, मूल पुरुष विवस्वान् (सूर्य) माने जाते हैं, अतः इस वंश को सूर्यवंश भी कहते हैं (तुल० ‘क्व सूर्यप्रभवो वंशः.....’ रघु० १।२)।

मानवस्य— मनोरथम्, अणु, मनुसंबन्धी, विवस्वान् के पुत्र वैवस्वत मनु (सत्यव्रत) इस वंश के प्रथम राजा थे (दे० रघु० १।११)।

एतावतः — इतने बड़े वंश का अर्थात् जो वैवस्वत मनु से आज तक चला आ रहा है और जिसमें बड़े-बड़े विख्यात राजा हो चुके हैं तथा साक्षात् भगवान् ने रामरूप में अवतार लिया है। राम इस वंश में वैवस्वत मनु से ३७वीं पीढ़ी में उत्पन्न हुए थे।

[९] तमसा— तदियं गोदावरीहृदान्निष्क्रम्य—

परिपाण्डुर्बलकपोलसुन्दरं

दधती विलोककवरीकमाननम्।

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी

विरहव्यथेव वनमेति जानकी॥४॥

अन्वयः— परिपाण्डुर्बलकपोलसुन्दरं विलोककवरीकम् आननं दधती करुणस्य मूर्तिः अथवा विरहव्यथेव जानकी वनम् एति।

[९] **शब्दार्थः**— इयम् = यह (इसका अन्वय अगले श्लोक के ‘जानकी’ शब्द के साथ है।) हृद = अगाध जलवाला जलाशय। निष्क्रम्य = बाहर निकलकर। परिपाण्डु = अत्यन्त पीले वर्णवाले। विलोककवरीकं = (संस्काराभाव के कारण) चंचल केशपाशवाले। आननं = मुख को। दधती = धारण करती हुई। करुणस्य मूर्तिः = शोक की मूर्ति, मूर्तिमान् करुणरस। शरीरिणी विरहव्यथा इव = शरीरधारिणी विरहवेदना के समान। एति = आती है, प्रवेश करती है।

अनुवाद— तमसा—गोदावरी के अगाध जलवाले जलाशय से निकलकर यह अति पाण्डुवर्णवाले और कृश कपोलों से सुन्दर तथा (खुले हुए होने के कारण) चंचल केशविन्यास से

युक्त मुख को धारण करती हुई, करुणरस की मूर्ति अथवा देहधारिणी वियोगवेदना—सी, सीता वन में प्रवेश करती है।

व्याकरण— दधती— धा ३ उ० + शतृ + डीप्। शरीरिणी — शरीरम् अस्याः अस्तीति, शरीर + इनि (इन्) + डीप्।

टिप्पणी (Notes)

विलोल०— वियोगिनी सीता अपने केशों को न तो सँवारती थी, और न उनकी वेणीरूप में बाँधती थी, अतः उसके केशपाश बिखरे हुए होने के कारण इधर उधर हिल रहे थे। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार एवं मञ्जुभाषिणी छन्द है।

{१०} मुरला— इयं हि सा।

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलूनं

हृदयकुसुमशोषी दारुणो दीर्घशोकः।

ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं

शरदिज इव घर्मः केतकीगर्भपत्रम् ॥५॥

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते)

शुद्धविष्कम्भकः।

अन्वयः— हृदयकुसुमशोषी दारुणः दीर्घ शोकः बन्धनाद् विप्रलूनं मुग्धं किसलयमिव अस्याः परिपाण्डु क्षामं शरीरं शरदिजः घर्मः केतकीगर्भपत्रम् इव ग्लपयति।

{१०} शब्दार्थ— बन्धनात् = वृन्त (डंठल) से। विप्रलूनं = टूटे हुए। मुग्धं = मनोहर। किसलयम् इव = नव पल्लव के समान। अस्याः = इस (सीता) के। परिपाण्डु = अतिशय पाण्डु वर्णवाले। क्षामं = क्षीण, कृशः। शरीरं = शरीर को। हृदयकुसुमशोषी = हृदयरूपी पुष्प को सुखाने वाला। दारुणः = भीषण, दुःसह। दीर्घशोकः = दीर्घकालव्यापी शोक। ग्लपयति = मुरझा देता है। शरदिजः घर्मः इव = जैसे शरद् ऋतु में उत्पन्न घाम। केतकीगर्भपत्रम् = केतकी पुष्प की भीतरी पंखुड़ी को।

अनुवाद— मुरला— यही वह है। हृदयरूपी पुष्प को सुखानेवाला, कठोर, दीर्घकालव्यापी शोक वृन्त (डंठल) से टूटे हुए (तथापि) मनोहर नवपल्लव के समान, अतिशय पाण्डुवर्णवाले तथा कृश, इस (सीता) के शरीर को (इस प्रकार) म्लान बना रहा है, जैसे शरद् ऋतु में उत्पन्न घाम (धूप) केतकी पुष्प के भीतर स्थित पत्र को। (इस प्रकार, घूमकर दोनों निकल जाती हैं)।

शुद्धविष्कम्भक समाप्त।

टिप्पणी (Notes)

इयं हि सा— यह एक स्वतन्त्र वाक्य माना जा सकता है परन्तु ऐसा मानने से श्लोक में दूरान्वय दोष आता है, क्योंकि प्रथम चरण का अन्वय तृतीय चरण के साथ करना पड़ेगा। अतः

कुछ लोग इसका अन्वय अगले श्लोक के प्रथम चरण के साथ करते हैं, ऐसा करने से इसका अर्थ होगा— यह वही जानकी वृत्त से टूटे हुए (तथापि) सुन्दर पल्लव के समान है।

केतकीगर्भपत्रम्— अतिशय कोमलता तथा पण्डुता को सूचित करने के लिए 'गर्भ' शब्द का प्रयोग किया गया है। केतकीपुष्प के भीतर का पत्र अतिशय कोमल तथा पाण्डुवर्णवाला होता है। परिपाण्डु तथा क्षाम शरीर केतकीगर्भपत्र के समान है, तथा सीता के हृदय कुसुम को सुखाने वाला दीर्घशोक शरद् के धाम के समान है भीतर हृदयकुसुम को सुखा डालनेवाला दीर्घशोक के अब बाहर शरीर को भी सुखा रहा है।

शुद्धविष्कम्भ— दे० द्वितीय अङ्क के आदि में दिये हुए शुद्धविष्कम्भ पर टिप्पणी। यहाँ मुरला तथा तमसा दो नदी देवताएँ मध्यमपात्र हैं, अतः उनका संवाद केवल संस्कृत में ही है, इसलिये यह शुद्धविष्कम्भक है। शुद्धः = संस्कृतात्मकः विष्कम्भः। विष्कम्भक में वृत्त तथा वर्तिष्यमाण कथांशों का निर्देश होता है।

{११} प्रमादः प्रमादः।

(ततः प्रविशति पुष्पावचयव्यग्रा सकरुणौत्सुक्यमाकर्णयन्ती सीता।)

सीता— अम्हहे जानामि पिअसही में वासन्दी वाहरदिति (अम्हहे जानामि प्रियसखी में वासन्ती व्याहरतीति।)

{११} शब्दार्थ— प्रमादः = अनवधानता (परन्तु यहाँ इसका अर्थ है 'अनिष्टापात' अर्थात् विपत्ति का आ पड़ना)। पुष्पावचयव्यग्रा = पुष्पों के चुनने में व्यस्त। सकरुणौत्सुक्यं = करुणा तथा उत्सुकता के साथ। आकर्णयन्ती = सुनती हुई। व्याहरति = बोल रही है।

अनुवाद— (नेपथ्य में) विपत्ति, विपत्ति। (तब पुष्पों के चुनने में लगी हुई करुणा तथा उत्सुकता के साथ सुनती हुई सीता प्रवेश करती है।) **सीता**— अरे, जान पड़ता है कि मेरी प्रियसखी वासन्ती बोल रही है।

{१२} सीता देव्या स्वरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रै—

रग्रे लोलः करिकलभको यः पुरा वर्धितोऽभूत्।

सीता— किं तस्स। (किं तस्य)।

वध्वा सार्धं पयसि विहरन्सोऽयमन्येन दर्पा—

दुद्दामेन द्विरदपतिना सन्निपत्याभियुक्तः॥६॥

अन्वयः— पुरा सीतादेव्याः यः अग्रे लोलः यः करिकलभकः स्वरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रैः वर्धितोऽभूत्, सोऽयं वध्वा सार्धं पयसि विहरन् अन्येन उद्दामेन द्विरदपतिना दर्पात् सन्निपत्य अभियुक्तः।

{१२} शब्दार्थ— सीतादेव्या = सीतादेवी द्वारा। स्वरकलितैः = अपने हाथ से दिये हुए (अथवा तोड़े हुए)। पल्लवाग्रैः = पल्लवों के अग्र भागों से। अग्रे = (सीता के) आगे। लोलः =

(सीता के हाथ से सल्ल की पल्लवों को ग्रहण करने के लिए) चंचल। करिकलभकः = बेचारा हाथी का बच्चा। पुरा = पूर्व समय में। वर्धितः अभूत् = पोषित हुआ था। बध्वा सार्धम् = बहू के साथ। पयसि = जल में। विहर- = विहार करता हुआ। सः = वह। उद्दाम = उच्छृङ्खल, मत्त। द्विरदपति = गजपति, (बड़ा हाथी)। सन्निपत्य = वेग से झपटकर। अभियुक्तः = आक्रान्त किया गया है।

अनुवाद— (पुनः नेपथ्य में) सीता देवी द्वारा अपने हाथों से दिये हुए सल्लकी वृक्ष के कोमल पत्तों के अग्रभागों (फुलंगनों) से जो (उन सीता देवी के) आगे चपल (बना हुआ) हाथी का बच्चा पूर्वकाल में पोषित हुआ था। सीता— उसका क्या (हुआ)? वह यह बधू के साथ जल में विहार करता हुआ किसी दूसरे उच्छृङ्खल गजेन्द्रद्वारा (अपने बल के गर्व के कारण वेग से झपटकर आक्रान्त किया गया है)।

टिप्पणी (Notes)

स्वकरकलितैः — स्वकरेण अवचितैः, अथवा स्वकरधृतैः, अथवा स्वकराभ्यां दतैः (वी०रा०)।

लोलः— चञ्चल, अथवा सतृष्ण, 'लोलश्चलसतृष्णयोः' अ० को०।

करिकलभकः— 'कलभ' शब्द का अर्थ करिशावक (हाथी का बच्चा) होता है, 'कलभः करिशावकः' (अ०को०), परन्तु पुनः 'करि' पद का अर्थ ग्रहण करने से यहाँ 'कलभ' शब्द का अर्थ 'शावकमात्र' लेना चाहिए (विशेष का सामान्य में प्रयोग), दे० वामनसूत्र— 'विशिष्टवाचकपदानां सति विशेषणपदसमभिव्याहारे विशेष्यमात्रपरत्वं करिकलभादिशब्दात्'। इस श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द, सहोक्ति अलंकार है।

{१३} सीता— (ससंभ्रमम्। कतिचित्पदानि गत्वा) अज्जउत्त परित्ताहि परित्ताहि मह तं पुत्तअम्। (स्मृतिमभिनीय सवैक्लव्यम्) हद्धी हद्धी। ताइ ज्जेव्व चिरपरिचिदाइ अक्खराइ पञ्चवटीदंसणेन मं मन्दभाइणिं अणुबन्धन्ति। हा अज्जउत्त। (इति मूर्च्छति)। [आर्यपुत्र परित्रायस्व परित्रायस्व मम तं पुत्रकम् (.....) हा धिक् हा धिक्। तान्येव चिरपरिचितान्यक्षराणि पञ्चवटीदर्शनेन मां मन्दभागिनीमनुबन्धन्ति। हा आर्यपुत्र। (.....)]

{१३} शब्दार्थ— ससंभ्रमम् = भय, आवेग के साथ। परित्रायस्व = रक्षा कीजिये। पुत्रक = बेचारा पुत्र। चिरपरिचितानि = दीर्घकाल तक अभ्यस्त। माम् अनुबन्धन्ति = मेरा अनुसरण करते हैं। (पाठा०— अनुरुन्धन्ति = अनुसरण करते हैं।)

अनुवाद— सीता— (आवेग के साथ, कुछ पद चलकर) आर्यपुत्र, बचाइये बचाइये मेरे उस बेचारे पुत्र को। (स्मरण करने का अभिनय करके, घबराहट के साथ) हा धिक् हा धिक्, वे ही चिरकाल से अभ्यस्त शब्द पञ्चवटी के दर्शन से मुझ अभागिनी का अनुसरण कर रहे हैं। हा, आर्यपुत्र। (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)।

पुत्रकम्— 'पुत्रक' शब्द का अर्थ 'कृत्रिमपुत्र' भी हो सकता है ('पुत्रकः कृत्रिमे पुत्रे' संसारावर्त नामक कोश से घनश्यामद्वारा उद्धृत), 'इवे प्रतिकृतो' (पा० ५।३।९६) इस सूत्र से कन् प्रत्यय होगा।

(प्रविश्य)

{१४} तमसा— वत्से, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

(नेपथ्ये)

विमानराज, अत्रैव स्थायीताम्।

सीता— (समाश्वस्य ससाध्वसोल्लासम्) अम्हहे जलभरभरिअमेहन्मन्थरत्थणि अगम्भीरमंसलो कुदो णु एसो भारीणिघोसो भरन्तकण्णविवरं मं वि मन्दभाइणिं अत्ति अस्सुआवेइ। (अम्हहे जलभरभरितमेघ मन्थरस्तनितगम्भीरमांसलः कुतोन्वेष भारतीनिर्घोषो भ्रियमाणकर्णविवरां मामपि मन्दभागिनीं झटित्युत्सुकयति।)

{१४} शब्दार्थ— ससाध्वसोल्लासम् = भय तथा हर्ष के साथ। जलभरभरित = जल के भार से भरा हुआ। मन्थर = मन्द। स्तनित = गरजने का शब्द। मांसल = बढ़ा हुआ, पुष्ट। भारतीनिर्घोष = वाक्यध्वनि। भ्रियमाण = भरा जाता हुआ। उत्सुकयति = उत्सुक बनाता है।

अनुवाद— (प्रवेश करके) तमसा— बच्ची, आश्वस्त हो, आश्वस्त हो। (नेपथ्य में) विमानराज, यहीं ठहरिये। सीता— (आश्वस्त होकर, भय तथा आनन्द के साथ) अहो, जल के भार से भरे हुए मेघ के मन्द गर्जन के समान धीर तथा पुष्ट यह वाक्य ध्वनि, भरे जा रहे हैं कानों के छिद्र जिसके ऐसी मुझ भाग्यहीना को भी कहाँ से (आकर) तुरन्त उत्कण्ठित करती हैं।

टिप्पणी (Notes)

ससाध्वसोल्लासम्— राम के सामने आने में सीता को भय प्रतीत हो रहा था। तथा इतने काल के पश्चात् राम के शब्दों की ध्वनि सुनकर उसे उल्लास हो रहा था।

{१५} तमसा— (सस्नेहास्त्रम्) अयि वत्से,

अपरिस्फुटनिस्वाने कुतस्त्येऽपि त्वमीदृशी।

स्तनयित्तेनयूरीव चकितोत्कण्ठितं स्थिता॥१॥

अन्वयः— कुतस्त्येऽपि अपरिस्फुटनिस्वाने त्वम्, स्तनयित्तोः (निस्वाने) मयूरी इव, ईदृशी चकितोत्कण्ठितं स्थिता।

{१५} शब्दार्थ— निस्वान = निर्घोष। कुतस्त्यः = कहीं से आया हुआ। स्तनयित्तु = मेघ। चकित = भौचककी। उत्कण्ठित = उत्सुक।

अनुवाद— तमसा— (स्नेह के आँसुओं से युक्त होकर) अरी बच्ची, कहीं से भी हुए अस्पष्ट शब्द में तुम, मेघ के शब्द में मोरनी के समान, ऐसी भौचक्की तथा उत्सुक हो उठी।

टिप्पणी (Notes)

सस्नेहास्त्रम्— सस्मातास्त्रम् पाठा०— मन्दहास्य तथा आँसुओं सहित। निर्वासन करनेवाले भी पति के शब्द को सुनकर सीता इतनी उत्सुक हो उठी ऐसा सोचकर तमसा मुस्काई, तथा पतिवियोगजनित उसके दुःख को देखकर वह अश्रुपात करने लगी।

अव्यक्तेऽपि निन्दे (पाठा०)— अपरिस्फुटेऽपि निस्वाने, सीता के द्वारा कहे हुए अगले वाक्य में 'अपरिस्फुटेति' ऐसा पाठ है अतः यहाँ भी 'अव्यक्ते' के स्थान में 'अपरिस्फुटे' ऐसा पाठ ही युक्त है। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द एवं उपमा अलंकार है।

{१६} सीता— भवति किं भणसि अपरिस्फुटेति। मए उण सरसंजो एण पच्चभिआणिदं अज्जउत्तो एव्वाहरदिति। (भगवति किं भणस्यपरिस्फुटेति। मया पुनः स्वरसंयोगेन प्रत्यभिज्ञातमार्यपुत्र एव व्याहरतीति।)

तमसा— श्रूयते तपस्यतः किल शूद्रस्य दण्डधारणार्थमैक्ष्वाको राजा जनस्थानमागत इति।

सीता— दिट्ठिआ अपरिहीनराजधर्मो खलु सो राजा। (दिष्ट्या अपरिहीनराजधर्मः खलु स राजा।)

{१६} शब्दार्थ— स्वरसंयोगः = उच्चारण प्रकार, अथवा (राम के) कण्ठस्वर का श्रोत्र के साथ सम्बन्ध। प्रत्यभिज्ञातम् = पहिचान लिया गया। व्याहरति = बोल रहा है। तपस्यतः = तप करते हुए के। दण्डधारणार्थम् = दण्डविधान के लिये। ऐक्ष्वाको राजा = इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न राजा, अर्थात् राम। दिष्ट्या = आनन्द की बात है। अपरिहीन राजधर्मः = पूर्णरूप से राजधर्म का पालन करनेवाला। खलु = निश्चय ही।

अनुवाद— सीता— हे भगवती, 'अस्पष्ट' ऐसा क्यों कहती हो? मुझसे पुनः कण्ठस्वर के संयोग से (उच्चारण के प्रकार से) पहिचान लिया गया है कि आर्यपुत्र ही बोल रहे हैं। तमसा— सुना गया है कि तप करते हुए शूद्र के दण्डविधान के लिये इक्ष्वाकुवंश का राजा जनस्थान में आया है। सीता— आनन्दकी बात है कि वह राजा निश्चय ही अन्यूनराजधर्मवाला (राजधर्म से अविचलित) है।

टिप्पणी (Notes)

स्वरसंयोगेन— इसका अर्थ कई प्रकार से किया गया है— स्वरसंदर्भेण (वी०रा०), उच्चारणप्रकारेण श्रुतौ कण्ठस्वरसम्बन्धेन इत्यादि।

प्रत्यभिज्ञातं— अनुभूत पदार्थ का उद्बोधक की सहायता से पुनः स्मरण प्रत्यभिज्ञा कहलाता है।

ऐक्ष्वाको राजा— सीताविवासन से तमसा के हृदय में क्षोभ है, अतः वह राम न कहकर 'राजा' इस रूखे शब्द का प्रयोग करती है।

दिष्ट्या— 'दिष्टि' (स्त्री०) का०तृ०वि०ए०व०, विभक्ति प्रतिरूपक अव्यय। 'दिष्टि' शब्द का अर्थ 'आनन्द' तथा 'वितस्ति नामक माप' है ('दिष्टिरनन्दे माने च' है० को०), और 'दिष्ट्या' अव्यय 'आनन्द' के अर्थ में प्रयुक्त होता है ('दिष्ट्या समुपजोषं चेत्यानन्दे' अ०को०)। 'दिष्ट्या' का अर्थ 'भाग्येन' भी किया जाता है।

(नेपथ्य)

{१७} यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे

यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्।

एतानि तानि बहुनिर्झरकन्दराणि

गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि ॥८॥

{१७} शब्दार्थ— द्रुम = वृक्ष। मृग = हिरण, पशु। यानि = जिनमें। प्रियासहचरः = प्रियासहित। चिरं = दीर्घकाल तक। अध्यवात्सम् = निवास किया। बहुनिर्झरकन्दराणि = बहुत से झरनों तथा कन्दराओं वाले। गोदावरी परिसरस्य = गोदावरी है परिसर (उपान्तप्रदेश) में जिसके ऐसे, अर्थात् गोदावरी के समीपवर्ती। गिरेः = (प्रस्रवण नामक) पर्वत के। तटानि = तटप्रदेश।

{१८} (दृष्ट्वा) हा कहं पहादचन्द्रमण्डलापण्डुपरिखलामदुब्बलेन आआरेण अअं णिअसोमग्म्भीराणुभावमेतत्तपच्चहि जाणिज्जो अज्जउत्तो एव्व। भअवदि तमसे, धारेहि मं। (इति तमसामाश्लिश्य मूर्च्छति।) (हा कथं प्रभातचन्द्रमण्डलापण्डुपरिक्षाम— दुर्बलेनाकारेणायं निजसौम्यगम्भीरानुभावमात्रप्रत्यभिज्ञातव्य आर्यपुत्र एव। भगवति तमसे, धारय माम्।)

तमसा— वत्से, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

{१८} शब्दार्थ— प्रभातचन्द्रमण्डलापण्डुर = प्रभातकालीन चन्द्रमण्डल के समान विवर्ण। परिक्षाम = अतिकृश। दुर्बल = शक्तिहीन। आकार = आकृति, शरीर। अयम् = यह अर्थात् आर्यपुत्र। सौम्य = मधुर, प्रशान्त। अनुभव = तेजोविशेष, प्रभाव। प्रत्यभिज्ञातव्यः = पहिचानने योग्य। धारय = सहारा दो।

अनुवाद— सीता— (देखकर) हाय, क्या प्रभातकालीन चन्द्रमण्डल के समान विवर्ण तथा अत्यन्त कृश और दुर्बल आकृति से (उपलक्षित) यह अपने प्रशान्त तथा गम्भीर तेजोविशेष से पहिचानने योग्य आर्यपुत्र ही हैं। भगवति तमसे मुझे सहारा दो। (ऐसा कहकर तमसा से चिपटकर मूर्च्छित हो जाती है)।

तमसा— बच्ची, धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो।

(नेपथ्य)

{१९} अनेन पञ्चवटी दर्शनेन

अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः।

उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम् ॥९॥

हा प्रिये जानकि!

तमसा— (स्वगतम्) इदं तदाशङ्कितं गुरुजनेन।

सीता— (समाश्वास्य) हा कहं एदं। (हा कथमेतत्।)

अन्वयः— अन्तर्लीनस्य अद्य उद्दामं ज्वलिष्यतः दुःखाग्नेः धूमस्य उत्पीडः इव मोहः मां प्राक् आवृणोति।

{१९} शब्दार्थ— अन्तर्लीन = भीतर छिपा हुआ। दुःखाग्नि = शोकानल। उद्दामं = अनियन्त्रित। धूमस्य = धुएँ का। उत्पीडः = संघात, आधिक्य। मोहः = मूर्च्छा। प्राग् = पहले ही। माम् = मुझको। आवृणोति = आच्छादित कर रहा है।

अनुवाद— (नेपथ्य में) पञ्चवटी के इस दर्शन से भीतर छिपे हुए शोकानल के, जो कि आज (अब) उत्कट रूप से जलनेवाला है, धुएँ के संघात के समान मोह (मूर्च्छा) मुझे पहले ही आच्छादित कर रहा है। हा प्यारी जानकी! तमसा— (स्वगत) इसी बात की गुरुजन (लोपामुद्रा तथा भागीरथी) द्वारा आशङ्का की गई थी। सीता— (आश्चस्त होकर) ओह, यह कैसे?

टिप्पणी (Notes)

दुःखाग्नेः— दुःखमेव अग्निः अथवा दुःखमग्निरिव (उपमित समास) इस प्रकार दोनों ही रीति से इसका विग्रह संभव है, किन्तु श्लोक के उत्तरार्ध में 'धूमस्य उत्पीड इव' इस उपमा के विचार से यहाँ उपमित समास मानना अधिक युक्त है। परन्तु उपमित समास मानने पर दुःखाग्नि के लिए 'ज्वलिष्यतः' शब्द का प्रयोग उचित नहीं प्रतीत होता है।

उत्पीड इव धूमस्य— जिस प्रकार प्रचण्ड रूप से जलनेवाले अग्नि का धूमसंघात पहले चारों ओर के पदार्थों को पहले ही आच्छादित कर लेता है, उसी प्रकार राम के अन्तर्लीन दुःख के विलापादि के रूप में बाहर प्रकट होने से पहले मूर्च्छा उनकी चेतना का आवरण कर रही है। यह उपमा यहाँ बहुत ही उपयुक्त है।

कथमेतत्— सीतापरित्याग के इतने दिनों बाद भी राम उसे 'प्रिय जानकी' कहकर पुकार रहे हैं, इससे सीता को आश्चर्य होता है। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द एवं उपमा अलंकार है।

{२०} हा देवि दण्डकारण्यवासप्रियसखि विदेहराजपुत्रि। (इति मूर्च्छति)

सीता— हृद्धी हृद्धी। मं मन्दभाङ्गिं वाहरिअ आमीलंतणेत्तेणीलुप्पलो मुच्छिदो एव्व अज्जउत्तो। हा कहं धरणिपिठ्ठे गिरुद्धणिस्सासणीसहं विपल्हत्थो। भवदि तमसे परिताएहि। जीवावेहि अज्जउत्तम्। (इति पादयोः पतति।) (हा धिक् हा धिक्। मां मन्दभागिनीं व्याहृत्यामीलन्नेत्रनीलोत्पलो मूर्च्छित एव आर्यपुत्रः। हा कथं धरणिपृष्ठे निरुद्धनिःश्वासनिःसहं विपर्यस्तः। भगवति तमसे परित्रायस्व। जीवयार्यपुत्रम्।)

{२०} शब्दार्थ— व्याहृत्य = पुकारकर। आमीलत् = बन्द होते हुए। नेत्रनीलोत्पले = नीलकमल के समान नेत्र। धरणिपृष्ठे = भूतल पर। निरुद्ध = रुका हुआ। निःसह = असक्त, अवश। विपर्यस्तः = उलटा गिर पड़ा है। परित्रायस्व = रक्षा करो।

अनुवाद— (फिर नेपथ्य में) हा देवी, दण्डकावनवास की प्रियसखी विदेहराज की पुत्री! (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाते हैं)।

सीता— हा धिक्! हा धिक्! मुझ हतभाग्या को पुकारकर, कुछ—कुछ बन्द किये हुए हैं नीलकमल के समान नेत्र जिन्होंने ऐस आर्यपुत्र मूर्च्छित ही हो गए हैं। हाय, भूतलपर रुके हुए श्वासवाले, तथा अशक्त होकर कैसे अधोमुख गिरे पड़े हैं। भगवति तमसे, रक्षा करो, रक्षा करो, आर्यपुत्र को जिलाओ। (ऐसा कहकर पैरों में गिरती है।)

{२१} तमसा— त्वमेव ननु कल्याणि संजीवय जगत्पतिम्।

प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते तत्रैव निरतो जनः।१०॥

सीता— जं होदु तं होदु। जह भवई आणवेई। (इति ससंभ्रमं निष्क्रान्ता।) (यद्भवतु तद्भवतु। यथा भगवत्याज्ञापयति।)

अन्वयः— ननु कल्याणि त्वमेव जगत्पतिं संजीवय हि ते पाणिः प्रियस्पर्शः, तत्र एषः जनः निरतः।

{२१} शब्दार्थ— ननु = हे, भोः, (आमन्त्रण में प्रयुक्त)। कल्याणि = हे मंगल स्वभाववाली। प्रियस्पर्शः = प्रीतिदायक स्पर्शवाला। पाणिः = हाथ। तत्र = वहाँ, तेरे पाणिस्पर्श में। एषः जनः = यह व्यक्ति अर्थात् राम। निरतः = अनुरक्त, अतीव अभ्यस्त।

अनुवाद— तमसा— हे शुभे, तू ही जगत् के स्वामी (राम) को होश में ला; क्योंकि तेरा हाथ प्रीतिकर स्पर्शवाला है; उस (तेरे हाथ के प्रियस्पर्श) में यह जन (राम) अनुरक्त (अथवा अभ्यस्त) है।

सीता— जो हो सो हो। भगवती जैसी आज्ञा देती है। (ऐसा कहकर धबराहत्युक्त शीघ्रता के साथ निकल जाती है)।

टिप्पणी (Notes)

ननु— यह अव्यय यहाँ आमन्त्रणार्थ अथवा अनुज्ञाद्योतक है; 'प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु' (अ०को०)।

जगत्पतिम्— जगत्पदमहिम्ना त्वं लक्ष्मीरिति भावो व्यज्यते (वी०रा०)।

तत्रैव— इसके स्थान में कई पाठान्तर मिलते हैं, जिनमें से ये आदरणीय हैं— तत्रैव नियतो भवः— 'तत्रैव' त्वत्पाणिस्पर्शे एव 'भवः' रामस्य प्रत्युज्जीवनरूपं क्षेमं नियतः निश्चितः; ("भवः क्षेमेशसंसारे सत्तायां प्राप्तिजन्मनोः।" मे०को०), तत्रैव नियतो भरः— 'तत्रैव त्वत्पाणिस्पर्शे एव 'भरः'

रामस्य प्रत्युज्जीवनरूप भारः 'नियतः' पूर्णरूपेण आश्रितः; तत्रैव नियतां भव—'तत्रैव' स्वपाणिना रामस्याङ्गस्पर्शे 'नियता' व्यापृता भव। इस श्लोक में पूर्वार्ध के प्रति उत्तरार्ध हेतु होने से काव्यलिङ्ग अलंकार है।

{२२} (ततः प्रविशति भूम्यां निपतितः सास्त्रया सीतया स्पृश्यमानाः साह्लादोच्छ्वासो रामः।)

सीता— (किञ्चित्सहर्षम्) जाणे उण पच्चाअदं विअ जीविअं तेलोअस्स। (जाने पुनः प्रत्यागतमिव जीवितं त्रैलोक्यस्य।)

{२२} शब्दार्थ— सास्त्रया = अश्रुयुक्त। स्पृश्यमानः = छुआ जाता हुआ। साह्लादोच्छ्वासः = हर्ष तथा श्वास—सञ्चार से युक्त। प्रत्यागतम् = लौट आया है। जीवितं = जीवन। त्रैलोक्यस्य = त्रिलोकी का, तीनों लोकों का।

अनुवाद— (तब भूमिपर पड़े हुए (तथा) अश्रुसहित सीता से छुए जाते हुए, हर्ष तथा श्वास—सञ्चार से युक्त राम प्रवेश करते हैं।)

सीता— (कुछ हर्ष सहित) मुझे लगता है कि तीनों लोकों का जीवन मानों फिर लौट आया है।

{२३} रामः— हन्त भोः किमेतत्।

आश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां

निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः।

आतप्तजीवितपुनः परितर्पणोऽयं

संजीवनौषधिरसो नु हृदि प्रसिक्तः॥११॥

अन्वयः— हरिचन्दनपल्लवानाम् आश्च्योतनं नु? निष्पीडितेन्दु— करकन्दलजः सेकः नु? अयम् आतप्तजीवित पुनः परितर्पणः संजीवनौषधिरसः हृदि प्रसिक्तः नु?

{२३} शब्दार्थ— आश्च्योतनं = रसस्त्राव, रस चुआना। हरिचन्दन = देवतरुविशेष। पल्लव = कोमल पत्ता, किसलय। नु = क्या। निष्पीडितेन्दु० = निचोड़े हुए चन्द्रकिरणरूपी नये अंकुरों से किया हुआ। सेकः = सेचन। आतप्त = (दुःखों से) संतप्त। जीवित = जीवन। परितर्पणः = भली प्रकार से तृप्त करनेवाला। हृदि = हृदय पर। प्रसिक्तः = छिड़का हुआ।

अनुवाद— राम— अहा! अरे, यह क्या? क्या हरिचन्दननामक देवतरु के नवीन पत्तों का रस चुआया गया है? क्या निचोड़े हुए चन्द्रकिरणरूपी नवाङ्कुरों से किया हुआ सेचन है? क्या यह संतप्त जीवन को पुनः आप्यायित करनेवाला, संजीवनी औषधि का रस हृदय पर छिड़का गया है।

टिप्पणी (Notes)

सीता के करस्पर्श से राम के हृदय में एक अनिर्वचनीय सुख की अनुभूति हुई, अतः वे उसके कारण का अनेक प्रकार से अनुमान करते हैं। इस श्लोक में सन्देहालंकार है।

वसन्तातलका छन्द है।

उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक
1 की व्याख्या

{२४} रामः— अपि च—

स्पर्शः पुरापरिचितो नियतं स एव

संजीवनश्च मनसः परितोषणश्च।

सन्तापजां सपदि यः परिहृत्य मूर्च्छा—

मानन्दनेन जडतां पुनरातनोति। १२॥

अन्वयः— पुरा परिचितः संजीवनः च मनसः परितोषणः च नियतं स एव स्पर्शः यः सन्तापजां मूर्च्छां परिहृत्य सपदि आनन्दनेन पुनः जडताम् आतनोति।

{२४} शब्दार्थ— पुरा परिचितः = पहले जाना पहिचाना हुआ। नियतं = निश्चित। संजीवनः = समाश्वासन देनेवाला। मनसः परितोषणः = मन का आह्लादक। सपदि = तत्क्षण ही। सन्तापजां मूर्च्छाम् = विरहताप से उत्पन्न मूर्च्छा (चेतनाशून्यता) को। परिहृत्य = हटाकर। आनन्दनेन = आनन्दविधान से। पुनः = फिर। जडतां = हर्षजन्यविह्वलता को, मोह को। आतनोति = फैला रहा है।

अनुवाद— राम— और भी— निश्चय से समुच्छवासजनक तथा मन का आह्लादक (यह) वहीं पूर्वपरिचित स्पर्श है, जो वियोगदुःख से उत्पन्न मूर्च्छा को हटाकर आनन्दविधान द्वारा पुनः जड़ता (विह्वलता) को फैला रहा है।

टिप्पणी (Notes)

संजीवनः तथा परितोषणः— इन दोनों में ही कर्तरि ल्यु प्रत्यय है; किन्तु आनन्दनं में भावे ल्युट् प्रत्यय है।

परिमोहनः — मन में मोह (जड़ता) को उत्पन्न करनेवाला; किन्तु इस पाठ से 'संजीवनः' के साथ विरोध होता है।

{२५} सीता— (ससाध्वसोत्कम्पमपसृत्य) एत्तिअ एव्व दाणिं में बहुदरं। (एतावदेवेदानीं में बहुतरम्)।

रामः— (उपविश्य) न खलु वत्सलया सीतादेव्याऽभ्युपपन्नोऽस्मि?

सीता— हद्दी! हद्दी! किं ति मं अज्जउत्तो मग्गिस्सदि? (हा धिक्! हा धिक्! किमिति मामार्यपुत्रो मार्गिष्यते?)

रामः — भवतु, पश्यामि।

सीता— भअवदि तमसे, ओसरम्ह दाव। मं पेक्खिअ अणभ्भुण्णादेण सांगाहाणेण राआ अहिअं कुप्पिस्सदि। (भगवति तमसे, अपसरावस्तावत्। मां प्रेक्ष्यानभ्यनुज्ञातेन सानिधानेन राजाऽधिकं कोपिष्यति।)

तमसा— अयि वत्से, भागीरथीप्रसादाद्वनदेवतानामप्यदृश्याऽसि संवृता।

सीता— आं, अत्थि खु एदं। (आम्, अस्ति खल्वेतत्।)

{२५} शब्दार्थ— ससाध्वसोत्कम्पम् = भय तथा कम्प के साथ। अपसृत्य = हट कर। इदानीं = इस समय, वियोग काल में। वत्सलया = स्नेहशीला। अभ्युपपन्नः = अनुगृहीत। मार्गिष्यते = ढूँढ़ेंगे। अपसरावः = हम दोनों परे हट जावें। तावत् = अब। प्रेक्ष्य = देखकर। अनभ्यनुज्ञाते = अननुमोदित। संनिधान = समीप में अवस्थान, उपस्थिति। प्रसाद = अनुग्रह। संवृता = हो गई हो। खलु = निश्चय (के अर्थ में प्रयुक्त अव्यय)।

अनुवाद— सीता— (भय तथा कम्प के साथ हटकर) इतना ही इस वियोगकाल में मेरे लिए बहुत है। राम— (६३८) क्या स्नेहशीला सीता द्वारा तो मैं अनुगृहीत नहीं हुआ हूँ? सीता— हा धिक्! हा धिक्! क्या मुझे आर्यपुत्र ढूँढ़ेंगे? राम— अच्छा, देखता हूँ। सीता— भगवति तमसे, अब हम दोनों हटें। मुझे देखकर बिना अनुमति के समीप में अवस्थान से राजा बहुत कुपित होंगे। तमसा— अरी बच्ची, भागीरथी के अनुग्रह से तू वनदेवताओं को भी अदृश्य हो गई है। सीता— हाँ, वस्तुतः यही (बात) है।

{२६} रामः — प्रिये जानकि?

सीता— (समन्युगद्गदम्) अज्जउत्त, असरिसं कखु एदं वअणं इमएस वुत्तन्तस्य। (सारुम्) अह वा किं ति वज्जमई जम्मन्तरेसु वि पुणो असंभावितदुल्लहदंसणस्स मं एव्व मन्दभाइणिं उद्दिंसिअ वच्छलस्स एव्वंवादिणो अज्जउत्तस्य उवरि गिरणुक्कोसा भविस्सं। अहं एदस्स हिअअं जाणामि ममापि एसो। (आर्यपुत्र, असदृशं खल्वेतद्वचनस्य वृत्तान्तस्य। (...)) अथवा किमिति वज्जमयी जन्मान्तरेष्वपि पुनरसंभावितदुर्लभदर्शनस्य मामेव मन्दभागिनीमुद्दिश्य वत्सलतयैववादिन आर्यपुत्रस्योपरि निरनुक्रोशा भविष्यामि। अहमेतस्य हृदयं जानामि ममाप्येषः।)

रामः— (सर्वतोऽवलोक्य सनिर्वेदम्) हा न किञ्चिदत्र।

{२६} शब्दार्थ— मन्यु = प्रणयकोप। गद्गदं = अस्पष्ट उच्चारण। असदृशं = अननुरूप। वज्जमयी = वज्रनिर्मिता, अर्थात् अतिकठोर। असंभावित = अचिन्तित, अघटनीय। उद्दिश्य = लक्ष्य करके। वत्सल = स्नेहवान्। निरनुक्रोशा = अकरुण, निर्दया। निर्वेद = दैन्य, अनुताप, स्वावमानना।

अनुवाद— राम— हा प्यारी जानकी! सीता— (प्रणयकोप से अस्पष्ट उच्चारण के साथ) आर्यपुत्र, (आपका) यह वचन निश्चय से इस (त्यागरूप) वृत्तान्त के अननुरूप है। (आँसू भरकर) अथवा क्यों मैं वज्रनिर्मिता (अतिनिष्ठुरा) अन्य जन्मों में भी पुनः असंभव तथा दुर्लभ दर्शन है जिनका ऐसे, मुझ हतभाग्या को ही लक्ष्य करके इस प्रकार बोलते हुए स्नेहमय आर्यपुत्र के ऊपर निर्दया होऊँ। मैं इनका हृदय जानती हूँ, और ये मेरा। राम— (सब ओर देखकर, दैन्य के साथ) हा, यहाँ तो कुछ नहीं है।

{२७} सीता— भवद्वि तमसे, तहा णिक्कारणपरिच्चाइणो वि एदस्स एव्वविधेण दंसणेण कीदिसो विश्वं हिअआणुबन्धोति ग आणामि। (भगवति तमसे, तथा निष्कारणपरित्यागिनोऽप्येतस्यैववि

धेन दर्शनेन कीदृश इव मे हृदयानुबन्ध इति न जानामि।)

उत्तररामचरितम् ५ तृतीय अंक
की व्याख्या

तमसा— जानामि वत्से, जानामि।

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशा—

द्वियोगे दीर्घेऽस्मिन्झटितिघटनात्स्तम्भितमिव।

प्रसन्नं सौजन्याद् दयितकरुणैर्गाढकरुणं

द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन्क्षण इव।१३॥

अन्वयः— तव हृदयम् अस्मिन् क्षणे नैराश्यात् तटस्थं, अपि च विप्रियवशात् कलुषं, अस्मिन् दीर्घे वियोगे झटितिघटनात् स्तम्भितमिव, सौजन्यात् प्रसन्नं, दयितकरुणैः गाढकरुणं, प्रेम्णा द्रवीभूतमिव।

[२७] शब्दार्थ— हृदयानुबन्धः = मन की अवस्थाविशेष। नैराश्यात् = (पुनः समागम की) निराशा से। तटस्थं = उदासीन। विप्रियवशात् = (निष्कारण परित्यागरूप) अहित के कारण। कलुषं = अप्रसन्न, रोषयुक्त। अस्मिन् दीर्घे वियोगे = इस लम्बे वियोग में। झटिति घटनात् = आकस्मिक समागम से। स्तम्भितमिव = जड़ी भूत—सा। सौजन्यात् = (राम की) सुजनता के कारण। प्रसन्नं = प्रीतियुक्त। दयितस्य = प्रिय के। करुणैः = शोकों से। गाढकरुणं = घने शोक से युक्त। प्रेम्णा = प्रेम से। द्रवीभूतं = आर्द्र। अस्मिन् क्षणे = इस क्षण में।

अनुवाद— सीता— भगवति तमसे, उस प्रकार बिना कारण के ही निर्वासित करनेवाले के भी इस प्रकार के दर्शन से मेरी मानसिक स्थिति कैसी हो गई है यह नहीं जानती हूँ। इतमसा— जानती हूँ बच्ची, जानती हूँ। तेरा हृदय इस क्षण में (पुनः समागम की) आशा के अभाव से उदासीन (विरक्त), और (निष्कारण परित्यागरूप) अहित के कारण कालुष्यपूर्ण (अप्रसन्न), इस लंबे (आमरण) वियोग में आकस्मिक समागम से जड़ीभूतसा, (राम की) सुजनता से प्रीतियुक्त, प्रिय के शोकों से घने शोकवाला, (तथा) प्रेम से पिघला हुआ सा है।

टिप्पणी (Notes)

हृदयानुबन्धः — अनुबन्ध शब्द के ये अर्थ कोश में दिये हैं— 'अनुबन्धोऽप्रयोगे स्याच्छिषौ मुख्यानुयायिनि। प्रकृतस्यानुवर्ते च दोषस्यापादनेऽपि च।' है० को०। यहाँ 'प्रकृत का अनुवर्तन' इस अर्थ में 'अनुबन्ध' शब्द प्रयुक्त हुआ है, हृदयानुबन्ध अर्थात् हृदय के भावों का एक विशेष अवस्था का बने रहना; इसी प्रकारैरानुबन्ध, रागानुबन्ध इत्यादि शब्द भी होते हैं।

विप्रिय०— राम द्वारा सीता का निष्कारण परित्याग विप्रिय कर्म था, जिसके कारण सीता के हृदय का रोष से क्षुब्ध होना स्वाभाविक था।

इस श्लोक में भिन्न—भिन्न कारणों से सीता के हृदय में उठते हुए भावों के क्रमशः भावपूर्ण चित्रण है। इस श्लोक में शिखरिणी छन्द, उत्तमा अलंकार है।

{२८} राम— देवि,

प्रसाद इव मूर्तस्ते स्पर्शः स्नेहार्द्रशीतलः।

अद्याप्यानन्दयति मां त्वं पुनः क्वासि नन्दिनि।१४॥

अन्वयः— स्नेहार्द्रशीतलः ते स्पर्शः मूर्तः प्रसादः इव अद्यापि माम् आनन्दयति। नन्दिनि त्वं पुनः क्व असि?

{२८} शब्दार्थ— मूर्तः प्रसाद इव = मूर्तिमान् अनुग्रह के समान। ते = तेरा। स्नेहार्द्रशीतलः = स्नेह से सरस तथा सतापहारक। अद्यापि = अबतक (स्पर्श के अभाव के क्षण में) भी। नन्दिनि = हे आनन्ददायिनी।

अनुवाद— राम— हे देवी, तेरा प्रेमरस से भीगा—सा तथा शीतल स्पर्श मूर्तिमान् अनुग्रह के समान अभी मुझे आनन्दित कर रहा है। परन्तु हे आनन्ददायिनी तू कहाँ है?

टिप्पणी (Notes)

नन्दिनी (पाठ०)— प्रायः सभी प्रतियों में 'नन्दिनि' ऐसा पाठ है, किन्तु घनश्याम ने ही प्रथमैकवचनान्त पाठ रखा है, और भी ठीक भी यही प्रतीत होता है, क्योंकि संबोधन में देवि शब्द प्रयुक्त हो चुका है, पुनः नन्दिनि शब्द का प्रयोग उचित नहीं प्रतीत होता। फिर नन्दिनि शब्द का प्रयोग प्रायः पुत्री के अर्थ में ही होता है, अतः इसको संबोधन न बनाकर 'त्वं' का विशेषण मानना चाहिये। दे० घनश्याम— "नन्दिनीति कवेरचातुर्यम्। तथापि नन्दयतीति धातुबलादवन्तरभेद ऊह्यः। नन्दिनी प्रथमैकवचनम् नन्दिनी त्वं पुनः क्वासि इत्यर्थः।" इस श्लोक के पूर्वार्ध में प्रकृत स्पर्श में अप्रकृत मूर्तिमान् प्रसाद की संभावना से उत्प्रेक्षा अलंकार है। अनुष्टुप् छन्द है।

{२९} सीता— एदे कखु ते अगाधदसिदसिणेहसंभारा आणन्दणिस्सन्दिणो सुहाममा अज्जउत्तस्य उल्लावा। जाणं पच्चएण णिककालणापरिच्चाअसल्लिदोवि बहुमदो मह जम्भलहो। (एते खलु ते अगाधदर्शितस्नेहसंभारा आनन्दनिष्यन्दिनः सुधामया आर्यपुत्रस्योल्लापाः। येषां प्रत्ययेन निष्कारणपरित्यागशल्यतोऽपि बहुमतो मम जन्मलाभः।)

रामः— अथवा कुतः प्रियतमा! नूनं संकल्पाभ्यासपाठवोपादान एष रामभद्रस्य भ्रमः।

{२९} शब्दार्थ— अगाध = अत्यन्त। संभार = राशि, प्राचुर्य। निष्यन्दिनः = बरसानेवाले। उल्लापाः = ऊँचे विलाप। प्रत्यय = विश्वास अथवा ज्ञान। शल्यतः = शल्ययुक्त किया (किल ठोका) हुआ। बहुमतः = आदृत। नूनं = निश्चय ही। संकल्पाभ्यासपाठवोपादानः = संकल्प (सीताविषयक चिन्तन) के अभ्यास (पुनः पुनः आवर्तन) से उत्पन्न पाटव ही है उपादान (उत्पत्तिकारण) जिसका ऐसा।

अनुवाद—सीता— अत्यधिक दिखाया गया है स्नेह का प्राचुर्य जिनसे ऐसे ये आर्यपुत्र के उच्च विलाप आनन्द बरसानेवाले तथा अमृतमय हैं; जिनके विश्वास से (अथवा ज्ञान से) अकारणनिर्वासनरूप शल्य से युक्त हुआ भी मेरा जन्मलाभ (जन्म लेना) श्लाघ्य है। राम—अथवा

(यहाँ) प्रियतमा कहीं से (आई)? निश्चय ही (मेरे) संकल्पों के पुनः पुनः आवर्तन से उत्पन्न नैपुण्य ही है उत्पत्ति कारण जिसका ऐसा यह रामभद्र का भ्रम है।

उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक की व्याख्या

टिप्पणी (Notes)

अगाधमानसदर्शितस्नेहसंभारः (पाठा०)— इस पाठ में 'मानस' शब्द का कोई विशेष प्रयोजन नहीं है, इसका समासविग्रह इस प्रकार किया जा सकता है— अगाधः मानसस्य (मानसे वा) दर्शितः स्नेहसंभारः यैः (येषु तां)। संभार शब्द का अर्थ 'संचय' अर्थ का समूह होता है, अतः 'स्नेहसंभारः' (स्नेहस्य संभारः) का अर्थ भावानयने द्रव्यानयनम्— वचन के अनुसार 'संभृतस्नेहः' (चिरसंचितः स्नेहः) भी हो सकता है।

संकल्पाभ्यासपाटवोपादान— तुल० 'युष्मत्प्रसादोपादानः तथा प्रकृष्टपुण्यपरिपाकोपादान एष महिमा' महावीर०।

रामभद्रस्य— यह राम का अपने प्रति व्यङ्ग्यवचन (अर्थात् व्यंगोक्ति) है; 'राम सौभाग्यशाली नहीं है, किन्तु वह वस्तुतः हतभाग्य है, अतएव उसे प्राकृत जन के समान भ्रम हो रहा है, ऐसा राम का अभिप्राय है।

(नेपथ्ये)

{३०} अहो महान्प्रमादः प्रमादः। ('सीतादेव्या स्वकरकलितैः' इत्यर्थं पठ्यते।)

रामः— (सकरुणौत्सुक्यम्) किं तस्य?

(पुनर्नेपथ्ये— 'बध्वा सार्ध' इत्युत्तरार्धं पठ्यते।)

सीता— को दाणिं अहिउज्जिस्सदि? (क इदानीमभियोक्ष्यते?)

रामः— क्वासौ क्वासौ दुरात्माः यः प्रियायाः पुत्रकं वधूद्वितीयमभिभवति? (इत्युत्तिष्ठति)।

{३०} शब्दार्थ— प्रमादः = अनवधानता, विपत्ति। सकरुणौत्सुक्यं = करुणा तथा उत्सुकता के साथ। अभियोक्ष्यते = कर्तरि आक्रमण करेगा; कर्मणि— (उसके उद्धार के लिए) नियुक्त किया जायगा। दुरात्मा = दुष्ट स्वभाववाला। पुत्रक = कृत्रिम पुत्र। वधूद्वितीय = वधूसहित। अभिभवति = आक्रमण करके हरा रहा है।

अनुवाद— (नेपथ्य मे) अहो, बड़ी विपत्ति है, विपत्ति है। ('सीतादेव्या स्वकरकलितैः' इस प्रकार श्लोक का आधा भाग पढ़ा जाता है)। राम— (दया तथा उत्कण्ठा के साथ) उसका क्या (हुआ)? (फिर नेपथ्य में— 'बध्वा सार्ध' इस प्रकार श्लोक का उत्तरार्ध पढ़ा जाता है।) सीता— कौन इस समय (मेरे पुत्र के उद्धार के लिये) नियुक्त किया जायगा (अथवा आक्रमण करेगा)? राम— कहाँ है वह, कहाँ है वह दुष्ट जो प्रिया के वधूसहित पुत्र को आक्रमण करके हरा रहा है? (ऐसा कहकर खड़े होते हैं)।

(प्रविश्य संभ्रान्ता)

{३१} वासन्ती— कथं देवो रघुनन्दनः।

सीता— कहं पिअसही में वासन्ती। (कथं प्रियसखी में वासन्ती)।

वासन्ती— जयतु जयतु देवः।

रामः— (निरूप्य) कथं देव्याः प्रियसखी वासन्ती।

[३१] शब्दार्थ— देवः = महाराज। निरूप्य = देखकर। देव्याः = देवी सीता की।

अनुवाद— (प्रवेश करके घबड़ाई हुई) वासन्ती— क्या महाराज रघुनन्दन हैं। सीता— क्या मेरी प्रियसखी वासन्ती है। वासन्ती— महाराज की जय हो, जय हो। राम— (देखकर) क्या देवी की प्यारी सखी वासन्ती है।

टिप्पणी (Notes)

भागीरथी के प्रभाव से सीता के शब्द राम तथा वासन्ती को सुनाई नहीं पड़ते हैं, और न वह स्वयं ही उन्हें दिखाई पड़ती है।

[३२] वासन्ती— देव, त्वर्यतां त्वर्यताम्। इतो जटायुशिखरस्य दक्षिणेन सीतातीर्थेन गोदावरीमवतीर्य संभावयतु देव्याः पुत्रकं देवः।

सीता— हा ताद जडाओ सुण्णं तुए विणा इदं जणाङ्गाणं। (हा तात जटायो, शून्यं त्वया विनेदं जनस्थानम्।)

रामः— अहह हृदयमर्मच्छिदः खल्वमी कथोद्धाताः।

वासन्ती— इत इतो देवः।

[३२] शब्दार्थ— त्वर्यताम् = जल्दी की जावे। इतः = यहाँ से। तीर्थ = घाट। अवतीर्य = उतरकर। संभावयतु = (परित्राण देकर) सम्मानित कीजिये। हृदयमर्मच्छिदः = हृदयमर्म को छेदनेवाले। मर्म = जीवस्थान, जहाँ चोट लगने से मृत्यु की संभावना रहती है। खलु = निश्चय से। कथोद्धाताः = कथाप्रसङ्ग।

अनुवाद— वासन्ती— महाराज, शीघ्रता कीजिये, शीघ्रता कीजिये। यहाँ से जटायुशिखर के दक्षिण की ओर सीतातीर्थ से गोदावरी में उतरकर महारानी (सीता) के पुत्र को महाराज (सहायता देकर) सम्मानित करें। सीता— हा तात जटायु, तुम्हारे बिना यह जनस्थान शून्य है। राम— अहह, निश्चय ही ये कथाप्रसङ्ग हृदयमर्म को छेदनेवाले हैं। वासन्ती— महाराज इस ओर से, इस ओर से (आयें)।

टिप्पणी (Notes)

जटायुशिखर— सूर्य के तेज से जटायु के पंख झुलस गये थे और वह उड़ न सकता हुआ जिस शिखर पर रहा करता था उसका नाम जटायुशिखर पड़ गया।

सीतातीर्थेन— 'तीर्थ' शब्द का अर्थ यहाँ जलावतार (घाट) है। जिस घाट से सीता गोदावरी में उतरकर स्नान किया करती थी, उसका नाम सीता तीर्थ पड़ गया।

कथोद्घाताः— 'उद्धात' शब्द का अर्थ आरम्भा, प्रस्ताव, उपन्यास आदि होता है, तुल० "उद्धातः प्रणवः यासाम्" (कुमा०), तथा "आकुमारकथोद्घातं" (रघु० ४।२०)। वासन्ती द्वारा 'जटायुशिखर' तथा 'सीतातीर्थ' के उल्लेख से राम को जटायुमरण, सीताहरण इत्यादि पूर्ववृत्तान्तों का स्मरण हो आया।

मर्माविधः -- मर्माणि विध्यन्ति इति, मर्म— √ व्यध् + क्विप्, 'नहिवृति—' (पा० ६।३।११६) सूत्र के अनुसार क्विप् प्रत्ययान्त 'विध्' उत्तरपद होने पर पूर्वपद के स्वर को दीर्घ हो गया।

{३३} सीता—भगवति, सच्चं एव वणदेवता पि मां न पेवखन्दि। (भगवति, सत्यमेव वनदेवता अपि मां न प्रेक्षन्ते।)

तमसा— अयिवत्से, सर्वदेवताभ्यः प्रकृष्टतममैश्वर्य मन्दाकिनीदेव्यास्तत् किमित्याशङ्कसे।

सीता— तदो अणुसरम्ह। (ततोऽनुसरावः।) (इति परिक्रामति।)

{३३} शब्दार्थ— प्रेक्षन्ते = देखती हैं। अयि = कोमल आमन्त्रणसूचक अव्यय। सर्वदेवताभ्यः = सब देवताओं से। प्रकृष्टतमं = उत्कृष्टतम। ऐश्वर्य = अणिमादि सिद्धि, प्रभाव। मन्दाकिनीदेव्याः = भागीरथी देवी का। किमिति = क्यों। आशङ्कसे = संशय करती हो। अनुसरावः = हम दोनों अनुसरण करें।

अनुवाद— सीता— भगवति, सचमुच ही वनदेवता भी मुझे नहीं देखती हैं। तमसा— अरी, बच्ची, सब देवताओं के (ऐश्वर्य) से उत्कृष्टतम ऐश्वर्य मङ्गादेवी का है, फिर क्यों शङ्का करती हो? सीता— तो हम दोनों अनुसरण करें। (आर्यपुत्र तथा वासन्ती के पीछे पीछे चलें।) (ऐसा कहकर घूमती है।)

{३४} रामः— भगवति गोदावरि, नमस्ते।

वासन्ती— (निरूप्य) देव, मोदस्व विजयिना वधूद्वितीयेन देव्याः पुत्रकेण।

रामः— विजयतामायुष्मान्।

सीता— अम्हहे ईदिसो मे पुत्तओं संवुत्तो। (अहो ईदृशो मे पुत्रकः संवृत्तः।)

{३४} शब्दार्थ— मोदस्व = आनन्दित होइए। विजयिना = विजयी से। विजयताम् = सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हो। आयुष्मान् = चिरंजीवी। संवृत्तः = हो गया है।

अनुवाद— राम— भगवती गोदावरी, तुम्हें नमस्कार है। वासन्ती— (भलीप्रकार देखकर) महाराज, देवी (सीता) के वधूयुक्त विजयी पुत्रक से आनन्दित होइए। राम— आयुष्मान् विजयी (अथवा सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त) हो। सीता— अहो मेरा पुत्र ऐसा (बलशाली) हो गया है।

टिप्पणी (Notes)

विजयताम्— वि (तथा परा) पूर्वक 'जि' धातु आत्मनेपदी होती है ('जि') धातु जब अकर्मक होती है तो उसका अर्थ होता है 'उत्कर्ष को प्राप्त होना', जैसे जयतु महाराजः।

{३५} रामः— हा देवि, दिष्ट्या वर्धसे।

येनोद्गच्छद्विसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण

व्याकृष्टस्ते सुतनु लवलीपल्लवः कर्णमूलात्।

सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता

यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः।१५॥

सीता— अविउत्तो दाणिं अअं दीहाऊ इमाए सोम्मदंसणाए होदु। (अवियुक्त इदानीमयं दीर्घायुरनया सौम्यदर्शनया भवतु।)

अन्वय— हे सुतनु, उद्गच्छद्विसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण येन ते कर्णमूलात् लवलीपल्लवः, व्याकृष्टः, मदमुचां वारणानां विजेता सोऽयं तव पुत्रकः तरुणे वयसि यत्कल्याणं तस्य भाजनं जातः।

{३५} शब्दार्थ— दिष्ट्या = हर्ष की बात है। वर्धसे = तुम समृद्धि को प्राप्त कर रही हो। सुतनु = हे सुन्दर शरीरवाली। उद्गच्छत् = ऊपर को निकलते हुए। विसकिसलय = मृणालाङ्कुर (के समान)। स्निग्ध = कोमल। दन्ताङ्कुर = नये दाँत जिसके ऐसे। येन = जिस (करिशावक) के द्वारा। ते = तेरे। कर्णमूलात् = कान के मूल से। लवलीपल्लवः = लवली नामक लता का कोमल पत्ता। व्याकृष्टः = खींचा गया था। मदमुचां = मद चुआनेवाले। वारणानां = हाथियों का। विजेता = विजय करनेवाला। तरुणे वयसि = यौवन में। कल्याणं = मङ्गलप्रद। भाजनं = पात्र। जातः = हो गया है। अवियुक्तः = वियोग को अप्राप्त, मिला हुआ। सौम्यदर्शना = सुन्दर आकृतिवाली (करिणी)।

अनुवाद— राम— हा देवि, तुम्हें बधाई है। हे सुन्दर शरीरवाली, उगते हुए मृणाल के अङ्कुर के समान कोमल नवीन दाँतवाले जिस (करिशावक) के द्वारा तेरे कान की जड़ से लवलीलता का कोमल पत्ता खींचा गया था, मद चुआनेवाले हाथियों को जीतनेवाला वही यह तेरा पुत्र, यौवन में जो मङ्गल है उसका पात्र हो गया है। सीता— अब यह बड़ी आयुवाला इस मधुर आकृतिवाली (करिणी) से अवियुक्त (वियोग को अप्राप्त) होवे।

टिप्पणी (Notes)

दिष्ट्या वर्धसे— यह वाक्य 'बधाई' देने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

सुतनु— यह 'सुतनू' का सम्बोधन है; सम्बोधन में नदी संज्ञक (ईकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग) शब्दों का ह्रस्व हो जाता है। 'तनु' शब्द ह्रस्व उकारान्त भी होता है और दीर्घ ऊकारान्त भी ('स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः' अ०को०), ह्रस्व उकारान्त होने से संबोधन में 'सुतनो' होता है। अतएव यहाँ ऊकारान्त ही मानना होगा, परन्तु ऐसा मानने पर बहुव्रीहि होने से यहाँ कप् समासान्त होना चाहिए ('नद्यतश्च' पा०), अतः समासन्त विधि को अनित्य मानकर 'सुतनू' को साधु समझना चाहिए।

भाजनं जातः — यहाँ उद्देश्य की दृष्टि से पुलिङ्ग का प्रयोग हुआ है। 'भाजनं' विधेय है। अभियुक्तः— सीता स्वयं वियोग-वेदना से पीड़ित हैं, परन्तु अन्य प्राणियों के लिये उसके उदार

हृदय मे मङ्गलकामना भरी हुई है। यहाँ मन्दाक्रान्ता छन्द एवं काव्यलिङ्ग अलंकार है।

{३६} रामः— सखि वासन्ति, पश्य पश्य कान्तानुवृत्तिचातुर्यमपि शिक्षितं वत्सेन।

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु संपादिताः

पुष्पत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः।

सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन—

र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम्।१६॥

अन्वय— यत् लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु पुष्पत्पुष्करवासितस्य पयसः गण्डूषसंक्रान्तयः संपादिताः; (तथा) शीकरिणा करेण सेकः विहितः; विरामे पुनः स्नेहात् अनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम्।

{३६} शब्दार्थ— कान्ताऽनुवृत्तिः = प्रिया का चित्तानुञ्जन। लीलया = अनायास ही। उत्खात = उखाड़ा हुआ। मृणालकाण्ड = कमलदण्ड। कवल = ग्रास। छेद = खण्ड अथवा अन्त या अवसान। पुष्पत् = बढ़ते हुए। पुष्कर = कमल (से)। वासित = सुरभीकृत। पयसः = जल के। गण्डूष = मुख में भरा हुआ द्रव पदार्थ। संक्रान्ति = संचार। संपादिताः = किए गए। सेकः = सेचन। शीकरिणा = छोटे-छोटे जलकणों से युक्त। करेण = सूँड से। विहितः = किया गया। कामं = पर्याप्त। विरामे = अवसान में, (जलसेचन से उपरान्त)। स्नेहात् = अनुरागातिशय के कारण। अनराल = अवक्र, सीधा। नलिनीपत्र = कमलिनी का पत्र। आतपत्रं = छत्र। धृतम् = धारण किया गया।

अनुवाद— राम— हे सखी वासन्ती! देखो देखो प्रिया के चित्तानुञ्जन का कौशल भी वत्स ने सीख लिया। क्योंकि क्रीडारस से उखाड़े हुए मृणालदण्डों के ग्रासों के खण्डों में, अन्त में पुष्ट होते हुए कमलों से सुरभित जल के कुल्ले (गरारे) घुमाये जा रहे हैं। (तथा) जलकणों से युक्त सूँड से यथेष्ट सेचन किया गया है। फिर अन्त में प्रेम से सीधी नाकवाले कमलिनीपत्र का छत्र (कान्ता के सिरपर) धारण किया है।

टिप्पणी (Notes)

लीलो०— यह श्लोक मालतीमाधव में भी आया है, इसमें चतुर्थपाद के 'यत्' के स्थान में 'न' पाठ है।

छेद— इस शब्द की अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है यहाँ इसका अर्थ अवसान (या बीच में) उचित जान पड़ता है।

गण्डूष०— अपने मुख में जल भरकर उसे करेणुका के मुख में डाला गया, ऐसा भाव इससे सूचित होता है (दे० मालतीमाधव की जगद्धरकृत टीका भी)।

संपादिताः— संपादिताः (पाठा०)— गिराये गये। यह पाठ ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि 'संक्रान्ति' शब्द में पतन का भाव अन्तर्भूत है।

पुष्पतुष्कर०— “पुष्पद्भिः वर्धमानैः पुष्करैः पद्मैः वासितस्य सुरभितस्य, अथवा पुष्पति उपचयवति पुष्करे शुण्डाग्रे वासितस्य संजातवासस्य” (वीर रा०)।

पुष्पत् (पाठा०)— विकशत्, यह पाठ ‘पुष्पत्’ से अधिक अच्छा है।

यत्— यतः, इसका अन्वय श्लोक के प्रत्येक पाद के साथ करना चाहिए, यतः एवं कृतं तस्मात्कान्तानुवृत्ति०। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द एवं स्वभावोक्ति अलंकार है।

{३७} सीता— भवदि तमसे, अयं दाव ईदिसो जादो। दे उण ण जाणामि कुसलवा एत्तिएण कालेण कीरिसा संवुत्तेति। (भगवति तमसे, अयं तावदीदृशो जातः। तौ पुनर्न जानामि कुशलवावेतावता कालेन कीदृशौ संवृत्ताविति।)

तमसा— यादृशोऽयं तादृशौ तावपि।

सीता— ईदिसी अहं मन्दभाइणी जाए ण केवलं निस्सहो अज्जउत्तविरहो पुत्तविरहो वि। (ईदृश्यहं मन्दभागिनी यस्या न केवलं निःसह आर्यपुत्रविरहः पुत्रविरहोऽपि।)

{३७} **शब्दार्थ—** एतावता कालेन = इस समय तक। निस्सहः = असह्य। भवितव्यता = नियति, होनहार।

अनुवाद— सीता— हे भगवति तमसे, यह अब ऐसा (बलवान् तथा बड़ा) हो गया है; नहीं जानती कि वे कुश तथा लव इस समय तक कैसे हो गये होंगे? तमसा— जैसा यह (हो गया है), वे भी वैसे ही (हो गये होंगे)। सीता— मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ, जिसका न केवल असह्य आर्यपुत्रविरह ही (हुआ) है, (किन्तु) पुत्रविरह भी। तमसा— यह होनहार ऐसी ही (थी)।

टिप्पणी (Notes)

निस्सहः— निरन्तरं (पाठा०)— नास्ति अन्तम् व्यवधानं यस्मिन् तत्, अविरतमित्यर्थः। यह क्रियाविशेषण है, क्रियाविशेषण में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त होती है।

भवितव्यता— तुल०— “अवश्यंभाविनो भावा भवन्ति महतामपि।”

{३८} सीता— किं वा मए पसूदाए जेण तादिसवि मह पुत्तआणं ईसिविरल— कोमलं ऽवलदसणुज्जलकपोलं अणुवद्धमुद्धकाअलीविहसितं णिबद्धकाकसिहण्डअं अमलमुहपुण्डरीअजुअलं ण परिचुम्बिअं अज्जउत्तेण। (किं वा मया प्रसूतया येन तादृशमपि मम पुत्रकयोरीषद्विरलकोमलं ऽवलदशनोज्ज्वलकपोलमनुबद्धमुग्ध— काकलीविहसितं निबद्धाकाकाशिखण्डकम् अमलमुखपुण्डरीकयुगलं न परिचुम्बितमार्यपुत्रेण।)

{३८} **शब्दार्थ—** प्रसूता = प्रसवकारिणी। ईषत् = कुछ-कुछ। विरल = एक दूसरे से न सटे हुए। कोमल = सुकुमार। धवल = शुभ्र। दशनोज्ज्वलकपोलम् = दाँतों से कान्तिमान् कपोलों वाला। अनुबद्ध = निरन्तर संबद्ध, अनुगत। मुग्ध = मनोहर। काकली = मधुर तथा अस्फुट ध्वनि

(तथा)। विहसितं = मधुरहास्य, (है जिसमें ऐसा)। निबद्धकाकशिखण्डकम् = संयत काकपक्षवाला।
अमलमुखपुण्डरीकयुगलं = उज्ज्वल मुखकमलों का जोड़ा। देवताप्रसादात् = देवताओं के अनुग्रह
से।

अनुवाद—सीता— अथवा मुझ प्रसवकारिणी से क्या, जो इसप्रकार का भी मेरे बेचारे पुत्रों
का, कुछ-कुछ अनिबिड, सुकुमार तथा श्वेत दाँतों से चमकते हुए कपोलोंवाला, निरन्तर संबद्ध
मनोहर अस्फुट ध्वनि और मधुर हास्य वाला तथा बँधे हुए काकपक्षोंवाला, निर्मलमुखकमलों का
जोड़ा आर्यपुत्र से नहीं चूमा गया।

तमसा— देवताओं के अनुग्रह से (ऐसा ही) होवे।

टिप्पणी (Notes)

काकली का (ईषत्) कलः सूक्ष्म, मधुर, अस्फुटध्वनि, 'काकली तु कले सूक्ष्मे, ध्वनौ तु
मधुरास्फुटे कलः' (अ०को०)।

काकशिखण्डक— यद्यपि 'शिखण्डक' शब्द से ही काकपक्ष का बोध हो जाता है
(“काकपक्षः शिखण्डकः” अ०को०); अतः इसमें काक शब्द व्यर्थ है, तथापि 'करिकलभ' इत्यादि
शब्दों के समान 'काकशिखण्डक' शब्द का प्रयोग भी ठीक माना जा सकता है।

[३९] **सीता—** भवति तमसे, एदिणा अवच्चसंसुमरणेण उस्ससिदणहुदत्थणी दाणिं वच्चाणं
पिदुणो सणिहाणेण खणमेतं संसारिणीमिह संवृत्ता। (भगवते तमसे, एतेनापत्यसंस्मरणेनोच्छ्वसित—
प्रस्तुतस्तनी इदानीं वत्सयोः पितुः संनिधानेन क्षणमात्रं संसारिण्यस्मि संवृत्ता।)

[३९] **शब्दार्थ —** अपत्य = संतान। उच्छ्वसितप्रस्तुतस्तनी = (स्तनों में दुग्ध के आ
जाने से) फूले हुए तथा दूध चुआते हुए स्तनोंवाली। वत्सयोः = दोनों बच्चों के। पितुः = पिता के।
संनिधानेन = समीपावस्थान से। क्षणमात्रं = क्षणभर के लिए। संसारिणी = गृहस्थधर्म का आचरण
करनेवाली। संवृत्ताऽस्मि = हो गई हूँ। अत्र = अपत्यस्नेह के विषय में। प्रसवः = संतान। खलु =
निश्चित रूप से। स्नेहस्य = प्रेम का। प्रकर्षपर्यन्तः = प्रकर्ष (आतिशय्य) का पर्यन्त (चरम सीमा),
पराकाष्ठा। परं च = अन्यच्च, तथा। एतत् = यह, (प्रसवरूप वस्तु)। पित्रोः = माता-पिता के।
अन्योऽन्यसंश्लेषणं = परस्पर का बंधन (बन्धन हेतु, संयोजनग्रन्थि)।

अनुवाद— सीता— हे भगवति तमसा! इस, संतान के स्मरण से मेरे स्तनों में दूध भर
आया है जिसमें मैं फूल हुए और दूध चुआते स्तनोंवाली हो गई हूँ। इस समय दोनों बच्चों के पिता
मेरे समीप हैं इसलिए थोड़ी देर के लिए संसारिणी (सामान्य गृहस्थ सी) हो गई हूँ। तमसा— इसमें
क्या कहना है, सन्तान निश्चय ही प्रेम की पराकाष्ठा है और यह (सन्तान) (माता पिता) दोनों के
परस्पर बन्धन का हेतु भी है।

टिप्पणी (Notes)

प्रकर्षपर्यन्तः — पराकाष्ठा, अपत्यस्नेह स्नेह की पराकाष्ठा (चरम सीमा) है, इससे बड़ा

स्नेह अन्य किसी के प्रति नहीं होता।

परं-पित्रोः— 'पर' शब्द 'संश्लेषण' का विशेषण भी माना जा सकता है, तब इसका भाव इस प्रकार होगा— अपत्य माता—पिता को एक दूसरे के साथ जोड़ने के लिए सबसे उत्कृष्ट ग्रन्थि है। संश्लेष्यते अनेन इति 'संश्लेषण', अर्थात् जिस साधन के द्वारा दो पदार्थ परस्पर बाँधे जाये। घनश्याम ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है— 'पर' उत्कृष्ट, वक्तुमशक्यमिति भावः। 'पित्रोः संश्लेषणं' सुरतात्मकम् उपगूहनमिति भावः।

{४०} तमसा— अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।

आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति बध्यते। १७॥

अन्वयः— स्नेहसंश्रयात् दम्पत्योः अन्तःकरणतत्त्वस्य 'अपत्यम्' इति अयम् एकः आनन्दग्रन्थिः बध्यते।

{४०} शब्दार्थ— स्नेहसंश्रयात् = स्नेह का आश्रय (आस्पद) होने के कारण। दम्पत्योः = जाया तथा पति के। अन्तःकरणतत्त्वस्य = अन्तःकरणरूप तत्त्व की। अपत्यम् इति = 'अपत्य' (पुत्र) इस प्रकार की। अयम् = यह। एकः = अद्वितीय। आनन्दग्रन्थिः = आनन्दनिर्मित गाँठ (बन्धन)। बध्यते = (विधाता द्वारा) बाँधी जाती है।

अनुवाद— तमसा— (माता पिता के) स्नेह का आश्रय (होने) से दम्पती के अन्तःकरणरूप तत्त्व का, 'अपत्य' इस प्रकार का यह अद्वितीय आनन्दनिर्मित ग्रन्थि (विधाता) द्वारा बाँधा जाता है।

टिप्पणी (Notes)

बध्यते— पठ्यते (पाठा०)— ऐसा पाठ होने पर उत्तरार्ध का अर्थ इस प्रकार होगा— यह अद्वितीय आनन्दग्रन्थि 'अपत्य' ऐसा कहाता है।

(विशेष)— यह श्लोक भवभूति के उत्कृष्टतम श्लोकों में से है और उनकी अपत्यविषयक उच्च तथा पवित्र भावना का अभिव्यञ्जक है। माता तथा पिता का स्नेह उनकी संतान में केन्द्रित रहता है, उनका वह पवित्र स्नेह वासना से सर्वथा अदूषित होता है। घनश्याम ने इसकी व्याख्या स्त्रीपुरुष संभोग पर की है, जो किसी भी प्रकार उचित नहीं प्रतीत होती। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

{४१} वासन्ती— इतोऽपि देवः पश्यतु।

अनुदिवसमवर्धयत्प्रिया ते

यमचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम्।

मणिमुकुट इवोच्छिखः कदम्बे

नदति स एष वधूसखः शिखण्डी। १८॥

सीता— (सकौतुकस्नेहास्रम्) एसो सो एसो सो। (एष स एष सः।)

रामः— मोदस्व वत्स मोदस्व।

सीता— एव्वं होदु। (एवं भवतु।)

अन्वय- अचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हं यं ते प्रिया अनुदविसम् अवर्धयत्, सः एषः उच्छिरवः मणिमुकुटः इव शिखण्डी वधूसखः (सन्) कदम्बे नदति।

{४१} शब्दार्थ— इतोऽपि = इस ओर भी। अनुदविसम् = प्रतिदिन। अचिरं = नया। निर्गत = निकला हुआ। मुग्ध = मनोहर। लोल = चञ्चल। बर्ह = (मोर की) पूँछ (वाफ)। यम् = जिसको। ते प्रिया = तेरी प्रिया (सीता) ने। अवर्धयत् = पाला पोसा। उच्छिरवः = ऊपर को उठी हुई शिखावाला। मणिमुकुट इव = मणिजटित मुकुट के समान। स एव = वही यह। शिखण्डी = मोर। वधूसखः = वधू सहित। कदम्बे = कदम्ब वृक्ष पर। नदति = बोल रहा है, केकाध्वनि कर रहा है। कौतुक = कुतूहल। मोदस्व = मुदित हो, आनन्दित हो।

अनुवाद— वासन्ती— इस ओर भी महाराज देखें। नई निकली हुई मनोहर तथा चंचल पूँछवाले जिसको तुम्हारी प्रिया ने प्रतिदिन पाला-पोसा, वही यह उन्नत चूड़ावाला, (तथा) मणिजटित मुकुट के समान (प्रतीयमान) मयूर वधू (मयूरी) का साथी (होता हुआ) कदम्ब पर बोल रहा है। सीता— (कुतूहल तथा स्नेहाश्रु के साथ) यह वह है, यह वह है। राम— आनन्दित रहो, बच्चे, आनन्दित रहो। सीता— ऐसा ही होवे।

टिप्पणी (Notes)

अनुदविसं इत्या०— प्रतिदिन। दिवसे दिवसे इति अनुदविसम् वीप्सा अर्थ में अव्ययीभाव।

अवर्धयत्— बढ़ाया वृध् + णिच् + लङ् — प्र० एक०।

वधूसखः— अपनी पत्नी के सहित। वध्वाः सखा तत्पुरुष।

शिखण्डी— मोर शिखण्ड अर्थात् बर्ह या कलंगी से युक्त। शिखण्डः अस्य अस्ति इति। शिखण्ड + इनि। मत्वर्थ में इनि प्रत्यय। इस श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द, उपमा अलंकार है।

{४२} रामः— भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः

प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैर्मण्डयन्त्या।

करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानं

सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि।१९॥

अन्वय- भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः (कर्म) प्रचलित चटुलभ्रूताण्डवैः (करण) मण्डयन्त्या मुग्धया करकिसलयतालैः नर्त्यमानं त्वां सुतमिव वत्सलेन मनसा स्मरामि।

{४२} शब्दार्थ— भ्रमिषु = (मयूर द्वारा किए हुए) चक्राकार भ्रमणों में। कृत.....चक्षुः =

(कृत) किया गया है (पुटान्तः) अक्षिपुट के भीतर (मण्डलावृत्ति) मण्डलाकार आवर्तन जिसके द्वारा ऐसे (चक्षुः) नेत्र को। प्रचलित = अति चञ्चल। चटुल = सुन्दर। भूताण्डवैः = भौओं के नर्तनों से। मण्डयन्त्या = भूषित करती हुई। मुग्धा = मनोहारिणी अथवा सरला (प्रिया) द्वारा। करकिसलयतालैः = नवीन पल्लवों के समान कोमल हाथों की तालों से। नर्त्यमानं = नचाये जाते हुए। त्वां = तुझे। पुत्रमिव = पुत्र को जैसे। वत्सलेन मनसा = स्नेहयुक्त मन से। स्मरामि = याद करता हूँ।

अनुवाद— राम— (मयूर द्वारा किए जाते हुए) चक्राकार भ्रमणों से (अर्थात् उन चक्राकार भ्रमणों में अनुसरण करते हुए) किया गया है अक्षिपुट के भीतर मण्डलाकार आवर्तन जिसके द्वारा ऐसे चक्षु को अत्यन्त चञ्चल तथा सुन्दर भौओं के नर्तनों से भूषित करती हुई मुग्धा (सरलक्रान्ता) द्वारा नवीन पल्लवों के समान कोमल हाथों की तालध्वनियों से नचाये जाते हुए, तुझे, पुत्र के समान, स्नेहयुक्त मन से याद करता हूँ।

टिप्पणी (Notes)

भ्रमिषु इत्या०— मयूर के नाचने की गति चक्राकार होती है। जब मयूर सीता के सम्मुख नाचते हुए चक्राकार गति करता था तो सीता के नेत्र भी मयूर के उस चक्राकार भ्रमण का अनुसरण करते हुए मण्डलाकार गति में घूमते जाते थे। वीरराघव ने 'कृत.....ताण्डवैः' को एक ही समास माना है, ऐसे करनेपर 'मण्डयन्त्या' का कर्म 'चक्षुः' न होकर 'त्वां' होगा। विग्रह इस प्रकार होगा। कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुषि च प्रचलितचटुलभूताण्डवानि च, तैः।

चटुल— इस शब्द के अर्थ चञ्चल तथा मनोहर दोनों होते हैं, 'चञ्चल' अर्थ 'प्रचलित' शब्द से सूचित हो जाता है, अतः इसका अर्थ 'मनोहर' ही लेना चाहिए। इस अर्थ में चटुल शब्द के प्रयोग के लिए देखो गीत गोविन्द० १०। इस श्लोक में मालिनी छन्द एवं उपमा अलंकार है।

{४३} रामः— हन्त तिर्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुध्यन्ते।

कतिपयकुसुमोद्गमः कदम्बः

प्रियतमया परिवर्धितोऽयमासीत्।

अन्वय- कतिपयकुसुमोद्गमः अयं कदम्बः प्रियतमया परिवर्धितः आसीत्।

सीता— (निरूप्य साक्षम्) सुदृढ पञ्चहिआणिदं अज्जउत्तरेण। (सुष्ठु प्रत्ययभिज्ञातमार्यपुत्रेण)।

रामः— स्मरति गिरिमयूर एष देव्याः

स्वजन इवात्र यतः प्रमोदमेति॥२०॥

अन्वयः— एषः गिरिमयूरः देव्याः स्मरति यतः अत्र स्वजने इव प्रमोदम् एति।

{४३} शब्दार्थ— हन्त = विषादसूचक अव्यय। तिर्यञ्चः = पशु—पक्षी। अनुरुध्यन्ते = अनुसरण करते हैं, स्मरण रखते हैं, सम्मान करते हैं। कतिपयकुसुमोद्गमः = कुछ (थोड़े से) पुष्प लगे हुए हैं जिसपर ऐसा। प्रियतमया = प्रियतमा (सीता) द्वारा। परिवर्धितः = बढ़ाया (पाला—पोसा)।

गया। सुष्ठु = भलीप्रकार। प्रत्यभिज्ञातम् = पहचान लिया गया। गिरिमयूरः = पर्वतप्रिय मयूर। देव्याः स्मरति = देवी (सीता) को स्मरण करता है। स्वजने इव = अपने बन्धु के यहाँ जैसे। अत्र = यहाँ, इस पर्वत पर। प्रमोदम् एति = आनन्द को प्राप्त करता है।

अनुवाद— राम— खेद! पशु—पक्षी भी जान—पहचान का सम्मान करते हैं। कुछ (थोड़े से) पुष्प लगे हैं जिसपर ऐसा यह कदम्ब वृक्ष प्रियतमा (सीता) द्वारा बढ़ाया गया था। सीता— (भलीभाँति देखकर, अश्रुसहित) आर्यपुत्र ने अच्छा पहचाना। राम— यह पर्वतप्रिय मयूर देवी का स्मरण करता है, क्योंकि यहाँ (इस वृक्षपर), अपने बन्धु में जैसा आनन्द प्राप्त करता है।

टिप्पणी (Notes)

हन्त इत्या०— यह मयूर तिर्यग्जाति का होने पर भी परिचय का सम्मान करता है किन्तु मैंने मनुष्य होकर भी परिचय का कुछ भी विचार न करके सीता का परित्याग कर दिया, इस प्रकार राम विषादपूर्वक अपने आप का अधिक्षेप करते हैं।

कतिपयकुसुमोद्गमः— इसका विग्रह दो प्रकार से संभव है— (१) कतिपयानां कुसुमानाम् उद्गमः यस्मिन्, व्यधिकरण बहुव्री०, यद्यपि 'पोटायुवति—' (पा० २।१।६५) सूत्र के अनुसार जातिवाचक शब्द (कुसुम) के साथ समास होने से 'कतिपय' शब्द का परनिपात होकर 'कुसुमकतिपय' रूप बनना चाहिए, परन्तु इस सूत्र के नियम को प्रायिक माना गया है, तुल०— 'कतिपयदिवसस्थायिहंसा दशार्णाः' पर मल्लिनाथ, (२) कतिपयाः कुसुमोद्गमाः ('भावानयने द्रव्यानयनम्' सिद्धान्त के अनुसार— उद्गतानि पुष्पाणि) यस्य सः।

स्मरति देव्या— इसका विग्रह भी दो प्रकार से हो सकता है— (१) एष गिरिमयूरः देव्याः स्मरति, अथवा (२) एषः देव्याः गिरिमयूरः (तं कदम्बं) स्मरति। पहला विग्रह अधिक युक्त है।

स्वजन इव— सीता द्वारा कदम्ब वृक्ष तथा गिरिमयूर कदम्ब को स्वजन भ्राता समझकर वहाँ स्नेह से आनन्द का अनुभव करता है। इस श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द, काव्यलिङ्ग अलंकार है।

{४४} वासन्ती— अत्र तावदासनपरिग्रहं करोतु देवः।

(राम उपविशति)

वासन्ती— 'एतत्तदेव कदलीवनमध्यवर्ति

कान्तासखस्य शयनीयशिलातलं ते।

अत्र स्थिता तृणमदाद्बहुशो^१ यदेभ्यः

सीता ततो हरिणकैर्न विमुच्यते स्म॥२१॥

१. पाठा०— नीरन्धबालकदली०।

२. पाठा०— अदाद्वनगोचरेभ्यः०।

रामः— इदं तावदशक्यमेव द्रष्टुम्। (इत्यन्यतो रुदन्पविशति)।

अन्वयः— कान्तासखस्य ते एतत् तदेव कदलीवनमध्यवर्ति शयनीयशिलातलम्;। अत्र स्थिता सीता यत् एभ्यः बहुशः तृणम् अदात्, ततः (इदं) हरिणकैः न विमुच्यते स्म।

{४४} शब्दार्थ— परिग्रह = स्वीकार। कदलीवनमध्यवर्ति = कदलीवन के बीच में वर्तमान। कान्तासखस्य = कान्ता (प्रिया, सिता) के सहचर। ते = आपका। शयनीयशिलातलं = शयनार्थ शिलातल। अत्र = इस शिलातल पर। स्थिता = स्थित, अर्थात् बैठी हुई। तृणम् अदात् = घास देती थी। बहुशः = बहुत बार। यत् = क्योंकि। ततः = इसलिए। हरिणकैः = हरिणों द्वारा। न विमुच्यते = (यह शिलातल) नहीं त्यागा जाता है। स्म = पादपूरणार्थक। अन्यतः = अन्यत्र। रुदन् = रोते हुए।

अनुवाद— वासन्ती— यहाँ ही महाराज आसन ग्रहण करें। (राम बैठते हैं)। वासन्ती— प्रिया के साथ रहनेवाले आपका यह वहीं कदलीवन के बीच में स्थित शयनार्थ शिलातल है। क्योंकि यहाँ पर बैठी हुई सीता इन (हरिणों) को बहुधा घास दिया करती थी, इसलिए बेचारे हरिणों से (यह शिलातल) नहीं त्यागा जाता है। राम— यह तो देखा ही नहीं जा सकता। (ऐसा कहकर रोते हुए अन्यत्र बैठते हैं)।

टिप्पणी (Notes)

एतत्तदेव०—नीरञ्जबाल० (पाठा०)— 'नीरञ्जः' निर्गतं रन्त्रं छिद्रं याभ्यस्ताः, अतीव निबिडाः इति भावः, याः 'बालकदल्यः' नवकदल्यः तासां वनस्य 'मध्ये' अन्तरे वर्तते तच्छीलम्। कान्तासखः— तुल० वधूसखः (श्लो० १८)।

बहुशो यदेभ्यः— वनगोचरेभ्यः (पाठा०)— वनं गोचरः विषयः येषां तेभ्यः मृगेभ्यः इत्यर्थः। हरिणकैः— इसका अर्थ अनेक टीकाकारों ने ह्रस्वे कन् प्रत्यय लगाकर 'हरिणों के बच्चे' किया है, किन्तु यहाँ अनुकम्पायां कन् मानना चाहिए।

न विमुच्यते स्म— सीता से तृण पाने की आशा से ये बेचारे हरिण अभी तक भी इस शिलातल को नहीं छोड़ते हैं। 'विमुच्यते स्म' को यदि भूतकालबोधक मानें ('लट् स्मे' (पा०), 'स्म' के योग में भूतकाल के अर्थ में लट् होता है), तो 'सीता ततोहरिणकैर्न विमुच्यते स्म' ऐसा अन्वय करना ठीक होगा। 'तिर्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुध्यन्ते' का यह एक और उदाहरण है। इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

{४५} सीता— सहि वासन्दि, किं तुए किदं अज्जउत्तस्य मह अ एदं दंसअन्तीए। हद्धी हद्धी! सो एव्व अज्जउत्तो, तं एव्व पञ्चवटीवणं, सा एव्व पिअसही वासन्दी, दे एव्व विविहविस्सम्भसक्खिणो गोदावरीकाणणुदेसा, दे एव्व जादणिक्खिसेसा मिअपक्खिपाअवा, सा ज्जेव चाहं। मह उण मन्दभाङ्गीए दीसन्तं वि एव्वं एव्व णत्थित्ति ता ईदिसो जीअलोअसस परिवत्तो। (सखि वासन्ति, किं त्वया कृतमार्यपुत्रस्य मम चैतद्दर्शयन्त्या। हा धिक् हा धिक्! स एवार्यपुत्रस्तदेव पञ्चवटीवनं सैव प्रियसखी वासन्ती, त एव विविधविस्सम्भसाक्षिणो गोदावरीकाननोदेशाः, त एव जातनिर्विशेषा

मृगपक्षिपादपाः, सैव चाहम्। मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमेवैतन्नास्तीति तदीदृशो जीवलोकस्य परिवर्तनः।)

उत्तररामचरितम् के तृताय अक की
व्याख्या

{४५} शब्दार्थ— विविध विस्रम्भसाक्षिणः = अनेक प्रकार के विश्वस्त (असंकुचित) व्यापारों को साक्षात् देखनेवाले। उद्देश = प्रदेश। जातनिर्विशेषः = पुत्रों के समान। मृग = पशु। पादप = वृक्ष। जीवलोकस्य = जगत् का। परिवर्तः = परिवर्तन, दशाविपर्यास, अवस्थान्तर।

अनुवाद— सीता— सखी वासन्ती, आर्यपुत्र को और मुझे यह (शिलातल) दिखाती हुई तुमने (यह) क्या किया। हा धिक्कार है, हा धिक्कार है। वे ही आर्यपुत्र हैं, वहीं पञ्चवटी वन है, वही प्यारी सखी वासन्ती है, वे ही अनेक प्रकार के (हम दोनों के) विश्वस्त व्यापारों को साक्षात् देखनेवाले गोदावरी के वन प्रदेश हैं, वे ही पुत्रतुल्य हरिण, पक्षी तथा वृक्ष हैं और वहीं मैं हूँ। परन्तु मुझ मन्दभागिनी के लिए दिखाई देता हुआ भी यह सब कुछ 'नहीं है' ऐसा (प्रतीत हो रहा है), (मेरे सम्बन्ध में) जगत् का ऐसा परिवर्तन (दशाविपर्यास) हो गया।

टिप्पणी (Notes)

जातनिर्विशेषः मृगपक्षिपादपाः— मृग = हरिण, “मृगः पशौ कुरङ्गे च।” (मेदिनी), तुल०— “करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशष्पैस्तारुशकुनिकुरङ्गान् मैथिली यानपुष्पत्।” (श्लो० २५)।

ईदृशो जीवलोकस्य परिवर्तः— सीता के कहने का तात्पर्य यह है कि जो पदार्थ उसे सुखकारक प्रतीत होते थे, वे अब उसके लिए दुःखजनक बन गये हैं, उसके सम्बन्ध में यही उनमें बड़ा परिवर्तन हो गया है।

{४६} वासन्ती— सखि सीते, कथं न पश्यसि रामभद्रस्यावस्थाम्?

नवकुलयस्निग्धैरङ्गैर्ददन्नयनोत्सवं

सततमपि नः स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव यः।

विकलकरणः पाण्डुच्छायः शुचा परिदुर्बलः

कथमपि स इत्युन्नेतव्यस्तथापि दृशोः प्रियः॥२२॥

सीता— पेक्खमि सहि पेक्खामि। (प्रेक्षे सखि प्रेक्षे)

तमसा— पश्यन्ती प्रिय भूयाः।

अन्वयः— नवकुलयस्निग्धैः अङ्गैः नयनोत्सवं ददत्, सततमपि नः स्वेच्छादृश्यः अपि यः नवो नव एव (आसीत्); (संप्रति तु) शुचा विकलकरणः पाण्डुच्छायः परिदुर्बलः, तथापि दृशोः प्रियः (सः रामः) कथमपि 'सः' इति उन्नेतव्यः।

{४६} शब्दार्थ— अवस्था = दशा। नवकुलयस्निग्धैः = नवीन नीलकमल के समान नेत्र प्रीतिकारक। अङ्गैः = (हस्तपादादि) शरीर के अवयवों से। नयनोत्सवं = नेत्रानन्द को। ददत् = देता हुआ। सततम् = निरन्तर। नः = हमलोगों के लिये। स्वेच्छादृश्यः = हमारी इच्छा के अनुसार देखने

योग्य। शुचा = शोक से। विकलकरणः = विह्वल इन्द्रियों वाला। पाण्डुच्छायः = धूसर कान्तिवाला। परिदुर्बलः = अत्यन्त कृश। कथमपि = किसी प्रकार से अर्थात् बड़ी कठिनाई से। उन्नेतव्यः = पहिचाने जाने योग्य। दृशोः प्रियः = नेत्रों को प्यारा। प्रेक्षे = देखती हूँ। प्रियं = नेत्रों का प्यारा। प्रियं = प्यारे (राम) को। पश्यन्ती = देखती हुई। भूयाः = होओ।

अनुवाद— वासन्ती— हे सखी सीता, क्यों नहीं रामभद्र की दशा को देखती हो? नवीन कमल के समान मनोहर अङ्गों से नेत्रों के आनन्द को देते हुए निरन्तर ही हमारे लिये स्वेच्छा से देखनेयोग्य जो नये-नये ही (प्रतीत होते थे), (किन्तु अब वे ही राम) शोक से विह्वल इन्द्रियों वाले, धूसरकान्तिवाले, तथा अत्यन्त कृश हैं तथापि नेत्रों को आनन्द देनेवाले (राम) 'ये वेही हैं' इस प्रकार बड़ी कठिनता से पहचानने योग्य हैं। सीता— देखती हूँ सखी, देखती हूँ। तमसा— प्यारे को देखती हुई होओ।

टिप्पणी (Notes)

सखि सीते इत्या०— वासन्ती की सीता के प्रति यह उक्ति, उसको लक्ष्य करके ही कही गई है, देखकर नहीं, क्योंकि गङ्गा के वरदान से सीता वासन्ती के लिए उस समय अदृश्य थी।

नवोनव एव— तुल० “क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः”।

नवं नवमेव (पाठा०)— ऐसा पाठ होने पर 'नवं नवं' 'नयनोत्सवं' का विशेषण होगा और 'नये नये नेत्रानन्द को' (ददत्)— ऐसा अर्थ होगा। यह अर्थ भी अच्छा है किन्तु इसमें दूरान्वय दोष आ जाता है। 'नवो नवः' अथवा 'नवं नवं' यहाँ प्रकार (सादृश्य) में द्विवचन है ('प्रकारे गुणवचनस्य' पा० ८११२); अतः यहाँ 'कर्मधारयवदुत्तरेषु' (पा० ८१११) के अनुसार कर्मधारयवत् होने से 'नवनवः' (अथवा नवनव) ऐसा होना चाहिए था, किन्तु भवभूति ने इस नियम का उल्लंघन किया है; तुल०— 'मन्दं मन्दमासत्तियोगात्' (१, २७)।

कथमपि...प्रियः— प्रायः सभी टीकाकारों ने 'दृशोः प्रियः' को विधेय माना है, और 'तथापि स रामो दृशोः प्रियोऽस्ति' इस प्रकार का अर्थ किया है, परन्तु ऐसा करने से वासन्ती के पूर्ववाक्य (कथं न पश्यसि इत्या०) के साथ इसकी संगति नहीं बैठती, वासन्ती का तात्पर्य तो राम की करुणाजनक दशा का चित्रण करना है, न कि उन्हें 'दृशोः प्रियः' बतलाना। अतः वर्तमान व्याख्या में श्री शारदारञ्जन के द्वारा दिये हुए अर्थ का अनुसरण किया गया है। इस श्लोक में हारिणी छन्द, विभावना और उपमा अलंकार है।

{४७} सीता— हा देव एसो मए विना अहं वि एदेण विनेति सिविणेवि केण संभावितं आसि। या मुहुत्तमेतं जम्मन्तरादो विअ लब्धदंसणं बाहसलिलान्तरेषु पेक्खामि दाव वच्छलं अज्जउत्तं। (इति पश्यन्ती स्थिता)। (हा दैव एष मया विनाऽहमप्येतेन विनेति स्वप्नेऽपि केन संभावितमासीत्, तन्मुहूर्तमात्रं जन्मान्तरादिव लब्धदर्शनं वाष्पसलिलान्तरेषु प्रेक्षे तावद्वत्सलमार्यपुत्रम्)।

{४७} शब्दार्थ— दैव = विधाता। संभावितं = कल्पना की थी। मुहूर्तमात्रं = अल्पकालपर्यन्त। जन्मान्तराद् इव = मानो अन्य जन्म को प्राप्त करके। लब्धदर्शनं = पाया है दर्शन जिसका ऐसे।

वत्सलं = अनुरक्त। आर्यपुत्रं = भर्ता को। वाष्पसलिलान्तरेषु = आँसुओं के (गिरने तथा पुनः निकलने के) बीच के समयों में।

अनुवाद— सीता— हा विधाता, ये मेरे बिना (तथा) मैं भी इनके बिना (रहूँगी) ऐसा स्वप्न में भी किससे संभावना (उत्प्रेक्षा) की गई थी। अतः अन्य जन्म को प्राप्त करके मानो पाया है दर्शन जिनका ऐसे, स्नेहयुक्त आर्यपुत्र को अब मुहूर्तभर देख लूँ।

टिप्पणी (Notes)

जन्मान्तरात्— सीता ने अपने वर्तमान जन्म में राम से मिलने की आशा छोड़ दी थी, अकस्मात् राम के दर्शन पाकर उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानों उसका नया जन्म हुआ हो।

अन्तरेषु— यहाँ 'अन्तर' शब्द का अर्थ अवकाश (अर्थात् अन्तराल है), दे० अ० को०—“अन्तरम् अवकाशवधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये। छिद्रात्मीय विना बहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि च।”

{४८} तमसा— (परिष्वज्य सास्त्रम्)

विलुलितमतिपूरैर्वाष्पमानन्दशोक—

प्रभवमवसृजन्ती तृष्णयोत्तानदीर्घा।

स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते

धवलबहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः॥२३॥

अन्वयः— अतिपूरैः विलुलितम् आनन्दशोकप्रभवं वाष्पम् अवसृजन्ती, तृष्णया उत्तानदीर्घा, धवलबहलमुग्धा दुग्धकुल्येव ते दृष्टिः स्नेहनिष्यन्दिनी (सती) हृदयेशं स्नपयति।

{४८} शब्दार्थ— परिष्वज्य = आलिङ्गन करके। अतिपूरैः = बड़े प्रवाहों द्वारा। विलुलितं = विकीर्ण, फेंका हुआ। आनन्दशोकप्रभवं = आनन्द तथा शोक से उत्पन्न। वाष्पं = आँसू को। अवसृजन्ती = गिराती हुई। तृष्णया = दर्शनोत्कण्ठा से। उत्तानदीर्घा = फैलाई हुई तथा लम्बी। धवलबहला = अतिशयशुभ्र। मुग्धा = मनोहारिणी। दुग्धकुल्या इव = दूध की कृत्रिम छोटी नदी के सदृश। स्नेहनिष्यन्दिनी = अनुराग बरसाती हुई। ते दृष्टिः = तेरी दृष्टि। हृदयेशं = प्राणनाथ को। स्नपयति = स्नान कराती है।

अनुवाद— तमसा— (आलिङ्गन करके, आँसुओं सहित) बड़े प्रवाहों में बहाये हुए, आनन्द तथा शोक से उत्पन्न आँसू को गिराती हुई, दर्शनोत्कण्ठा से विस्फारित (फैलाई हुई) तथा दीर्घ, अतिशुभ्र तथा मनोहारिणी और दूध की कृत्रिम छोटी नदी के सदृश, तेरी दृष्टि प्रीति को बरसाती हुई हृदयेश्वर (प्राणनाथ) को स्नान करा रही है।

टिप्पणी (Notes)

आनन्द०— आनन्द और शोक से उत्पन्न होने वाले प्राणप्रिय राम के दर्शन के कारण

आनन्द और विरह व्यथा के कारण शोक था। अतः आँसू हर्ष शोक मिश्रित थे। अनन्दश्च शोकश्च
आनन्दशोकौ (द्वन्द्व) तौ प्रभवौ कारणं यस्य तम् (बहु०)।

प्रभवः— प्रभवति अस्मात् प्र + भू + अप्। ऋदोरप् (पा० ३।३।५७) से अप्।

इस श्लोक में 'इव' के द्वारा उपमा अलंकार है। सपयति में उत्प्रेक्षा सूचक इव लुप्त होने से प्रतीयमान उत्प्रेक्षा है। इसमें मालिनी छन्द है।

{४९} वासन्ती— ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्चुतः

स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तु वनानिलाः।

कलमविरलं रज्यत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः

पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः॥२४॥

अन्वयः— मधुश्चुतः तरवः पुष्पैः फलैश्च अर्घ्यं ददतु, स्फुटितकमलामोदप्रायाः वनानिलाः प्रवान्तु, रज्यत्कण्ठाः शकुन्तयः अविरलं कलं क्वणन्तु। अयं देवो रामः स्वयम् इदं वनं पुनः आगतः।

{४९} शब्दार्थ— अर्घ्य = पूजार्थ द्रव्य। मधुश्चुतः = मकरन्द चुआनेवाले (तरवः)। स्फुटितकमलामोदप्रायाः = (स्फुटित) खिले हुए (कमलामोद) कमल पुष्पों के सौरभ का (प्रायाः) बाहुल्य है जिनमें ऐसे। प्रवान्तु = प्रकृष्टरूप से बहें। वनानिलाः = वन के वायु। रज्यत्कण्ठाः = रागयुक्त कण्ठवाले। शकुन्तयः = पक्षी। अविरलं = निरन्तर। कलं = अव्यक्त मधुर। क्वणन्तु = कूजें। इदं वनं = इस वन में।

अनुवाद— वासन्ती— मकरन्द बरसानेवाले वृक्ष पुष्पो तथा फलों से अर्घ्य प्रदान करें, विकसित कमलों के सौरभ के बाहुल्य से युक्त वनवायु खूब बहें; रागयुक्त कण्ठवाले पक्षी निरन्तर अव्यक्त मधुर कूजें; (क्योंकि) पुनः इस वन में ये महाराज राम स्वयं आये हैं।

टिप्पणी (Notes)

रज्यत्कण्ठाः— रत्युत्कण्ठाः (पाठा०)— 'रत्या' रामविषयकप्रेम्णा उत्कण्ठाः उन्नतप्रीवाः। क्वणन्तु— 'क्वणन्तु गीतवाद्यभेदेन शब्दं कुर्वन्तु, अतएव कूजन्त्विति नोक्तम्' (वीरा०)। स्वयं— पहले वनवासकाल में राम दशरथ की आज्ञा से वन में आए थे, अब वे स्वतः आये हैं। इस श्लोक के भाव के लिए तुल० रघु० २।८।१३।

{५०} रामः— एहि सखि वासन्ति, नन्वितः स्थीयताम्।

वासन्ती— (उपविश्य सास्त्रम्) महाराज, अपि कुशलं कुमारलक्ष्मणस्य।

१. अविकलम्।

२. रत्युत्कण्ठाः।

करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशषै—

स्तरुशकुनिकुरङ्गान्मैथिली यानपुष्यत्।

भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि

र'रू

द्रव इव हृदयस्य प्रस्तरोद्भेदयोग्यः॥२५॥

अन्वयः— मैथिली यान् तरुशकुनिकुरङ्गान् करकमलवितीर्णैः अम्बुनीवारशषैः अपुष्यत्, तेषु, दृष्टेषु, प्रस्तरोद्भेदयोग्यः हृदयस्य द्रव इव मम कोऽपि विकारो भवति।

{५०} शब्दार्थ— ननु = अनुनयार्थक अव्यय। इतः = यहाँ, इस ओर। अश्रुतिम् अभिनीय = न सुनने का अभिनय करके। वितीर्णैः = दिए हुए। अम्बुनीवारशषैः = जल, नीवार (तृणधान्य) तथा नई उगी हुई घास से। शकुनि = पक्षी। कुरङ्ग = हरिण, मृग। अपुष्यत् = पालेपोसे थे। तेषु दृष्टेषु = उनके देखे जाने पर। प्रस्तरोद्भेदयोग्यः = पत्थर को विदारण करने में समर्थ। हृदयस्य द्रव इव = चित्त की आर्द्रता जैसा। मम = मेरा। कोऽपि = कोई अनिर्वचनीय। विकारः = चित्त का अन्यथाभाव। भवति = हो रहा है।

अनुवाद— राम— आओ सखी वासन्ती, यहाँ बैठिए। वासन्ती— (बैठकर आँसुओं सहित) महाराज, कुमार लक्ष्मण की कुशल तो है? राम— (न सुनने का अभिनय करके) मिथिलेशनन्दिनी सीता) ने जिन वृक्षों, पक्षियों तथा हरिणों को अपने कर कमल से दिये हुए जल, नीवार तथा नोमल तृणों से पाला पोसा, उनके देखे जाने पर, पाषाण को भी विदारण करने में समर्थ, हृदय की आर्द्रता जैसा मेरा कोई (अनिर्वचनीय) विकार (चित्त का अन्यथाभाव) उत्पन्न हो रहा है।

टिप्पणी (Notes)

अश्रुतिमभिनीय— यह निर्देश नट के लिए है। वासन्ती के कुशलप्रश्न के समय अपने गे विचारों में मग्न होने के कारण राम ने उस प्रश्न को नहीं सुना।

करकमल०— प्रथम दो चरणों में यथासंख्य अलंकार है— तरुशकुनिकुरङ्गान् यथासंख्यं अम्बुनीवारशषैः अपुष्यत् तरु जैसे कदम्बवृक्ष (श्लो० २०), शकुनि— जैसे मयूर (श्लो० १८), कुरङ्ग— (दे० श्लो० २१)।

द्रव इव.....योग्यः— सीता द्वारा पोषित तरु इत्यादि को देखकर राम के हृदय में एक अनिर्वचनीय विकार का उदय होता है, जो उनके हृदय को द्रवीभूत कर देता है, वह विकार गानों हृदय के द्रव के रूप में उनके संपूर्ण शरीर में व्याप्त हो गया है। राम का वह विकार प्रस्तरोद्भेदयोग्य (पाषाण को भी विदारण करने में समर्थ) है। हृदयस्य द्रव इव, प्रस्तरोद्भेदयोग्यश्च मम कोऽपि विकारो भवति। 'द्रव्यः' का अन्वय 'प्रस्तरोद्भेदयोग्यः' के साथ करनेपर विग्रह इस प्रकार होगा— प्रस्तरस्य उद्भेदः (द्रवः), तेन योग्या (तुलना) अस्यास्तीति, किन्तु इस विग्रह में उचितता है।

प्रसन्नवोद्रेदयोग्यः (पाठा०)— प्रसरणोत्पत्तियोग्यः (वीररा०)।

{५१} वासन्ती— महाराज, ननु पृच्छाम्यपि कुशलं कुमारलक्ष्मणस्येति।

रामः— (आत्मगतम्) अये महाराजेति निष्प्राणयमामन्त्रणपदं सौमित्रिमात्रे च वाष्पस्खलिताक्षरः कुशलप्रश्नः। तथा मन्ये विदितसीतावृत्तान्तेयमिति। (प्रकाशम्) आं कुशलं कुमारस्य।

वासन्ती— (रुदती) अयि देव, किं परं दारुणः खल्वसि?

सीता— सहि वासन्दि, किं तुमं एव्वादिणी होसि। पिआरुहो क्खु सव्वस्स अज्जत्तो विसेसदो मह पिअसहीए। (सखि वासन्ति, किं त्वमेववादिनी भवसि? प्रियार्हः खलु सर्वस्यार्यपुत्रो विशेषतो मम प्रियसख्याः।)

{५१} शब्दार्थ— ननु = अनुनयसूचक। निष्प्राणयम् = स्नेहशून्य। आमन्त्रण = संबोधन। पदं = शब्द। सौमित्रिमात्रे = केवल लक्ष्मण के विषय में। वाष्पस्खलिताक्षरः = वाष्प (अश्रु, अथवा कण्ठगत ऊष्मा) से स्खलित (विशीर्ण अर्थात् गद्गद) अक्षर (वर्ण) हैं जिसमें ऐसा। आम् = हाँ, स्वीकार; अथवा अवधारण सूचक अव्यय। रुदती = रोती हुई। परं = अत्यन्त। दारुण = कठोर। एववादिनी = ऐसा बोलनेवाली। प्रियार्हः = प्रियवचनों के योग्य।

अनुवाद— वासन्ती— महाराज, मैं पूछती हूँ कुमार लक्ष्मण की कुशल तो है? राम— (स्वगत) अरे, 'महाराज' यह स्नेहशून्य संबोधन शब्द है, और केवल लक्ष्मण के विषय में आँसू (अथवा कण्ठोष्मा) से गद्गद अक्षरमाला वृणलप्रश्न है। अतः मैं समझता हूँ कि विदित है सीता का वृत्तान्त जिसको ऐसी, यह है। (प्रकाशः) हाँ, कुमार की कुशल है। वासन्ती— (रोती हुई) अयि महाराज, क्यों आप अतिशय कठोर हैं? सीता— सखी वासन्ती, क्यों तुम ऐसा बोलनेवाली होती हो? आर्यपुत्र सबके और विशेषकर मेरी प्रियसखी के प्रिय (वचनों) के योग्य हैं।

टिप्पणी (Notes)

महाराजेति— राम तथा वासन्ती के बीच घनिष्ठ सखीभाव था, फिर भी वासन्ती ने राम को 'महाराज' इस रूखे शब्द से संबोधन किया, जिससे राम के प्रति उसके हृदय की उदासीनता प्रकट हो रही थी।

सौमित्रिमात्रे— सीता वासन्ती की अत्यन्त प्रियसखी थी किन्तु उसने केवल लक्ष्मण की कुशल पूछी सीता की नहीं, इसी से राम मन में सोचते हैं संभवतः सीता परित्याग का वृत्तान्त यह जान चुकी है।

{५२} वासन्ती— त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं

त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गो।

इत्यादिभिः प्रियशतैरनुध्य मुग्धां

तामेव शान्तमथवा किमिहोत्तरेण॥२६॥

अन्वयः—त्वं जीवितं, त्वं में द्वितीयं हृगयम् असि, त्वं नयनयोः कौमुदी, त्वं अङ्गे अमृतम् इत्यादिभिः प्रियशतैः मुग्धाम् अनुरुध्य तामेव.....अथवा शान्तं इह उत्तरेण किम्?

{५२} शब्दार्थ— जीवितं = जीवन, प्राण। कौमुदी = ज्योत्स्ना, चन्द्रिका। अमृतं = सुधा। अङ्ग में। प्रियशतैः = सैकड़ों प्रियवचनों (चाटु शब्दों) से। मुग्धां = सरलहृदया को। अनुरुध्य = वश में करके, उसका चित्तरञ्जन करके। तामेव = उसी को (धोखा दिया, अथवा निर्वासित किया)। शान्तम् = बस, और कुछ भी नहीं कहना चाहिए, रहने दीजिये। इह = इस में, सीता के निर्वासन के विषय में। उत्तरेण = अगले (वाक्य) से। किम् = क्या साध्य होगा।

अनुवाद— वासन्ती— तू जीवन है, तू मेरा दूसरा हृदय है, तू नेत्रों में ज्योत्स्ना है, तू गात्र में अमृत है इत्यादि सैकड़ों चाटुवचनों से सरलहृदया को वश में करके, उसी को.....अथवा बस, इस (विषय) में आगे कहने से क्या (लाभ)। (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)।

टिप्पणी (Notes)

शतैः— यहाँ यह शब्द अनन्तसंख्यावाचक है, “शतं सहस्रमयुतं सर्वमानन्त्यवाचकम्”।

शान्तं— वासन्ती के लिये सीता निर्वासन का उल्लेख असह्य हो उठता है, अतः वह वाक्य को पूरा किए बिना बीच में ही रुक जाती है।

(विशेष)— कवि ने वासन्ती के द्वारा राम को उपालम्भ दिलवाया है सीता के द्वारा नहीं, जो उसके नाटकरचना—कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह श्लोक तथा इससे आगे के कुछ श्लोक वैदर्भी रीति में लिखे गये हैं, जिनमें लम्बे लम्बे समासों का अभाव होता है। कोमल भावों की व्यञ्जना के लिए भवभूति ने इसी वैदर्भी रीति का अवलम्बन किया है। इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द तथा रूपक, उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति अलंकार हैं।

{५३} तमसा— स्थाने वाक्यनिवृत्तिर्मोहश्च।

रामः— सखि, समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

वासन्ती— (समाश्वस्य) तत्किमिदमकार्यमनुष्ठितं देवेन?

सीता— सहि वासन्दि, विरम विरम। (सखि वासन्ति, विरम विरम।)

रामः— लोको न मृष्यताति।

वासन्ती— कस्य हेतोः?

रामः— स एव जानाति किमपि।

तमसा— चिरादुपालम्भः।

{५३} शब्दार्थ— स्थाने = युक्त, ठीक। वाक्यनिवृत्तिः = वाक्य का विराम। मोहः = मूर्च्छा। अकार्य = अनुचित कार्य। अनुष्ठितं = किया गया है। विरम = (ऐसे कठोर वाक्य के कहने से) चुप रहो। न मृष्यति = नहीं सहन करता। किमपि = कुछ, अनिर्वचनीय, मुझ जैसों के द्वारा अज्ञात (हेतु)। चिरात् = बहुत काल के पश्चात्। उपालम्भः = उलाहना, तिरस्कार।

अनुवाद— तमसा— वाणी का विराम तथा मूर्च्छा उचित ही है।

राम— सखी, होश में आओ, होश में आओ। वासन्ती— (होश में आकर) तो कैसे यह अनुचित कार्य महाराज द्वारा किया गया? सीता— सखी वासन्ती, चुप रह, चुप रह। राम— लोग सहन नहीं करते, इसलिए।

वासन्ती— किस कारण से? राम— जो कुछ भी कारण है, वह (लोक) ही जानता है। तमसा— बहुत काल के पश्चात् (लोक को) उलाहना दिया गया है।

{५४} वासन्ती— अयि कठोर यशः किल ते प्रियं

किमयशो ननु घोरमतः परम्।

किमभवद्विपिने हरिणीदृशः

कथय नाथ कथं बत मन्यसे?॥२७॥

अन्वयः— अयि कठोर, ते यशः प्रियं किल, ननु अतः परं घोरम् अयशः किम् (स्यात्)। विपिने हरिणीदृशः किम् अभवत्, हे नाथ कथय कथं बत मन्यसे।

{५४} शब्दार्थ— कठोर = निष्ठुर। किल = प्रसिद्धिसूचक अव्यय। अयशः = अपयश। अतः = इससे। परं = अधिक। घोरं = दारुण। विपिने = वन में। हरिणीदृशः = हरिणी के (नेत्रों के) समान नेत्रवाली का। किम् अभवत् = क्या हुआ। कथय कहिए। कथं मन्यसे = आप क्या समझते हैं। बत = खेदसूचक अव्यय।

अनुवाद— वासन्ती— हे निष्ठुर, तुझे यश प्यारा है ऐसी प्रसिद्धि है, परन्तु इससे अधिक दारुण अपयश क्या होगा? मृगी के समान नेत्रवाली का वन में क्या हुआ होगा, हे नाथ! बताइये तो सही, आप क्या मानते हैं?

टिप्पणी (Notes)

अयि— यह अनुनय अथवा आमन्त्रण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है “अननुये तु—अयि” अ०को०। वत— यह अव्यय यहाँ खेदसूचक है, “बत आमन्त्रणखेदयोः” (हेम०)। यह श्लोक भी वैदर्भी रीति में लिखा गया है। इस श्लोक में द्रुतविलम्बितं छन्द तथा लुप्तोपमा अलंकार है।

{५५} सीता— तुम एव सहि वासन्दि, दारुणा कठोरा अ जा एव्वं अज्जत्तं पलितं पदीवेसि। (त्वमेव सखि वासन्ति, दारुणा कठोरा च यैवमार्यपुत्रं प्रदीप्तं प्रदीपयसि।)

तमसा— प्रणय एवं व्याहरति शोकश्च।

उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक
की व्याख्या

रामः— सखि, किमत्र मन्तव्यम्?

त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टे—

स्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः।

ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा

क्रव्यादिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता॥२८॥

अन्वयः— त्रस्तैकहायनविलोलकुरङ्गदृष्टेः, परिस्फुरितगर्भभरालसायाः तस्याः ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा अङ्गलतिका नियतं क्रव्यादिः विलुप्ता।

[५५] शब्दार्थ— दारुणा = भीषण। कठोरा = निर्दय। प्रदीप्तं = शोकसंतप्त को। प्रदीपयसि = संतप्त कर रही हो। प्रणयः = स्नेह, अनुराग। व्याहरति = बोलता है, कहता है। त्रस्तैक....दृष्टेः = (त्रस्त) डरे हुए (एकहायन) एक वर्ष की अवस्था वाले (कुरङ्ग) हरिण की जैसी (विलोलदृष्टेः) चञ्चलदृष्टिवाली की। परिस्फुरित = स्पन्दित, फड़कता हुआ। गर्भः = गर्भस्थ शिशु। भर = भार। अलसा = मन्दगतिवाली। ज्योत्स्नामयीव = मानों ज्योत्स्ना से बनी हुई हो ऐसी। मृदुबालमृणालकल्पा = कोमल नये उगे हुए कमलनाल के समान। अङ्गलतिका = देहलता। नियतं = निश्चय ही। क्रव्यादिः = राक्षसों से (क्रव्य = कच्चा मांस खाने, अद् = खानेवाला)। विलुप्ता = नाश को प्राप्त करा दी गई, खा डाली गई।

अनुवाद— सीता— सखी वासन्ती, तू ही भीषणहृदया तथा निष्ठुर है, जो संतप्त आर्यपुत्र को इस प्रकार से संताप दे रही है। तमसा— स्नेह तथा शोक ऐसा कह रहा है। राम— सखी, इसमें मानना ही क्या है? डरे हुए एकवर्ष की अवस्थावाले हरिण की जैसी चञ्चल दृष्टिवाली, स्पन्दित गर्भ के बोझ से मथुर गतिवाली, उस (सीता) की मानो ज्योत्स्ना से बनी हुई हो ऐसी, कोमल तथा नये उगे हुए कमलनाल के समान देहलता राक्षसों से निश्चय ही लोप कर दी गई होगी (खा डाली गई होगी)।

टिप्पणी (Notes)

त्रस्त, एकहायन— ये दोनों पद कुरङ्गदृष्टि की अतितरलता को सूचित करते हैं, तुल० मालती० ४-८।

मृदुबालमृणाल०— 'बालमृणाल' शब्द के साथ 'मृदु' शब्द व्यर्थ है, 'मृदु' शब्द का अन्वय 'अङ्गलतिका' के साथ करने पर यह दोष नहीं रहता— मृदुश्च बालमृणालकल्पा च।

क्रव्यादिः— क्रव्यम् (आममांसम्) अति "क्रव्याद्रक्षसि पुंसि स्यान्मांसाशीन्यन्यलिङ्गकः" मे०को०। अकारान्त 'क्रव्याद' शब्द भी होता है, इसमें अण् प्रत्यय है, दे०पा० ३।२।६९ पर काशि०— "कथं तर्हि क्रव्यादःकृतविकृतशब्दे उपपदेऽण्, तस्य च पृषोदरादित्वात् क्रव्यभावः।

कृत्तविकृतपक्वमांसभक्षः क्रव्याद् उच्यते, आममांसभक्षः क्रव्यादिति”। यहाँ वसन्ततिलका छन्द एवं लुप्तोपमा अलंकार है।

{५६} सीता— अज्जत्त, धरामि एसा धरामि। (आर्यपुत्र, धिये एसा धिये।)

रामः— हा प्रिये जानकि, क्वसि।

सीता— हद्दी! हद्दी! अण्णो विअ अज्जत्तो पमुक्कण्ठं रोइदि। (हा धिक्! हा धिक्! अन्य इवार्यपुत्रः प्रमुक्त कण्ठं रोदिति।)

तमसा— वत्से, सांप्रतिमेवैतत्। कर्तव्यानि खलु दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि।

{५६} शब्दार्थ— धिये = जीती हूँ। क्वसि = तू कहाँ है? अन्यः इव = साधारण जन के समान। प्रमुक्तकण्ठं = गला फाड़कर। सांप्रतिकम् = युक्त, उचित। दुःखितैः = दुःखी जनों द्वारा। दुःखनिर्वापणानि = दुःख के उपशमन। कर्तव्यानि = करने चाहिए।

अनुवाद— सीता— आर्यपुत्र, जीती हूँ, यह मैं जीती हूँ। राम— हा प्यारी जानकी, तुम कहाँ हो। सीता— हा धिक्! हा धिक्! साधारण जनके समान आर्यपुत्र खुले कण्ठ से (उच्च स्वर से) रोते हैं। तमसा— बच्ची, यह उचित ही है। दुःखियों द्वारा दुःख के उपशमन करने चाहिए।

{५७} तमसा— पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।

शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते॥२९॥

अन्वयः— तटाकस्य पूरोत्पीडे परीवाहः प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैः एव धार्यते

{५७} शब्दार्थ— तटाकस्य = सरोवर (तालाब) के। पूरोत्पीडे = जलप्रवाह का दबाव हाने पर। परीवाहः = नालीद्वारा जलनिःसारण। प्रतिक्रिया = प्रतीकार, तटरक्षा का उपाय। शोकक्षोभे = शोक द्वारा क्षोभ (अर्थात् विलोडन, चाञ्चल्य) होने पर। प्रलापैः एव = रोदन इत्यादि से ही। धार्यते = धारण (रक्षित) किया जाता है।

अनुवाद— तमसा— तालाब के जलप्रवाह का दबाव (अथवा आधिक्य) होनेपर नाली द्वारा जलनिःसारण ही प्रतीकार (तटरक्षा का उपाय) है। शोक के कारण क्षोभ (अस्थैर्य) होनेपर हृदय विलापों द्वारा ही धारण किया जाता है।

टिप्पणी (Notes)

पूरोत्पीडे— ‘पूर’ शब्द का अर्थ है ‘जलवृद्धि’ (“पूरः स्यादम्भसां वृद्धौ” हेम०।), तथ उत्पीड शब्द का अर्थ है आधिक्य अथवा संबाध (दबाव)।

तटाकस्य— “पद्माकरस्तडागोऽस्त्री कासारः सरसी सरः” (अ०को०)। “तडागः— √त आधाते, तडाक इत्येके, तटाकमित्यन्ते।” (क्षी०स्वा०)।

परीवाहः— परिवाह्यते अनेनेति, जिसके द्वारा जल बाहर निकाला जाय, पनाला आदि करणे घञ्। अथवा परिवाह्यते इति परीवाहः प्रणाल्यादिना जलनिःसारणम्, भावे घञ्। इस श्लोक

में बिम्बप्रतिबिम्बभाव होने के कारण दृष्टान्त अलंकार है।

{५८} तमसा— विशेषतो रामभद्रस्य यस्य बहुतरप्रकारकष्टो जीवलोकः।

इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा

प्रियाशोको जीवं कुसुममिव घर्मो ग्लपयति।

स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोऽप्यसुलभ—

स्तदद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम्॥३०॥

अन्वयः— अभियुक्तेन मनसा इदं विश्वं विधिवत् पाल्यम्, प्रियाशोकः घर्मः कुसुममिव जीवं ग्लपयति, स्वयं त्यागं कृत्वा विलपनविनोदः अपि असुलभः। तत् अद्यापि उच्छ्वासः भवति, ननु रुदितं लाभो हि।

{५८} शब्दार्थ— बहुतरप्रकारकष्टः = बहुत प्रकार के क्लेशों से युक्त। जीवलोकः = संसार अर्थात् सांसारिक जीवन। विश्वं = अखिल जगत्। अभियुक्तेन मनसा = सावधान चित्त से। प्रियाशोकः = प्रिया (सीता) के वियोग से उत्पन्न हुआ दुःख। जीवं = जीवन को। ग्लपयति = मुरझा देता है। घर्मः = आतप, धूप। विलपनविनोदः = विलापद्वारा अथवा विलापरूप, विनोद (शोकापनयन)। असुलभः = दुर्लभ। तद् = तदपि। अद्यापि = आज भी। उच्छ्वासः = साँस लेना, प्राणधारण। ननु = निश्चय ही। रुदितं = रोदन, रोना।

अनुवाद— तमसा— विशेषकर रामभद्र का, जिसका संसार (अर्थात् सांसारिक जीवन) बहुत प्रकार के क्लेशों से युक्त है। सावधान चित्त से यह जगत् (शासन) विधि के अनुसार पालना पड़ता है, आतप जैसे पुष्पों को उसीप्रकार प्रिया (सीता) का शोक (उसके) जीवन का मुरझा देता है। (तुम्हारा) स्वेच्छा से त्याग करके विलापां द्वारा विनोद (शोक का अपनोदन) भी दुर्लभ है। तथापि अब भी प्राणधारण होता है, निश्चय ही रोदन लाभकर है।

टिप्पणी (Notes)

विशेषतो रामभद्रस्य— इसका अन्वय 'सांप्रतिकम्' के साथ है।

जीवलोकः— जीवनां लोकः (राम का) संसार, अर्थात् संसार में राम का जीवन। अगले श्लोक में राम के जीवन का कष्टत्व प्रतिपादित किया गया है।

पाल्यं— तुल० “क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम्।”

अभियुक्तेनमनसा— तत्पर चित्त से एकक्षण के लिये भी राम अपने प्रजापालन रूप कर्तव्य में असावधान नहीं रह सकते थे। तलु० शकु० ५।६।

ननु लाभो हि रुदितम्— राम का हृदय रोने से हल्का हो जाय, यह वास्तव में बड़ा लाभ था, क्योंकि इससे वे आगे जीवन धारण करने में समर्थ हो सकेंगे।

यहाँ शिखरिणी छन्द एवं तुल्योगिता अलंकार है।

{५९} रामः— कष्टं भोः कष्टम्।

दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते।

वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।

ज्वलयति तनून्मन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्

प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्॥३१॥

सीता— एव्वं ण्णेदं। (एवं न्विदम्)

अन्वयः— गाढोद्वेगं हृदयं दलति, द्विधा तु न भिद्यते; विकलः कायः मोहं वहति, चेतनां न मुञ्चति; अन्तर्दाहः तनून् ज्वलयति, भस्मसात् न करोति; मर्मच्छेदी विधिः प्रहरति, जीवितं न कृन्तति।

{५९} शब्दार्थ— गाढोद्वेगं = गाढ़ी व्यथावाला। दलति = फटता है। द्विधा न भिद्यते = दो टुकड़ों में विभक्त नहीं हो जाता है। विकल = शोक से विह्वल (विवश)। कायः = शरीर। मोहं = मूर्च्छा को। वहति = वहन करता है। चेतनां = चैतन्य को, संज्ञा को। न मुञ्चति = नहीं छोड़ता है। अन्तर्दाहः = हृदय का संताप। तनून् = शरीर को। ज्वलयति = जलाता है। भस्मसात् न करोति = पूर्णतया भस्मीभूत नहीं करता है। विधिः = विधाता, दैव। मर्मच्छेदी = मर्मस्थलों का छेदन करनेवाला (होता हुआ)। प्रहरति = प्रहार करता है। जीवितं = जीवन को। न कृन्तति = नहीं काट डालता

अनुवाद— राम— दुःख की बात है, अरे, दुःख की बात है! गाढ़ी व्यथावाला हृदय फटता है, किन्तु दो खण्डों में विभक्त नहीं होता; (शोक से) विह्वल शरीर मूर्च्छा को धारण करता है, (किन्तु) चेतना (संज्ञा) को नहीं छोड़ता; अन्तस्ताप शरीर को जला रहा है, (किन्तु) पूर्णरूप से भस्मीभूत नहीं करता; मर्म को बाँधनेवाला दैव प्रहार करता है, (किन्तु) जीवन को नहीं काट डालता।

सीता— यह बात ऐसी ही है।

टिप्पणी (Notes)

दलति — यहाँ यह धातु अकर्मक है; तुल० “अपि दलति वज्रस्य हृदयम्” (१-२८)

गाढोद्वेगं— इसके स्थान पर कहीं कहीं ‘गाढोद्वेगः’ पाठ भी मिलता है, किन्तु ऐसा पाठ होने पर ‘भिद्यते’ क्रिया के लिए पुनः एक ‘हृदयं’ पद लाना होगा।

शोकोद्वेगात् (पाठा०)— शोकजनित उद्वेग (व्यथा से), अथवा शोक के आवेग से। इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार है— ‘यदलति तत्र भिद्यते’ ‘दलति’ का लाक्षणिक अर्थ (दलः = यादृशी व्यथा स्यात् तादृशी व्यथा हृदि वर्तते) करने पर विरोध का परिहार होता है। यह श्लोक मालतीमाधव में भी आया है। यहाँ शिखरिणी छन्द एवं विशेषोक्ति अलंकार है।

{६०} रामः— हे भवन्तः पौरजानपदाः,

उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक
की व्याख्या

न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं तत—

स्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता।

चिरपरिचितास्ते ते भावः परिद्रवयन्ति मा—

मिदमशरणैरद्यास्माभिः प्रसीदत रुद्यते॥३२॥

अन्वय— देव्याः गृहे स्थानं भवतां न अभिमतं किल, ततः शून्ये वने तृणमिव त्यक्ता, न चापि अनुशोचिता। चिरपरिचिताः ते ते भावाः मां परिद्रवयन्ति, (अतः) अशरणैः अस्माभिः इदं रुद्यते, प्रसीदत।

{६०} शब्दार्थ— पौरजानपदाः = हे पुरवासियों तथा जनपदवासियों। देव्याः = देवी (सीता) का। गृहे = घर में। स्थानं = अवस्थान, वास। भवतां = आपलोगों का। अभिमतम् = अभीष्ट, अनुमोदित। किल = ऐसा सुना है। ततः = इसलिए। न अनुशोचिताः = उस (सीता) को लक्ष्य करके पश्चात्ताप भी नहीं किया गया। चिरपरिचिताः = दीर्घकाल तक अनुभूत। ते ते भावाः = वे वे (अर्थात् सभी) पदार्थ। परिद्रवयन्ति = द्रवीभूत (सर्वथा व्याकुल) कर रहे हैं। इदम् = इस प्रकार। अशरणैः अस्माभिः = हम निरुपायों से। रुद्यते = रोया जा रहा है। प्रसीदत = (आप लोग) प्रसन्न होइए।

अनुवाद— राम— हे आप पुरवासियों तथा जनपदवासियों, देवी का घर में रहना आपलोगों का अभीष्ट (अनुमोदित) नहीं है, ऐसा सुना है। अतः निर्जन वन में तिनके के समान (वह) त्याग दी गई और उसके उद्देश्य से अनुताप भी नहीं किया गया। (पहिले) दीर्घकाल तक अनुभूत वे पदार्थ (आज देखे जानेपर) मुझे द्रवीभूत (व्याकुल) बना रहे हैं। हम निरुपायों से आज इस प्रकार रोया जा रहा है (अतः) प्रसन्न होइये।

टिप्पणी (Notes)

तृणमिव— तुल० १.१२। ते ते भावाः, नाना प्रकार के पूर्वानुभूत पदार्थ तथा वृत्तान्त। अद्याप्येवम् (पाठा०)— अद्यापि प्रसीदत, अब तो (आपलोगों के मन की हो गई अतः) प्रसन्न होइये। इस श्लोक में उपमा एवं विशेषोक्ति अलंकार एवं हरिणी छन्द है।

{६१} वासन्ती— (स्वगतम्) अतिगम्भीरभापूरणं मन्युसंभारस्य। (प्रकाशम्) देव, अतिक्रान्ते धैर्यमवलम्ब्यताम्।

रामः— सखि, किमुच्यते धैर्यमिति।

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः।

प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति॥३३॥

अन्वय— देव्या शून्यस्य जगतः द्वादशः परिवत्सरः। नाम अपि प्रनष्टम् इव, रामः च न जीवति (इति)न।

[६१] शब्दार्थ— अतिगम्भीर = अत्यन्त गूढ़। आपूरण = परिपूर्णता। मन्यु = शोक। संभार = संघात, राशि। अतिक्रान्ते = बीते हुए के विषय में। देव्या = देवी से। शून्यस्य = विरहित। जगतः = जगत का। द्वादशः = बारहवाँ। परिवत्सरः = वर्ष। नामपि = नाम भी। प्रनष्टम् इव = लुप्त सा हो गया है। रामो न जीवति = राम नहीं जीता है। (इति) न = यह बात नहीं है।

अनुवाद— वासन्ती— (स्वगत) शोकराशि का अत्यन्त गूढ़ परिपूर्णत्व है। (प्रकाश) महाराज, अतीत के विषय में धैर्य का आश्रय लीजिये। राम— सखी, 'धैर्य' क्या ऐसा कहती हो? देवी से विरहित जगत् का (यह) बारहवाँ वर्ष है। (उसका) नाम भी मानों लुप्त हो गया है; और 'राम नहीं जी रहा है' ऐसी बात नहीं है।

टिप्पणी (Notes)

आपूरण— चारों ओर से भरना, परिपूरण, इस शब्द से राम के शोक का अत्याधिक्य सूचित होता है।

मन्युसंभारस्य— शोकसागरस्य (पाठा०)— यह पाठ 'आपूरण' के साथ अधिक संगत है। अवगूरणं (शोक सागरस्य) (पाठा०)— यह एक अप्रसिद्ध शब्द है, इसका अर्थ है 'आवर्त' (भँवर) अवगूर्यते अधोगच्छति अस्मिन्; अव— √ गूरू (हिंसागत्योः) ४ आ० + ल्युट् (अधिकरणे)।

प्रनष्टमिव— सीता की केवल मृत्यु ही नहीं हो गई है, किन्तु अब (इतना अधिक काल बीतने के कारण) उसका नाम भी लोगों ने भुला दिया है।

न—न— दो नकार संभावित निषेध की निवृत्तिकर के प्रकृत अर्थ को छद्म करते हैं— "द्वौ नजौ प्रकृतार्थं द्रढयतः" "संभाव्यनिषेधनिवर्तने द्वौ प्रतिषेधौ" (वामन का०सू०)।

[६२] सीता— मोहिदमिह एदेहिं अज्जउत्तववणेहि। (मोहितास्म्येतैरार्य पुत्रवचनैः।)

तमसा— एवमेव वत्से।

नैताः प्रियतमाः वाचः स्नेहार्द्राः शोकदारुणाः।

एतास्ता मधुनो धाराः श्रोतन्ति सविषास्त्वयि॥३४॥

अन्वय— स्नेहार्द्राः शोकदारुणाः एताः वाचः प्रियतमा न। ताः एताः सविषाः मधुनः धाराः त्वयि श्रोतन्ति।

[६२] शब्दार्थ— मोहितास्मि = विह्वल हो गई हूँ। स्नेहार्द्राः = प्रेम से सिक्त। शोकादारुणाः = शोक से निष्ठुर। एता वाचः = (राम के) ये वचन। प्रियतमाः = निरतिशय प्रीति को उत्पन्न करनेवाली। ताः = वे (शोकदारुण)। एताः = ये। वाचः = वचन। सविषाः = विष मिली हुई। मधुनः धारा = पुष्परस (शहद) की धाराएँ। त्वयि = तुझपर। श्रोतन्ति = चू रही (बरस रही) हैं।

अनुवाद— सीता— आर्यपुत्र के इन वचनों से मैं विह्वल हो गई हूँ। तमसा— यही बात है, बच्ची। प्रेम से सिक्त तथा शोक से निष्ठुर ये वाणी निरतिशय प्रीतिजनक नहीं हैं। वे (इस प्रकार

की) ये (राम की) वाणियाँ विषमिश्रित क्षौद्रधारा के (रूप में) तुझपर चू रही हैं।

उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक
की व्याख्या

टिप्पणी (Notes)

इस श्लोक में अपह्नुति अलंकार है। मम्मट ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है—
“प्राकृतं यन्निषिद्धान्यत्साध्यते सा अपह्नुतिः”। तथा अनुष्टुप छन्द है।

{६३} रामः — अयि वासन्ति, मया खलु

यथा तिरश्चीनमलातशल्यं

प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दंशः।

तथैवतीव्रो हृदि शोकशङ्कु—

मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः॥३५॥

अन्वय— अन्तः प्रत्युप्तं तिरश्चीनम् अलातशल्यं सविषः दंशः च यथा, तथैव तीव्रः हृदि
शोकशङ्कुः मर्माणि कृन्तन् अपि किं न सोढः।

{६३} शब्दार्थ— तिरश्चीनं = तिर्छा। अलातशल्यं = अङ्गारमय लोह कील। अन्तः = भीतर,
हृदय में। प्रत्युप्तं = गड़ा हुआ, बिंधा हुआ। दंशः = दाँत से काटना, दन्तप्रवेशः। शङ्कु = कील।
कृन्तन् = छेदन करता हुआ।

अनुवाद— राम— अरी वासन्ती, मुझ से (हृदय के) भीतर गड़ा हुआ तिर्छा अङ्गारमयलोहकील,
तथा विषैला दंश जैसे (तीव्र होता है), उसी प्रकार तीव्र हृदय में (गड़ा हुआ) शोकरूपी कील
मर्मस्थानों को छेदन करता हुआ भी क्या नहीं सहा गया ?।

व्याकरण— तिरश्चीनं — तिर्यगेव तिरश्चीनं, स्वार्थे खः (पा० ५।४।८) प्रत्युप्त— प्रति—
वप् + क्त (कर्मणि), संप्रसारण। कृन्तन्— √ कृत् (छेदने) ६ प०+शतृ। सोढः— √ सह + क्त
(कर्मणि)। इस श्लोक में उपेन्द्रवज्रा छन्द है।

{६४} सीता— एवमिह मन्दभाङ्गी पुणोपि आआसआरिणी अज्जउत्तस्स। (एवमस्मि मन्दभागिनी
पुनरप्यायासकारिण्यार्यपुत्रस्य।)

रामः— एवमतिनिष्कस्पस्तम्भितान्तः करणस्यापि मम संस्तुततत्तत्प्रियवस्तु— दर्शनादुद्गमोऽयमावेगः।
तथाहि—

‘लोलोल्लोलक्षुभितकरुणो’ज्जम्भणस्तम्भनार्थं

यो यो यत्नः कथमपि मयाऽऽधीयते तं तमन्तः।

भित्त्वा भित्त्वा प्रसरति बलात्कोऽपि चेतोविकार—

स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः॥३६॥

१. वेलो० हेलो०।

२. करणो०

अन्वयः— लोलोलोलोलुभितकरुणोज्जृम्भणार्थं मया यो यो यत्नः कथमपि आधीयते तं तं कोऽपि चेतोविकारः तोयस्य अप्रतिहतरयः ओषः सैकतं सेतुम् इव अन्तः बलात् भित्वा भित्वा प्रसरति।

{६४} शब्दार्थ— आयास = क्लेश। स्तम्भित = स्थिर किया हुआ। संस्तुत = परिचित। उद्दाम = उच्छृङ्खल। आवेगः = चित्तविकार, अर्थात् शोक का वेग। उल्लोल = अति चञ्चल अथवा तरङ्ग (उर्मि)। क्षुभित = क्षोभ को प्राप्त, आलोडित। करुण = करुणरस, (लक्षणा से) शोक। उज्जृम्भण = उद्रेक, अतिवृद्धि। अन्तः = बीच बीच में। चेतोविकारः = हृदय का आवेग। अप्रतिहतरयः = अनिवारित वेग वाला। ओषः = प्रवाह, राशि। सैकतं = सिकता (बालू) से बना हुआ।

अनुवाद— सीता— इस प्रकार मैं मन्दभागिनी फिर भी आर्यपुत्र की क्लेशकारिणी हूँ। राम— इस प्रकार मुझे अतिनिश्चल रूप से स्थिर किये हुये अन्तःकरणवाले का भी, उन पूर्वपरिचित प्रिय वस्तुओं को देखने के कारण यह दुर्दमनीय चित्तविकार है जैसा कि चञ्चल तरङ्गों के समान क्षोभ को प्राप्त शोक के उद्रेक को रोकने के लिए मुझसे किसी प्रकार का जो-जो यत्न किया जाता है, उस-उसको बीच में ही बलपूर्वक भेदन करके अनिर्वचनीय हृदयावेग इस प्रकार फैलता है, जैसे कि अनिवारितवेगवाला जल का प्रवाह बालुकामय सेतु को (तोड़कर फैलता है)।

व्याकरण— संस्तुत— सम्— √स्तु + क्त। उज्जृम्भण— उद्— √जृम्भ १ आ० + ल्युट्। आधीयते— आ— √धा—कर्मणि लट्। भित्वा— √भिद् + क्त्वा। प्रसरति— प्र— √सृ—लट्। सैकतं— सिकतानाम् अयम्, 'सिकताशर्कराभ्यां च' (पा० ५।२।१०४) इति अण्। 'सिकता' शब्द बहुवचनान्त होता है।

टिप्पणी (Notes)

अतिनिष्कम्पस्तम्भित०— अतिनिष्कम्पं यथा तथा स्तम्भितं। परन्तु 'अतिनिष्कम्पं च तत् स्तम्भितं च' ऐसा विग्रह उचित नहीं होगा, यदि अन्तःकरण अतिनिष्कम्प है तो उसको 'स्तम्भित' करने की क्या आवश्यकता है।

लोललोच्युभित०— इसका विग्रह इस प्रकार भी किया जा सकता है 'लोलश्चासौ उल्लोलश्च' अथवा लोलं (चञ्चलं) उल्लोलं (उद्धतं) च यथा तथा क्षुभितः।

वेलोल्लोल० (पाठा०)— 'वेलयाः' (मर्यादायाः) उल्लोलः (उद्गतः), स चासौ क्षुभितश्च। यह पाठ भी अच्छा है। हेलोल्लोल० (पाठा०)— 'हेलया' अनायासेन 'उल्लोलः' चञ्चलः यह पाठ ठीक नहीं है।

करणो० (पाठा०)— क्षुभितानि करणानि (इन्द्रियाणि), अथवा क्षुभितं करणं (अन्तःकरणं) तेषां तस्य उज्जृम्भणं (चाञ्चल्यं) यह पाठ समीचीन नहीं है, क्योंकि इस श्लोक में आगे शोक के वेग (चेतोविकार) को रोकने के लिए ही राम के प्रयत्न का उल्लेख है। इस श्लोक में मन्दक्रान्ता छन्द एवं उपमा अलंकार है।

{६५} सीता— एदिणा अज्जउत्तस्य दुव्वारदारुणरम्भेण दुक्खसंखोएण परिमुसिअणिअदुक्खं किपिपमुद्धं मे हिअअं। (एतेनार्यपुत्रस्य दुर्वारदारुणारम्भेण दुःखसंक्षोभेण परिमुषितनिजदुःखं किमपि प्रमुग्धं में हृदयम्।)

वासन्ती— (स्वगतम्) कष्टमभ्यापन्नो देवः। तदन्यतः क्षिपामि तावत्। (प्रकाशम्) चिरपरिचितानिदानीं जनस्थानभागानवलोकनेन मानयतु देवः।

रामः— एवमस्तु। (इत्युत्थाय परिक्रामति)।

सीता— संदीवण एव दुक्खस्स पिअसहीए विणोदणोवाओ ति तक्केमि। (संदीपन एव दुःखस्य प्रियसख्या विनोदनोपाय इति तर्कयामि।)

{६५} शब्दार्थ— दुर्वार = दुर्निवार्य। दुःखसंक्षोभ = शोकसंवेग। परिमुषित = अपहृत। किमपि = कुछ कुछ। प्रमुग्ध = विमूढ। अभ्यापन्नः = पड़ा हुआ, प्राप्त। संदीपन = उद्दीप्त करनेवाला, भड़कानेवाला।

अनुवाद— सीता— आर्यपुत्र के दुर्निवार्य तथा भीषण आरम्भवाले दुःख के आवेग से अपहृत किया गया है स्वदुःख जिसका, ऐसा मेरा हृदय कुछ विमूढ हो गया है। वासन्ती— (स्वगत) महाराज कष्ट में पड़ गये हैं। अतः अब किसी अन्य विषय की ओर इन्हें प्रेषित करती हूँ। (प्रकाश) अब महाराज दीर्घकाल से परिचित, जनस्थान के प्रदेशों को, देखने से सम्मानित करें। राम— ऐसा ही हो (यही सही)। (उठकर घूमते हैं)। सीता— प्रियसखी (वासन्ती) का (उपस्थित किया हुआ) विनोद का उपाय दुःख का उद्दीपक ही है, ऐसा अनुमान करती हूँ।

टिप्पणी (Notes)

दुर्वारदारुण— दुर्वारश्चासौ दारुणश्च (विशेषण कर्मधारय)। परिमुषित— राम के दुःखसंक्षोभ को देखकर सीता अपने दुःख को भूल गई।

{६६} वासन्ती— (सकरुणम्) देव देव,

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः

सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद् गोदावरीसैकते।

आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया

कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामाञ्जलिः॥३७॥

अन्वय— अस्मिन् एव लतागृहे त्वं तन्मार्गदत्तेक्षणः अभवः। सा गोदावरीसैकते हंसैः कृतकौतुका चिरम् अभूत्। आयान्त्या तया त्वां परिदुर्मनायितमिव वीक्ष्य कातर्यात् अरविन्दकुड्मलनिभः मुग्धः प्रणामाञ्जलिः बद्धः।

{६६} शब्दार्थ— सकरुणम् = शोक के साथ। ईक्षण = दृष्टि, नेत्र। कौतुक = औत्सुक्य, अथवा क्रीडा। सैकत = पुलिन, बालुका तट। परिदुर्मनायितः = अप्रसन्न चित्त। कातर्यात् =

व्याकुलता, अथवा त्रास से। अरविन्दकुड्मलनिभः = कमल की कली के सदृश। मुग्ध = मनोहर।

अनुवाद— वासन्ती—(शोक के साथ) महाराज महाराज, इसी कुञ्ज में आप, (लौटने के) मार्ग में लगी हुई है दृष्टि जिसकी ऐसे हुए। वह गोदावरी के बालुकामय तट पर, हंसों से उत्पन्न किया गया है कौतूहल (अथवा हर्ष) जिसका ऐसी बहुत देर तक रही। आती हुई उससे, आपको अप्रसन्नचित्त सा देखकर, व्याकुलता के कारण कमल के कोरकके सदृश मनोहर प्रणामार्थ अञ्जलि बाँधी गई थी।

व्याकरण— आयात्या— आयान्तीका तृ० वि० ए० व०, आ— या + शत् + डीप्, विकल्प से नुम् (पा० ७।१।८०), पक्ष में 'आयाती'। परिदुर्मनायितं— 'परि' परितः 'दुर्' दुःस्थ 'मनः' यस्य स परिदुर्मनाः, अपरिदुर्मनाः परिदुर्मनाः भूतः' इस अर्थ में 'भृशादिभ्यो भुध्यच्चेर्लोपश्च हलः' (पा० ३।१।१२) सूत्र के अनुसार क्यङ् प्रत्यय तथा हल् का लोप। कातर्यात्— कातरस्य भावः, ष्यञ्; ईषत् तरति (स्वकार्यसिद्धिं गच्छति) इतिकातरः, 'ईषद्' अर्थ में 'कु' को 'का' आदेश (पा० ६।३।१०५)। अरविन्दकुड्मलनिभः— अरविन्दस्य कुड्मलेन सदृशः (नित्यसमासः, अस्वपदविग्रहः); दे० अ० को०— 'स्युस्तरपदे त्वमी। निभसंकाशनीकाश— प्रतिकाशोपमादयः'। प्रणामाञ्जलिः— प्रणामस्य अञ्जलिः, अश्वधासादिवत् समासः, प्रणामाय अञ्जलिः इति तादर्थ्ये षष्ठी समासः।

टिप्पणी (Notes)

कौतुकं— 'कौतुक' त्वभिलाषे स्यादुत्सवे नर्महर्षयोः। तथा परम्परायातमङ्गालेच कुतूहले। (मेदि० को०)। यह श्लोक दशरूपक में प्रणायमान के उदाहरणरूप में उद्धृत है। यहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द एवं उत्प्रेक्षा अलंकार है।

{६७} सीता— दालुणासि वासन्ति दालुणासि, जा एदेहिं हिअमम्मगूढसल्लसंघट्टेनेहिं पुणो पुणो वि मं मन्दभाइणिं अज्जउत्तं अ संदावेसि। (दारुणासि वासन्ति दारुणासि, या एतैर्हृदयमर्मगूढशल्यसंघट्टनैः पुनः पुनरपि मां मन्दभागिनीमार्यपुत्र च संतापयसि।)

रामः— अयि चण्डि जानकि, इतस्ततो दृश्यस इव न चानुकम्पसे।

हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः

शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमन्तर्ज्वलामि।

सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा

विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि॥३८॥

(इति मूर्च्छति)

अन्वय— हा हा देवि, हृदयं स्फुटति, देहबन्धः ध्वंसते। जगत् शून्यं मन्ये, अविरतज्वालम् अन्तः ज्वलामि, सीदन् विधुरः अन्तरात्मा अन्धे तमसि मज्जति इव, मोहः विष्वक् स्थगयति, मन्दभाग्यः (अहम्) कथं करोमि।

{६७} शब्दार्थ— शल्य = शंकु, कील। संघट्टन = सञ्चालन। ध्वंसते = विशीर्ण हो रहा है। अविरतज्वालम् = अविच्छिन्न ज्वालाओं से युक्त होकर। सीदन् अवसादयुक्त होता हुआ। विधुरः = विकल। विष्वक् = चारों ओर से। मोहः = मूर्च्छा। स्थगयति = ढक रहा है।

अनुवाद— सीता— कठोर हो वासन्ति, तुम कठोर हो, जो हृदय मर्मस्थानों में छिपे हुए कीलों के इन संचालनों से बार बार मुझ मन्दभागिनी को और आर्यपुत्र को क्लेश दे रही हो। राम— अयि अतिकोप करनेवाली सीते, इधर—उधर मानों दिखाई देती हो, किन्तु दया नहीं करती हो। हा हा देवि, हृदय फट रहा है, देह का बन्धन (सन्धि) विशीर्ण हो रहा है। जगत् को शून्य प्रतीत कर रहा हूँ अविश्रान्त ज्वालाओं से भीतर जल रहा हूँ। अवसादयुक्त हुआ विकल अन्तःकरण गाढ़ अन्धकार में मानों डूब रहा है। चारों ओर से मूर्च्छा घेर रही है। मैं मन्दभाग्य कैसे करूँ। (मूर्छित हो जाते हैं)।

व्याकरण— सीदन्— √सद् + शतृ; सीदति, सन्नः। अन्धे (तमसि)— अन्धयति लोकान् इति अन्ध, √अन्ध् + अच्। विष्वक्— वि—सु— √अञ् + क्विन्। स्थगयति— √स्थग् (संवरणे) १ प० + (णिच्)— लट्।

टिप्पणी (Notes)

अविरलज्वालं (पाठा०)— अविरला अविच्छिन्ना ज्वाला यस्मिन् कर्मणि तत्तथोक्तम्, वीररा०। विधुरः— 'विधुरं स्यात् प्रविश्लेषे न द्वयोर्विकलं त्रिषु' (मेदि० को०)।

विष्वङ्— यह विशेषण होने पर इसका अर्थ होगा इन्द्रियों को चारों ओर से अभिभूत करनेवाला। विष्वङ्इत्या०— तुल० 'मोहः प्रागावृणोति' माम्'।

(विशेष—) यह श्लोक उत्तररामचरित के श्रेष्ठ श्लोकों में से है, इसमें करुण रस पराकाष्ठा को पहुँच गया है। ३१वें श्लोक में राम ने कहा था कि हृदय गाढ़ उद्वेग से दला तो जा रहा है परन्तु वेदीर्ण नहीं होता, परन्तु इस श्लोक में हृदय विदीर्ण होने को है। राम का करुणरस उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। यह श्लोक कुछ पाठ भेद के साथ मालती माधव में भी आया है। इस श्लोक में मन्दक्रान्ता छन्द एवं उत्प्रेक्षा अलंकार है।

{६८} सीता— हृद्धी हृद्धी पुणेवि पमूढो अज्जउत्तो। (हा धिक् हा धिक्! पुनरपि प्रमूढ आर्यपुत्रः।)

वासन्ती— देव, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

सीता— अज्जउत्त, मं मन्दभाइणिं उदिसिअ सअलजीअलोअ मङ्गलाधरस्स दे बारं बारं संसइदजीविअदालुणां दसापरिणामो ति हा हदम्हि। (इति मूर्छति।) (आर्यपुत्र, मां मन्दभागिनीमुद्दिश्य सकलजीवलोकमङ्गलाधारस्य ते बारं बारं संशयितजीवितदारुणो दशापरिणाम इति हा हतास्मि। (...))

तमसा— वत्से, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। पुनत्त्वत्पाणिस्पर्श एव सञ्जजीवनोपायो रामभद्रस्य।

वासन्ती— कथमद्यापि नोच्छ्वसित। हा प्रियसखि सीते, क्वासि? संभावयात्मनो जीवितेश्वरम्।

वासन्ती— दिष्ट्या प्रत्यापन्नचेतनो रामभद्रः।

{६८} शब्दार्थ— दशापरिणामः = दशाविपाक, अवस्था का परिवर्तन (अर्थात् मूर्च्छाप्राप्ति)। संभावय = संभावित करो, (अपनी उपस्थिति से) सम्मानित करो। प्रत्यापन्नचेतनः = पुनः लौट आई है चेतना जिसकी ऐसा।

अनुवाद— सीता— हाय धिक्कार है! हाय धिक्कार है! आर्यपुत्र फिर मूर्च्छित हो गये हैं। वासन्ती— महाराज, आश्वस्त होइये, आश्वस्त होइये। सीता— आर्यपुत्र, मुझ हतभाग्या को लक्ष्य करके समग्र संसार के कल्याण के आधार आपका, बराबर सदेहकोटि को प्राप्त हो गया है जीवन जिसमें ऐसा, भीषण दशाविपर्यास (मूर्च्छा प्राप्ति) होता है, इस कारण हाय! मैं मारी गई। (मूर्च्छित हो जाती है।) तमसा— बेटी, आश्वस्त हो, आश्वस्त हो। पुनः तेरे हाथ का स्पर्श ही रामभद्र के जीवन का उपाय है। वासन्ती— क्यों अब तक भी चेतना को प्राप्त नहीं किये हैं। हा प्यारी सखी— सीता, तू कहाँ है। अपने प्राणनाथ को (अपनी उपस्थिति से) सम्मानित करो। (सीता घबराहटयुक्त शीघ्रता से समीप आकर हृदय और ललाट को स्पर्श करती है।) वासन्ती— भाग्य से रामभद्र, लौट आई चेतना जिसकी ऐसे हो गये हैं।

{६९} रामः—आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपै—

रन्तर्वा बहिरपि वा शरीरधातून्।

संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मा—

दानन्दादपरविधं तनोति मोहम्॥३९॥

अन्वयः— अन्तर्वा बहिरपि वा शरीरधातून् अमृतमयैः प्रलेपैः आलिम्पन्निव संस्पर्श पुनरपि जीवयन् अकस्मात् आनन्दात् अपरविधं मोहं तनोति।

{६९} शब्दार्थ— आलिम्पन् = लेप करता हुआ। शरीरधातून् = शरीर के धातुओं को। अपरविधं = अन्य प्रकार के। मोहं = मूर्च्छा को। तनोति = फैला रहा है।

अनुवाद— भीतर के तथा बाहर के शरीरधातुओं को अमृतमय प्रलेपों से लिप्त करता हुआ सा (यह अनुभूयमान) स्पर्श पुनः जीवन देता हुआ अकस्मात् आनन्दवश अन्य प्रकार की (पहली से भिन्न) मूर्च्छा को फैला रहा है।

व्याकरण— अमृतमयैः— अमृतस्य स्वरूपाः इति अमृतमयाः, 'तत्प्रकृतवचने मयट्' (पा० ५।४।२९) इति मयट्; ('प्रकृत' का अर्थ है 'प्रचुरता से प्रस्तुत')। तनोति— √तन् (विस्तारे) ८ उ०— लट् (५०)।

टिप्पणी (Notes)

आनन्दादपरविधं— इसका अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है— आनन्दात् 'अपरा' अनन्या विधा यस्य तादृशं — जो आनन्द से भिन्न प्रकार का न हो अर्थात् आनन्दात्मक। इस श्लोक के भाव के लिये तुल० श्लो० १२।

{७०} रामः— (आनन्दनिमीलिताक्ष एव) सखि वासन्ति, दिष्ट्या वर्धसे।

वासन्ती— देव, कथमिव?

रामः— सखि, किमन्यत्। पुनः प्राप्ता जानकी।

वासन्ती— अयि देव रामभद्र, क्व सा?

रामः— (स्पर्शसुखमभिनीय) पश्य नन्वियं पुरत एव।

वासन्ती— अयि देव, किमिति मर्मच्छेददारुणैरेभिः प्रलापैः प्रियसखीदुःखदग्धामपि मां पुनर्मन्दभाग्यां दहसि।

{७०} शब्दार्थ— अभिनीय = अभिनय करके। पुरतः = सामने। दारुणैः = कठोर, दुःसह।

प्रलाप = अनर्थक वचन।

अनुवाद— राम— (आनन्दवश नेत्र बन्द किये हुए ही) सखी वासन्ती, भाग्य से बढ़ रही हो। वासन्ती— महाराज, भला, कैसे? राम— सखी, और क्या! सीता फिर मिल गई है। वासन्ती— अयि महाराज रामचन्द्र, वह कहाँ? राम— (स्पर्शजनित सुख का अभिनय करते हुए) अरी देखो, यह आगे ही है। वासन्ती— अयि महाराज, मर्मस्थानों को बींधने के कारण दुःसह इन अनर्थक वचनों से प्रियसखी (सीता) के दुःख से जली हुई भी मुझ भाग्यहीना को पुनः क्यों जला रहे हो।

{७१} ओसरिदुं इच्छामि। एसो उण चिरसब्भा वसोम्मसीअलेण अज्जउत्तप्परिसेण दीहदारुणं वि झति संदावं हरत्तेण वज्जलेवोवणिबद्धो विअसिज्जन्तणीसहविपल्हत्थो वेअणसीलो अवसो विअ मे हत्थो। (अपसर्तुमिच्छामि। एष पुनः चिरसद्भावसौम्यशीतलेन आर्यपुत्रस्पर्शेन दीर्घदारुणमपि झटिति संतापं हरता वज्रलेपोपनिबद्ध इव स्विद्यन्निः सहविपर्यस्तो वेपनशीलोऽवश इव मे हस्तः।)

रामः— सखि, कुतः प्रलापाः।

गृहीतो यः पूर्वं परिणयविधौ कङ्कणधर—

श्चिरं स्वेच्छास्पर्शैरमृतशिशिरैर्यः परिचितः।

सीता— अज्जउत्त सो एव्व दाणिं सि तुमम्। (आर्यपुत्र, स एवेदानीमसि त्वम्।)

रामः— स एवायं तस्यास्तुहिननिकरौपम्यसुभगो

मया लब्धः पाणिर्ललितलवलीकन्दलनिभः॥४०॥

(इति गृह्णाति)

अन्वय— पूर्वं परिणयविधौ कङ्कणधरः यः गृहीतः, अमृतशिशिरैः स्वेच्छास्पर्शैः यः चिरं परिचितः। तुहिननिकरौपम्यसुभगः ललितलवलीकन्दलनिभः स एवायं तस्याः पाणिः मया लब्धः।

{७१} शब्दार्थ— चिरसद्भाव = दीर्घकाल से चली आती हुई प्रीति, गाढ़ अनुराग। सौम्य = आह्लादजनक। दीर्घ = बहुतकालव्यापी। दारुण = दुःसह। उपनिबद्धः = बँधा हुआ, संयोजित।

स्विघ्न = स्वेदयुक्त होता हुआ। निःसह = विकल, असमर्थ। विपर्यस्तः = विरुद्ध (अवसरानुपयुक्त) भाव को प्राप्त, अर्थात् जड़ीभूत। वेपन = कम्पन। अवशः = स्वव्यापार में असमर्थ अथवा जो वश में न हो। परिणयविधौ = विवाहविधि में। कङ्कण = वैवाहिक मङ्गलसूत्र। तुहिन = हिम। निकर = राशि। औपम्य = सादृश्य। सुभग = मनोरम। ललित = कोमल, सुकुमार। लवली = एक वृक्ष का नाम। कन्दल = नवीन अङ्कुर, प्ररोह।

अनुवाद— सीता— दूर हट जाना चाहती हूँ। परन्तु दीर्घकालीन अनुराग से आह्लादजनक और शीतल, तथा लम्बे और दुःसह संताप को भी तत्क्षण दूर करते हुए आर्यपुत्र के स्पर्श से वज्रलेप नामक लेपविशेष से जुड़ा हुआ सा, स्वेद युक्त होता हुआ असह्यरूप से जड़ता को प्राप्त, और निरन्तर काँपता हुआ यह मेरा हाथ मानों मेरे वश में नहीं रहा है। राम— सखि, अनर्थकवचन कैसे? पूर्वसमय में विवाह संस्कार के अवसर पर कङ्कण (मङ्गलसूत्र) धारण किये हुए जो (पाणि) मुझसे ग्रहण किया गया था, जो अपने अमृत के समान, तथा स्वच्छन्दता से प्राप्तव्य स्पर्शों से (मुझे) चिरकाल से परिचित था। सीता— आर्यपुत्र, वहीं आप अब भी हैं? राम— हिमराशि के सादृश्य से मनोरम तथा लवली वृक्ष के कोमल अङ्कुर के सदृश वही यह उसका हाथ मुझसे प्राप्त किया गया है। (ऐसा कहकर पड़कते हैं)।

व्याकरण— उपनिबद्धः— उप—नि— $\sqrt{\text{बन्ध् ९ प० + क्त (कर्मणि)}}$ । स्विघ्न— $\sqrt{\text{स्विद् ४ प० + शतृ}}$ । विपर्यस्त— वि—परि— $\sqrt{\text{अस् ४ प० + क्त (कर्मणि)}}$ । परिणयः— परि— $\sqrt{\text{नी + अच्}}$ । धरः— $\sqrt{\text{धृ + अच्}}$ । परिचितः— परि— $\sqrt{\text{चि + क्त}}$ । औपम्यं— उपमायाः भावः, ष्यञ्।

टिप्पणी (Notes)

चिरसद्भाव— इसके स्थान में वीररा० ने 'चिरप्राणयसंभार' पाठ लिया है, 'चिरस्य' बहुकालरूढस्य 'प्रणयस्य' स्नेहस्य 'संभारेण' अतिशयेन हेतुना— (वीररा०)।

हरता—उल्लाघयता (पाठा०)— लघूकुर्वता; लघु (हल्का) करते हुए, लाघयति— 'लघु' शब्द से बनी हुई नामधातु।

वज्रलेप— एक प्रकार का कालान्तरस्थायी दृढलेप, जो सूखनेपर वस्तुओं को दृढ़ता से जोड़ता है। इसकी निर्माणविधि के लिए दे०बृह०सं० अध्या० ५७।

स्विघ्न— राम के स्पर्श के कारण स्वेदयुक्त। आठ सात्त्विक भावों में से स्वेद भी एक सात्त्विक भाव है। सत्त्व के कारण भावों की बाह्य अभिव्यक्तियों को सात्त्विकभाव कहते हैं, ये आठ— "स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः। वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका मताः।" सीता के इस कथन में स्वेद, जड़ता (स्तम्भ), तथा वेपथु ये तीन सात्त्विक भाव आ गये हैं।

स्वेच्छास्पर्शः इत्या०— यहाँ तृतीया उपलक्षण में (स्पर्शैरुपलक्षितो यो मम परिचितः), अथवा कर में मानी जा सकती है।

सुधासूतेः पादैः इत्या० (पाठा०)— वीरराघव तथा धनश्याम दोनों का यही पाठ है। 'सुधासूतेः' अर्थात् चन्द्रमा। 'सुधायाः' अमृतस्य 'सूतिः' उत्पत्तिः यस्मात् तस्य चन्द्रस्य 'अमृतशिशिरैः'

सुधाशीतलैः 'पादैः' किरणैः 'परिचितः' कृतपरिचयः— (वीररा०)। परन्तु 'शिशिरत्व' के भाव की अगले चरणों में अभिव्यक्ति हुई है, अतः इस पाठ की अपेक्षा 'चिरं स्वेच्छास्पर्शैः' पाठ अधिक उपादेय है।

तुहिनकरकौपम्य (पाठा०)— 'करका' अर्थात् वर्षापाषाण (ओला)। परन्तु 'तुहिन' के बाद में 'करका' शब्द के पाठ का कोई विशेष उपयोग नहीं है।

स एवेदानी०— अर्थात् आपके द्वारा मेरे हाथ का ग्रहण मेरे लिये उसी प्रकार आह्लादजनक है, जिस प्रकार विवाह के समय अथवा उसके पश्चात् था। यहाँ शिखरिणी छन्द एवं उपमा अलंकार है।

{७२} सीता— हृद्धी हृद्धी अज्जउत्तप्परिसमोहिदाए पमादो क्खु मे संवुत्तो। (हा धिक्! हा धिक्!
आर्यपुत्रस्पर्शमोहितायाः प्रमादः खलु मे संवृत्तः।)

रामः— सखि वासन्ति, आनन्दनिमीलितेन्द्रियः साध्वसेन परवानस्मि। तत् त्वं तावदेनां धारय।

वासन्ती— कष्टम्! उन्माद एव।

(सीता ससंभ्रमं हस्तमाक्षिप्यापसर्पति।)

रामः— हा धिक् प्रमादः।

करपल्लवः स तस्याः सहसैव जडो जडात्परिभ्रष्टः।

परिकम्पनः प्रकम्पी करान्मम स्विद्यतः स्विद्यन्॥४१॥

अन्वयः— तस्याः सः जडः प्रकम्पी स्विद्यन् करपल्लवः मम जडात् परिकम्पिनः स्विद्यतः
करात् परिभ्रष्टः।

{७२} शब्दार्थ— प्रमादः = असावधानता। निमीलित = मुद्रित, स्वव्यापार में असमर्थ। साध्वस = भय, हर्षातिरेकजन्य विकलता। परवान् = परवश। उन्मादः = बुद्धिविभ्रम। सहसा = अकस्मात्। जड = स्तब्ध। परिभ्रष्ट = छूट गया है।

अनुवाद— सीता— हा धिक्कार है! हा धिक्कार है! आर्यपुत्र स्पर्श से मुझ विमूढ बनी हुई की असावधानता हो गई है। राम— सखी वासन्ती, आनन्द से मुद्रित (स्फुरणरहित) हो गई हैं इन्द्रियाँ जिसकी ऐसा मैं (सीताहस्तच्युतिविषयक) भय से परवश हो गया हूँ, अतः तुम पहले इस (सीता) को थाम लो। वासन्ती— कष्ट है! बुद्धिविभ्रम ही है। (सीता शीघ्रता से हाथ को खींचकर दूर हट जाती है) राम— हा धिक्कार है! असावधानता हो गई। उस (सीता) का वह स्तब्ध, काँपता हुआ, तथा स्वेदयुक्त होता हुआ हाथ मेरे स्तब्ध, काँपते हुए तथा स्वेदयुक्त होते हुए हाथ से छूट गया है।

टिप्पणी (Notes)

साध्वस (न०)— 'साधु' अत्यन्त 'अस्यते' निक्षिप्यते, मनोजनेन, साधु— अस् + अच्, इस शब्द का अर्थ 'भय' है। यहाँ इसका अर्थ 'मनोवेग जनित विक्षोभ' ऐसा भी किया जा सकता है।

इस श्लोक में पुनः जडता, प्रकम्प (वेपथु) तथा स्वेद इन तीन सात्त्विक भावों का उल्लेख है। ये तीनों शृङ्गाररस के 'रति' नामक स्थायिभाव के सात्त्विक भाव हैं। यहाँ शृङ्गाररस गौण है और नाटक के प्रधान रस 'करुण' का पोषक है। इसमें आर्या छन्द एवं काव्यालिङ्ग अलंकार है।

[७३] सीता— हृद्धी हृद्धा। अज्जवि अणवत्थिदत्थिमिदमूढघुण्णन्तणअणो ण पज्जवत्थावेदि अत्ताणअ। (हा धिक्! हा धिक्! अद्याप्यनवस्थितस्तिमितधूर्णन्नयनो न पर्यवस्थापयत्यात्मानम्।)

तमसा— (सस्नेह कौतुकस्मितं निर्वर्ण्य)

सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी जाता प्रियस्पर्शसुखेन वत्सा।

मरुन्वाम्भः प्रविधूतसिक्ता कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव॥४२॥

अन्वय— वत्सा प्रियस्पर्शसुखेन मरुन्वाम्भः प्रविधूतसिक्ता स्फुटकोरका कदम्बयष्टिः इव सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी जाता।

[७३] शब्दार्थ— अनवस्थित = अस्थिर, चञ्चलता। स्तिमित = निश्चल। मूढ = विषयग्रहण में असमर्थ। धूर्णत् = घूमते हुए। विपर्यस्थापयति = प्रकृतिस्थ नहीं करता है। मरुता = वायु से। नवाम्भसा = नूतन जल से, प्राथमिक वर्षाजल से। प्रविधूत = प्रकम्पित। सिक्ता = भिगोई हुई। कोरक = पुष्पकलिका। स्फुटकोरका = खिली हुई कलिकाओं वाली। कदम्बयष्टिः = कदम्बवृक्ष की शाखा।

अनुवाद— सीता— हा धिक्कार है! हा धिक्कार है! अभी तक भी, (कभी) स्थिर, (कभी) निश्चल, (कभी) मूढ (विषयग्रहण में असमर्थ), तथा (कभी) घूमते हुए नेत्र हैं जिनके ऐसे (आर्यपुत्र) अपने आपको स्थिर (प्रकृतिस्थ) नहीं करते हैं। तमसा— (वात्सल्य, कौतूहल और मुस्कुराहट के साथ) बेटी प्रिय के स्पर्शजनित सुख से, वायु तथा (वर्षा के) नूतन जल से (क्रमशः) कंपाई हुई तथा भिगोई हुई जो विकसित कलियोंवाली कदम्ब वृक्ष की शाखा है उसके समान स्वेदयुक्त पुलकित और कम्पयुक्त अङ्ग है जिसके ऐसी हो गई है।

व्याकरण— स्तिमित— √स्तिम् ४ प० + क्त। धूर्णत्— √धूर्ण (भ्रमणे) ४ उ० + शतृ। पर्यवस्थापयति— परि—अव— √स्था + णिच् (एक् च) लट्। रोमाञ्चित— रोमाञ्चाः संजाताः अस्य, इतच्। कम्पिताङ्गी— 'अङ्गात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम्' इति स्त्रियां पाक्षिको 'ङीष्' प्रत्ययः। प्रविधूत— प्र—वि—धू (कम्पने) + क्त। सिक्ता— √सिच् ६ उ० + क्त (कर्मणि)।

टिप्पणी (Notes)

अनुबद्धबहुधूर्णमानवेदनं (पाठा०)— अनुबद्धा अविच्छिन्ना वही अधिका धूर्णमाना आवर्तमाना वेदना व्यथा यस्य तम् (आत्मानम्)।

मरुन्वाम्भः.....स्फुटकोरकेव— इसमें पूर्णोपमा अलंकार है। सीता के स्वेद बिन्दुओं की कदम्बयष्टि पर पड़े हुए वर्षाजल के बिन्दुओं से कम्प की उपमा कदम्बयष्टि के वायुजनित कम्प से तथा रोमाञ्चों की विकसित कलियों से उपमा दी गई है। कवि समय के अनुसार नूतन वर्षाजल से अथवा मेघगर्जन से कदम्ब वृक्षपर कलिकाएं लगती हैं। तुल०— ६-१७ तथा माल० मा०

३-७। इस श्लोक में उपजाति छन्द है।

{७४} सीता— (स्वगतम्) अम्हहे अवसेन एदेण अत्ताणएणा लज्जाविदम्हि भवदीए तमसाए। किंति किल एसं मणिणास्सदि एसो दे परिच्चाओ एसो अहिसङ्कोत्ति। (अम्हहे! अवशेनैतेनात्मना लज्जापितास्मि भगवत्या तमसया। किमिति किलैषा मंस्यत एष ते परित्याग एषोऽभिषङ्ग इति।)

रामः— (सर्वतोऽवलोक्य) हा! कथं नास्त्येव? नन्वकरुणे वैदेहि।

सीता— सच्चं अकरुणाम्हि जा एव्वविहं पेक्खन्दी जीवेमि एव। (सत्यमकरुणाऽस्मि यैवविधं त्वां प्रेक्षमाणा जीवाम्येव।)

रामः— क्वासि देवि, प्रसीद। न मामेवविधं परित्यक्तुमर्हसि।

सीता— अयि अज्जउत्त विवरीदं विअ एदम्। (अयि आर्यपुत्र, विपरीतमिवैतत्।)

{७४} शब्दार्थ— अभिषङ्गः = आसक्ति, अनुराग।

अनुवाद— सीता— (स्वगत) अहो! (प्रियस्पर्शजनित सुख से) विह्वल इस आत्मा के कारण भगवती तमसा से मैं लज्जित कर दी गई हूँ। यह क्या समझेगी— यह तेरा परित्याग और यह आसक्ति। राम— (सब ओर देखकर) हा! क्या, है ही नहीं! हे करुणारहित सीते। सीता— सचमुच मैं करुणारहित हूँ जो इस प्रकार के आपको देखती हुई ही जी रही हूँ। राम— कहाँ हो देवी, प्रसन्न हो जाओ (अथवा अनुग्रह करो) तुम्हें इस प्रकार के मुझको छोड़ना उचित नहीं है। सीता— हे आर्यपुत्र, यह तो उलटी बात है।

{७५} वासन्ती— देव, प्रसीद प्रसीद। स्वेनैव लोकोत्तरेण धैर्येण संस्तम्भयातिभूमिगत विप्रलम्भमात्मानम्। कुतोऽत्र में प्रियसखी।

रामः— व्यक्तं नास्त्येव। कथमन्यथा वासन्त्यपि तां न पश्येत्। अपि खलु स्वप्न एष स्यात्। न चास्मि सुप्तः। कुतो रामस्य निद्रा? सर्वथा स एवैष भगवान् अनेकवारपरिकल्पनानिर्मितो विप्रलम्भः पुनः पुनरनुबध्नाति माम्।

नरुसीता— मए एव्व दारुणाए विप्पलब्धो अज्जउत्तो। (मयैव दारुणया विप्रलब्ध आर्यपुत्रः।)

{७५} शब्दार्थ— लोकोत्तर = अलौकिक, असाधारण। संस्तम्भय = स्थिर करो। अतिभूमिगतविप्रलम्भम् = अतिशय (अतिभूमि) को प्राप्त है प्रियावियोगजन्यशोक (अथवा भ्रम) जिसका ऐसे। आत्मानं = अपने आपको। व्यक्तं = स्पष्ट। भगवान् = अनुल्लङ्घनीय प्रभाववाला। परिकल्पना = संजल्प। विप्रलम्भ = प्रतारणा, धोखा, भ्रम। अनुबध्नाति = अनुसरण करता है। दारुणा = कठोरा। विप्रलब्धः = प्रतारित हुआ है, धोखा दिया गया है।

अनुवाद— वासन्ती— महाराज, प्रसन्न होइये। आपने ही अलौकिक धैर्य से, अतिशय को प्राप्त हुआ है प्रियावियोगजन्य शोक (अथवा भ्रम) जिसके ऐसे अपने आपको स्थिर कीजिये। मेरी प्रियसखी यहाँ कहाँ? राम— स्पष्ट है कि है ही नहीं। नहीं तो वासन्ती भी उसे कैसे नहीं देखती?

संभव है यह स्वप्न हो, परन्तु मैं सोया हुआ नहीं हूँ। राम को नींद कहाँ। सब प्रकार वहीं अनेक बार के संकल्प से रचा हुआ सामर्थ्यवान् धोखा बार-बार मेरा पीछा करता है। सीता— मुझ कठोर से ही आर्यपुत्र को धोखा दिया गया है।

{७६} वासन्ती— देव, पश्य पश्य—

पौलस्त्यस्य जटायुषः विघटितः कार्णायसोऽयं रथ—

स्ते चैते पुरतः पिशाचवदना कङ्कालशेषाः खराः।

खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिरितः सीतां चलन्तीं वह—

नन्तर्व्याकुलविद्युदम्बुद इव घामभ्युपस्थादरिः॥४३॥

अन्वयः— अयं जटायुषा विघटितः, पौलस्त्यस्य कार्णायसः रथः। पुरतः च ते एते पिशाचवदना कङ्कालशेषाः खराः। इतः खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिः अरिः चलन्तीं सीतां वहन् अन्तर्व्याकुलविद्युत् अम्बुदः इव घाम् अभ्युदस्थात्।

{७६} शब्दार्थ— पौलस्त्य = पुलस्त्य का पौत्र, रावण। विघटितः = भग्न। कार्णायसः = कृष्णायस (एक प्रकार का उत्कृष्ट लौह) का बना हुआ। खर = खच्चर। पक्षतिः = पक्षमूल। चलन्ती = अस्थिर बनी हुई को। अन्तर्व्याकुलविद्युद् = भीतर है चञ्चल विद्युत् जिसके ऐसा। अम्बुदः = मेघ। घाम् = आकाश को। अभ्युदस्थात् = ऊपर की ओर उठा। अरिः = शत्रु।

अनुवाद— वासन्ती— महाराज, देखिये देखिये— यह जटायुद्वारा तोड़ा हुआ रावण का लौह निर्मित रथ है। और सामने ये वे पिशाचों के जैसे मुखवाले, तथा अस्थिपञ्जर से अवशिष्ट खच्चर हैं। यहाँ से तलवार से काटा गया है जटायु का पक्षमूल जिससे ऐसा, शत्रु अस्थिर बनी हुई सीता को ले जाता हुआ, भीतर चञ्चल विद्युत् है जिसे ऐसे मेघ के समान, आकाश की ओर ऊपर उड़ा।

व्याकरण— कार्णायसः— कृष्णायसस्य विकारः, अण्; कृष्णायसं = कृष्णम् अयस्, 'अनोऽश्माऽयः सरसां जातिसंज्ञयोः' (पा० ५।१४।१४) इति टच् समासान्तः। पक्षतिः — पक्षस्य मूलम्, 'पक्षात् तिः' (पा० ५।२।२५) इति मूलार्थे 'ति' प्रत्ययः। जटायुस् (अथवा जटायु) = जटा पक्षमूलम् आयुः यस्येति जटायुसः; अथवा जटया याति इति जटायुः, या + कु (उणा०)। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द और उपमा अलंकार है।

{७७} सीता— (सभयम्) अज्जउत्ता तादो वावादीअदि अहं वि अवहरिज्जामि। ता परित्ताहि परित्ताहि। (आर्यपुत्र, तातो व्यापाद्यते अहमप्यपह्निये। तस्मात् परित्रायस्व परित्रायस्व)।

रामः— (सवेगमुत्थाय) आः पाप, तातप्राणसीतापहारिन, क्व यासि?

वासन्ती— अयिदेव! राक्षसकुलप्रलयधूमकेतो, किमद्यापि ते मन्युविषयः?

सीता— अम्हो अहं वि उब्भन्तम्हि। (अहो! अहमप्युद्भ्रान्तास्मि)।

{७७} शब्दार्थ— तातः = पिता अर्थात् जटायु। व्यापाद्यते = मारा जा रहा है। अपह्निये = अपहरण की जा रही हूँ। प्रलय = नाश। धूमकेतुः = विनाशसूचक उत्पात विशेष अथवा अग्नि।

मन्यु = कोप। उद्भ्रान्ता = अतिशय भ्रान्तियुक्त।

अनुवाद—सीता— (भय के साथ) आर्यपुत्र, पिता (जटायु) मारे जा रहे हैं, मैं भी अपहरण की जा रही हूँ। अतः रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। राम— (वेग से उठकर) आः! पापी, पिता के प्राण और सीता को अपहरण करनेवाले, कहाँ जाता है। वासन्ती— हे महाराज, राक्षसवंश के नाश के धूमकेतु, क्या अभी तक भी (कोई) तुम्हारे क्रोध का पात्र है। सीता— अरे! मैं भी अतिशयभ्रान्तियुक्ता हो गई हूँ।

व्याकरण— व्यापाद्यते— वि—आ—√ पद् + (णिच्)— कर्मणि लट्। अपहारिन्— अप—√ह + णिनि। उद्भ्रान्ता = उद्—√भ्रम् + क्त।

{७८} रामः— 'अन्य एवायमधुना विपर्ययो वर्तते।

उपायानां भावादविरतविनोदव्यतिकरैः—

विमर्दैर्वीराणां जगति जनितात्यद्भुतरसः।

वियोगो मुग्धाक्ष्याः स खलु रिपुघातावधिरभूत्

कथं तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं त्वप्रतिविधः।।४४।

अन्वयः— उपायानां भावात् अविरतविनोदव्यतिकरैः वीराणां विमर्दैः जगति जनितात्यद्भुतरसः, मुग्धाक्ष्याः स वियोगः रिपुघातावधिः अभूत्। तु निरवधिः अप्रतिविधः अयं कथं तूष्णीं सह्यः।

{७८} **शब्दार्थ—** विपर्ययः = दशाविपरिणाम, विपत्ति। उपाय = साधन। अविरत = अविच्छिन्न। व्यतिकर = संपर्क। विमर्द = संप्रहार, संग्राम। मुग्धाक्षी = मनोहर नेत्रवाली। तूष्णीम् = चुपचाप। निरवधिः = अवधिरहित। अप्रतिविधः = प्रतीकार रहित।

अनुवाद— राम— उपायों के होने से निरन्तर मनोविनोद के साधन-स्वरूप (सुग्रीव आदि) वीरों के युद्धों से संसार में अत्यधिक अद्भुत रस को उत्पन्न करने वाला सुन्दर नेत्र वाली सीता का वह पूर्व वियोग वस्तुतः शत्रु रावणादि के वध तक ही रहने वाला था किन्तु कठोर और चुपचाप सहने योग्य यह वियोग तो असीम है।

व्याकरण— मुग्धाक्षी— मुग्धे अक्षिणी यस्याः सा, षच् समासान्तः। षित् प्रत्ययान्त होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में डीष् जुड़ता है ('षिद्गौरादिभ्यश्च' पा०)। अवधिः— अव— धा + कि। सह्यः— 'शकिसह्ये' (पा० ३।१।७१) इति सह धातोः कर्मणि यत्।

टिप्पणी (Notes)

अन्वर्थः एव इत्या०— अन्वर्थः अनुगतमर्थः = यथार्थः। अपने अर्थ का अनुसरण करनेवाला। रावण आदि के अभाव के कारण मेरा प्रलाप अपने अर्थ के अनुसार ही सचमुच

१. अन्वर्थ एवायमधुना प्रलापो वर्तते।

अनर्थक वचन है। यह पाठ यहाँ उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इससे पूर्व वासन्ती ने राम के प्रलाप के विषय में कोई निर्देश नहीं किया है।

निरवधिः— क्योंकि राम समझ रहे हैं कि सीता मर चुकी है, अतः अब उसका वियोग कभी भी समाप्त होनेवाला नहीं है। इस श्लोक में शिखरिणी छन्द एवं व्यतिरेक अलंकार और काव्यलिङ्ग अलंकार है।

सीता - निरवधिरिति हा हतास्मि, मन्द भागिनी।

सीता - यह वियोग असीम है इन शब्दों को सुनकर मैं अभागिनी मृतप्राय हो गई हूँ।

{७९} रामः— हा कष्टम्!

व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यमपि मे, वीर्यं हरीणां वृथा,

प्रज्ञा जाम्बवतोऽपि न यत्र न गतिः पुत्रस्य वायोरपि।

मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्तुं नलोऽपि क्षमः

सौमित्रेरपि पत्रिणामविषये तत्र प्रिये! क्वासि मे॥४५॥

सीता— बहुमणाविदमिह तं पुव्वविरहं। (बहुमानितास्मि तं पूर्वविरहम्।)

अन्वयः— यत्र मे कपीन्द्रसख्यमपि व्यर्थम्, यत्र हरीणां वीर्यं वृथा, यत्र जाम्बवतोऽपि प्रज्ञा वृथा, यत्र वायोः पुत्रस्य अपि गतिः न। यत्र विश्वकर्मतनयः नलोऽपि मार्गं कर्तुं न क्षमः। सौमित्रेः अपि पत्रिणाम् अविषये तत्र, मे प्रिये, क्व असि?

{७९} शब्दार्थ— कपीन्द्रसख्यम् = सुग्रीव की मित्रता। हरि = वानर। वीर्यं = पराक्रम। पत्रिणां = बाणों को। अविषय = अगोचर।

अनुवाद— राम— हा, दुःख है। जहाँ सुग्रीव के साथ मेरी मित्रता भी व्यर्थ है, जहाँ वानरों का पराक्रम भी व्यर्थ है, जहाँ जाम्बवान् की बुद्धि भी व्यर्थ है, जहाँ वायु के पुत्र (हनुमान) का प्रवेश भी नहीं है, जहाँ विश्वकर्मा का पुत्र नल भी मार्ग बनाने में समर्थ नहीं है, सौमित्रि (लक्ष्मण) के बाणों के भी अगोचर उस प्रकार के किस (स्थान) में, हे मेरी प्रिये, तु हो? सीता— मैं उस पूर्व विरह को बहुत मनवाई गई हूँ।

व्याकरण— सख्यं— सख्युर्भावः, यत्। प्रज्ञा — प्र— √ज्ञा + अङ् (भावे)। सौमित्रिः— सुमित्रायाः अपत्यं पुमान्, सुमित्रा + इञ् (बाह्यादित्वात्)।

टिप्पणी (Notes)

अविषये— अर्थात् पहुँच से बाहर। अविषयः (पाठा०)— यह पाठ इतना अच्छा नहीं है, यहाँ पर 'यः' का अध्याहार करना पड़ेगा, यः अविषयः तत्र, परन्तु पहले तीन चरणों में 'यत्र' का

१. अविषयः।

प्रयोग हुआ है। इस श्लोक में शार्दूलाविक्रीडित छन्द, समुच्चय अलंकार है।

{८०} रामः— सखि वासन्ति, दुःखायैव सुहृदामिदानीं रामस्य दर्शनम्। कियच्चिरं त्वां रोदिष्यामि।
तदनुजानीहि मां गमनाय।

सीता— (सोद्वेगमोहं तमसामाश्लिष्य) भवदिति तमसे कहं गच्छदि एव अज्जउत्तो। (इति मूर्च्छति)।
(भगवति तमसे कथं गच्छत्येवार्यपुत्रः। (.....))

तमसा— वत्से, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। नन्वावामप्यायुषतोः कुशलवयोर्वर्षवर्धनमङ्गलानि संपादयितुं
भागीरथीपदान्तिकमेव गच्छावः।

सीता— भवदिति प्रसीद। खणमेतं वि दाव दुल्लदंसणं जणं पेक्खामि। (भगवति, प्रसीद।
क्षणमात्रमपि तावद्दुर्लभदर्शनं जनं प्रेक्षे।)

{८०} शब्दार्थ— अनुजानीहि = अनुमति दो। उद्वेग = घबराहट। वर्षवर्धनमङ्गलानि =
(बारहवें) वर्ष की वृद्धि (अर्थात् पूर्ति) के निमित्त अनुष्ठान किये जाने योग्य मङ्गलाचरण। अन्तिकं
= समीप।

अनुवाद— राम— सखी वासन्ती, इस समय राम का दर्शन मित्रों के दुःख के लिये ही
है। कितनी देरतक तुम्हें रुलाऊँगा, अतः मुझे जाने के लिए अनुमति दो। सीता— (उद्वेग तथा मोह
के साथ तमसा को आलिङ्गनकर) भगवती तमसे, क्या आर्यपुत्र जा ही रहे हैं? (ऐसा कहकर
मूर्च्छित हो जाती है)। तमसा— बेटा, आश्वस्त हो, आश्वस्त हो। हम दोनों भी दीर्घजीवी कुश तथा
लव के वर्षपूर्तिनिमित्तक मङ्गलों को संपादन करने के लिए भागीरथी के चरणों के समीप ही जाती
हैं। सीता— भगवती, अनुग्रह कीजिये। क्षणभर दुर्लभ दर्शन है जिसका ऐसे (प्रिय) जन को देख
लूँ।

टिप्पणी (Notes)

वर्षवर्धनमङ्गल— वर्षस्य वर्धनं तस्य मङ्गलानि 'शुभान्', तन्निमित्तानि देवपूजादीनि अनुष्ठानानि,
प्रत्येक वर्ष जन्मदिन के समय किये जानेवाले मङ्गलवर्धक अनुष्ठान, जो आयु को बढ़ाने के उद्देश्य
से किये जाते हैं।

{८१} रामः— अस्ति चेदानीमश्वमेधाय सहधर्मचारिणी मे।

सीता— (सोत्कम्पम्) अज्जउत्त, का? (आर्यपुत्र, का?)

रामः— हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिः।

सीता— (सोच्छ्वासासम्) अज्जउत्तो दाणिं सि तुमम्। अम्हणे उक्खाणिदं दाणिं मे परिच्चाअत्तज्जासल्लं
अज्जउत्तेण। (आर्यपुत्र इदानीमसि त्वम्। अहो उत्खातमिदानीं मे परित्यागलज्जाशल्यमार्यपुत्रेण।)

रामः— तत्रापि तावद्वाष्पदिग्धं चक्षुर्विनोदयामि।

{८१} शब्दार्थ— उत्कम्प = कम्पन, उद्वेग। प्रतिकृति = प्रतिमा। उच्छ्वास = आश्वास,

सान्त्वना। उत्खातं = उखाड़ दिया है। परित्यागलज्जाशल्यं = (राम के द्वारा) छोड़े जाने से उत्पन्न लज्जारूप कील। वाष्पदिग्धं = आँसुओं से लिप्त।

अनुवाद— राम— और अब अश्वमेध के लिए मेरी सहधर्मचारिणी है। सीता— (काँपते हुए) आर्यपुत्र, कौन? राम— सोने की सीतामूर्ति। सीता— (आश्वास तथा आँसुओं के साथ) अब आप आर्यपुत्र हैं। अहो, अब आर्यपुत्र से मेरा परित्यागजनितलज्जारूप शल्य (कीलक) उखाड़ा गया है। राम— उस (सीताप्रतिकृति) में ही मैं अश्रुलिप्त नेत्रों को बहलाऊँगा।

टिप्पणी (Notes)

अस्ति चेदानीम् इत्या०— अभी पूर्वोक्त वाक्य ही चल रहा है। राम का पूरा वाक्य इस प्रकार है— सखि, वासन्ति, दुःखायैवेदानीं रामस्य दर्शनं सुहृदाम्। कियच्चिरं त्वां रोदयिष्यामि? तदनुजानीहि मां गमनाय। अस्ति चेदानीमश्वमेधाय सहधर्मचारिणी मे हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिः। तत्रापि तावद्वाष्पदिग्धं चक्षुर्विनोदयामि।

{८२} सीता— धण्णा खु सा जा एव्वं अज्जउत्तेण बहुमण्णीअदि जा अ अज्जउत्तं विणोदयन्दी आसाणिबन्धं जादा जीबलोअस्स। (धन्या खलु सा यैवमार्यपुत्रेण बहुमन्यते या चार्यपुत्रं विनोदयन्त्याशानिबन्धनं जाता जीवलोकस्य।)

तमसा— (सस्मितस्नेहास्रं परिष्वज्य) अयि वत्से, एवमात्मा स्तूयते।

सीता— (सलज्जमधोमुखी स्वगतम्) परिहसिदम्हि भवदीए। (परहसितास्मि भगवत्या)

वासन्ती— महानयं व्यतिकरोऽस्माकं प्रसादः। गमनं पुनर्यथा कार्यहानिर्न भवतु तथा स्ताम्।

सीता— पडिऊला दाणि में वासन्दी संवुत्ता। (प्रतिकूलेदानीं मे वासन्ती संवृत्ता।)

{८२} शब्दार्थ— बहुमन्यते = संमानित की जाती है। आशानिबन्धनं = आशाकां हेतु। व्यतिकरः = संपर्क, समागम। प्रसादः = अनुग्रह। प्रतिकूला = अनिष्टकारिणी।

अनुवाद— सीता— वह वस्तुतः धन्य है जो इस प्रकार आर्यपुत्र से संमानित की जाती है, और जो आर्यपुत्र का दुःखविस्मरण कराती हुई संसार की आशा का हेतु हो गई है। तमसा— (मुस्कुराहट, तथा स्नेह के आँसुओं के साथ आलिङ्गन करके) अरी बेटी, इस प्रकार अपना आत्मा ही प्रशंसित किया जा रहा है। सीता— (लज्जा से नीचा मुख किए हुए स्वगत) भगवती से मेरा परिहास किया गया है (हंसी उड़ाई गई है)। वासन्ती— यह समागम हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह है। अब जिस प्रकार कार्य की हानि न हो उसे प्रकार गमन किया जावे। सीता— वासन्ती इस समय मेरा अनिष्ट करनेवाली हो गई है।

{८३} तमसा— वत्से, एहि गच्छावः।

सीता— (सकष्टम्) एव्वं करम्ह। (एवं करिष्यावः)।

तमसा— कथं वा गम्यते? यस्यास्तव—

प्रत्युप्तस्येव दयिते तृष्णादीर्घस्य चक्षुषः।

‘मर्मच्छेदपरैर्यत्नैराकर्षो न समाप्यते।।४६।।

अन्वयः— तृष्णादीर्घस्य, अत एव दयिते प्रत्युप्तस्येव (यस्याः तव) चक्षुषः मर्मच्छेदपरैर्यत्नैः आकर्षः न समाप्यते।

{८३} शब्दार्थ— प्रत्युप्त = निखात, गाडा हुआ। दयित = प्रिय। मर्मच्छेदपरैः = मर्मस्थानों को छेदने में प्रवृत्त। आकर्षः = आकर्षण, प्रिय से व्यावर्तन। न समाप्यते = पूरा नहीं किया जाता है।

अनुवाद— तमसा— बेटी, आओ चलें। सीता— (कष्ट के साथ) ऐसा ही करें। तमसा— अथवा कैसे जाया जा सकता है? जिस तुम्हारे (पतिदर्शन की) लालसा से दीर्घ बने हुए, अतएव प्रिय में गड़े हुए से नेत्रों का, मर्मस्थानों को छेदन करने में प्रवृत्त (गमन) प्रयत्नों द्वारा आकर्षण (प्रिय से खींचना) समाप्त नहीं किया जा रहा है।

व्याकरण— प्रत्युप्त— प्रति— √वप् + क्त (कर्मणि)। आकर्षः— आ— √ कृष् + घञ् समाप्यते— सम्— √आप्—कर्मणि लट्।

टिप्पणी (Notes)

मर्मच्छेदोपमै० (पाठा०)— यस्यास्तव चक्षुषः नेत्रस्या संनिकर्षैः दयिते संबन्धः ‘मर्मच्छेदोपमैः’ हृदयादिप्रदेशकृन्तनसदृशैः ‘यत्नैः’ निरुध्यते निवर्त्यते— (वीररा०)। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

{८४} सीता— णामो णामो अपुव्वपुण्णजण्णिददंससाम्पं अज्जउत्तचलणकमलाणं। (इति मूर्च्छति)। (नमो नमोऽपूर्वपुण्यजनितदर्शनाभ्यामार्यपुत्रचरणकमलाभ्याम्। (.....))

तमसा— वत्से समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

सीता— (समाश्वस्य) किञ्चित्त्वरं वा मेहन्तरेण पुण्णिमाचन्द्रस्स दंसणं। (कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णिमाचन्द्रस्य दर्शनम्॥)

{८४} शब्दार्थ— मेघान्तरेण = मेघ के अवकाश (अर्थात् हटने) से।

अनुवाद— सीता— अपूर्व पुण्यों से हुए हैं दर्शन जिनके ऐसे, आर्यपुत्र के कमलचरणों को बारबार प्रणाम है। (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है) तमसा— बेटी, आश्वस्त हो आश्वस्त हो। सीता— (आश्वस्त होकर) अथवा मेघ के अवकाश से कितनी देर तक पूर्णिमा के चन्द्रमा का दर्शन (हो सकता है)।

टिप्पणी (Notes)

कियच्चिरं इत्या०— जिस प्रकार मेघाच्छन्न आकाश में मेघों के बीच में कभी कभी क्षण भर के लिये पूर्णिमा चन्द्र के दर्शन हो जाते हैं, उसी प्रकार मेरे दुर्भाग्यरूप मेघों से छिपाये हुए पूर्णिमाचन्द्र के समान राम के, मुझे इतने समय के पश्चात् सौभाग्य से कुछ क्षणों के लिए दर्शन हो गये हैं। इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द एवं उत्प्रेक्षा अलंकार है।

{८५} तमसा— अहो संविधानकम्।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदा—

भिन्नः पृथक्पृथग्विश्रयते विवर्तान्।

आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा—

नम्भो यथा, सलिलमेव तु तत्समग्रम्॥४७॥

अन्वयः— एकः एव करुणः रसः निमित्तभेदात् भिन्नः सन् पृथक् पृथक् विवर्तान् आश्रयते, यथा अम्भः आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान् (आश्रयते)।

{८५} शब्दार्थ— संविधानकं = सम्यक् रचना, रचनावैचित्र्य। निमित्तभेदात् = कारण भेद से। विवर्त = अतात्त्विक अन्यथाभाव, किसी वस्तु की भ्रम के कारण अन्य रूप में प्रतीति। आवर्त = जल का भँवर। बुद्बुद = बुलबुल। विकार = रूपान्तर। अम्भः = जल।

अनुवाद—तमसा— अहो (राम तथा सीता के जीवन की) घटनाओं का विचित्रकम अथवा अहो रचनावैचित्र्य! एक ही करुणरस (विभावादि) निमित्तों के भेदों से भिन्न होता हुआ। मानों (शृङ्गारादि के रूप में प्रतीत होनेवाले) अलग—अलग अवास्तविक परिणामों (विवर्तों) का आश्रय होता है, जैसे एक (अभिन्न) जल ही (वायुक्षोभादि के निमित्त भेद से) भँवर, बुद्बुद तथा तरङ्गरूप विकारों (परिवर्तनों) का आश्रय होता है, परन्तु वह सब (वास्तव में) जल ही है।

व्याकरण— संविधानकम्— संविधीयते इति संविधानकम्, सम्—वि— धा + ल्युट्, स्वार्थे कन्। भिन्नः— भिद् + क्त। विवर्त— वि— वृत् + घञ्। विकार— वि— कृ + घञ्।

टिप्पणी (Notes)

संविधानकम्— यह शब्द यहाँ दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है— (१) राम तथा सीता के जीवन में घटित विविध घटनाओं का विचित्रक्रम, जिससे वे सभी घटनाएं एक ही अर्थ (शोक) का प्रतिपादन करने में समर्थ होती हैं। (२) नाटक का रचनावैचित्र्य, जिससे नाटक में अभिव्यक्त सभी भावों का करुणरस में ही पर्यवसान होता है।

एको.....विवर्तान्— तमसा के कहने का तात्पर्य यह है कि— राम तथा सीता के जीवन की समस्त घटनाओं के मूल में करुण रस विद्यमान है, वह करुण रस ही भिन्न भिन्न निमित्तों के कारण भिन्न भिन्न रसों के रूप में परिवर्तित होता हुआ प्रतीत होता है, वस्तुतः तो वे भिन्न भिन्न रस

करुणरस के विवर्त अर्थात् अतात्त्विक रूपान्तर ही हैं, जिस प्रकार आवर्त बुद्बुद तरङ्ग इत्यादि जलविकार मूल में तथा अन्त में जलमात्र ही हैं उसी प्रकार राम तथा सीता के जीवन में (तथा इस नाटक में) भिन्न-भिन्न रस भी मूल में वस्तुतः करुणरस हैं और वे करुणरस में ही पर्यवसित होते हैं। यहाँ भवभूति ने तमसा के कथन के व्याज से नाटक के रचनावैचित्र्य की प्रशंसा की है।

विवर्त— यह शब्द वेदान्त का पारिभाषिक शब्द है, इसका अर्थ अवास्तविक रूपान्तर (मिथ्या प्रतीति मात्र) होता है। भवभूति ने विवर्त शब्द इस नाटक में अनेक बार प्रयुक्त किया है।

आवर्तबुद्बुद— यह ब्रह्म की अद्वैतता सिद्ध करने के लिये वेदान्तशास्त्र का प्रसिद्ध दृष्टान्त है,— “तथाहि समुद्रादुदकात्मनोऽनन्यत्वेऽपि तद्विकाराणां फेनवीचितरङ्गबुद्बुदादीनामितरेतरविभाग इतरेतरसंश्लेषादिलक्षणश्च व्यवहार उपलभ्यते।” (ब्रह्मसूत्र २।१।३ पर शा०भा०), तथा “यथा च समुद्रात्मनैकत्वं फेनतरङ्गाद्यात्मना नानात्वम्” (ब्रह्मसूत्र २।१।४ पर शा०भा०)

[८६] रामः— अयि विमानराज, इतः इतः।

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति)

तमसावासन्त्यौ— (सीतारामौ प्रति)

अवनिरमरसिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः

स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां यः प्रयोक्ता।

स च मुनिरनुयातारुन्धतीको वसिष्ठ—

स्त्वयि वितरतु भद्रं भूयसे मङ्गलाय ॥४८॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति छाया नाम तृतीयोऽङ्कः ॥

अन्वयः— अस्मद्विधाभिः सार्धम् अविनिः अमरसिन्धुः स च कुलपतिः यः छन्दसाम् आद्यः प्रयोक्ता, स च अनुयातारुन्धतीकः वसिष्ठो मुनिः भूयसे मङ्गलाय त्वयि भद्रं वितरतु।

[८६] **शब्दार्थः**— अविनिः = पृथिवी। अमरसिन्धुः = देवकी गङ्गा। अनुयातारुन्धतीकः = अरुन्धती से अनुसरण किया जाता हुआ। वितरतु = प्रदान करें। भद्रं = कल्याण।

अनुवाद— राम— हे विमानराज, इस ओर से, इस ओर से। (सब उठते हैं।) तमसा तथा वासन्ती— (सीता तथा राम के प्रति) हम जैसों के सहित पृथ्वी, गङ्गा और वह कुलपति जो छन्दों का सबसे पहला प्रयोग करनेवाला है, और वह (प्रसिद्ध) वसिष्ठ मुनि जिसको अरुन्धती अनुसरण करती है, महान् मङ्गल के लिये तुम्हें कल्याण प्रदान करे। (सब चले जाते हैं)।

व्याकरण— आद्यः — आदौ भवः, आदि + यत्। भूयस्— बहु + ईयसुन्। अनुयातारुन्ध

तीकः — 'नद्युतः' (पा०) इति कप् समासान्तः।

टिप्पणी (Notes)

सीतारामौ प्रति— तमसा तथा सीता ये दोनों वासन्ती तथा राम के लिये अदृश्य हैं, अथवा तमसा सीता के प्रति जो आशीर्वचन बोलती है, वही वासन्ती राम के प्रति भी बोलती है। इस श्लोक में कथित सभी महानुभाव नाटक के अन्त में होनेवाले सीता तथा राम के समागम रूप मङ्गल में सहायक हुए हैं। इस श्लोक में मालिनी छन्द, तुल्योगिता अलंकार है।

॥ तीसरा अङ्क समाप्त ॥

८.३ अभ्यास प्रश्न

क— अतिलघुत्तरीय प्रश्न—

१. छाया अंक किसे कहा जाता है?
२. करुण रस की पूर्ण अभिव्यक्ति किस अंक में हुयी है?
३. शोकजन्य क्षोभ को कैसे मिटाया जा सकता है?
४. रामचन्द्र जी ने सीता का परित्याग किसलिए किया है?
५. सीता जी को मनुष्य तथा देवता भी किसके प्रभाव से नहीं देख सकते हैं?

ख— निम्नलिखित श्लोकों की व्याख्या कीजिए—

१, ४, ५, १३, १५, १७, २६, २७, ३०, ३१, ३२, ४५, ४७, ४८।

ग— विस्तृत प्रश्न —

१. नाटकीय दृष्टि से तृतीय अङ्क का महत्व पर प्रकाश डालिए।
२. तृतीय अङ्क को छाया अङ्क क्यों कहा गया है? स्पष्ट कीजिए।
३. करुण रस की दृष्टि से तृतीय अंक का मूल्यांकन कीजिए।
४. तृतीय अङ्क के परिप्रेक्ष्य में राम की विरह वेदना पर प्रकाश डालिए।
५. काव्यीय न्याय (Poetic Justice) की दृष्टि से तृतीय अंक के घटनाओं का मूल्यांकन करें।

इकाई ८ — सुभाषित वाक्य

इकाई की रूपरेखा

८.० उद्देश्य।

८.१.१ सुभाषित वाक्यों का स्वरूप एवं महत्त्व।

८.१.२ उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक के सुभाषित वाक्य।

८.१.३ उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक के सुभाषित वाक्य।

८.१.४ उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक के सुभाषित वाक्य।

८.२ प्रथम अंक से तृतीय अंक के सुभाषित वाक्यों का संकलन।

८.३ अभ्यास प्रश्न।

८.४ पुस्तकें।

८.० उद्देश्य —

इस इकाई को पढ़कर आप

- सुभाषित वाक्यों के स्वरूप एवं महत्त्व की जानकारी प्राप्त करेंगे।
 - प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय अंक के सुभाषित वाक्यों की व्याख्या कर सकेंगे।
 - उत्तररामचरितम् के प्रमुख सुभाषित वाक्यों से सुपरिचित होंगे।
 - उक्त अंकों के सुभाषित वाक्यों की सन्दर्भ सहित व्याख्या पढ़कर विश्लेषणात्मक क्षमता प्राप्त करेंगे।
-

८.१.१ सुभाषित वाक्यों का स्वरूप एवं महत्त्व —

सुभाषित = सुष्ठु कथन। सु+उक्ति = अर्थात् सुन्दर उक्ति। सुभाषित वाक्यों का अभिप्राय महाकवि के उन वाक्यों से लिया जाता है जो काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से विशेष चित्ताकर्षक तथा सारगर्भित होते हैं। इनको ही विद्वानों ने सुक्ति वाक्यों की संज्ञा से अभिहित किया है। विश्व के सभी काव्य ग्रन्थों में सुभाषित वाक्य मिलते हैं। जिन रचनाओं में सुभाषित वाक्यों की जितनी बहुलता होती है वे रचनाएँ उतनी ही उत्कृष्टतम् मानी जाती हैं। वस्तुतः कवि के सुभाषित वाक्य गागर में सागर भरने का सशक्त प्रयास है। विचार और भाव दोनों दृष्टि से सुभाषित वाक्य का अपना विशिष्ट स्थान है। यही कारण है कि सहृदय जन महाकवियों के सुभाषितों का मनन करते रहते हैं। ये सुभाषित वाक्य कवि की समासशैली के उत्कृष्टतम् परिचायक होते हैं। सहृदय जनों के लिए सुभाषित वाक्य सतत प्रेरणास्पद एवं मार्गदर्शक होते हैं। उत्तररामचरितम् में प्रयुक्त सुभाषित

वाक्य महाकवि भवभूति के विशिष्ट प्रतिभा के परिचायक हैं।

८.१.२ प्रथम अंक के सुभाषित वाक्यों की व्याख्या —

१— सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगाः भवन्ति

सप्रसंग व्याख्या —

प्रस्तुत सूक्ति सीता द्वारा कही गयी है। राम के राज्याभिषेक के अवसर पर उनके पिता विदेहराज अयोध्या में आये हुए थे किन्तु कुछ समय रुकने के पश्चात् अग्निहोत्रादि कार्यों के नियमित रूप से संपादनार्थ की दृष्टि से मिथिला के लिए प्रस्थान कर चुके हैं। सीता अपने पिता के चले जाने के कारण खिन्न मन वाली हो गयी हैं। उनको अतिशय दुःख का अनुभव हो रहा है जब कि उनके लिए सुख के सभी साधन उपस्थित हैं। किसी भी प्रकार का अभाव नहीं है। धर्मासन से उठकर स्वयं राम उनको धैर्य धारण कराने और आश्वासन देने के लिए उनके कक्ष में उपस्थित होते हैं। वह कहती है “आर्यपुत्र मैं भलीभाँति जानती हूँ कि गुरुजन (स्वजन) कभी भी आत्मीय जनों का परित्याग नहीं कर सकते हैं उनका वरद हस्त सदैव प्रियजनों के ऊपर रहता है फिर भी उनके वियोग से उत्पन्न सन्ताप अन्तःकरण को विदीर्ण कर देता है। बन्धुजनों का सम्बन्ध रागात्मक (भावनात्मक) होता है। हृदय तो चाहता है कि कभी भी बन्धुजनों का वियोग न हो, सदैव ही संयोग बना रहे, जबकि इस नश्वर संसार में यह सब असंभव है। इसलिए यदि बन्धुजन हैं तो उनसे हार्दिक सम्बन्ध होगा और संयोग और वियोग भी समयानुसार होगा अतः सुख और दुःख की अनुभूति भी करनी पड़ेगी। मेरा हृदय आज गुरुजन के वियोग से उत्पन्न सन्ताप से ग्रस्त है।

२— एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः।

सप्रसंग व्याख्या —

प्रस्तुत सूक्ति भवभूति कृत उत्तररामचरित नाटक के प्रथम अंक से उद्धृत है। मंच पर राम और सीता उपस्थित हैं। राज्याभिषेक के अवसर पर अयोध्या में पधारे हुए महाराज जनक अग्निहोत्रादि कार्यों की निर्विघ्न समाप्ति के लिए जनकपुर प्रस्थान कर चुके हैं। पिता के चले जाने के कारण जानकी का हृदय वियोगजन्य संताप का अनुभव कर रहा है। वह कहती है “स्वजनों का वियोग सन्तापकारी होता है।” राम उनके कथन का समर्थन करते हुए कहते हैं “प्रिये! जो कुछ भी तुमने कहा है, वह पूर्णतः सत्य है। वास्तव में संसार का स्वभाव ही ऐसा है। सांसारिक बन्धन होता ही ऐसा है। ये सांसारिक बन्धन (संसारभाव) हृदय के मर्म-स्थल को विदीर्ण कर देने वाले होते हैं, यही कारण है कि धीरे धीरे इनसे घृणा करते हुए सम्पूर्ण कामनाओं का परित्याग कर बनों में विश्राम करते हैं। इच्छा ही दुःखों का मूल है। तत्त्ववेत्ता मनुष्य सांसारिक प्रपंच छोड़कर एकान्त स्थान पर शान्ति से जीवन व्यतीत करते हैं। वीरराघव ने इसके स्थान पर ‘संसारभागा’ शब्द प्रयुक्त किया है। ‘भाग’ शब्द का अर्थ है सुख अथवा दुःख का वह भाग (अंश) जो किसी प्राणी को अपने कर्मफल के रूप में भोगना पड़ता है। घनश्याम ने ‘संसारभोग’ शब्द प्रयुक्त किया

है, भोग शब्द का अर्थ है सुख अथवा दुःख का अनुभव। तात्पर्य यह है कि जो भी मनुष्य इस संसार में रहता है उसको सांसारिक बन्धन अवश्य ही सन्ताप देंगे। यह नियति है।

३— युक्तः प्रजानामनुरंजने स्याः तस्माद् यशः यत् परमं धनं वः

सप्रसंग व्याख्या —

प्रस्तुत सूक्तिवाक्य उत्तररामचरित के प्रथम अंक से उद्धृत है। ऋष्यशृंग के यहाँ से अष्टावक्र जी अयोध्या में गुरुजनों का संदेश लेकर आये हुए हैं। राम के द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या गुरुदेव ने मेरे लिए भी कुछ आदेश दिया है? अष्टावक्र जी राम के प्रति उनके संदेश को सुनाते हुए कह रहे हैं 'हमलोग ऋष्यशृङ्ग के यज्ञ के कारण रुके हुए हैं। हे राम् तुम अभी बालक हो। राज्य नया है। प्रजापालन का अभी तुम्हारा कोई अपना अनुभव भी नहीं है। इसलिए तुम प्रजा का अनुरंजन करने में सदा सावधान रहना। प्रजाओं के संतोष में सतत तत्पर रहने से सर्वत्र यश का विस्तार होता है जो आप ध्रुवशियों का उत्कृष्ट धन है। कहने का अभिप्राय यह है कि राज्य के नये होने और कोई अनुभव न होने के कारण किसी भी प्रकार का विघ्न उपस्थिति हो जाना स्वाभाविक है। वसिष्ठ को यह सन्देह है इसीलिए राम को सावधानचित्त रहकर प्रजानुरंजन का संदेश देते हैं।

भारतीय संस्कृति में रामराज्य की कल्पना आदर्श मानी जाती है और उसका बीज वसिष्ठ जी के इस आदेश में निहित है। राजा शब्द की निष्पत्ति ही प्रजाओं का रंजन करने से होती है, वसिष्ठ का आदेश है कि राजा का यश तभी होता है जब वह प्रजाओं के अनुराग का भाजन बना रहता है। इसकी पुष्टि में उन्होंने राम के पूर्वजों का ही उदाहरण दिया है कि तुम्हारे पूर्वजों ने यश को ही परम धन माना है, उनका यश इसीलिए हुआ कि वे प्रजाओं में युक्त रहते थे। तुम नये राजा हो, तुम्हें भी इस आदर्श का पालन करना चाहिए।

४— तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हति।

सप्रसंग व्याख्या —

लक्ष्मण के कहने पर अर्जुन नामवाले चित्रकार ने राम के जीवन चरित्र को चित्राभित्ति पर चित्रित किया है। लक्ष्मण इस चित्र को देवी सीता को दिखाकर उनका मनोविनोद करना चाहते हैं। राम के यह पूछने पर कि यह चित्र कहाँ तक चित्रित किया गया है, लक्ष्मण के द्वारा यह कहे जाने पर कि आर्या (सीता) की अग्निशुद्धि तक — राम को दुःख होता है और वे कहते हैं कि जन्म से ही परमपवित्र सीता की शुद्धि के लिए अन्य पवित्रकारी पदार्थों की क्या आवश्यकता? तीर्थ का जल और अग्नि ये अन्य पदार्थ से शुद्धि के योग्य नहीं होते हैं। 'पावयन्ति इति पावनानि' जो दूसरों को पवित्र करने में स्वयं सक्षम पदार्थ हैं वे परमपावन कहलाते हैं गंगाजल और अग्नि तो सदा स्वतः शुद्ध है। सीता तो उत्पत्ति से ही परिपूता हैं। ये अयोनिजा हैं इनका जन्म यज्ञभूमि से हुआ था। ये निष्पाप हैं। इनकी शुद्धि किसी भी पदार्थान्तर से सम्भव नहीं है। सीता तीर्थोदक तथा अग्नि के समान सदा स्वतः शुद्ध हैं।

५— नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा।

मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ॥

सप्रसंग व्याख्या —

राम सीता से कह रहे हैं। हे देवि! तुम यज्ञभूमि से उत्पन्न हो, तुम प्रसन्नचित्त रहो। यह प्रवाद कि तुम्हारी अग्निपरीक्षा हुई थी, तेरे जीवनपर्यन्त रहेगा। यह खेद की बात है कि सुगन्धित फूल का सिर पर रखा जाना स्वभावसिद्ध है, न कि उसका पैरों से कुचला जाना। सीता की निन्दा करना ऐसा ही कार्य है जैसे फूलों का पैरों से कुचला जाना। रघुवंशी राजाओं के कुल की परम्परा रही है कि वे प्रजाहित को अपना कुलधन समझते हैं। मैं अपनी कुलपम्परा का निर्वाह करना परम कर्तव्य समझता हूँ, किन्तु लोगों ने हम दोनों के विषय में जो अनुचित और अभद्र बातें कही हैं, वह तुम्हारे विषय में कहना उचित नहीं है।

जिस प्रकार सुरभित कुसुम सिर पर धारण किये जाते हैं और उनसे सिर की शोभा बढ़ती है उसी प्रकार तुम्हारे परम पवित्र चरित्र की सराहना की जानी चाहिए। तुम्हारे चरित्र—वर्णन से हृदय प्रफुल्लित और आनन्दित हो सकता है। जिस प्रकार वे पुष्प पैरों से रौंदे नहीं जाते उसी प्रकार सीता के पवित्र चरित्र में किसी भी प्रकार का दोषारोपण करना अनुचित है, ऐसा राम का अभिप्राय है।

प्रजानुरंजन का व्रत कष्टकारी होता है। इसी व्रत के कारण यह अपवाद भी सुनना पड़ेगा।

६— ते हि नो दिवसा गताः।

सप्रसंग व्याख्या —

लक्ष्मण भित्तिचित्र पर अंकित रामचरित के दृश्यों को दिखा रहे हैं। चित्रदर्शन के क्रम में विवाह से सम्बन्धित चित्रों को देखकर राम की पुरानी स्मृतियाँ ताजी हो उठती हैं और उनकी आँखों से आँसू छलक पड़ते हैं। वे सहसा कह उठते हैं— हाय वे दिन कैसे थे जब हमारे पिताश्री जीवित थे, हम लोगों का नया विवाह हुआ था, पूजानीया माताएँ हम लोगों की चिन्ता करती थीं, वे दिन बीत गये। “ते हि दिवसा गताः” में पिछली अनुभूतियों के लिए कितनी लालसा, उत्सुकता और व्यथा है, इसका कोई भी सहृदय अनुमान कर सकता है। वस्तुतः मानव का सहज स्वभाव है कि अतीत में घटित घटनाओं का किसी भी तरह से जब चित्त पर विम्ब उभरता है, तब एक बार व्यक्ति पुनः अतीतजीवी हो जाता है और चाहे सुखद अनुभूतियाँ हो या दुःखद अनुभूतियाँ — अपना—अपना पृथक्—पृथक् प्रभाव छोड़ जाती हैं। भित्तिचित्र में चित्रित विवाह से सम्बन्धित साँचे दृश्य जहाँ राम के लिए बड़े ही सुखद प्रतीत हो रहे हैं, माताओं की ममता, उनका वात्सल्य भाव उनके हृदय में स्नेह का संचार करता है, वहीं अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले पूज्य पिता का दर्शन उन्हें एक विलक्षण मनःस्थिति में डाल देता है।

महाकवि भवभूति ने राम के माध्यम से उस शाश्वत सत्य का बोध कराना चाहता है

कि इस चलायमान संसार में कुछ भी सदा रहने वाला नहीं है। जो आज वर्तमान है वह अतीत हो जायेगा। सुख—दुःख निरन्तर चलने वाला क्रम है। बौती हुई घटनाएँ भौतिक रूप से समाप्त तो हो जाती हैं, किन्तु चित्त के ऊपर उनकी एक अमिट छाप पड़ी रहती है। जब कभी कोई स्मारक उपस्थित हो जाता है, उसे देखते ही व्यक्ति अतीत की स्मृतियों में डूब जाता है। भित्तिचित्र अतीत का स्मरण दिला रहे हैं।

७— दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।

सप्रसंग व्याख्या —

लक्ष्मण चित्रवीथिका के दृश्यों को सीता को दिखा रहे हैं। विविध प्रकार के दृश्य सीता देख रही है। पंचवटी में शूर्पणखा—विवाह का दृश्य सीता के समक्ष उपस्थित है। इस दृश्य को देखकर वे भयभीत हो जाती हैं। अतीत के दृश्य जीवन्त हो उठते हैं। इसी घटना के बाद सीता का हरण हो गया था, राम का उनसे वियोग हो गया था। अपनी अतीत की वियोगजनित व्यथा की स्मृतिमात्र से भयग्रस्त हो जाती हैं। राम कहते हैं— “देवी घबराओ नहीं क्योंकि ये तो चित्र—मात्र है न कि वास्तविकता”। सीता कहती हैं— “चाहे जो हो, दुर्जन अनिष्ट करता ही है। दुष्ट जन हर तरह से कष्टप्रद ही होते हैं। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में हो, उनकी स्मृति भी दुःखदायी होती है। सज्जनों से उनका स्वाभाविक वैर होता है, इसलिए वे सन्तापदायक होते हैं। उनसे सदैव दूर रहना श्रेयस्कर होता है। शूर्पणखा रावण की बहन थी और अपने भाई खरदूषण के साथ दण्डकारण्य में रहती थी। शूर्पणखा के अभद्र प्रस्ताव पर क्रुद्ध होकर लक्ष्मण ने उसकी नाक काटी थी। यही विवाद सीता—हरण का कारण बना और खरदूषण के विनाश तथा स्वर्णपुरी लंका के अधिपति रावण के कुल के नाश का मूल हेतु सिद्ध हुआ। शूर्पणखा दुर्जन स्वभाव की थी, जिसके कारण विविध प्रकार की विपत्तियों का जन्म हुआ। ठीक ही कहा गया है कि दुर्जन हर तरह अनिष्ट ही उत्पन्न करते हैं। शूर्पणखा इसका ज्वलन्त उदाहरण है। सीता भयभीत होकर इस कटु सत्य का कथन कर रही हैं। प्रायः लोकव्यवहार में यह देखा जाता है कि लोग दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति का नाम भी लेना उचित नहीं समझते हैं। मिलना या सम्पर्क करने की तो बात ही क्या है।

८— अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।

सप्रसंग व्याख्या —

प्रस्तुत सूक्त वाक्य चित्रवीथिका को दिखाते हुए लक्ष्मण का कथन है। शूर्पणखा के दृश्य को देखकर सीता घबरा गईं। उन्हें पहला प्रसंग स्मरण आ गया। शूर्पणखा के काण्ड के बाद ही सीता—हरण हुआ था। इसलिए उन्हें अब भी वही शंका बनी हुई है। लक्ष्मण द्रवित हृदय से कह रहे हैं कि पापी राक्षसों के द्वारा स्वर्णमृग के छल से यह ऐसी घटना घटी जो कि प्रतिकार किये जाने पर भी दुःख देती है। निर्जन स्थान में खिन्न—चित्त आपके चरितों से पत्थर भी रो पड़ा था और वज्र का भी हृदय फट गया था। वास्तव में करुण भावनाओं के चित्रण में भवभूति के समान

सफलता सम्भवतः बहुत कम कवियों को मिली हो। करुणारसाचार्य भवभूति का यह श्लोक बड़ा ही मार्मिक है। भगवान राम ने सीता—हरण के पश्चात् जो करुणक्रन्दन किये थे, उनका हृदय जिस अन्तर्दाह का अनुभव किया था, उसका वर्णन शब्दों में कर पाना किसी समर्थ महाकवि द्वारा ही संभव है। राम के विलाप से पत्थर भी पिघल उठे थे, और वज्र का हृदय भी टुकड़े—टुकड़े हो गया था। सामान्य सहृदय व्यक्ति का द्रवीभूत होना तो सामान्य बात है, जिनका हृदय पाषाणवत् है, वज्र के समान कठोर तथा क्रूर है वे भी राम के विलाप से रो उठे थे। पत्थर को रुलाना तथा वज्र को भी संवेदन—शील बनाना निस्संदेह भवभूति का ही कौशल है। उनके सम्बन्ध में गोवर्धनाचार्य ने ठीक कहा है—

भवभूतेः सम्बन्धाद्भूधरभूरेव भारती भाति।

एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥

सीता से सम्बन्ध रखने वाली कौन सी वस्तु नहीं है जो मुझको अतिशय प्रिय नहीं है। यह राजमहल में मेरे लिए लक्ष्मीस्वरूप है। सीता मेरे नेत्रों के लिए अमृतशलाका के समान ज्योति और शीतलता देने वाली है, इसके अंगों का यह स्पर्श मेरे शरीर पर गहरे चन्दन रस के लेप के समान सुगन्धि और शीतलता देने वाला है, तथा मेरे गले में पड़ी हुई इसकी यह बाहु मेरे लिए शीतल एवं कोमल मोतियों की माला के समान आनन्दप्रद है। इस प्रकार इसकी प्रत्येक वस्तु मेरे लिये आनन्ददायिनी है, किन्तु यदि इससे कभी वियोग होगा तो अवश्य ही वह मेरे लिये अत्यन्त असहनीय होगा। जिससे जितनी प्रियता होती है, जितना लगाव होता है, उतना ही अधिक उसके वियोग से सन्ताप भी होता है।

सहृदय इस सत्य का अनुमान लगा सकते हैं। राम के हृदय में अपनी प्राणप्रिया सीता के लिए कितना प्रेम है। ऐसी प्राणवल्लभा को लोकापवाद के कारण परित्याग करने के पश्चात् राम को कितनी व्यथा हुई होगी? राम की उसी विरहव्यथा का दिग्दर्शन भवभूति ने अपनी अमर कृति में कराया है। राम का यह कथन है कि कभी इसका वियोग होगा तो वह सहन करने योग्य नहीं होगा। राम असह्य वियोगजनित संताप का अनुभव करते हैं।

९— सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्।

सप्रसंग व्याख्या —

राम का विश्वासपात्र गुप्तचर दुर्मुख राम के समक्ष उपस्थित होकर उनके प्रजापालन के प्रति पुरवासियों की प्रशंसात्मक आख्या देता है। राम कहते हैं, “मेरा कोई दोष भी बताओ।” राम के ऐसा कहने पर आंखों में आंसू भरकर राम के कान में सीताविषयक लोकापवाद की सूचना

ता है। राम यह सुनकर स्तब्ध रह जाते हैं। वे कहते हैं, “पागल कुत्ते के विष की भाँति पुनः वही ग्रेकापवाद सर्वत्र फैल गया है।” असमंजस की स्थिति में विचार करते हैं और कहते हैं, “मैं न्दभाग्य क्या करूँ?” एकाएक उनके निर्मलहृदय में यह सद्विचार उत्पन्न होता है कि किसी भी कार लोकाराधन करना श्रेष्ठ व्यक्तियों का कर्तव्य है। पिताजी ने मुझे और अपने प्राणों को ग्रेडकर लोकाराधन के व्रत का ही पालन किया था और गुरुदेव का भी यही सन्देश था। अतः मुझे भी लोकानुरंजन के लिए हर संभव कार्य करना ही चाहिए।

०— इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोः।

प्रसंग व्याख्या —

चित्रवीथिका के दृश्यों को देखते—देखते सीता को थकान का अनुभव होने लगता है। राम ने अनुरोध पर उनकी बाहु का उपाधान बनाकर उन्हीं के वक्षःस्थल पर सो जाती हैं। राम उन्हें अनुरागपूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं। सीता के प्रति उनके हृदय में जिस प्रकार की स्नेहिल भावनाएँ जागृत हो रही हैं, कवि उनके अभिव्यक्ति प्रदान कर रहा है।

राम कहते हैं कि प्रिय वचन बोलने वाली सीता मेरे घर में लक्ष्मी के समान है। यह वह देवता है जो हमारे घर में सौभाग्य का वर्धन करता रहता है। मधुरभाषिणी गृहणियाँ ही घर की शोभा होती हैं। यही कारण है कि “गृहिणी गृहमुच्यते” कहा गया है। यह लक्ष्मीस्वरूपा होती हैं। इनसे घर में श्रीवृद्धि होती है। राम को इस सत्य का बोध हो रहा है। यह कथन सीता के प्रति अतिशय प्रेम का सूचक है। भावविह्वल राम आगे कहते हैं— यह मेरे नेत्रों के लिए सुधामयी अंजनशलाका के समान है। इसको देखने से नेत्रों को आनन्दानुभूति होती है। नेत्र खिल उठते हैं, हृदय पुलकित हो जाता है। वास्तव में आँखें सुन्दररूप देखने के लिए तरसती रहती हैं राम के कहने का अभिप्राय है कि मैं सौभाग्यशाली हूँ क्योंकि इसके दर्शनमात्र से नेत्र शीतल हो जाते हैं।

११— किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ।

प्रसंग व्याख्या —

ऋष्यशृङ्ग के द्वादशवार्षिक यज्ञ की पूर्णता में सम्मिलित होकर लौटते समय जनक की विदाई से दुःखित सीता को सान्त्वना देने के लिए श्रीराम वासगृह में आते हैं। श्रीराम को दो सन्देश प्राप्त हुए हैं, प्रथम यह कि सीता गर्भवती हैं, अतः इनके दोहद का ध्यान रखना है तथा द्वितीय यह कि प्रजानुरंजन राजा का प्रथम कर्तव्य है और इसके लिए कठोर निर्णय लेने में भी सर्वदा सन्नद्ध रहना चाहिए। श्रीराम इस मनोगत द्वन्द्व के साथ सीता के पास आते हैं, उन्हें सान्त्वना देते हैं। सीता अपने कष्ट को विस्मृत कर उनके बाहुपाश में सो जाती हैं। भगवती सीता के सर्वातिशायी

व्यक्तित्व से सम्मोहित श्रीराम उनके भावी असह्य वियोग की आशंका से दुःखी होकर कह उठते हैं कि— जानकी मेरे घर की लक्ष्मी है तथा मेरे नेत्रों के अमृत की अञ्जनशलाका है। उसका स्पर्श मेरे लिए चन्दन लेप के समान शीतलता प्रदान करने वाला है तथा उसकी बाहें शीतल, मसृण मुक्ताहार के समान हैं। मेरे लिए इसका सबकुछ अतिशय प्रिय है किन्तु यदि अत्यन्त असहनीय है तो वह इसका विरह है।

सीता के प्रति राम की अतिशय प्रेमपूर्ण भावाभिव्यक्ति इस सूक्ति में प्रदर्शित की गयी है। प्रस्तुत सूक्ति उत्तररामचरित के प्रथम अंक के ३८वें श्लोक का अंश है। यह सार्वभौमिक और सार्वकालिक सत्य है कि प्रिय व्यक्ति से सम्बन्धित हर वस्तु प्रिय होती है। यदि कुछ अप्रिय होता है, असह्य होता है तो केवल प्रिय जन का वियोग है।

१२— श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्वमम्

सप्रसंग व्याख्या —

गुप्तचर दुर्मुख के मुख से सीता—सम्बन्धी लोकापवाद को सुनकर राम सीता के परित्याग का निश्चय कर लेते हैं। राम अपने मन में विचार करते हैं कि इक्ष्वाकुवंश सदा से प्रजाओं को प्रिय रहा है। परन्तु आज दुर्भाग्यवश उसमें निन्दा का एक कारण उत्पन्न हो गया है तो हम प्रजाओं को दोष क्यों दें? अग्निपरीक्षा के समय जो आश्चर्यजनक कार्य हुआ था, उसका दूरस्थ होने के कारण कौन विश्वास करे? इसलिए नागरिकों पर कोई लांछन लगाना उचित नहीं है। राम निर्दोष, निरपराध, भोली—भाली सीता जो उनको प्राणों से भी अधिक प्रिय है परित्याग का आदेश लक्ष्मण को दे देते हैं। किन्तु यह कार्य उनको बड़ा ही घृणित और क्रूर लग रहा है बिना बताये गंगा—स्नान और अरण्य—दर्शन के बहाने सीता को जंगल में ले जाकर छोड़ने का आदेश उनको वैसा ही प्रतीत हो रहा है जैसे कोई कसाई बचपन से पाली हुई साथ रहने वाली घरेलू चिड़िया को मौत को सौंप देता है, मार देता है। अपने को चाण्डाल तक कह डालते हैं। कहते हैं— आर्ये, भोली—भाली सीते, तुम चन्दन के धांखे से पांरङ्गाम से भयंकर, विषवृक्ष का आश्रय ग्रहण कर रही हो। मुझसे तुम्हारा हित होगा, तुम्हारा यह विश्वास भ्रम ही है। तुमने तो चन्दन के भ्रम से प्राणसंहारक वृक्ष का अवलम्बन किया है, इसलिए मुझे छोड़ो। राम के कहने का अभिप्राय यह है कि मैं विष का वृक्ष हूँ। तुमने मुझे भ्रम से चन्दन समझकर अपनाया है, अतः तुम्हें यह दुख मिल रहा है। प्रजानुरंजन के लिए राजा राम ने भले ही सीता—परित्याग का निर्णय लिया है किन्तु राम एक मनुष्य भी है। उनका अन्तःकरण इस क्रूर कर्म को स्वीकार नहीं कर रहा है। यही कारण है कि वे अपने को अपूर्व चाण्डाल तक कह डालते हैं। उनके हृदय के अन्तर्द्वन्द्व का बड़ा ही

मार्मिक चित्रण किया गया है। राम के इस कार्य को उनका हृदय कभी भी क्षमा नहीं कर सका, न ही सहन कर पाया है। हम कह सकते हैं कि राजा राम ने सीता का परित्याग किया है न कि पति राम ने। अपनी प्राणप्रिया का परित्याग किया है कर्तव्य और भावना के अन्तर्द्वन्द्व में कर्तव्यनिष्ठा की ही विजय होती है।

८.१.२ उत्तररामचरित के द्वितीय अंक के सुभाषित वाक्यों की व्याख्या —

१— सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति।

सप्रसंग व्याख्या —

मंच के ऊपर पथिक के वेष में एक तपस्विनी का प्रवेश होता है। इसका नाम आत्रेयी है। दण्डकारण्य की वनदेवता वासन्ती जो सीता तथा राम की पुरानी सखी है, फल-फूल और पल्लव युक्त अर्घ्य से दूर से ही तपस्विनी का स्वागत करती है। तपस्विनी के आगमन से अत्यन्त हर्षित होकर वह कहती है— सज्जनों का सज्जनों से मिलन बड़े पुण्य से होता है। सत् की उपासना में जो मनसा, वाचा, कर्मणा संयत—इन्द्रिय होकर तत्पर होते हैं, वे सज्जन कहे जाते हैं। इनका हृदय सद्भावों से भरा होता है। लोकमंगल ही इनका उद्देश्य होता है। इनकी उपस्थिति जहाँ होती है, वह स्थान परम पवित्र हो जाता है। वह समय बड़ा ही मूल्यवान और महत्वपूर्ण हो जाता है। ऐसा समय जिन लोगों को मिलता है, उनका जीवन धन्य हो जाता है। ऐसे साधु चरित जनों का मिलन जब किसी ऐसे ही साधुपुरुष से होता है तो फिर कहना क्या? तपस्विनी आत्रेयी वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में आध्यात्म विद्या का अध्ययन करने वाली एक ब्रह्मचारिणी है, वह वाल्मीकि के आश्रम को कतिपय कारणों से छोड़कर अगस्त्य आदि ब्रह्मवेत्ताओं के पास जा रही है। वनदेवी वन की अधिष्ठात्री देवी है जो अत्यन्त ही उदारचेता है। उसका विशाल हृदय है। तपस्विनी का स्वागत अर्घ्यादि द्वारा करके अपने को कृतार्थ करना चाहती है, क्योंकि वह जानती है कि सज्जनों का सज्जनों से समागम बड़े ही पुण्य से होता है। वह यह भी भली-भाँति जानती है कि गृहागत अतिथि का पाद्य, अर्घ्य इत्यादि से सत्कार करना एक प्रकार का शिष्टाचार माना गया है। इसी आशय की सूक्ति महाकवि माघकृत शिशुपालवध के प्रथम अंक में मिलती है—

“गृहानुपेतुं प्रणयाद भीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः।”

२— हन्त मण्डितः संसारः।

सप्रसंग व्याख्या —

हर्ष है तब तो सारा संसार अलंकृत हो गया है। आत्रेयी और वासन्ती (वनदेवता) परस्पर वाल्मीकि ऋषि के विषय में वार्तालाप कर रही हैं। आत्रेयी कहती है कि वाल्मीकि के अन्तःकरण में शब्दरूप

ब्रह्म का प्रकाश आविर्भूत हो चुका है। प्राणियों के विधाता भगवान् कमलयोनि (ब्रह्मा) ने स्वयं कहा है— हे ऋषि! तुम शब्दरूप ब्रह्म के विषय में प्रबुद्ध हो गये हो अतः रामचरित को कहो। तुम आदिकवि हो, अप्रतिहत प्रकाश वाला आर्षज्ञान तुम्हारे अन्तःकरण में सदा प्रकाशित हो। इसीलिए वाल्मीकि रामायण रचना में संलग्न रहने के कारण अति व्यस्त रहे हैं।

आत्रेयी के मुख से यह सुखद समाचार सुनकर वासन्ती हर्षित हो उठती है और कहती है — तब तो यह संसार अलंकृत हो गया है। उसके कहने का अभिप्राय है कि आजतक इस धराधाम पर लोक में छन्दोमयी वाणी (काव्यरचना) का अभाव था। कविप्रतिभा से शून्य संसार में इस तरह प्रतिभा सम्पन्न ऋषि के द्वारा रामचरित का वर्णन किया जायेगा जिससे सभी को काव्यानन्द की अनुभूति हो। काव्यानन्द ब्रह्मानन्दसहोदर होता है, इसलिए यह संसार शोभायमान हो गया है। संसार का शोभावर्धन ऋषियों के ज्ञान से ही होता है। वाल्मीकि आदि कवि हैं। इनके द्वारा रचित रामायण आदि महाकाव्य कहा जाता है। यदि उक्त सूक्ति वाक्य में 'मण्डितः' के स्थान पर 'पण्डितः' पाठ मिलता है तो भी उक्ति सार्थक है क्योंकि अब तो सारा संसार उस महाकवि द्वारा रचित महाकाव्य रामायण को पढ़कर पण्डित हो जायेगा। पण्डित उसे कहते हैं, जिसके पास पण्डा बुद्धि होती है। सत्—असत् का विवेक करने वाली बुद्धि जिसके पास होती है, वही पण्डित होता है। अब संसार के लोग धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के स्वरूप को सम्यक् प्रकार से ज्ञात कर लेंगे और मानव—जीवन के चरमलाभ आत्मकल्याण को प्राप्त करने में समर्थ हो जायेंगे। वास्तव में कवि स्वयंभू होता है, त्रिकालदर्शी होता है, प्रज्ञा—चक्षु सम्पन्न होता है। यही कारण है कि यह जगत् ऐसे मनीषियों के द्वारा वर्णित काव्यग्रन्थों से अपना मार्गदर्शन प्राप्त करता है। इसलिए वनदेवता का हर्षित होकर यह कहना कि मण्डितसंसारः या पण्डितः संसारः पूर्णतः सार्थक है। आदिकवि की वाणी से सर्वप्रथम अलंकृत होने का गौरव इस देश को प्राप्त है।

३— सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति।

सप्रसंग व्याख्या —

सज्जनों की संगति से उत्पन्न मृत्यु भी मनुष्यों का उद्धार करती है। प्रस्तुत सूक्तिवाक्य दिव्यपुरुष का स्वरूप धारण करने वाले शूद्र मुनि शम्बूक द्वारा कहा गया है। राम करुणासागर है, दयावान है, राम हृदय से किसी को कष्ट नहीं देना चाहते थे। ब्राह्मण बालक के रक्षार्थ उन्हें शम्बूक का वध करना पड़ा है। राम के शासनकाल में सम्पूर्ण समाज चार वर्णों में विभक्त था। सबके अलग—अलग कर्तव्य निर्धारित थे। यथा— जिन—जिन कार्यों से देश सुखसमृद्धि से सम्पन्न हो उन कार्यों का निष्पादन करना ब्राह्मण का कर्तव्य था। देश का रक्षा विभाग क्षत्रियों के लिए, धनादि

का संवर्धनात्मक व्यापारादि कार्य वैश्यों के लिए तथा सेवाविभाग शूद्रों के लिए निर्धारित था। किसी से किसी का जातिवंशकृत द्वेष नहीं था। सभी लोग अपने—अपने कर्तव्य में निरत रहते हुए सुखपूर्वक रहते थे किन्तु उस शासन—पद्धति का उल्लंघन, परित्याग करके शम्बूक तप में निरत था, इसीलिए राम को आकाशवाणी के आधार पर प्रजाहित में यह जघन्य कार्य करना पड़ा था। राम के द्वारा वध किये जाने पर ब्राह्मण बालक तुरन्त जीवित हो उठता है और इधर शूद्र तापस शम्बूक दिव्य स्वरूप धारण कर लेता है, जो किसी पाप के कारण इस तरह की स्थिति को प्राप्त हुआ था। दिव्य स्वरूप पाकर वह आनन्दित है। वह कहता है— राम, यम से अभयदान देने वाले आपके दण्डधारण करने पर वह ब्राह्मण बालक जीवित हो उठा और मेरी यह श्रीवृद्धि (दिव्यरूप—प्राप्ति) हुई। मैं सिर झुकाकर आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ। सज्जनों से उत्पन्न मृत्यु भी मनुष्यों का उद्धार करती है।

सूक्ति का अभिप्राय यह है कि साधुपुरुषों का साहचर्य हर प्रकार से सुखदायी होता है। उनके प्रत्येक कार्य कल्याणप्रद होते हैं, यहाँ तक कि उनके हाथों से यदि मृत्यु भी हो जाये तो वह भी भवसागर से तारने वाली हो जाती है। वास्तव में साधुपुरुष (सत्पुरुष) भगवत्स्वरूप होते हैं। यही कारण है कि उनका सायुज्य चाहे जैसे भी मिल जाय, सुख ही होता है। शास्त्र प्रमाण है जिन दुष्ट पुरुषों की मृत्यु सत्पुरुषों या महान् पुरुषों द्वारा हुई है उनका उद्धार हो गया है। शम्बूक के माध्यम से महाकवि उसी सत्य का प्रतिपादन कर रहा है। शम्बूक देवत्व प्राप्ति के लिए तप कर रहा था। उसे वह सत्संग से उत्पन्न मृत्यु के उपरान्त मिला। अतएव वह तर गया, उसकी कामना यही थी।

शूद्रयोऽन्यां प्रजातोऽस्मि तप उग्रं समास्थितः।

देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः॥

(रामा० उत्तर० ७६/२)

४— पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव।

सप्रसंग व्याख्या —

शम्बूक के दिव्यस्वरूप प्राप्त कर पुण्यलोक (देवलोक) में प्रस्थान कर चुकने के पश्चात् राम पंचवटी में विचरण कर रहे हैं। कभी वे इसी पंचवटी प्रदेश में अपनी प्राणवल्लभा के साथ दीर्घकाल तक निवास किये थे। उनकी प्रिय सखी वासन्ती और सीता के साथ पूर्वानुभूत वनप्रदेश को देखकर उनका हृदय विदीर्ण हो रहा है। उनके हृदय का दबा हुआ पुराना शोक नवीन हो जाता है और शोकाकुल हृदय से राम इस प्रकार कह पड़ते हैं—

“प्राचीन शोक नया सा होकर मुझे चेतनाशून्य बना रहा है।” वास्तव में किसी व्यक्ति का, किसी कारणविशेष या घटनाविशेष के चलते किसी प्रियजन से वियोग हो गया हो जिसके पुनः मिलने की किसी भी प्रकार की संभावना शेष न रह गयी हो, ऐसी विषम स्थिति में अपने प्रियजन के वियोग से उत्पन्न शोक तो स्थायी रूप से हृदय में निगूढ़ रहता ही है, किन्तु जब कोई वस्तु, स्थान या व्यक्ति जिसके साहचर्य से प्रियजन के साथ व्यतीत किये गये क्षणों का स्मरण हो जाता है तब उस व्यक्ति का शोक पुनः नया हो जाता है और वह व्यक्ति असह्य वेदना का अनुभव करने लगता है। पंचवटी में आने पर राम की यही दशा हो गयी है। उनका शोक नवीन होकर विष-रस के समान, अत्यन्त वेग से चलाये गये बाण के अग्रभाग के समान हृदय में चुभ रहा है। वह धाव जो कुछ समय पाकर सूखने लगा था, हृदय के मर्मस्थल में फूटे हुए फोड़े के समान बिल्कुल नया-सा होकर फिर मर्मन्तिक और पीड़ादायक हो गया है। संभवतः राम यदि पुनः इस पंचवटी में नहीं आते तो उनको इस तरह का असह्य दुःख सहन नहीं करना पड़ता।

५— अहो अनवस्थितो भूतसन्निवेशः।

सप्रसंग व्याख्या —

“आह! पदार्थों की स्थिति बड़ी अस्थिर है।” प्रस्तुत सूक्त वाक्य राम से संबंधित है। राम पंचवटी में शोकाकुल होकर विचरण कर रहे हैं। राम का उस भूखण्ड से, वहाँ की वनस्पतियों से, जीव-जन्तुओं से आत्मीय संबंध रहा है। कभी वे राम के लिए सुखद थे, आज अत्यन्त ही शोकोत्पादक लग रहे हैं। फिर भी राम उनकी उपेक्षा नहीं कर पा रहे हैं। उनका अवलोकन बड़ी ही सहृदयता के साथ कर रहे हैं। वे कहते हैं कि यद्यपि इनके देखने से मुझे असह्य दुःख हो रहा है फिर भी बहुत काल तक सहवास करने के कारण मित्रों के समान इन भूखण्डों को अवश्य देखूँगा।

राम संसार के पदार्थों की परिवर्तनशीलता का अनुभव कर रहे हैं। वे कहते हैं कि ये भूखण्ड वैसे ही नहीं हैं जैसे पूर्व में कभी थे, इनमें बड़ा परिवर्तन हो गया है। बहुत समय के अन्तर से देखने के कारण यह वन मुझे दूसरा ही लग रहा है। पहले जहाँ नदियों की धाराएँ बहती थी अब वहाँ रेतीले तट निकल आये हैं। वृक्षों की सघनता और विरलता का भाव भी बदल गया है। वृक्ष जहाँ सघन थे वहाँ विरल और जहाँ विरल थे वहाँ सघन हो गये हैं। इन पर्वत-श्रेणियों में यद्यपि परिवर्तन हुआ है किन्तु इनमें परिवर्तन बहुत कम हुआ है। अतः मैं इनसे ही पहचान रहा हूँ कि यह वही वन है जहाँ कभी मैं अपनी प्रिया के साथ निवास किया था।

जागतिक पदार्थों की अस्थिरता का बोध राम को हो रहा है, उसी की अभिव्यक्ति प्रस्तुत सूक्ति में की गयी है। वैसे ये पदार्थ व्यक्ति की मनःस्थिति के अनुसार मित्रवत् व शत्रुवत् व्यवहार करते हैं संयोग और वियोग के दिनों में इन पदार्थों के प्रभाव का अनुभव भलीभाँति किया जा सकता है।

१.१.४ उत्तरामचरित के तृतीय अंक के सुभाषित वाक्य —

— पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।

प्रसंग व्याख्या —

“राम का करुण रस पुटपाक के तुल्य है।” प्रस्तुत सूक्ति मुरला द्वारा राम के विषय में तमसा से कही गयी है। तमसा मुरला को मनोदशा को देखकर उसकी घबराहट का कारण जानना चाहती है, मुरला अपनी व्याकुलता का कारण बताती हुई कह रही है— सखी तमसा, भगवान् मगस्त्य की पत्नी लोपमुद्रा ने श्रेष्ठ नदी गोदावरी से यह बताने के लिए मुझे भेजा है कि पत्नी सीता) के परित्याग के बाद राम की वेदना चरम सीता तक पहुँच चुकी है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। गंभीरता के कारण दूसरों से नहीं कहे जाने के कारण राम का करुण रस स ‘पुटपाक’ के समान है, जिसमें अन्दर ही अन्दर तीव्र वेदना छिपी रहती है। आशय यह है कि राम गम्भीर हैं, इस कारण यद्यपि उनके हृदय में सीता—परित्याग की एक गूढ़ व्यथा सदैव होती है तथापि वे किसी के सामने प्रकट नहीं होने देते। ‘पुटपाक’ के समान ही उनके हृदय में वह वेदना सदा खटकती रहती है।

प्रस्तुत सूक्ति में पुटपाक की तुलना द्वारा श्री राम के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का स्पष्ट ज्ञान मिल जाता है। उनकी गंभीरता और भावुकता दोनों ही स्पष्ट प्रकट हो रही हैं। ‘पुटपाक’ शब्द की प्राख्या अपेक्षित है। यह आयुर्वेद का पारिभाषिक शब्द है। वैद्य लोग एक मिट्टी के पात्र में औषधि रखकर दूसरे पात्र से ढक देते हैं। तदनन्तर उस पर मिट्टी का लेप कर आंच में रख देते हैं जिससे अन्दर ही अन्दर औषधि खटक—खटक कर पक जाती है। वैद्यक की इस प्रक्रिया को ‘पुटपाक’ कहा जाता है। यही दशा श्रीराम जी की है। सीता जी का वियोग उन्हें भीतर ही भीतर दुःखी कर रहा है। वे किसी को अपना दुःख सुना नहीं सकते क्योंकि वे गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति हैं। यदि किसी और के समक्ष अपनी व्यथा अभिव्यक्त करना चाहते तो कर सकते थे, क्योंकि ‘स्निग्ध मनसविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति’ (अभिज्ञान) किन्तु गंभीर होने के कारण वे ऐसा नहीं कर सके। ‘प्रतीकाश’ शब्द अर्थ समान या तुल्य है। इस सूक्ति के सन्दर्भ में कतिपय समालोचकों द्वारा यह शंका की जाती है कि ‘रसस्योक्तिः स्वशब्देन’ के नियमानुसार रस की ‘स्व’ शब्द उक्ति होने के कारण दोष नहीं मानना चाहिए क्योंकि जहाँ विभावादि से व्यञ्जित रस स्वशब्द कहा जाता है वहीं दोष होता है। यहाँ पर तो वह वस्तुरूप से ही स्थित है। अतः दोष की शंका नहीं है।

— करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी।

विरहव्यथेव वनमेति जानकी॥

सप्रसंग व्याख्या —

प्रस्तुत कथन तमसा द्वारा सीता के विषय में कहा गया है। मुरला, तमसा, परस्पर वार्तालाप कर रही हैं। तमसा कहती है— भगवती भागीरथी ने सीता को बता दिया है कि आज चिरायु कुश और लव की बारहवीं वर्षगाँठ है। इसलिए तुम अपने कुल के आराध्य देव सूर्य का पूजन करो। मेरे प्रभाव से पृथ्वी पर तुम्हें कोई भी नहीं देख सकता, यहाँ तक कि देवता भी नहीं, मनुष्यों की तो बात क्या? प्रगाढ़ प्रेम होने के कारण मुझे जानकी के साथ रहने के लिए आदेशित किया है। इसी बीच सीता गोदावरी के अगाध जल से निकल रही हैं। उनकी विरहव्यथा से व्यथित दशा का वर्णन करती हुई तमसा कह रही है “विरह से पीले और कृश कपोलों से सुन्दर तथा इधर—उधर बिखरे केशों से युक्त मुख को धारण करती हुई जानकी करुण रस की मूर्ति अथवा देह धारिणी विरहव्यथा—सी वन में आ रही है। वियोगिनी सीता अपने केशों को न सँवारती थी और न उनको वेणीरूप में बाँधती थी। अतः उसके केशपाश बिखरे हुए होने के कारण इधर—उधर हिल रहे थे। दुर्बल कपोल पर केशपाश के बिखरे होने के कारण सुन्दरता का अभाव होना चाहिए किन्तु फिर भी सीता सुन्दर लग रही हैं। सीता की विरहावस्था का वर्णन करता हुआ कवि कहना चाहता है कि वे साधारण कोई शरीरधारिणी नारी नहीं हैं बल्कि ऐसा लगता है मानों साक्षात् करुण रस ने ही नारीदेह धारण कर लिया हो अथवा विरहव्यथा ही मूर्तमती होकर वन में प्रकट हो गयी हो। जब व्यथा पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है तो सहृदय व्यक्ति व्यथित जन को देखते ही करुणार्द्र हो उठता है और उसे ऐसी ही अनुभूति होने लगती है जैसी अनुभूति तमसा को सीता को देखकर हो रही है।

३— ‘प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य’।

सप्रसंग व्याख्या —

“सन्तान प्रेम की चरम सीमा होती है।” भगवती भागीरथी के प्रभाव से सीता गोदावरी से निकलकर दण्डकारण्य में तमसा के साथ विचरण करती हुई अपने द्वारा पालित करिशावक को देखती है। अब यह युवा हो गया है। उसके कपोल से मदजल बह रहा है और वह अपनी प्रिया के साथ विहार कर रहा है। सीता तमसा से अपने पुत्रों के बारे पूछती हैं कि वे कैसे होंगे? तमसा कहती है कि अब वे इस करिशावक की भाँति बड़े हो गये होंगे। सीता को अपने पुत्रों का स्मरण हो जाता है। उनके स्तनों से दूध बहने लगता है। पुत्रवत्सलता के कारण स्तन फड़कने लगते हैं। क्षणभर के लिए उन्हें ऐसा लगने लगता है कि इस समय गृहस्थिनी हो गई हैं क्योंकि उनके बच्चे अपने पिता के समीप हैं। वास्तव में करिशावक को सीता ने पुत्रवत् पाला था। उमड़ते

इए पुत्रवात्सल्य के कारण सीतामातृत्व भाव का अनुभव करती हुई कहने लगती हैं “सन्तान स्तुतः प्रेम की चरम सीमा और माता—पिता के हृदय को परस्पर मिलाने वाली होती है।” सन्तान प्रति—पत्नी के स्नेह—युक्त हृदयों को एक बन्धन में बाँधने वाली ग्रन्थि है। हृदय में बिखरे हुए प्रेमकणों के मूर्त रूप को ही सन्तान कहते हैं।

उक्त कथन भवभूति के उत्कृष्टतम सूक्त वाक्यों में से एक है और उनकी अपत्यविषयक उच्च तथा पवित्र भावना का अभिव्यंजक है। माता तथा पिता का स्नेह उनकी सन्तान में केन्द्रित होता है, उनका वह पवित्र स्नेह वासना से सर्वथा अदूषित होता है।

४— कर्तव्यानि खलु दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि।

सप्रसंग व्याख्या —

“दुःखितों को अपना दुःख शान्त करना ही चाहिए।” दण्डकारण्य में राम और वासन्ती परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं। वासन्ती विरही राम से सीता—परित्याग के विषय में पूछ रही है। वासन्ती का सीता के प्रति अगाध अनुराग रहा है वह राम को कहती है— आप इतना कठोर क्यों हो गये? पहले तो आपने मधुर वचनों से सीता के प्रति प्रेम का प्रदर्शन किया और बाद में.....। राम से पूछती है— उस सीता का उस भयंकर वन में क्या हुआ? राम निरुत्तर होकर सीता को हिंसक जन्तुओं द्वारा नष्ट कर दिया गया होगा— यह कहकर करुण क्रन्दन करने लगते हैं। फूट—फूटकर रोते राम को छाया रूप में उपस्थित सीता अपने जीवित होने का सन्देश देती है। राम सीता को नहीं देखते हैं। सीता राम को इस तरह रोते देखकर अधीर हो जाती है क्योंकि वे अपने प्राणप्रिय को कभी इस तरह से साधारण जन की तरह रुदन करते हुए नहीं देखी थीं। शोकविह्वल राम को करुण क्रन्दन करते हुए देखकर वह अधीर हो जाती है। अधीरावस्था को प्राप्त सीता से तमसा कह रही है—

पुत्री दुःखितों को अपना दुःख शान्त करना ही चाहिए। जिन स्थानों पर राम ने कभी अपनी प्राणप्रिया सीता के साथ निवास किया था, उन स्थानों को देखकर तथा सीता द्वारा पालित पोषित वन्य जीवों को देखकर उनका शोक उद्दीप्त हो गया है। वे दयनीय दशा को प्राप्त हो गये हैं। वासन्ती ने राम से सीता—परित्याग किये जाने का कारण पूछकर उनकी शोकाग्नि उद्दीप्त करने हेतु उसमें घी डालने का कार्य कर दिया है। ऐसी विषम दशा में एक मात्र उपाय यही है कि किसी भी प्रकार से राम का शोक कम हो, एतदर्थ करुण क्रन्दन करना, विलाप करना, अपने हृदय के दुःख की अभिव्यक्ति करना परमावश्यक है। राम के द्वारा स्वाभाविक रूप से यही हो रहा है। तमसा भलीभाँति जानती है, इसलिए सीता को आश्वस्त करती है, धैर्य धारण करवाती है वह कहती है—

जो कुछ हो रहा है वह दुःखी हृदय को शान्तिदायी बनाने वाला है। मनावैज्ञानिक दृष्टि से शोकग्रस्त व्यक्ति यदि किसी भी प्रकार से अपनी मनोव्यथा को अभिव्यक्त कर लेता है तो उसकी व्यथा समाप्त हो जाती है। इसको विरेचन का सिद्धान्त कहा जाता है। राम के भीतर की व्यथा अभिव्यक्त हो रही है। अश्रुपात हो रहा है। एकान्त में फूट-फूट कर साधारण जन की भाँति रो रहे हैं। वे अवधानरेश हैं। साधारण जन की तरह विलाप करना सीता के द्वारा नहीं देखा जा रहा है। इसीलिए वह अधीर हो जाती हैं। तमसा राम और सीता दोनों कि मनोव्यथा को भली-भाँति जानती है, इसलिए सीता को समझा रही है।

५— प्रियशोको जीवं कुसुमिव घर्मो ग्लपयति।

सप्रसंग व्याख्या —

तमसा राम की शोकाकुल दशा का वर्णन करती हुई कह रही है कि जैसे कड़ी धूप पुष्प को सुखा देती है, वैसे ही प्राणप्रिया का शोक इनके जीवनरूपी पुष्प को सुखा रहा है। भाव यह है कि खरी धूप सुकोमल पुष्प को सुखाकर क्लान्त बना देती है। पुष्प मात्र मुरझा ही नहीं जाता बल्कि सूख जाता है किन्तु उसका अस्तित्व शेष रहता है, बिल्कुल समाप्त नहीं होता। पुष्प की चित्ताकर्षणकारिता का प्रभाव धूप समाप्त ही कर देती है। आज राम की दशा ऐसी ही हो गयी है। परिस्थितिविशेष के चलते राम को अपनी प्राणप्रिया का परित्याग करना पड़ा है। राम उस परिस्थिति को जानते हैं। निर्दोष सीता जिसकी अग्नि-परीक्षा ली गयी है, उस पर संदेह करना और उसका परित्याग करना भीषण अत्याचार है; वह भी उस दशा में जबकि वह आपन्नसत्त्वा (गर्भवती) हो। राम ने स्वयं ही परित्यारग का निर्णय लिया है और लक्ष्मण को आदेशित करके यह जघन्य कार्य करवाया है अतः वे खुलकर रो भी नहीं पा रहे हैं न ही अपनी व्यथा को किसी से बता पा रहे हैं। उनका जीवन सन्तप्त हो गया है। घुट-घुट कर राम मृतप्राय हो रहे हैं। उनका जीवन अन्धकारमय हो गया है। उनके लिए कहीं भी कुछ भी आनन्द नहीं रह गया है। विषाद ही शेष रह गया है। रोदन राम के लिए हितकारी हुआ है। राम का हृदय पुष्प की तरह कोमल, स्निग्ध सदा प्रफुल्लित रहने वाला रहा है। किन्तु आज सीता के वियोग में उसका अस्तित्व—मात्र शेष रह गया है।

६— कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णचन्द्रदर्शनम्।

सप्रसंग व्याख्या —

राम पंचवटी से अयोध्या के लिए वापस जाने वाले हैं। वासन्ती से राम ने अनुमति माँग ली है। वासन्ती राम के पंचवटी आगमन को उनका बहुत बड़ा अनुग्रह मानती है। इधर तमसा

सीता को वापस भागीरथी के पास चलने के लिए कह रही है। सीता (छाया स्वरूपा) राम को पलक नेत्रों से देख रही हैं। उनके नेत्र राम का दर्शन में निमग्न हैं। बिछुणन की विषम वेला। तमसा इसको भली—भाँति समझती है। “पुण्यात्मा लोगों के दर्शनीय आर्यपुत्र के चरण कमलों में प्रणाम हों यह कहकर सीता मूर्च्छित होकर गिर जाती हैं। तमसा उनको धैर्यधारण कराती है। राम के प्रति सीता के हृदय में जो कुछ भी परित्याग जन्य मनोमालिन्य था, अब वह धुल गया। सीता राम की विवशताओं को भली—भाँति जानती हैं। अश्वमेध यज्ञ में स्वर्ण—प्रतिमा स्थापित कर आर्यपुत्र ने उसके प्रति अगाध स्नेह का परिचय दिया है। ऐसे प्राणवल्लभ का दर्शन करते ही सीता के नेत्र निर्निमेषरूप से तृप्त हो रहे हैं। अब उनका दर्शन दुर्लभ हो जायेगा, यह सोचकर सीता कह रही हैं— “मेघ के व्यवधान के कारण पूर्ण चन्द्रमा का दर्शन कितनी देर तक हो सकता है।” अर्थात् अधिक देर तक नहीं हो सकता है। आकाश में मेघ छाये हुए हों और पूनम का चाँद नसे आच्छादित हो गया हो, किसी प्रकार कुछ देर के लिए बादल हट जायँ तो चन्द्रमा दिखायी दे जाता है, किन्तु पुनः बादलों के घिर जाने से ढक जाता है और दिखलायी नहीं पड़ता है। चन्द्रदर्शन न होने में मेघाच्छन्न होना कारण है और चन्द्रदर्शन होने में मेघों का आच्छन्न न होना। सीता के कहने का अभिप्राय है कि मेरे दुर्भाग्य के कारण ही प्राणप्रिय आर्यपुत्र का दर्शन दुर्लभ हो रहा है। इसमें आर्यपुत्र का कोई दोष नहीं है। चन्द्रमा तो आकाश में पूर्णरूपेण विद्यमान है। किन्तु बादलों के आच्छादित होने के कारण दिखायी नहीं दे रहा है। इसमें चन्द्रमा का क्या दोष है। मेरे दुर्भाग्य का बादल जबतक घेरे रहेगा तब तक आर्यपुत्र का दर्शन नहीं हो सकता है। सीता अपने दुःख का कारण स्वयं अपने दुर्भाग्य को मानती हैं, किसी और को नहीं। आर्यपुत्र तो मुझे सुलभ ही थे उनका दर्शन मेरे लिए सदा सुलभ था। किन्तु मेरे दुर्भाग्य के बादलों के आच्छादित हो जाने के कारण उनके चन्द्रमुख का दर्शन दुर्लभ हो गया।

८.२ सुभाषित वाक्यों का संकलन —

१. अपि प्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।
२. एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः।
३. इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोः।
४. अहो अनवस्थितो भूतसंनिवेशः।
५. करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी ।
विरहव्यथेव वनमेति जानकी॥
६. कर्तव्यानि खलु दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि।

७. किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः,
कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णचन्द्र दर्शनम्?
८. तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।
९. ते हि नो दिवसा गताः।
१०. दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।
११. नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा,
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि।
१२. पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।
१३. पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव।
१४. प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य।
१५. प्रियशोको जीवं कुसुममिव घर्मो ग्लपयति।
१६. युक्तः प्रजानामनुरज्जने स्यास्तस्माद् यशः यत्परमं धनं वः।
१७. श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम्।
१८. सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्।
१९. सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति।
२०. सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति।
२१. सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति।
२२. हन्त, मण्डितः संसारः।

८.३ अभ्यास—प्रश्न

क— भवभूति की निम्नलिखित सूक्तियों की व्याख्या कीजिए—

१. इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवार्त्तेर्नयनयोः।
२. दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।
३. सतां सद्भिः सङ्गं कथमपि हि पुण्येन भवति।
४. हन्त! मण्डितः संसारः।

ख— निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए—

१. भवभूति की शिल्पगत प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
२. भवभूति के सूक्ति—वाक्यों की समीक्षा कीजिए।
३. भवभूति के भाषा—सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।

४ उपयोगी पुस्तकें —

हाकवि भवभूति	—	गंगासागर राय
त्तररामचरितम्	—	कपिलदेव द्विवेदी
त्तररामचरितम्	—	कृष्णाकान्त एवं उमाकान्त शुक्ल
त्तररामचरितम्	—	आनन्द स्वरूप
संस्कृत साहित्य का इतिहास	—	आ० बलदेव उपाध्याय
संस्कृत साहित्य का प्रामाणिक इतिहास	—	डा० रमाशंकर त्रिपाठी



उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

UGST-02
संस्कृत

खण्ड-पाँच

छन्दोऽलङ्कार

इकाई- 9	4
छन्द का सामान्य परिचय	
इकाई- 10	7
प्रमुख छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण	
इकाई- 11	15
अलङ्कार का सामान्य परिचय	
इकाई- 12	20
प्रमुख अलंकारों के लक्षण, उदाहरण और उनमें भेद	

परिचय-कार्यक्रम

इस पाठ्यक्रम में पाँच खण्ड हैं।

प्रथम खण्ड में चार इकाइयाँ हैं। इनमें क्रमशः नाटक, भवभूति, उत्तररामचरितम् की संक्षिप्त कथा तथा पात्रों के चरित्र का निरूपण किया गया है।

द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत पाँचवीं इकाई है, जिसमें उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक की सविस्तार व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

तृतीय खण्ड के अन्तर्गत छठीं इकाई है। जिसमें उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक की व्याख्या विस्तारपूर्वक दी गई है।

चतुर्थ खण्ड के अन्तर्गत सातवीं तथा आठवीं इकाइयाँ हैं, जिनमें क्रमशः उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक की विस्तृत व्याख्या तथा पाठ्यक्रम में निर्धारित सभी तीनों अंकों के सुभाषित वचनों की सप्रसङ्ग व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

पञ्चम खण्ड के अन्तर्गत कुल चार इकाइयाँ (9-12) हैं, जिनमें क्रमशः छन्द का सामान्य परिचय, प्रमुख छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण, अलङ्कार का सामान्य परिचय तथा प्रमुख अलङ्कारों के लक्षण, उदाहरण और उनमें पारस्परिक भेद विस्तार के साथ वर्णित हैं।

इकाई 9 छन्द का सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

- 9.0 उद्देश्य
- 9.1 छन्द का सामान्य परिचय
 - 9.1.1 लघु-विचार
 - 9.1.2 गुरु-विचार
 - 9.1.3 लघु, गुरु का चिह्न
- 9.2 गण-परिचय
- 9.3 यति
- 9.4 वार्णिक (वर्णवृत्त) छन्द
- 9.5 मात्रिक छन्द

9.0 उद्देश्य –

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- छन्द का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- लघु अक्षरों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- गुरु अक्षरों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- लघु और गुरु अक्षरों के चिह्न का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- गणों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- यति (विराम) का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- मात्रिक छन्द का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- वार्णिक (वर्णवृत्त) छन्द का सामान्य परिचय जान सकेंगे।

9.1 छन्द-परिचय

लौकिक संस्कृत में प्रत्येक छन्द में चार पाद या चरण होते हैं। छन्द दो प्रकार के होते हैं– (1) वर्णवृत्त (2) मात्रिक। वर्णवृत्त छन्द के प्रत्येक चरण में अक्षरों की गणना की जाती है एवं मात्रिक छन्दों में मात्राओं की संख्या गिनी जाती है। छन्दः में लघु और गुरु वर्ण होते हैं। छन्दः शास्त्र में गुरु (5) लघु (1) का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। कहाँ गुरु होगा और कहाँ पर लघु होगा उसके लिए छन्दः शास्त्र में कुछ नियम हैं।

9.1.1 लघु (1)

अ, इ, उ, ऋ, लृ इन ह्रस्व स्वरों तथा इनके साथ मिले हुए व्यञ्जन लघु होते हैं। जैसे–

कर्मल में तीनों वर्ण लघु हैं। ह्रस्व स्वर अर्ध चन्द्रबिन्दु वाले भी लघु माने जाते हैं। यथा विहंसि में हँ लघु है।

9.1.2 गुरु (5)

- (1) संयुक्त वर्ण से पूर्व का लघु वर्ण भी गुरु माना जाता है। यथा – विप्र।
- (2) आ, ई, ऊ, ऋ, ए, ओ, ऐ, औ ये स्वर और इनसे संयुक्त व्यञ्जन भी गुरु होते हैं।
- (3) अनुस्वार से संयुक्त सभी वर्ण गुरु होते हैं। यथा सततं, धनं में तं, नं गुरु वर्ण हैं।
- (4) विसर्ग से युक्त सभी वर्ण गुरु होते हैं। यथा हरिः, रामः में रिः, मः, गुरु वर्ण हैं।
- (5) पद के अन्त में स्थित लघु वर्ण को भी कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर गुरु मान लिया जाता है। यथा 'त्वमेव मातां च पितां त्वमेव' में अन्तिम वर्ण गुरु माना गया है।
- (6) हल् (व्यञ्जन) अक्षर से पूर्व का लघु वर्ण भी गुरु माना जाता है। यथा- सत्, सरित् में स और रि गुरु वर्ण हैं।

9.1.3 चिह्न

छन्दः शास्त्र में लघु का चिह्न १, तथा गुरु का चिह्न ५ है।

9.2 गण

तीन अक्षरों के संयोग को त्रिक (गण) कहते हैं। इन गणों से वर्णों की संख्या एवं क्रम का पुगमता से ज्ञान हो जाता है। छन्द के चरणों में लघु, गुरु वर्णों का परिमाण और स्थान नियत होता है। इन आठ त्रिकों (गणों) का एक-एक नाम दिया गया है। इन गणों को स्मरण रखने के लिए स सूत्र को सम्यक् रूप से समझ लेना चाहिए-

यमाताराजभानसलगाः'

इस सूत्र में कुल दस अक्षर हैं। इनमें प्रथम आठ गणों (त्रिकों) के नाम हैं और अन्त में लघु ग से गुरु का बोध होता है। गणों के स्वरूप को निम्न चक्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

सं०	नाम	चिह्न रूप	वर्णरूप	संकेत
1	यगण	१ ५ ५	यमाता	य
2	मगण	५ ५ ५	मातारा	म
3	तगण	५ ५ १	ताराज	त
4	रगण	५ १ ५	राजभा	र
5	जगण	१ ५ १	जभान	ज
6	भगण	५ १ १	भानस	भ
7	नगण	१ १ १	नसल	न
8	सगण	१ १ ५	सलगाः	स

9.	लघु	।	ल	ल
10.	गुरु	5	गाः	गु

9.3 यति

इसे विराम भी कहते हैं। पद को पढ़ते समय जहाँ पर जिह्वा को विराम दिया जाता है उस स्थान को यति कहते हैं।

छन्दोभेद

लौकिक संस्कृत में छन्द के दो भेद होते हैं। वार्षिक छन्द और मात्रिक छन्द।

9.4 वार्षिक छन्द

वार्षिक छन्द को वर्णवृत्त छन्द कहा जाता है। इसके प्रत्येक चरण के अक्षरों की गणना की जाती है। इनको सामान्यतया वृत्त कहते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं—

- (क) समवृत्त— इसके चारों चरणों में समान लक्षण लक्षित होते हैं। इसके चारों चरणों में अक्षरों की संख्या बराबर होती है।
- (ख) अर्धसमवृत्त— इसके प्रथम एवं तृतीय चरण में तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में समान अक्षर होते हैं।
- (ग) इसके चारों चरणों में एक-दूसरे से भिन्न लक्षण लक्षित होते हैं।

9.5 मात्रिक छन्द

मात्रिक छन्दों में मात्राओं की संख्या गिनी जाती है। मात्रिक छन्दों को 'जाति' कहते हैं। जैसे- आर्या छन्द।

अभ्यास

1. लघु क्या है और इसका चिह्न क्या है?
2. गुरु कहाँ-कहाँ होता है? इसका चिह्न क्या है?
3. गण कितने होते हैं?
4. गणों को चिह्न के अनुसार बताइये।
5. वार्षिक छन्द किसे कहते हैं। इसके कितने भेद हैं?
6. मात्रिक छन्द का लक्षण बताइये।
7. यति किसे कहते हैं।

इकाई 10 प्रमुख छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण

इकाई की रूपरेखा

- 10.0 उद्देश्य
- 10.1 अनुष्टुप् या श्लोक
- 10.2 इन्द्रवज्रा
- 10.3 उपेन्द्रवज्रा
- 10.4 उपजाति
- 10.5 द्रुतविलम्बित
- 10.6 वंशस्थ
- 10.7 वसन्ततिलका
- 10.8 मालिनी
- 10.9 शिखरिणी
- 10.10 मन्दाक्रान्ता
- 10.11 शार्दूलविक्रीडित
- 10.12 स्रग्धरा
- 10.13 वियोगिनी
- 10.14 पुष्पिताग्रा
- 10.15 आर्या

10.0 उद्देश्य—

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, त्रुतविलम्बित, वंशस्थ, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, वियोगिनी, पुष्पिताग्रा और आर्या छन्दों का लक्षण उदाहरण सहित ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

0.1 अनुष्टुप् या श्लोक

क्षण- श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।

द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥

नुष्टुप् या श्लोक में प्रत्येक पाद में 8 अक्षर होते हैं। इसमें छठों अक्षर सदैव गुरु होता है और पञ्चम अक्षर सदैव लघु होता है। द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम अक्षर लघु तथा प्रथम और तृतीय चरण गुरु होता है। अन्य अक्षर लघु या गुरु हो सकते हैं।

उदाहरण- वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

उपर्युक्त उदाहरण में प्रत्येक पाद में आठ अक्षर हैं। प्रत्येक पाद का छठाँ अक्षर गुरु और पाँचवा अक्षर लघु है। द्वितीय, चतुर्थ चरण में सप्तम अक्षर लघु तथा प्रथम और तृतीय चरण में सप्तम अक्षर गुरु है। अतः यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

10.2 इन्द्रवज्रा

लक्षण- “स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः”।

5 5 | 5 5 | 5 5 | 5 5

तगण तगण जगण गुरु गुरु

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, तगण, जगण और दो गुरु वर्ण हों। इस छन्द के प्रत्येक चरण में कुल 11 वर्ण तथा सम्पूर्ण चार चरणों में 44 वर्ण होते हैं।

उदाहरण-गोष्ठे गिरिं सव्यकरेण धृत्वा

रुष्टेन्द्रवज्राहतिमुक्तवृष्टौ।

यो गोकुलं गोपकुलं च सुस्थं

चक्रे स नो रक्षतु चक्रपाणिः।।

उपर्युक्त उदाहरण के अतिरिक्त छन्द के लक्षण को भी उदाहरण के रूप में दिया जा सकता है।

10.3 उपेन्द्रवज्रा

लक्षण- उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा।

अथवा

उपेन्द्रवज्रा जगजास्ततो गौ।

जगण तगण जगण गु गु०

5 15 55 | 5 15 5 5

इन्द्रवज्रा छन्द के प्रत्येक चरण के प्रथम वर्ण को लघु बना देने पर उपेन्द्रवज्रा छन्द होता है। अर्था इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरु वर्ण होते हैं। इस छन्द में चार चरण और प्रत्येक चरण में 11 वर्ण होते हैं।

उदाहरण- (क) छन्द का उपर्युक्त लक्षण ही इसका उदाहरण है।

(ख) प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेष-

मधीर विप्रेक्षितमायताक्ष्या।

तया गृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्य-

स्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः।।

10.4 उपजाति

लक्षण- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ

पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।

जगण तगण जगण गु०ल० (उपेन्द्रवज्रा)

। ५ । ५ ५ । । ५ । ५ ५

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु

वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।

जिस छन्द के चरणों में इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा इन दो छन्दों का या इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा से भिन्न अन्य दो सजातीय छन्दों का मिश्रण हो, वहाँ उपजाति नामक छन्द होता है। उपजाति छन्द में मिश्रित होने वाले छन्दों की स्थिति का कोई क्रम या नियम नहीं होता है। कोई छन्द किसी भी चरण में तथा एक से अधिक दो या तीन चरणों में भी हो सकता है।

उदाहरण- छन्द का उपर्युक्त लक्षण इसका उदाहरण भी है।

10.5 द्रुतविलम्बित

लक्षण- द्रुतविलम्बितमाह नभौभरौ।

नगण भगण भगण रगण

। । । ५ । । ५ । । ५ । ५

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक नगण दो भगण तथा एक रगण हों वहाँ द्रुतविलम्बित छन्द होता है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में 12 वर्ण तथा सम्पूर्ण छन्द में 48 वर्ण होते हैं।

उदाहरण- तरणिजापुलिने नववल्लरी

परिषदा सह केलिकुतूहलात्।

द्रुतविलम्बितचारुविहारिणं

हरिमहं हृदयेन सदा वहे।।

10.6 वंशस्थ

लक्षण- जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ

जगण तगण जगण रगण

। ५ । ५ ५ । । ५ । ५ । ५

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण, जगण और रगण हो वहाँ वंशस्थ छन्द होता है। इसके प्रत्येक चरण में 12 तथा सम्पूर्ण छन्द में 48 अक्षर होते हैं।

उदाहरण - असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा

यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु

प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।।

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण, जगण और रगण आये हुये हैं। अतः यहाँ वंशस्थ छन्द है।

10.7 वसन्ततिलका

लक्षण- ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौगः ।

तगण भगण जगण जगण गु० गु०

५ ५ । ५ । । ५ । । ५ । ५ ५

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगण तथा दो गुरु वर्ण हों वहाँ वसन्ततिलका छन्द होता है। इसमें ८ एवं ६ वर्णों पर यति होती है तथा प्रत्येक चरण में १४ अक्षर होते हैं। सम्पूर्ण छन्द में ५६ अक्षर होते हैं।

उदाहरण-यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना

माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।

तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां

लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ।।

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में १४ वर्ण तथा प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगण, एवं दो गुरु वर्ण हैं। अतः यहाँ वसन्ततिलका छन्द है।

10.8 मालिनी

लक्षण- ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

नगण नगण मगण यगण यगण

। । । । । ५ ५ ५ । ५ ५ । ५ ५

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण, यगण हों वहाँ मालिनी छन्द होता है। इसमें आठ और सात अक्षरों पर यति होती है। इसके प्रत्येक चरण में १५ और सम्पूर्ण छन्द में साठ अक्षर होते हैं।

उदाहरण-सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।।

संज्ञा-संज्ञा के प्रत्येक चरण में १५ वर्ण हैं तथा प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण, गण आया है। अतः मालिनी छन्द का उदाहरण है।

‘क्षण- ‘रसै रुद्रैश्छिन्ना यमन सभलागः शिखरिणी ।

1 1 1 1 1 1 5 5 5 1 5 5 1 5 5

स छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु एवं गुरु वर्ण हों।
 ॥ छठें और ग्यारहवें अक्षर पर यति हों वहाँ शिखिरिणी छन्द होता है। इसके प्रत्येक चरण में १७
 ॥ सम्पूर्ण छन्द में अरसठ वर्ण होते हैं।

राहरण- अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहं

रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।

अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं

न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ।।

युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, एक लघु तथा एक वरुण आये हैं अतः यहाँ शिखरिणी छन्द है।

क्षण- मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मोभनौ तौ गद्युग्मम्।

मरण भरण नगण तगण तगण गु० गु०

555 551 111 551 551

अ छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, नगण तगण, तगण और दो गुरु वर्ण हों वहाँ शक्रान्ता छन्द होता है। इसके प्रत्येक चरण में चार, छः और सात अक्षरों के बाद यति होती है। छन्द के प्रत्येक चरण में स्रग्ध एवं सम्पूर्ण छन्द में अरसठ वर्ण होते हैं।

हरण- हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं

नीता लोघ्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।

चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं

सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ।।

युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु वर्ण
 हैं। अतः यहाँ मन्दाक्रान्ता छन्द है। (ख) छन्द के उपर्युक्त लक्षण को उदाहरण के रूप में भी
 जा सकता है।

10.11 शार्दूलविक्रीडित

लक्षण—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।

मगण सगण जगण सगण तगण तगण गु०

5 5 5 | 1 5 | 5 | 1 1 5 5 5 | 5 5 | 5

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और एक गुरु वर्ण का विन्यास हो वहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द होता है। इसके प्रत्येक चरण में उन्नीस अक्षर और सम्पूर्ण छन्द में कुल छिहत्तर अक्षर होते हैं।

उदाहरण – गोविन्दं प्रणमोत्तमाङ्ग रसने तं घोषयाहर्निशं

पाणी पूजय तं मनः स्मर पदे तस्यालयं गच्छतम् ।

एवं चेत् कुरुथाखिलं मम हितं शीर्षादयस्तद् ध्रुवं

नो प्रेक्षेभवतां कृते भवमहाशार्दूलविक्रीडितम्॥

उपर्युक्त श्लोक में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और एक गुरु वर्ण प्रत्येक चरण में आया है। अतः यहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

10.12 स्रग्धरा

लक्षण— ब्रह्मैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितयम् ।

मगण रगण मगण नगण यगण यगण यगण

555 515 511 111 155 155 155

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण हों वहाँ स्रग्धरा छन्द होता है। इसमें प्रत्येक चरण में सात-सात वर्णों के अन्तर पर तीन यति होती है। प्रत्येक चरण में 21 एवं सम्पूर्ण छन्द में चौरासी अक्षरों का विन्यास किया जाता है।

उदाहरण— ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः

पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।

दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा

पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्या प्रयाति॥

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण आया हुआ है। अतः स्रग्धरा छन्द का यह उदाहरण है।

(ख) छन्द का उपर्युक्त लक्षण उदाहरण भी है।

10.13 वियोगिनी (सुन्दरी)

लक्षण—विषम ससजा गुरुः समे सभरा लोऽथ गुरुवियोगिनी ।

सगण सगण जगण गु सगण भगण रगण ल० गु०

115 115 515 - 115 511 515 1 5

वियोगिनी छन्द के प्रथम एवं तृतीय चरण में दस अक्षर होते हैं। प्रथम एवं तृतीय चरण में सगण, सगण, जगण और गुरु वर्ण होता है तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इस प्रकार द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में सगण, भगण, रगण लघु और गुरु अक्षर होते हैं। प्रथम एवं तृतीय चरण विषम तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण सम होते हैं।

उदाहरण – यदवोचत वीक्ष्य मानिनी

परितः स्नेहमयेन चक्षुषा ।

अपि वागधिपस्य दुर्वचं

वचनं तद् विदधीत विस्मयम्

उपर्युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में छन्द का उपर्युक्त लक्षण दिखलाई पड़ता है। अतः यहाँ वियोगिनी छन्द है।

10.14 पुष्पिताग्रा

लक्षण—अयुजि नयुगरेफतो यकारो

युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

नगण नगण रगण यगण

111 111 515 155

इस छन्द के प्रथम एवं तृतीय चरण में 12 तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में 13 अक्षर होते हैं। प्रथम एवं तृतीय चरण में क्रमशः नगण, नगण, रगण, यगण और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में नगण जगण जगण रगण और एक गुरु अक्षर का संयोजन किया जाता है।

उदाहरण—तुरगखुरहतस्तथा हि रेणु

र्विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु ।

पतति परिणतारुणप्रकाशः

शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु ।।

इस श्लोक में छन्द का उपर्युक्त लक्षण घटित होता है। अतः यहाँ पुष्पिताग्रा छन्द है।

10.15 आर्या

लक्षण-यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।

अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्याः॥

आर्या छन्द के प्रथम चरण में 12 मात्रायें होती हैं। द्वितीय चरण में 18 तृतीय चरण में 12 और चतुर्थ चरण में 15 मात्रायें होती हैं। यह मात्रिक छन्द है। इसमें कुल सत्तावन मात्रायें होती हैं। तीस मात्राएँ प्रथम आधे भाग में और सत्ताइस मात्रायें दूसरे आधे भाग में निश्चित हैं।

उदाहरण—शान्तमिदं भ्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।

अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र॥

अभ्यास

1. निम्न छन्दों का लक्षण सोदाहरण समझाइये—

इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थ, वसन्ततिलका, मालिनी, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, वियोगिनी और आर्या।

2. निम्नलिखित श्लोकों में कौन सा छन्द है लक्षण सहित समझाइये—

(क) अर्थो हि कन्या परकीय एवं, तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।

जातो ममायं विशदः प्रकामं, प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा॥

(ख) त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

(ग) निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्यायात्थः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

(घ) अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।

सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥

(5) वागर्थविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

उपर्युक्त श्लोकों में क्रमशः इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, एवं अनुष्टुप् छन्द हैं।

इकाई 11 अलङ्कार का सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

- 11.0 उद्देश्य
- 11.1 अलङ्कार की व्युत्पत्ति
- 11.2 साहित्य दर्पण के अनुसार अलंकार की परिभाषा
- 11.3 अलङ्कारों का वर्गीकरण
 - 11.3.1 शब्दालंकार
 - 11.3.2 अर्थालंकार
 - 11.3.3 उभयालंकार
- 11.4 अलंकार के भेद (शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं उभयालंकार के भेद)
- 11.5 आचार्य विश्वनाथ का परिचय
- 11.6 समय
- 11.7 रचनाएँ
 - 11.7.1 साहित्यदर्पण का प्रतिपाद्य-विषय
- 11.8 काव्यशास्त्र के सम्प्रदाय

11.0 उद्देश्य— इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- अलंकार की व्युत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- अलंकार की परिभाषा का ज्ञान होगा।
- अलंकारों के वर्गीकरण का ज्ञान होगा और शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उभयालंकार की परिभाषा का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- अलंकार के भेदों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आचार्य विश्वनाथ का परिचय, समय, एवं उनकी रचनाओं का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- साहित्यदर्पण के प्रतिपाद्य-विषय की संक्षेप में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- काव्यशास्त्र के सात सम्प्रदायों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

अलङ्कार का सामान्य परिचय

11.1 अलङ्कार की व्युत्पत्ति— आभूषणवाची 'अलम्' अव्यय पूर्वक 'कृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर अलङ्कार शब्द की निष्पत्ति होती है जिसका सामान्य अर्थ सजावट या आभूषण है। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ इस प्रकार होगा— (1) 'अलङ्करोति इति अलङ्कारः' अर्थात् जो सुशोभित करे वह अलंकार है। (2) अलङ्क्रियते अनेन इति अलंकारः अर्थात् जिससे सुशोभित किया जाय वह अलंकार है। (3) 'अलङ्कृतिः अलङ्कारः' अर्थात् जो भूषण रूप हो वह अलंकार है। (4) 'अलङ्करणम् अलंकारः' अर्थात् जो अलङ्करण (आभूषण) हो वह अलंकार है। इस प्रकार शब्द एवं अर्थरूप काव्य को सुन्दर बनाने, आकर्षक एवं आह्लादक बनाने वाले धर्म अलंकार हैं।

11.2 साहित्यदर्पण के अनुसार अलङ्कार की परिभाषा—

‘शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।

रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् ।।’

तात्पर्य यह है कि लोक में बाजूबन्द आदि अलङ्कार मनुष्य के शरीर की शोभा को बढ़ाते हैं उसी प्रकार काव्य में शब्द और अर्थ के उन अस्थिर धर्मों को अलङ्कार कहा जाता है जो काव्य के आत्मतत्त्व रसभावादि की व्यञ्जना में सहायक होते हैं। अस्थिर धर्म कहने का निश्चित अभिप्राय यह है कि काव्य में अलङ्कारों की स्थिति गुणों की भाँति नितान्त आवश्यक नहीं है।

11.3 अलङ्कारों का वर्गीकरण—

संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने अलङ्कारों के स्वरूप प्रदर्शन के साथ ही उनका वर्गीकरण भी किया है। अलङ्कार के तीन वर्ग हैं— (1) शब्दालङ्कार (2) अर्थालङ्कार (3) उभयालङ्कार।

11.3.1 शब्दालङ्कार—

जिनसे केवल शब्दों में लालित्य और चमत्कार उत्पन्न हो, वे शब्दालङ्कार हैं। इस वर्ग में अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि अलङ्कार हैं।

11.3.2 अर्थालङ्कार—

जहाँ केवल अर्थ का चमत्कार हो और लालित्य का पुट हो वहाँ अर्थालङ्कार होता है।

11.3.3 उभयालङ्कार—

जो अलङ्कार शब्द और अर्थ के आश्रित रहकर चमत्कार उत्पन्न करते हैं, वे उभयालङ्कार या मिश्रितालङ्कार हैं। जैसे संसृष्टि, संकर आदि।

11.4 अलङ्कार के भेद—

11.4.1 शब्दालङ्कार के भेद—

यह आवृत्तिमूलक, श्लेषमूलक एवं चित्रमूलक के भेद से तीन प्रकार का होता है।

- (1) आवृत्तिमूलक—जिनमें वर्णों, पदों या शब्दों की आवृत्ति होती है। यथा— अनुप्रास (वर्णावृत्ति), यमक (पदावृत्ति), वीप्सा (शब्दावृत्ति) लाटानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश आदि।
- (2) श्लेषमूलक— जो श्लेष पर आश्रित हैं यथा सभङ्ग श्लेष, अभङ्ग श्लेष, वक्रोक्ति आदि।
- (3) चित्रमूलक— जिनमें केवल वर्णों अथवा शब्दों की ही विचित्रता हो। यथा— भाषा संकर, कमल बन्ध, खड्गबन्ध, प्रहेलिका आदि।

11.4.2 अर्थालङ्कार के भेद—

इसके अन्तर्गत सादृश्यमूलक, विरोधमूलक न्यायमूलक शृङ्खलाबन्ध मूलक, गूढार्थप्रतीतिमूलक ये पाँच भेद आते हैं।

- (1) सादृश्यमूलक— जो सादृश्य अथवा समानता पर आश्रित हों। यथा— उपमा, रूपक

11.5 आचार्य विश्वनाथ—

साहित्य दर्पण के अनुसार इनके पिता का नाम चन्द्रशेखर तथा प्रपितामह का नाम श्रीनारायण था। इनके पिता कलिंग देश के सन्धिविग्रहिक थे। आचार्य विश्वनाथ को अट्ठारह भाषाओं का ज्ञान था जिससे इनको 'अष्टादशभाषावारविलासिनीभुजङ्ग' की उपाधि प्राप्त थी।

11.6 समय—

कविराज विश्वनाथ को विद्वत्ता कुल परम्परा से प्राप्त थी। इन्होंने जयदेव विरचित "प्रसन्न राघव" का एक पद्य उद्धृत किया है। जयदेव का समय तेरहवीं शताब्दी माना जाता है। इसी प्रकार इन्होंने अलाउद्दीन खिलजी का नामोल्लेख किया है जिसका शासन काल 1296 ई० 1316 ई० माना जाता है। 'कुमारस्वामी' ने प्रतापरुद्रीययशोभूषण की टीका में रस प्रकरण में साहित्यदर्पण का उल्लेख किया है। अतः उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर विश्वनाथ का समय चौदहवीं शताब्दी के मध्य है।

11.7 रचनाएँ—

- (1) साहित्यदर्पण (दस परिच्छेद)।
- (2) चन्द्रकला (चार अङ्कों की प्रणय नाटिका)।
- (3) प्रशस्ति रत्नावली (सोलह भाषाओं में कलिंग नरेश की प्रशस्ति)।
- (4) राघवविलास (संस्कृत भाषा का महाकाव्य)।
- (5) कुवल्याचरित (प्राकृत भाषा का काव्य)।
- (6) प्रभावतीपरिणय (चार अङ्कों की नाटिका)।
- (7) नरसिंहविजय (संस्कृत काव्य)।
- (8) काव्यप्रकाश दर्पण (काव्यप्रकाश पर टीका)

11.7.1 साहित्यदर्पण का प्रतिपाद्य विषय—

आचार्य विश्वनाथ विरचित साहित्यदर्पण अलङ्कार शास्त्र का प्रमुख ग्रन्थ है। यह दस परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में काव्य के स्वरूप एवं प्रयोजन का प्रतिपादन करते हुए काव्य के लक्षण 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' की प्रतिष्ठापना की गयी है। द्वितीय परिच्छेद में अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना शक्तियों का विवेचन है। तृतीय परिच्छेद में रस, रसास्वादन एवं नायक-नायिका का निरूपण है। चतुर्थ परिच्छेद में ध्वनिकाव्य, गुणीभूतकाव्य एवं चित्रकाव्य का वर्णन है। पञ्चम परिच्छेद में व्यञ्जना वृत्ति का विवेचन है। षष्ठ परिच्छेद में नाट्यशास्त्रीय विषयों का विवेचन है। सप्तम परिच्छेद में पद, पदांश, वाक्य, अर्थदोष एवं रस दोषों का निरूपण है। अष्टम परिच्छेद में गुण विवेचन है। नवम परिच्छेद में वैदर्भी, गौणी, पाञ्चाली एवं लाटी रीतियों का वर्णन करते हुए रचना के नियामकों का उल्लेख है। दशम परिच्छेद में अलङ्कारों की प्रतिष्ठापना की गयी है।

11.8 काव्यशास्त्र के सम्प्रदाय—

भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा में काव्य के आत्मतत्त्व का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है। आचार्यों ने तत्सम्बन्धी मत भिन्नता के कारण संस्कृत में सात सम्प्रदाय माने हैं वे निम्न हैं—

- (1) रस सम्प्रदाय (भरतमुनि, राजशेखर, नन्दिकेश्वर को मानते हैं)
- (2) अलंकार सम्प्रदाय (भामह, डॉ० पारसनाथ द्विवेदी, अग्निपुराणकार व्यास को मानते हैं)।
- (3) रीति सम्प्रदाय (वामन)।
- (4) वक्रोक्ति सम्प्रदाय (कुन्तक)।
- (5) ध्वनि सम्प्रदाय (आनन्दवर्धन)।
- (6) औचित्य सम्प्रदाय (क्षेमेन्द्र)।
- (7) चमत्कार सम्प्रदाय (पण्डितराज जगन्नाथ)।

अलंकार सम्प्रदाय के आचार्यों ने काव्य की आत्मा अलंकार को माना है। मानव स्वभाव से सौन्दर्य प्रेमी होता है। वह स्वयं भी सजकर आह्लादित होता है तथा दूसरे प्राणी या वस्तु को सुसज्जित देखकर प्रसन्न होता है। मनुष्य की लौकिक संसार सम्बन्धी यह प्रवृत्ति, अलौकिक काव्य जगत् में भी उसी तरह बनी रही। फलस्वरूप काव्यों में भी भावों को लावण्ययुक्त तथा भावों की अभिव्यक्ति को प्रभावोत्पादक बनाने में अलंकारों की सहायता ली गई। अलंकार शास्त्र के महत्त्व का मूल्याङ्कन इसी से हो जाता है कि अलङ्कारशास्त्र का अपर नाम काव्यशास्त्र, साहित्यशास्त्र, क्रियाकल्प आदि है।

अभ्यास प्रश्न

1. अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति बताइये।
2. साहित्यदर्पण के अनुसार अलंकार की परिभाषा दीजिये।
3. अलंकारों का वर्गीकरण कीजिये।
4. शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं उभयालंकार की परिभाषा दीजिए।
5. आचार्य विश्वनाथ का परिचय देते हुए उनके समय एवं रचनाओं पर प्रकाश डालिये।
6. साहित्यदर्पण का प्रतिपाद्य विषय बताइये।
7. काव्यशास्त्र के सम्प्रदायों को बताइये।

इकाई 12 प्रमुख अलङ्कारों के लक्षण, उदाहरण और उनमें भेद

इकाई की रूपरेखा

- 12.0 उद्देश्य
- 12.1 (खण्ड क) अलंकारों के लक्षण, उदाहरण
 - 12.1.1 अनुप्रास
 - 12.1.2 यमक
 - 12.1.3 श्लेष
 - 12.1.4 उपमा
 - 12.1.5 रूपक
 - 12.1.6 उत्प्रेक्षा
 - 12.1.7 अतिशयोक्ति
 - 12.1.8 सन्देह
 - 12.1.9 भ्रान्तिमान
 - 12.1.10 व्यतिरेक
 - 12.1.11 प्रतिवस्तुदमा
 - 12.1.13 दृष्टान्त
 - 12.1.14 अर्थान्तरन्यास
 - 12.1.15 तुल्योगिता
 - 12.1.16 दीपक
 - 12.1.17 विभावना
 - 12.1.18 विशेषोक्ति
 - 12.1.19 विरोध या विरोधाभास
 - 12.1.20 परिसंख्या
 - 12.1.21 निदर्शना

(खण्ड ख)

- 12.2 प्रमुख अलंकारों में भेद

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को दो खण्डों में विभक्त किया गया जिसका अध्ययन करने के बाद आप

- प्रमुख 21 अलंकारों का लक्षण उदाहरण एवं व्याख्या को जान सकेंगे।
- खण्ड ख में वर्णित प्रमुख अलंकारों का आपस में भेद का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

12.1.1 अनुप्रास

लक्षण— 'अनुप्रासः शब्दसाम्यं' वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्'।

अर्थ— स्वरों की विषमता होने पर भी, जहाँ शब्दों की समानता हो वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है।

व्याख्या— वर्णों की आवृत्ति को अनुप्रास कहते हैं। किसी वर्ण का एक से अधिक बार आना आवृत्ति है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार जहाँ पर स्वरों की विषमता होने पर भी शब्दों (व्यंजनो में समानता हो उसे अनुप्रास अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—

लताकुञ्जगुञ्जन्मदवदलिपुञ्जं चपलयन्,
समालिङ्गन्नङ्गं द्रुततरमनङ्गं प्रबलयन्।
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्,
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि॥

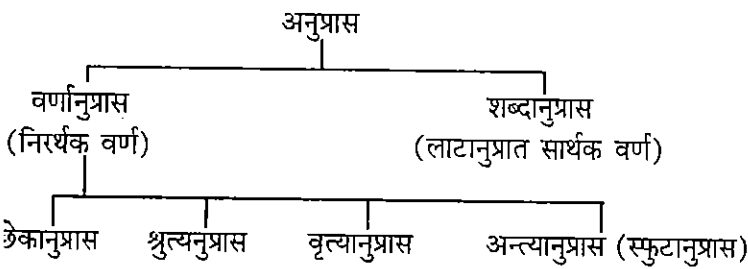
अर्थ— कुञ्ज करत हुए मदयुक्त भौरों का समूह लताकुञ्जों को चपल बनाता हुआ, अङ्गों को भालिङ्गन से कामदेव के ताप को बढ़ाता हुआ, पुष्पित कमलों को कैपाता हुआ वायु परागकणों को इत्येक दिशा में मन्द-मन्द विखेर रहा है।

टिप्पणी— यहाँ प्रथम चरण में ज्जं, द्वितीय चरण में ङ्ग, तृतीय चरण में न्द एवं म का चतुर्थ चरण में न्द तथा दिशि की आवृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार है।

अनुप्रास के भेद— अनुप्रास अलंकार के दो भेद हैं—

1) वर्णानुप्रास (2) शब्दानुप्रास (लाटानुप्रास सार्थक वर्ण)

अनुप्रास के भेद को इस प्रकार बताया जा सकता है।



12.2 यमक

लक्षण— सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः।

क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते॥

अर्थ— अर्थवान् तथा परस्पर भिन्न अर्थवाले सार्थक स्वर व्यञ्जन समूह की उसी क्रम में आवृत्ति को यमक अलंकार कहते हैं।

व्याख्या— जहाँ पर एक शब्द, शब्दांश अथवा वाक्यखण्ड की उसी क्रम में आवृत्ति हो किन्तु प्रत्येक बार अर्थ भिन्न हो, वहाँ यमक अलंकार होता है।

उदाहरण—

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।

मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥

अर्थ— उन्होंने (कृष्ण ने) नवीन पत्तों से युक्त पलाश (ढाक) के वन को और स्फुट पराग से व्याप्त कमल को, कोमल एवं मुरझाये हुए लता समूह को पुष्पभार से सुगन्धित वसन्त ऋतु को देखा।

टिप्पणी— उपर्युक्त उदाहरण में पदावृत्ति यमक अलंकार है, क्योंकि पलाश-पलाश एवं सुरभि-सुरभि दोनों ही सार्थक पदों की इसमें आवृत्ति हुई है। लतान्त-लतान्त में प्रथम पद निरर्थक है, क्योंकि उसका ल मृदुल शब्द का अंश है। पराग-पराग में दूसरा पराग निरर्थक है क्योंकि गत शब्द का 'ग' इसमें मिला है।

1 2.1.3 श्लेष (शब्दश्लेष)

लक्षण— 'श्लिष्टैः पदैरनेकार्थमिधाने श्लेष इष्यते'।

अर्थ— श्लिष्ट पदों द्वारा अनेक अर्थों का अभिधान होने पर शब्दश्लेष अलंकार होता है।

व्याख्या— जब कोई शब्द प्रयोग करने पर अनेक अर्थ प्रकट करता है तो वहाँ श्लेष अलंकार होता है। अर्थात् श्लेष युक्त पदों से जब अलग-अलग अर्थों का कथन हो तो वहाँ श्लेष अलंकार होता है। यह वर्णश्लेष, पदश्लेष विभक्तिश्लेष लिङ्गश्लेष, प्रकृति श्लेष प्रत्ययश्लेष, वचनश्लेष भाषाश्लेष के भेद से आठ प्रकार का होता है।

उदाहरण— प्रतिकूलतामुपगते हि विदौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।

अवलम्बनाय दिनभर्तुःभूत्र पतिष्यतः करसहस्रमपि॥

अर्थ— विधु (चन्द्रमा) एवं विधि (भाग्य) के प्रतिकूल होने पर अनेक साधन भी व्यर्थ हो जाते हैं। जैसे अस्त होने के समय गिरते हुए सूर्य को सहस्र कर (किरण या हाथ) भी सहारा देने में असमर्थ होते हैं।

टिप्पणी— यहाँ विधौ पद में वर्णश्लेष है। विधि और विधु शब्द के दो अलग-अलग अर्थ हैं। विधि का अर्थ भाग्य और विधु का अर्थ चन्द्रमा है। इन दोनों शब्दों का सप्तमी एक वचन में 'विधौ' यह समान रूप बनता है केवल इकार और उकार वर्णों के भेद से अर्थभेद होता है।

अर्थालङ्कार

1 2.1.4 उपमा

लक्षण— 'साम्यं वाच्यवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः'

अर्थ— एक वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्य रहित वाच्य सादृश्य को उपमा कहते हैं। जहाँ उपमा के सामान्य धर्म, उपमानवाचक शब्द, उपमेय और उपमान ये चारों वाच्य हों तो उसे पूर्णोपमा कहते हैं।

जहाँ सामान्य धर्म, उपमेय, उपमान और वाचक शब्द इनमें से किसी एक या दो या तीन के न होने पर लुप्तोपमा अलंकार होता है।

प्रमुख अलङ्कार
उदाहरण :

उदाहरण—

मधुरः सुधावदधरः पल्लवतुल्योऽतिपेलवः पाणिः।

चकित मृगलोचनाभ्यां सदृशी चपले च लोचने तस्याः।

अर्थ— उस नायिका का अधर अमृत के समान मधुर है, उसके हाथ पल्लव के समान अत्यन्त कोमल हैं तथा उसके दोनों नेत्र चकित मृग के नेत्रों के समान चंचल हैं।

टिप्पणी— यहाँ पर तीन पूर्ण उपमाएँ हैं— प्रथम उपमा में अधर उपमेय है, अमृत उपमान है, माधुर्य साधारण धर्म है तथा 'वत्' उपमावाचक है। द्वितीय उपमा में उपमान पल्लव, उपमेय पाणि, साधारण धर्म-पेलवत्व और वाचक शब्द तुल्य है। तृतीय उपमा में उपमेय-तस्याः लोचने, उपमान-चकितमृगलोचनाभ्याम्, साधारण धर्म चपले, उपमावाचक शब्द सदृशी है।

लुप्तोपमा का उदाहरण—

मुखमिन्दुर्यथा पाणिः पल्लवेन समः प्रिये।

वाचः सुधा इवोष्ठस्ते विम्बतुल्यो, मनोऽश्मवत्॥

इस श्लोक में पाँच लुप्तोपमा हैं— प्रथम में उपमेय-मुखम्, उपमान-इन्दु, उपमावाचक शब्द यथा है। द्वितीय में उपमेय-पाणि, उपमान-पल्लवेन, वाचक शब्द समः है। तृतीय में उपमेय - वाचः उपमान-सुधा, वाचक शब्द इव है। चतुर्थ में उपमेय- ओष्ठ, उपमान- विम्बफल, वाचक शब्द तुल्य है। पञ्चम में उपमेय- मन, उपमान- अश्म, वाचक शब्द वत् है।

12.1.5 रूपक

लक्षण— 'रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्वे'

अर्थ— निषेधरहित उपमेय में उपमान के आरोप को रूपक अलंकार कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जहाँ उपमेय और उपमान एकरूप हो जाते हैं उनमें कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता है, उपमेय और उपमान के इस अभेद आरोप को रूपक अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—

आहवे जगदुदण्डराजमण्डलराहवे।

श्रीनृसिंह महीपाल, स्वस्त्यस्तु तव बाहवे॥

अर्थ— हे नृसिंह महीपते! रण के संसार में उदण्ड राजमण्डल (चन्द्रमण्डल रूप नृपमण्डल) के लिए राहु स्वरूप तुम्हारे बाहु का कल्याण हो।

टिप्पणी— इसमें राज पद चन्द्रमा और राजा दोनों का वाचक है, अतः श्लिष्ट है, इसीलिए राजाओं के मण्डल में चन्द्रमण्डल का आरोप है। यही आरोप बाहु के आरोप का कारण है, अतः यहाँ पर श्लिष्ट शब्दमूलक परम्परित रूपक अलंकार है।

12.1.6 'उत्प्रेक्षा'

लक्षण— 'भवेत् संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना'

अर्थ— किसी प्रकृत (प्रस्तुत या उपमेय) पदार्थ को अप्रकृत (अप्रस्तुत या उपमान) के रूप में उत्कट कोटि के संशय को उत्प्रेक्षा अलंकार कहते हैं। वह वाच्य और प्रतीयमान भेद से दो प्रकार का होता है। इव आदि शब्दों के प्रयोग में वाच्योत्प्रेक्षा तथा उत्प्रेक्षा बोधक शब्दों के अभाव में प्रतीयमानोत्प्रेक्षा होती है।

उदाहरण—

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।

गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव॥

अर्थ— राजा दिलीप ज्ञान होने पर भी मौन रहते थे, शक्ति होने पर भी क्षमाशील थे, पुष्कल दान देकर भी आत्मश्लाघा से दूर थे, महाराज में ये समस्त गुण, चुप रहना, क्षमा करना, प्रशंसा से दूर रहना आदि ज्ञान, शक्ति एवं त्याग के साथ ही उत्पन्न हुए थे।

टिप्पणी— उपर्युक्त उदाहरण में वाच्योत्प्रेक्षा है। इसमें गुणी में सप्रसवत्व रूप गुण उत्प्रेक्षित है।

उत्प्रेक्षा के भेद— उत्प्रेक्षा अलंकार के मुख्य तीन भेद हैं। (1) वस्तूत्प्रेक्षा (2) हेतूत्प्रेक्षा (3) फलोत्प्रेक्षा

(1) **वस्तूत्प्रेक्षा—** जहाँ एक वस्तु के अन्तर्गत दूसरी वस्तु की कल्पना की जाय अर्थात् जहाँ उपमेय (प्रस्तुत) के अन्तर्गत उपमान (अप्रस्तुत) की सम्भावना की जाय, वहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार होता है

(2) **हेतूत्प्रेक्षा—** जहाँ कोई स्वाभाविक कारण न होने पर भी कारण की कल्पना की जाय, वह हेतूत्प्रेक्षा होता है।

(3) **फलोत्प्रेक्षा—** जहाँ अफल में फल की सम्भावना की जाय वहा फलोत्प्रेक्षा अलंकार होता है उत्प्रेक्षा अलंकार मन्ये, शङ्के, ध्रुवं, प्रायः, नूनम्, इति, इव आदि शब्दों से लक्षित होता है।

12.1.7 अतिशयोक्ति

लक्षण— 'सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते'

अर्थ— उपमेय का अन्तर्भाव कर उपमान के साथ उसके अभेद ज्ञान के सिद्ध होने पर अतिशयोक्ति नामक अलंकार होता है।

जहाँ पर उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण कर लिया जाता है वहा पर अतिशयोक्ति अलंकार होता है। अर्थात् अध्यवसाय की निश्चित प्रतीति होने पर अतिशयोक्ति अलंकार होता है। जब किसी वस्त् का वर्णन इतना बढ़ा-चढ़ा कर किया जाय कि वह उक्ति स्थिति का उल्लंघन करने में समर्थ हो तं वहाँ अतिशयोक्ति होती है।

उदाहरण—

कथमुपरि कलापिनः कलापो विलसति तस्य तलेऽष्टमीन्दुखण्डम्

कुवलययुगलं ततो विलोलं तिलकुसुमं तदधः प्रवालमस्मात्॥

अर्थ— नायिका के सौन्दर्य के प्रति कथन— यह देखो कैसा आश्चर्य है कि सबसे ऊपर मयूर का केशपाश है, उसके नीचे अष्टमी का चन्द्रखण्ड सुशोभित है, उसके नीचे दो चंचल नीलकमल हैं तथा उसके नीचे तिल का फूल और उसके नीचे मूँगे का खण्ड सुशोभित है।

टिप्पणी— यहाँ पर कामिनी के केशपाश का मयूर के रूप में, उसके मस्तक को अष्टमी के चन्द्रमा के रूप में, नासिका का तिलपुष्प के रूप में और अधरोष्ठ का विद्रुम के स्वरूप में अध्यवसान हुआ है। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

12.1.8 सन्देह

लक्षण— सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः

अर्थ— उपमेय में उपमान का कविप्रतिभाजन्य संशय, सन्देह नामक अलंकार होता है।

उदाहरण— किं तारुण्यतरोरियं रसभरोदिभन्ना नवा वल्लरी

वेला प्रोच्छलितस्य किं लहेरिका लावण्यवारां निधेः।

उद्गाढोक्लिकवतां स्वसमयोपन्यास विश्रम्भिणः

किं साक्षादुपदेशयष्टिरथवा देवस्य शृंगारिणः।।

अर्थ— रस की अधिकता के कारण खिली हुई यौवन रूप वृक्ष की क्या नवीन मज्जरी है? या समुद्र तट तक उछलते हुए लावण्यसागर की यह लहर है अथवा बढ़ी हुई उमंगो वाले पुरुषों को अपने सिद्धान्तों (कामशास्त्र) की शिक्षा देने में तत्पर शृंगार के अधिष्ठातृदेव कामदेव की यह उपदेशयष्टि है?

टिप्पणी— यहाँ उपमेयभूत कामिनी में उपमानभूत लता का कवि प्रतिभाजन्य संशय विद्यमान है। अतः यहाँ सन्देह अलंकार है।

विशेष— सन्देह अलंकार के मुख्य तीन भेद हैं। (1) शुद्ध सन्देह (2) निश्चयगर्भ सन्देह (3) निश्चयान्त सन्देह।

(1) **शुद्ध सन्देह—** इसमें वाक्य आदि, मध्य एवं अन्त में संशय में ही समाप्त हो जाता है। निश्चयात्मक ज्ञान नहीं हो पाता अपितु सन्देह बना रहता है।

(2) **निश्चयगर्भ सन्देह—** इसके आदि एवं अन्त में संशय हो, मध्य में निश्चय हो।

(3) **निश्चयान्त सन्देह—** इसके आदि में संशय और अन्त में निश्चय होता है।

12.1.9 भ्रान्तिमान्

लक्षण— 'साम्यादतस्मिंस्तद्वृद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः'

अर्थ— यदि सादृश्य के कारण किसी वस्तु में किसी अन्य वस्तु का ज्ञान कविप्रतिभाजन्य हो, तो भ्रान्तिमान् अलंकार होता है। अर्थात् जहाँ समानता के कारण अतद्वस्तु में कवि प्रतिभा के द्वारा तद्वस्तु का बोध होता है वहाँ भ्रान्तिमान् अलंकार होता है। भाव यह है कि जहाँ पर किसी को देखकर उसके सदृश किसी अन्य वस्तु की प्रतीति, कवि प्रतिभा से प्रसूत हो वहाँ भ्रान्तिमान् अलंकार होता है। जहाँ

पर कविप्रतिभा से उत्पन्न प्रतीति न हो वहाँ पर भ्रान्तिमान् अलंकार नहीं होता। यथा— शुक्ति (सीपी) से रजत की भ्रान्ति में भ्रान्तिमान अलंकार न होकर स्वाभाविक वृत्ति होगी।

उदाहरण— मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानधोबल्लवाः, कर्णे कैरवशङ्कया कुवलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि।

कर्कन्धूफलमुच्चिनोति शबरी मुक्ताफलाशङ्कयाः,

सान्द्रां चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चितभ्रमं चन्द्रिका।।

अर्थ— चन्द्रमा की प्रगाढ़ चाँदनी किसके चित को भ्रमित नहीं करती? मुग्ध ग्वाले दूध को बहता हुआ जानकर गायों के नीचे कलश लगा रहे हैं। कान्ता भी श्वेतकमल के धोखे में नीलकमल को कानों में धारण कर रही है। शबरी मोती समझकर झरबरी का संचय कर रही है।

टिप्पणी— इसमें सभी भ्रान्तियाँ कविकल्पनाजन्य हैं, चाँदनी में दुग्ध, कुवलय (नीलकमल) में कैरव (श्वेतकमल) एवं कर्कन्धु (झरबरी, बेर) के फलों में मोतियों की भ्रान्तियाँ वर्णित हैं। अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।

12.1.10 व्यतिरेक

लक्षण— 'आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्यूनतायवा।

व्यतिरेकः।।'

अर्थ— उपमेय की अपेक्षा उपमान का आधिक्य वर्णन करने में व्यतिरेक अलंकार होता है। उपमान की अपेक्षा उपमेय की न्यूनता का वर्णन करने में भी व्यतिरेक अलंकार ही होता है।

उदाहरण— अकलंक मुखं तस्या न कलङ्की विधुर्यथा।

अर्थ— नायिका का निष्कलंक मुख कलङ्की चन्द्रमा के समान नहीं है।

टिप्पणी— यहाँ नायिका के मुख का उत्कर्ष चन्द्रमा की अपेक्षा उत्कृष्ट दिखलाया गया है। साथ ही मुख के उत्कर्ष का कारण (निष्कलंकत्व) और चन्द्र के अपकर्ष का कारण (कलङ्कित्व) ये दोनों ही शब्द द्वारा कह दिये गये हैं। अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

साहित्यदर्पकार के मतानुसार व्यतिरेक अलंकार के अड़तालिस भेद हैं।

12.1.11 अपह्नुति

लक्षण— प्रकृतं प्रतिषिद्धान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः।

अर्थ— 'प्रकृत (उपमेय) का निषेध करके, अन्य (उपमान) का स्थापन अर्थात् आरोप करना अपह्नुति अलंकार है।

अपह्नुति का अर्थ है— छिपाना। जहाँ पर उपमेय का निषेध (छिपाव) करके उपमान की कल्पना की जाती है, वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। तात्पर्य यह है कि जिस स्थान पर यथार्थ बात न बतलाकर दूसरी बात की कल्पना से उसकी ओर संकेत हो, वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है।

उदाहरण— नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नेताश्चतारा नवफेन भङ्गाः।

नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नाऽसौ कलङ्कशयितो मुरारिः ।।

प्रमुख अलङ्कारों का लक्षण
उदाहरण और उनमें भेद

अर्थ— यह आकाशमण्डल नहीं है, जलराशि (सागर) हैं, और ये तारे नहीं हैं, बल्कि नूतन फेनों के खण्ड है। यह चन्द्रमा नहीं है, यह तो कुण्डलित शेषनाग है। यह कलङ्क (चन्द्रकलङ्क) नहीं है, ये तो शेषशय्या पर भगवान विष्णु सो रहे हैं।

टिप्पणी— यहाँ पर प्रस्तुत नभोमण्डल, तारे, चन्द्रमा, और कलङ्क का प्रतिषेध करके अप्रस्तुत सागर, फेनखण्ड, कुण्डलित शेषनाग, शयन किये हुए विष्णु भगवान् का प्रतिपादन है। अतः यहाँ अपहृति अलंकार है।

1 2.1.1 2 प्रतिवस्तूपमा

लक्षण— प्रतिवस्तूपमा सास्याद् वाक्ययोग्यसाम्ययोः।

एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक् ।।’

अर्थ— जिन दो वाक्यार्थों में साम्य प्रतीयमान होता हो (शब्दों के द्वारा सुस्पष्ट रूप में कह न दिया गया हो) उनमें यदि एक ही साधारण धर्म को पृथक्-पृथक् पदों के द्वारा निर्दिष्ट किया जाय तो प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है।

उदाहरण— विमल एव रविर्विशदः शशी प्रकृतिशोभन एव हि दर्पणः।

शिवगिरिः शिवहाससहोदरः सहजसुन्दर एव हि सज्जनः ।।

अर्थ— सूर्य निर्मल होता है, चन्द्रमा भी निर्मल (विशद) होता है और दर्पण भी स्वभाव से ही शोभन होता है। कैलास पर्वत भी भगवान शङ्कर के अट्टहास के समान शुभ्र है और सज्जन भी स्वभाव से ही सुन्दर होते हैं।

टिप्पणी— यहाँ पर विमल, विशद आदि पदों का अर्थ एक ही है। केवल उसे भिन्न-भिन्न पदों द्वारा भिन्न-भिन्न वाक्यों में कह दिया गया है।

प्रतिवस्तूपमा केवल रूप और मालारूप भेद से दो प्रकार की होती है। उपर्युक्त उदाहरण मालारूप प्रतिवस्तूपमा का है।

केवलरूप प्रतिवस्तूपमा का उदाहरण—

मानुषीभ्यः कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।

न प्रभातरत्नं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ।।

1 2.1.1 3 दृष्टान्त

लक्षण— दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिविम्बनम्।

अर्थ— जहाँ पर समान धर्म वाले विषय का विम्बप्रतिविम्बभाव होता है वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ उपमेय तथा उपमान के धर्म अलग-अलग होने पर भी इस तरह वर्णन किया जाय कि दोनों धर्मों में विम्बप्रतिविम्ब भाव से सादृश्य दिखाई दे तथा उपमान-उपमेय का उदाहरण मात्र हो, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

उदाहरण— अविदितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।

अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला।

अर्थ— महाकवि की वाणी के गुण चाहे अविदित हो, तथापि वह केवल सुनने से ही कानों में मधुधार की वर्षा करती है। क्योंकि मालती की माला की सुगन्धि प्रतीत हो या न हो वह दृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट कर ही लेती है।

टिप्पणी— इसमें बोधक शब्द के न होने पर भी मालती माला के साथ कवि की उक्ति की तथा सुरभि के साथ काव्यगुणों की समानता स्पष्ट है। अतः यहाँ पर दृष्टान्त अलंकार है।

12.1.14 अर्थान्तरन्यास

लक्षण— सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि।

कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते।

साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधाततः।।

अर्थ— जहाँ साधर्म्य के द्वारा अथवा वैधर्म्य के द्वारा सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से कार्य का कारण से और कारण का कार्य से समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। वह आठ प्रकार का होता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ पर सामान्य का विशेष के द्वारा और विशेष का सामान्य के द्वारा समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

उदाहरण—

वृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।

सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा।।1।।

यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः।

विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः।।2।।

अर्थ— (1) बड़ो की सहायता से छोटा भी अपना कार्य सिद्ध कर लेता है, जैसे पहाड़ी नदी महानदी में मिलकर समुद्र तक पहुँच जाती है।

टिप्पणी— यहाँ उत्तार्थ के विशेष कथन से पूर्वार्थ के सामान्य कथन का समर्थन किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

(2) अर्थ— जिसमें शब्द और अर्थ नपे-तुले हैं ऐसी वाणी कहकर माधव शान्त हो गये, क्योंकि बड़े लोग स्वभावतः मितभाषी होते हैं।

टिप्पणी— इसमें उत्तरार्थ के सामान्य कथन से पूर्वार्थ के विशेष कथन का समर्थन किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

12.1.15 तुल्ययोगिता

लक्षण— पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्।

एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता।।

अर्थ— प्रस्तुत पदार्थों का अथवा अप्रस्तुत पदार्थों का एक ही नियत धर्म के साथ सम्बन्ध होना तुल्ययोगिता अलंकार होता है। अर्थात् जहाँ पर केवल प्रस्तुत या अप्रस्तुत पदार्थों में केवल एक धर्म का सम्बन्ध (आरोप) बताया जाता है, वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है।

उदाहरण— कुमुदकमलनीलनीरजालिललितविलासजुषोर्दृशोःपुरःका।

अमृतममृतरश्मिरम्बुजन्म प्रतिहतमेकपदे तवाननस्य।।

अर्थ— तुम्हारी सुन्दर विलासमयी आँखों के सामने कुमुद, कमल और नीलकमलों की पंक्ति क्या है? अमृत, अमृतरश्मि (चन्द्रमा) और कमल तुम्हारे मुख के सामने एक साथ ही मात खा गये हैं।

टिप्पणी— इस उदाहरण में पूर्वाद्ध में नेत्र और उत्तराद्ध में मुख प्रस्तुत है। पूर्वाद्ध में कुमुद, कमल, नीलनीरजालि और उत्तराद्ध में अमृत, चन्द्रमा और कमल अप्रस्तुत (उपमान) है।

पूर्वाद्ध में 'का' पद से अभिव्यञ्जित निन्दास्थ एक धर्म में सभी अप्रकृतों का तथा उत्तराद्ध में प्रतिहतत्व रूप एक धर्म से उत्तराद्ध के अप्रकृतों का सम्बन्ध है। अतः यहाँ तुल्ययोगिता अलंकार है।

2.1.16 दीपक

लक्षण— अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।

अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत्।।

अर्थ— यदि अप्रस्तुत और प्रस्तुत पदार्थों में परस्पर अथवा कई क्रियाओं का एक ही कारक उल्लिखित हो तो दीपक नामक अलंकार होता है। अर्थात् जहाँ पर प्रस्तुत (उपमेय) और अप्रस्तुत (उपमान) दोनों का एक धर्म से सम्बन्ध कथन किया जाय, वहाँ दीपक अलंकार होता है।

उदाहरण—

बलावलेपादधुनाऽपि पूर्ववत् प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।

सती च योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।।

अर्थ— महर्षि नारद भगवान् श्रीकृष्ण से कह रहे हैं— वह विजयामिलाषी शिशुपाल, आज भी संसार को पहले की तरह ही सता रहा है। पतिव्रता पत्नी एवं निश्चल प्रकृति दूसरे जन्म में भी उसी मनुष्य को प्राप्त होती है।

टिप्पणी— यहाँ पर प्रस्तुत निश्चल प्रकृति एवं अप्रस्तुत पतिव्रता नारी का एक अनुसरण रूप क्रिया का साथ सम्बन्ध वर्णित है। इसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत का एक धर्म वर्णित है। अतः दीपक अलंकार है।

2.1.17 विभावना

लक्षण— विभावना बिना हेतुः कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।

उक्तानुक्तानिमित्तत्वाद् द्विधा सा परिकीर्तिता।।'

अर्थ— कारण (हेतु) के बिना जहाँ कार्य की उत्पत्ति का कथन हो, विभावना नामक अलंकार होता है। उक्त और अनुक्त निमित्त (कारण) के भेद से, वह दो प्रकार का कहा गया है। (बिना कारण के

जो कार्य की उत्पत्ति का वर्णन होता है, वहाँ कोई न कोई दूसरा कारण अवश्य रहता है वह कभी उक्त होता है, कभी अनुक्त) तात्पर्य यह है कि जहाँ बिना कारण के ही कार्य की उत्पत्ति बताई जाय वहाँ विभावना अलंकार होता है।

उदाहरण— (ग) उक्तनिमित्त— अनायासकृशं मध्यममशङ्कतरते दृशौ।

आभूषणमनोहारि वपुर्वयसि सुभ्रुवः॥

(ग) अनुक्तनिमित्त— अनायासकृशं मध्यममराङ्कतरले दृशौ।

आभूषणमनोहारि वपुर्भाति मृगीदृशः॥

अर्थ— (1) उक्तनिमित्त— यौवन मं सुन्दर भुकुटी वाली इस सुन्दरी की कटि बिना श्रम के ही दुर्बल हो रही है एवं नेत्र बिना शङ्का के ही चंचल हैं तथा शरीर बिना आभूषण के ही मनोहर हैं।

टिप्पणी— इसमें निमित्त यौवन उक्त है, किन्तु कटि की दुर्बलता, नेत्र की चञ्चलता एवं शरीर की मनोहरता बिना कारण के है। अतः यहाँ विभावना है। (2) अनुक्तनिमित्त विभावना में निमित्त यौवन अनुक्त है, किन्तु कटि की दुर्बलता, नेत्र की चञ्चलता एवं शरीर की मनोहरता बिना कारण के हैं अतः यहाँ पर विभावना अलंकार है।

12.1.18 विशेषोक्ति

लक्षण— सति हैतो फलाभावो विशेषोक्तिस्त्रिधा च सा।

उक्त्यनुक्त्योनिमित्तस्याप्यचिन्त्यपदे च कुत्रचित्॥

अर्थ— हेतु (कारण) के रहते हुए भी कार्य का न होना विशेषोक्ति अलंकार होता है। यह विशेषोक्ति तीन प्रकार का होता है, कहीं उक्तनिमित्त कहीं अनुक्तनिमित्त और कहीं अचिन्त्यनिमित्त।

उदाहरण—

धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चलाः।

प्रभवोऽप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशालिनः॥

अर्थ— महामहिमाशाली पुरुष धनी होते हुए भी उन्माद से रहित, युवा होते हुए भी चञ्चलता से रहित तथा प्रभुता से युक्त होते हुए भी प्रामाद से रहित होते हैं।

टिप्पणी— (1) यहाँ पर युवावस्था और प्रभुता रूप कारण के होते हुए भी उन्माद, चञ्चलता और प्रामाद रूप कार्य का अभाव बतलाया गया है। अतः यहाँ पर विशेषोक्ति अलंकार है। और इस कार्यभाव का निमित्त महामहिमशालित्व भी बताया गया है। अतः यहाँ उक्तनिमित्त विशेषोक्ति अलंकार है।

(2) यदि इसी श्लोक के चतुर्थ चरण में 'महामहिमशालिनः' के स्थान पर 'कियन्तः सन्ति भूतले' पाठ कर दिया जाय तो यही श्लोक अनुक्तनिमित्त विशेषोक्ति का उदाहरण बन जायगा।

(3) अचिन्त्यनिमित्त का उदाहरण—

स एकस्त्रीणि जयति जगन्ति कुसुमायुधः।

हरताऽपि तनुं यस्य शम्भुना न हतं बलम्॥

यहाँ पर शरीर का हरण कर लेने पर भी बल का हरण न करने का कारण अचिन्त्य है। अतः यहाँ विशेषोक्ति अलंकार है।

प्रमुख अलङ्कारों का लक्षण
उदाहरण और उनमें भेद

12.1.19 विरोध या विरोधाभास

लक्षण— जातिश्चतुर्भिर्जात्यादैर्गुणा गुणादिभिस्त्रिभिः।

क्रिया क्रियाद्रव्याभ्यां यद् द्रव्यं द्रव्येण वा मिथः।

विरुद्धमेव भासेत विरोधौऽसौ दशकृतिः॥

अर्थ— जहाँ जाति का जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य इन चारों के साथ, गुण का गुण, क्रिया और द्रव्य इन तीनों के साथ, क्रिया का क्रिया और द्रव्य के साथ तथा द्रव्य का द्रव्य के साथ विरोध, विरोध के समान प्रतीत हो, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है।

तात्पर्य यह है कि विरोध वह अलंकार है जहाँ दो वस्तुओं का विरोध भासित हो अर्थात् वस्तुतः विरोध न होने पर भी जब दो वस्तुओं का ऐसा वर्णन किया जाय जिससे उनमें विरोध का आभास प्रतीत होने लगे तो वहाँ विरोध या विरोधाभास नाम का अलंकार होता है। यह अलंकार दस प्रकार का होता है।

उदाहरण— तब विरहे मलयमरुदावानलः शशिरुचोऽपि सोष्माणः।

हृदयमलिरुतमपि भिन्ने, नलिनीदलमापि निदाधरविरस्याः॥

टिप्पणी— इस श्लोक में वर्णित सभी तत्त्वों में विरोध है— “मलय मरुत और दावाग्नि दोनों ही शब्द जातिवाचक हैं, दोनों में आपाततः विरोध ध्वनित होता है, अन्त में विरहजन्य होने से समाधान होता है, मयूख जातिवाचक एवं ऊष्मा गुण है। यहाँ क्रिया और गुण का विरोध है। अलिगुञ्जित से भेदन क्रेया का विरोध है। नलिनी जातिवाचक है उसका निदाधरवि (द्रव्य) के साथ विरोध है। शीतल कमलपत्र रवि के साथ गर्म नहीं हो सकता है। विरह हेतुक होने से समाधान होता है। अतः उपर्युक्त श्लोक में विरोध अलंकार है।

12.1.20 परिसंख्या

लक्षण— प्रश्नादप्रश्नतो वापि कथिताद्वस्तुनो भवेत्।

तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छब्द आर्थोऽथवा तदा।

परिसंख्या॥’

अर्थ— ‘प्रश्न पूर्वक अथवा बिना प्रश्न के भी उक्त वस्तु से, अन्य की शब्द के द्वारा व्यावृत्ति होती है अथवा वैसी ही अर्थसिद्ध व्यावृत्ति (विच्छेद) होती है, वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है।

तात्पर्य यह है कि जहाँ पर किसी वस्तु का अन्य स्थान से निषेध करके एक ही स्थान में रहने का वमत्कारिक वर्णन किया जाय वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है।

उदाहरण— किमाराध्यं सदा, पुण्यं कश्च सेव्यः सदागमः।

को ध्येयो, भगवान् विष्णुः किं काम्यम्, परमं पदम्॥

अर्थ— सदा आराध्य क्या है? पुण्य। सदा सेवनीय क्या है? सच्छास्त्र। ध्यान के योग्य क्या है?

भगवान् विष्णु। इच्छा करने योग्य क्या है? मोक्ष।

टिप्पणी— इसमें प्रश्नपूर्वक वाक्य तथा पुण्यादि शब्दों का व्यवच्छेद पापादि अर्थतः सिद्ध है। अतः यहाँ परिसंख्या अलंकार है।

12.1.21 निदर्शना

निदर्शना अलंकार भी उपमा आदि की भाँति एक अर्थालङ्कार है। अतः यह भी छात्रों के लिए नितान्त उपादेय है।

लक्षण—

सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वापि कुत्रचित्।

यत्र विम्बानुविम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना।।

अर्थ— जहाँ वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध सम्भव (अबाधित) अथवा असम्भव (बाधित) होकर अन्ततः उनके विम्बप्रतिविम्बभाव का बोधन करे, वहाँ निदर्शना अलंकार होता है।

उदाहरण—

इदं किलाव्याजमनोहरं वपु-

स्तपः क्षमं साधयितुं य इच्छति।

ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया

शमीलतां छेतुमृषिर्व्यवस्यति।।

टिप्पणी— उपर्युक्त उदाहरण में आचार्य विश्वनाथ कृत अलंकार का लक्षण पूर्णरूपेण घटित होता है। अतः यहाँ निदर्शना अलंकार है।

(खण्ड ख)

प्रमुख अलंकारों में भेद

1. अनुप्रास एवं यमक--

दोनों ही शब्दालंकार एवं आवृत्तिमूलक हैं। अनुप्रास में एक वर्ण (व्यञ्जन) की आवृत्ति होती है। जबकि यमक में स्वर-व्यञ्जन संघात्मक शब्द की आवृत्ति होती है। अनुप्रास में आवृत्त होने वाले वर्णों में कोई क्रम नहीं रहता जबकि यमक में आवृत्त होने वाले स्वर-व्यञ्जन संघात्मक शब्दों का क्रम मे रहना आवश्यक है। अनुप्रास में वर्णों की आवृत्ति एक बार अथवा अनेक बार हो सकती है, किन्तु यमक में शब्दों की आवृत्ति सिर्फ एक बार होती है। अर्थात् यमक युग्म पर निर्भर है, एक ही भिन्नार्थक शब्द की आवृत्ति तीन, चार या पाँच बार या इससे अधिक रखने पर यमक नहीं होगा।

2. यमक एवं श्लेष—

यमक शब्दालंकार है जबकि श्लेष उभयालंकार है। यमक में शब्दावृत्ति होती है किन्तु श्लेष में आवृत्ति नहीं होती है। यमक में एक ही शब्द दो बार प्रयुक्त होता है। तथा उसके अर्थ अलग-अलग होते हैं, किन्तु श्लेष में एक ही शब्द के दो या अधिक अर्थ हो सकते हैं और उसकी आवृत्ति भी नहीं होती।

3. उपमा एवं रूपक—

दोनों ही सादृश्यमूलक अलंकार हैं। उपमा भेदाभेद प्रधान अलंकार है जबकि रूपक सिर्फ अभेद प्रधान अलंकार है। उपमा में उपमेय के साथ उपमान के सादृश्य के साथ भेद विद्यमान रहता है जबकि रूपक में अभेद आरोप के द्वारा उपमेय को उपमान के रंग में रंग दिया जाता है एवं उपमेय और उपमान में अभेद सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उपमा में साधर्म्य वाक्य (शब्दों) द्वारा कथित रहता है तथा रूपक में वह सदा गम्य रहता है। उपमा में चमत्कार क्रिया, गुण या उभयकृत साधर्म्य पर आधारित होता है जबकि रूपक में चमत्कार उपमेय में उपमान के अभेद (तद्रूप) आरोप पर आश्रित रहता है।

4. उपमा एवं उत्प्रेक्षा

दोनों ही सादृश्यमूलक अलंकार हैं, उपमा में उपमेय एवं उपमान दोनों की अलग-अलग स्थिति रहती है, इसमें उपमेय का सादृश्य उपमान से प्रदर्शित किया जाता है तथा उपमेय की तुलना में अधिक गुण रहता है। उपमा भेदाभेद प्रधान सादृश्य मूलक अलंकार है जबकि उत्प्रेक्षा अभेद या अध्यवसायमूलक अलंकार है। उपमा में उपमेय और उपमान की तुलना की जाती है। जबकि उत्प्रेक्षा में उपमेय पर उपमान की सम्भावना की जाती है, उपमा में यथा, इव, वत् आदि शब्दों के द्वारा तुलना की जाती है, जबकि उत्प्रेक्षा में मन्ये, शङ्के, ध्रुवम्, प्रायो आदि उत्प्रेक्षाबोधक शब्दों के द्वारा उपमेय में उपमान की सिर्फ सम्भावना की जाती है। 'इव' शब्द का प्रयोग दोनों में होता है, उपमा में इव शब्द का संज्ञा शब्दों के साथ तथा उत्प्रेक्षा में क्रियापदों के साथ प्रयोग होता है, किन्तु जहाँ पर उत्प्रेक्षा में इव शब्द का प्रयोग अन्य पदों के साथ होता है उपमा का प्राणधायक तत्त्व सादृश्य होता है, जबकि उत्प्रेक्षा में सम्भावना प्रकट की जाती है। उपमा में उपमान रूप अर्थ की वास्तविक सत्ता रहती है, पर उत्प्रेक्षा में उपमान कल्पित रहता है। उपमेय की वस्तु के सत् उपमान के साथ होने पर ही उपमा होती है, पर उपमेय की कल्पित उपमान के साथ सम्भावना होने पर ही उत्प्रेक्षा होती है।

5. उत्प्रेक्षा एवं रूपक—

दोनों ही सादृश्यमूलक हैं। दोनों अलंकारों में उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाता है किन्तु रूपक में उपमेय और उपमान एक नहीं हो सकते, रूपक में अत्यन्त साम्य प्रदर्शन के लिए उपमान को निश्चयात्मक रूप से उपमेय के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। अर्थात् रूपक का आरोप निश्चयात्मक होता है, जबकि उत्प्रेक्षा का आरोप निश्चयात्मक न होकर सम्भावित होता है अर्थात् उपमेय पर उपमान की सम्भावना मात्र की जाती है। रूपक में सादृश्य गम्य होता है अतः यहाँ सादृश्य (आरोप) वाचक किसी शब्द का प्रयोग नहीं होता जबकि उत्प्रेक्षा में मन्ये, शङ्के, ध्रुवम्, प्रायः आदि शब्दों के द्वारा आरोप की सम्भावना की जाती है, रूपक में आरोप निश्चयमूलक होता है जबकि उत्प्रेक्षा में संशयमूलक होता है।

6. उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति

दोनों ही अध्यवसायमूलक अलङ्कार हैं तथा दोनों में साधर्म्य कल्पित रहता है, अतिशयोक्ति में अध्यवसाय के सिद्ध होने के कारण उपमेय का उपमान निगरण कर लेता है। अतः वहाँ प्रकृत विषय का शब्दतः उपादान नहीं होता, जबकि उत्प्रेक्षा में अध्यवसाय के साध्य होने के कारण उपमेय का ग्रहण होता है। उत्प्रेक्षा में किसी स्तर तक अनिश्चितता बनी रहती है, जबकि अतिशयोक्ति में उपमेय पर उपमान पूर्ण नियंत्रण कर लेता है और उपमेय का उपादान न हो केवल उपमान का वर्णन होता है।

7. उत्प्रेक्षा और सन्देह—

दोनों संशयमूलक अलंकार हैं। दोनों में किसी एक पक्ष का निश्चय नहीं हो पाता है, लेकिन सन्देह में यह अनिश्चितता दोनों पक्षों में समान रहती है, यहाँ पर उभयकोटिक संशय रहता है जबकि उत्प्रेक्षा में चित्तवृत्ति का झुकाव उपमान के प्रति अधिक रहता है। इसलिए यहाँ एककोटिक संशय रहता है तथा यह संशय जानबूझकर द्रष्टा द्वारा कल्पित किया गया होता है, जबकि सन्देह में द्विकोटिक ज्ञान में उपमेय एवं उपमान में बराबर अनिश्चयात्मक स्थिति बनी रहती है।

8. उत्प्रेक्षा एवं भ्रान्तिमान

दोनों में सादृश्य के कारण उपमेय पर उपमान का ज्ञान होता है, भ्रान्तिमान में मिथ्या ज्ञान निश्चित रहता है पर उत्प्रेक्षा में यह ज्ञान अनिश्चयात्मक होता है। भ्रान्तिमान में उपमेय में उपमान की भ्रान्ति हो जाती है, जबकि उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है। भ्रान्तिमान में एककोटिक ज्ञान होता है और उसमें उपमेय का ज्ञान ही नहीं होता है, उपमेय को भ्रान्ति के कारण उपमान समझ लिया जाता है। उत्प्रेक्षा में सम्भावना की जाती है और द्रष्टा का अनिश्चय कल्पित होता है, वह उपमेय एवं उपमान दोनों को भिन्न पदार्थ समझता है, उसे भ्रान्ति भी कोई नहीं होती है, वह तो केवल उपमेय में उपमान की सम्भावना व्यक्त करता है।

9. उत्प्रेक्षा एवं अपहृति

अपहृति में उपमेय का निषेध कर उपमान की स्थापना की जाती है। अपहृति का अर्थ है— छिपाना या निषेध। यह निषेधात्मक शब्द या बिना निषेधात्मक शब्द के व्यक्त हो सकता है, जबकि उत्प्रेक्षा में उपमेय का निषेध नहीं किया जाता है, इसमें उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है।

10 रूपक एवं अतिशयोक्ति—

रूपक में उपमेय की स्थिति विद्यमान रहती है, जबकि अतिशयोक्ति में उपमेय का निगारण उपमान कर लेता है। अतिशयोक्ति का एक भेद रूपकातिशयोक्ति एवं रूपक दोनों में उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाता है। रूपक में ताद्रूप्य पाया जाता है लेकिन अतिशयोक्ति में अध्यवसाय होता है। रूपक में गौणी सरोपा लक्षणा (गौर्वाहीक) होती है, जबकि अतिशयोक्ति में गौणी साध्यवसाना लक्षणा (गौरयम्) होती है।

10. रूपक एवं सन्देह—

रूपक में उपमेय को उपमान का रूप दे दिया जाता है किन्तु उपमेय का साथ रहना आवश्यक होता है। यहाँ निश्चयात्मक ज्ञान रहता है, जबकि सन्देह में उपमेय और उपमान में संशय की स्थिति बनी रहती है, अनिश्चयात्मक ज्ञान बना रहता है।

12 तुल्ययोगिता एवं दीपक—

दोनों में औपम्य होता है। पदार्थों में एक धर्माभिसम्बन्ध रहता है। धर्म का उल्लेख केवल एक बार किया जाता है। दोनों काव्यगत अलंकार हैं। तुल्ययोगिता में प्रस्तुत उपमेयों का उपमेयों के साथ या अप्रस्तुत उपमानों का उपमानों के साथ एक धर्म से कथन किया जाता है जबकि दीपक में प्रस्तुत उपमेय और अप्रस्तुत उपमान दोनों का एक धर्म से सम्बन्ध कथन किया जाता है। तुल्ययोगिता में सभी पदार्थ या तो उपमेय होते हैं या उपमान होते हैं, जबकि दीपक में कुछ पदार्थ उपमेय और कुछ पदार्थ उपमान होते हैं।

13. भ्रान्तिमान एवं अतिशयोक्ति

दोनों सादृश्यमूलक अलंकार हैं तथा दोनों में विषय का उपादान नहीं होता है। भ्रान्तिमान में अभेद ज्ञान किसी दोष पर आधारित होता है तथा वह अनाहार्य होता है, जबकि अतिशयोक्ति में आहार्य होता है। अतिशयोक्ति में उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण कर लिया जाता है। जबकि भ्रान्तिमान में उपमेय को उपमान समझ लिया जाता है।

14. भ्रान्तिमान एवं सन्देह—

भ्रान्तिमान में उपमान द्वारा उपमेय का निगरण कर लिया जाता है। उपमेय को ही उपमान समझ लिया जाता है, यह मिथ्या ज्ञान है जबकि सन्देह में उपमेय और उपमान में संशय बना रहता है, यह अनिश्चयात्मक ज्ञान होता है।

भ्रान्तिमान में उपमेय और उपमान के साम्य को सत्य माना जाता है। जब संशय उत्पन्न हो और यह निश्चित नहीं हो पाये कि उपमान वस्तुतः उपमेय है अथवा नहीं, तब सन्देह अलंकार होता है।

15 विभावना एवं विशेषोक्ति—

दोनों अलंकार कार्यकारण भाव से सम्बद्ध विरोधमूलक अलंकार हैं, विशेषोक्ति में कारण के होते हुए भी कार्य का अभाव रहता है जबकि विभावनना में कारण के बिना भी कार्य का होना वर्णित रहता है। विशेषोक्ति का चमत्कार कार्य की अनुत्पत्ति पर निर्भर रहता है पर विभावना का चमत्कार कार्य की उत्पत्ति पर निर्भर रहता है। विशेषोक्ति वास्तव में विभावना के विपरीत है, विभावना में कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति होती है, विशेषोक्ति में कारण के होने पर भी कार्य नहीं होता है। विभावना में कार्य होता है कारण नहीं। विशेषोक्ति में कारण होता है, कार्य नहीं।

16 अप्रस्तुतप्रशंसा एवं अर्थान्तरन्यास—

अप्रस्तुतप्रशंसा में अप्रस्तुत विषय की प्रशंसा (कथन) के द्वारा प्रस्तुत विषय का वर्णन ध्वनित होती है जबकि अर्थान्तरन्यास में सामान्य विशेष के कथन द्वारा परस्पर समर्थन किया जाता है। अर्थान्तरन्यास में सामान्य विशेष और कार्य-कारण दोनों वाच्य होते हैं जबकि अप्रस्तुत प्रशंसा में अप्रस्तुत अर्थ वाच्य और प्रस्तुत अर्थ व्यङ्ग्य होता है।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित अलंकारों का सोदाहरण लक्षण लिखिए।
श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, सन्देह, भ्रान्तिमान, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, तुल्ययोगिता, दीपक, विभावना, विरोध
2. निम्नलिखित अलंकारों का भेद (अन्तर) स्पष्ट कीजिए—
(क) यमक एवं अतिशयोक्ति (ख) उपमा एवं रूपक (ग) उपमा एवं उत्प्रेक्षा
(घ) उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति (ङ) उत्प्रेक्षा और सन्देह (च) रूपक एवं अतिशयोक्ति
(छ) रूपक एवं सन्देह (ज) तुल्ययोगिता एवं दीपक (झ) भ्रान्तिमान एवं अतिशयोक्ति
(ञ) विभावना एवं विशेषोक्ति।
3. निम्नलिखित श्लोकों में लक्षण सहित अलंकार निरूपण कीजिए—

- (क) नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥
- (ख) वागर्थविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥
- (ग) लिम्पतीव तमोऽङ्गनि वर्षतीवाजनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विकलतां गता॥
- (घ) इन्दुः किं क्व कलङ्कः सरसिजमेतत् किमम्बु कुत्र गतम्।
ललितसविलासवचनैर्मुखमिति हरिणाक्षि निश्चितं परतः॥
- (ङ) यं सर्वशैला परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च, पृथूपदिष्टां दुदुहूर्धरित्रीम्॥

उपर्युक्त श्लोकों में क्रमशः यमक, उपमा, रूपक, सन्देह एवं तुल्ययोगिता अलंकार हैं।



उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

UGST-02
संस्कृत

खण्ड- एक

उत्तररामचरितम्

इकाई- 1	5
नाटक	
इकाई- 2	21
भवभूति	
इकाई- 3	38
उत्तररामचरितम् की संक्षिप्त कथा	
इकाई- 4	59
चरित्र चित्रण	

परिचय-कार्यक्रम

इस पाठ्यक्रम में पाँच खण्ड हैं।

प्रथम खण्ड में चार इकाइयाँ हैं। इनमें क्रमशः नाटक, भवभूति, उत्तररामचरितम् की संक्षिप्त कथा तथा पात्रों के चरित्र का निरूपण किया गया है।

द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत पाँचवीं इकाई है, जिसमें उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक की सविस्तार व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

तृतीय खण्ड के अन्तर्गत छठीं इकाई है। जिसमें उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक की व्याख्या विस्तारपूर्वक दी गई है।

चतुर्थ खण्ड के अन्तर्गत सातवीं तथा आठवीं इकाइयाँ हैं, जिनमें क्रमशः उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक की विस्तृत व्याख्या तथा पाठ्यक्रम में निर्धारित सभी तीनों अंकों के सुभाषित वचनों की सप्रसङ्ग व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

पञ्चम खण्ड के अन्तर्गत कुल चार इकाइयाँ (9-12) हैं, जिनमें क्रमशः छन्द का सामान्य परिचय, प्रमुख छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण, अलङ्कार का सामान्य परिचय तथा प्रमुख अलङ्कारों के लक्षण, उदाहरण और उनमें पारस्परिक भेद विस्तार के साथ वर्णित हैं।

इकाई १ — नाटक

इकाई की रूपरेखा—

- १.० उद्देश्य
- १.१ नाटक की उपयोगिता एवं स्वरूप
- १.२ काव्य की अपेक्षा नाटक की अधिक रमणीयता
- १.३ संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति
 - १.३.१ भारतीय नाट्य परम्परा
 - १.३.२ पाश्चात्य विद्वानों के मत
- १.४ संस्कृत नाटकों की विशेषताएँ
- १.५ नाटक के मूल तत्त्व
 - १.५.१ वस्तु
 - १.५.१.२ आधिकारिक
 - १.५.१.३ प्रासङ्गिक
 - १.५.१.४ विषय की दृष्टि से वस्तु के प्रकार
 - १.५.१.५ अर्थोपक्षेपक
 - १.५.१.६ कथनोपकथन
 - १.५.१.७ अर्थप्रकृतियाँ
 - १.५.१.८ अवस्थाएँ
 - १.५.१.९ सन्धियाँ
 - १.५.१.९.१ मुख
 - १.५.१.९.२ प्रतिमुख
 - १.५.१.९.३ गर्भ
 - १.५.१.९.४ विमर्श
 - १.५.१.९.५ उपसंहृति
- १.६ नायक
 - १.६.१ धीरोदात्त
 - १.६.२ धीरललित
 - १.६.३ धीरप्रशान्त
 - १.६.४ धीरोद्धत
- १.७ प्रतिनायक
- १.८ नायिका
- १.९ रस तथा भाव

१.० उद्देश्य—

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप —

- नाटक की उपयोगिता एवं उसके स्वरूप की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति के विषय में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतों से अवगत होंगे।
- नाटक के मूल तत्त्व को समझ सकेंगे।
- अर्थोपक्षेपक, अर्थप्रकृतियाँ तथा सन्धियों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- नायक, प्रतिनायक एवं नायिका विषयक जानकारी प्राप्त करेंगे।
- रस एवं भाव का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- प्रेक्षागृह सम्बन्धी तथ्यों से अवगत होंगे।

१.१ नाटक की उपयोगिता एवं स्वरूप —

आनन्दस्वरूप परमात्मा का अंश होने के कारण मनुष्य के समस्त क्रियाकलाप आनन्दानुभूति के लिये ही होते हैं। आनन्दप्राप्ति के लिए उद्भूत अनेक पदार्थ संघातों में ललित कलाओं का महत्त्व सहृदय समाज से छिपा हुआ नहीं है। उनमें भी काव्य की महत्त्व असन्दिग्ध है। यद्यपि वेद और पुराण भी इसी दिशा में अग्रसर हैं परन्तु उनके मार्ग अपेक्षाकृत कुछ भिन्न हैं। वेद प्रभुसम्मित हैं और पुराण सुहृत्सम्मित। इनकी उपेक्षा भी मन्दमति व्यक्ति कर सकते हैं और दूसरी बात यह भी है कि इनमें प्रत्येक व्यक्ति की गति भी नहीं है, परन्तु कान्तासम्मित उपदेश देने वाले काव्य की अवहेलना सरलतया सम्भव नहीं है। पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति सत्काव्यों के सेवन से सुकुमार—मतिवालों को भी सुगमता से सम्भव है। काव्य की माधुरी अन्य समस्त माधुर्यों को तिरस्कृत करने वाली है।

इन्द्रिय—सन्निकर्ष के आधार पर काव्य के दो भेद किये गये हैं— (१) श्रव्य एवं (२) दृश्य।

श्रव्यकाव्य विशेषतः श्रवणीय या पठनीय होता है। दृश्यकाव्य की सौन्दर्यानुभूति में चक्षुओं की ही प्रमुखता होती है और इसका प्रभाव भी हृदय पर साक्षात् रूप से पड़ता है। सद्यः परनिर्वृत्ति का शीघ्र अनुभव दृश्यकाव्य के माध्यम से ही हो सकता है।

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।

दृश्यकाव्य में नाटकों या रूपकों तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है, क्योंकि इनका भ्रमन किया जाता है। ये जनता के द्वारा दृश्य होते हैं। नाटक के लिए संस्कृत में पारिभाषिक शब्द 'रूपक' है। अभिनेता अभिनय की अवस्था में अपने ऊपर नाटकीय पात्र के स्वरूप का धारण कर लेता है, अतः नाटक को रूपक कहा गया है। रूपक के ही दस भेदों में से एक भेद रूपक है। रूपक के १० भेद हैं और उपरूपक के १८। रूपकों के १० नाम इस प्रकार हैं— (१) रूपक, (२) प्रकरण, (३) भाण, (४) व्यायोग, (५) समवकार, (६) डिम, (७) ईहामृग, (८) अंक, (९) वीथी एवं (१०) प्रहसन।

नाटकमथप्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।

ईहामृगाङ्गवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥

(सा०द० ६-३)

इस प्रकार रूपक के २८ भेदोपभेद होते हैं। यहाँ सबकी परिभाषाएं न देकर नाटक के रूप पर विचार करना ही उचित होगा। रूपकों और उपरूपकों के विस्तृत विवेचन के लिए इत्युत्तरपरिच्छेद ६ तथा दशरूपक प्रकाश १ और ३ द्रष्टव्य हैं।

२ काव्य की अपेक्षा नाटक की अधिक रमणीयता—

नाटकों में श्रव्य की अपेक्षा हृदयग्राहिता, मनोरंजकता, आकर्षकता, भावाभिव्यंजकता और रस की विविधता अधिक होती है, अतः श्रव्यकाव्य की अपेक्षा दृश्यकाव्य अधिक जनप्रिय होता है अतएव कहा गया है कि—

अत्रेष्टु नाटकं रम्यम्। काव्य की अपेक्षा नाटक अधिक रमणीय होता है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में नाटकों की विशेषता का उल्लेख करते हुए कहा है कि— नाटक में ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, न योजना, क्रिया—कुशलता आदि सभी का समन्वय रहता है, अतएव नाटकों का महत्त्व काव्य की अपेक्षा बहुत अधिक है।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नादयेऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥

(ना०शा० १-११६)

३ संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति—

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपने भावों और विचारों को दूसरों तक पहुंचाना चाहता है। इसके लिए मनुष्य साधारणतः शब्दों का प्रयोग करता है। मनोरंजनार्थ दूसरे का अनुकरण की प्रवृत्ति भी मनुष्य में स्वाभाविक है। अतएव धनञ्जय ने दशरूपक में अनुकरण को ही नाटक का मूल माना है और दूसरे की अवस्था के आरोप के कारण इसका रूपक नाम माना है।

इस अनुकरण को जब कथोपकथन या वार्तालाप, संगीत, नृत्य, वेशभूषा एवं भावभंगी आदि से समन्वित कर देते हैं तथा उसे नाट्य का रूप दे देते हैं, तभी नाटक का प्रारम्भ हो जाता है।

१.३.१ भारतीय नाट्य परम्परा

भारतीय नाट्यशास्त्र की विवेचना करते हुए महामुनि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि सम्पूर्ण देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हमें ऐसी मनोरंजन की वस्तु दीजिए जो दृश्य और श्रव्य दोनों हो, जिसको चारों वर्णों के व्यक्ति समान रूप से अपना सकें। उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा ने चारों वेदों से सारभाग लेकर पाँचवें वेद नाट्यवेद की सृष्टि की। ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाट्य (संवाद, कथोपकथन आदि) सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को लिया।

एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।

नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसंभवम्॥

जग्राह पाट्यमृगवेदात् सामभ्यो गीतिमेव च।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥

(ना०शा० १-१६, १७)

भरतमुनि के कथन को यदि स्थूल रूप में भी लिया जाए तो यह सुस्पष्ट है कि नाटक के लिए चार तत्त्वों की विशेष आवश्यकता है, अर्थात् संवाद, संगीत, अभिनय और रस। ये चारों तत्त्व चारों वेदों में प्राप्य हैं, अतः चारों वेदों से नाटकों की उत्पत्ति मानना सर्वथा बुद्धिगम्य है। ऋग्वेद में संवादसूक्त कई हैं, यथा— यम—यमी सूक्त (ऋ० १०-१०), पुरुरवा—उर्वशी सूक्त (ऋ० १०-१५), सरमा—पणि सूक्त (ऋ० १०-१०८), इन्द्र—मरुत सूक्त (ऋ० १-१६५; १-१७०), विश्वामित्र—नदी सूक्त (ऋ० ३-३३) आदि। इन सूक्तों में नाटकोपयोगि—संवाद का तत्त्व बहुत सुन्दर रूप से प्राप्त है। इन्द्र, अग्नि, उषस्, मरुत् आदि देवताओं के महत्त्वबोधक सूक्तों में नाटकोपयोगी पाट्य बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। सामवेद संगीतमय वेद है ही। यजुर्वेद के यज्ञिय क्रियाकलाप में अभिनय का अंश विद्यमान है तथा अथर्ववेद में प्रायः सभी रसों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार चारों वेदों से आवश्यक तत्त्वों का संग्रह करके नाटकों का प्रारम्भ हुआ है, यह मानना युक्तिसंगत है। यही शनैः—शनैः परिष्कृत होते हुए उच्च कोटि के नाटकों के रूप में प्राप्त होते हैं।

वेदों में ही नाटक के बीज उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद में संवादसूक्तों में यम—यमी संवाद, पुरुरवा—उर्वशी संवाद, सरमा—पणि संवाद आदि संवादों की उपलब्धि से, सामवेद में संगीत—तत्त्व की सत्ता से, यजुर्वेद में धार्मिक कृत्यों के अवसर पर नृत्य के विधान से नाटकीय तत्त्वों की वेदमूलकता में कोई सन्देह नहीं है। रामायण व महाभारत—काल में तो रङ्गशाला, नट, कुशीलव,

जैसे शब्दों का प्रचुर प्रयोग हमारी नाटकला की उन्नति का द्योतक हैं —

(क) नाराजके जनपदे प्रकृष्टनटनर्तकाः। रामायण— (२.६७—१५)

(ख) शैलूषाश्च तथा स्त्रीभिर्यान्ति०। रामायण— (२.८३—१५)

(ग) नाटकाः विविधाः काव्याः कथाख्यायिककारकाः। (महा० २.१२—३६)

(घ) आनर्ताश्च तथा सर्वे नटनर्तृकगायकाः। (महा० २.१५—१३)

महाभारत के हरिवंश पर्व (९१ से ९७ अध्याय) में उल्लेख मिलता है कि वज्रनाभ राक्षस की नगरी में रामायण और कौबेररम्भाभिसार नाटक खेले गये थे।

महर्षि पाणिनि का समय ईसा से कम से कम ४५० वर्ष पूर्व माना जाता है। पाणिनि ने अपने सूत्रों में दो नटसूत्रों अर्थात् नाट्यशास्त्रों का उल्लेख किया है। एक नाट्यशास्त्र के रचयिता शैलालिन् थे और दूसरे के कृशाश्व।

पाराशर्यशैलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। (अष्टा० ४.३.११०)

ऋर्मन्दकृशाश्वदिनिः। (अष्टा० ४.३.१११)

इससे ज्ञात होता है कि महर्षि पाणिनि से बहुत समय पूर्व नाट्यशास्त्र अपनी पूर्ण उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका था। पाणिनि ने केवल अष्टाध्यायी की ही रचना नहीं की, अपितु 'जाम्बवतीजय' नामक नाटक भी लिखा था, जैसा कि निम्न श्लोक से ज्ञात होता है—

स्वस्ति पाणिनये तस्मै येन रुद्रप्रसादतः।

आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्बवतीजयम्॥

महर्षि पतञ्जलि (१५० ई०पू०) ने अपने महाभाष्य (३.२.११) में 'कंसवध' और 'बलिबन्धन' नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है। पतञ्जलि का कथन है—

ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति।

प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति। (महाभाष्य ३.२.१११)

बौद्ध ग्रन्थों, जैन ग्रन्थों और वात्स्यायन के कामसूत्र में भी नाटकों और नटों का उल्लेख मिलता है। वात्स्यायन (दूसरी शताब्दी ई०) ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि नट नागरिकों को नाटक देखावें और दूसरे दिन अपना पारिश्रमिक या पुरस्कार लें। अगले दिन नागरिक चाहें तो फिर नाटक देखें, नहीं तो नटों को विदा करें।

कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः। द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजां नियतं लभरेन्। यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा।
कामसूत्र १.४.२८—३१।

भारतीय नाटककारों में सबसे प्राचीन रचनाएँ महाकवि भास की प्राप्त होती हैं। तत्पश्चात्

१.३.२ पाश्चात्य विद्वानों के मत —

नाटकों के प्रारम्भ के विषय में भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने अपनी बुद्धि के अनुसार विविध कल्पनाएं की हैं। विदेशी विद्वानों के मतों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इन विद्वानों के मत केवल एकांगी भावना से प्रेरित होकर प्रस्तुत किए गए हैं। इनके विभिन्न तथ्यों की ओर पूर्ण ध्यान नहीं दिया गया है, अतः ये मत सर्वांगीण रूप में ग्राह्य नहीं हैं।

उदाहरणार्थ कुछ मत निम्नलिखित हैं—

१. प्रो० रिजवे (Ridge-way) — नाटकों की उत्पत्ति वीरपूजावाद से मानते हैं। इनकी मान्यता है कि जिस प्रकार ग्रीक देश में नाटकों का जन्म दिवङ्गत पुरुषों के प्रति किये गये सम्मान के परिणामस्वरूप हुआ, उसी प्रकार भारतवर्ष में भी नाटकों की उत्पत्ति वीरपूजा से हुयी। रामलीला और कृष्णलीला इसी प्रकार की भावनाओं के परिणाम हैं।
२. पर्ववाद— कुछ विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति विभिन्न पर्वों पर खेले जाने वाले छोटे नाटकों से नाटकों का जन्म हुआ ऐसा मानते हैं।
३. प्रो० हिलेब्रान्ट (Hillebrandt) और प्रो० स्टेनकोनो (StenKonow) के मन में नाटकों का जन्म लोकप्रिय स्वांगों से हुआ।
४. प्रो० पिशेल (Pischel) नाटकों का जन्म पुतलिका नृत्य (Puppet Show) से मानते हैं।
५. प्रो० ल्यूडर्स (Luders) नाटकों का जन्म छायानाटकों अर्थात् छाया द्वारा दिखाये जाने वाले नाटकों से मानते हैं।
६. प्रो० मैक्समूलर (Max Muller), प्रो० सिल्वॉ लेवी (Sylvan Levi)] प्रो० फॉन श्रोएडर (Von-Schroeder) और डॉ० हर्टेल (Hertel) — भारतीय नाटकों की उत्पत्ति ऋग्वेद के संवाद—सूक्तों से हुयी है— ऐसा मानते हैं।
७. प्रो० वेबर (Weber) और प्रो० विंडिश (Windisch) ने भारतीय नाटकों के उद्गम में यूनानी नाट्यकला के प्रभाव को सिद्ध करने का प्रयास किया है। परन्तु प्रो० सिल्वॉ लेवी आदि विद्वानों ने इस मत का समूल खण्डन किया है।
८. कुछ विद्वान 'यवनिका' आदि शब्दों के प्रयोग से भारतीय नाटकों की उत्पत्ति यवनदेश (यूनान) से मानते हैं परन्तु इन दोनों देशों के नाटकों में महान् मौलिक अन्तर है। भारतीय नाटक सुखान्त होते हैं, किन्तु ग्रीक नाटक नहीं। संस्कृत नाटक सुव्यवस्थित रङ्गमंच पर अभिनीत किये जाते थे जबकि यूनानी नाटक खुले मैदान में, कनातों में। जहाँ तक

यवनिका का सम्बन्ध है, यह शुद्ध शब्द जवनिका है जिसका तेजी से गिरने वाले पर्दे के अर्थ में प्रयोग किया गया है। जू जूयते आच्छाद्यते यया यस्यां वा सा जवनिका— इस अर्थ में किया गया है। 'जू' धातु का अर्थ वेग से चलना भी होता है जिसके अनुसार पर्दों के वेग से उठाये और गिराये जाने के कारण इसका नाम जवनिका पड़ा।

१.४ संस्कृत नाटकों की विशेषताएं —

१. संस्कृत—नाटक रस प्रधान होते हैं। उनमें कथा—वस्तु की यथार्थता पर इतना आग्रह नहीं किया जाता जितना कि रस—निष्पत्ति पर। कवि की सफलता उसकी रसाभिव्यञ्जना की शक्ति के अनुसार ही आँकी जाती है। इसलिए वे बहुधा कवित्व प्रधान होते हैं।
२. संस्कृत नाटक आदर्शवादी होते हैं, उनमें आदर्श चरित्रों की सृष्टि की जाती है। उनमें दर्शकों के हृदय की शुद्धि का ध्यान रखा जाता है। वे मनोरञ्जन मात्र ही नहीं करते अपितु एक कल्याणकारी मार्ग की ओर प्रवृत्ति भी कराते हैं।
३. संस्कृत नाटकों में पात्रों की संख्या निश्चित नहीं होती। पात्र आभिजात्य वर्ग के होते हैं। उच्च श्रेणी के पात्र संस्कृत में तथा स्त्रियाँ व अन्य सेवकगण प्राकृत में बोलते हैं। नाटक की भाषा गद्य—पद्यमय होती है।
४. संस्कृत नाटकों में स्थान और काल की एकता (Unity of place and time) का भी सदैव पालन नहीं होता बल्कि कार्य की एकता होती है। न उनमें अङ्कों का दृश्यों में विभाजन होता है। हाँ अभिनयात्मक संकेत विशिष्ट रूप से मिलते हैं।
५. उनमें स्वाभाविकता का सदैव ध्यान रखा जाता है। स्त्रियों का अभिनय स्त्रियों के द्वारा ही किये जाने का विधान होने से, उनमें सरसता, स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता सदैव अक्षुण्ण बनी रहती है।
६. विदूषक की कल्पना संस्कृत नाटकों की अपनी ही है।
७. संस्कृत नाटकों में मञ्च पर, वध, युद्ध, शयन, भोजन, मृत्यु तथा अन्यान्य लज्जाजनक व्यापार दिखाने का निषेध है। वे सदैव सुखान्त होते हैं। यों 'उरुभङ्गम्' जैसा अपवाद भी विद्यमान है। संस्कृत—नाटकों की 'सुखान्तता' का रहस्य हमारी आशावादिता में सन्निहित है। आशा जीवन है और निराशा मृत्यु। संघर्षों पर विजय पाकर सिद्धि प्राप्त करना ही भारतीय शास्त्रों का मूलमन्त्र है। इसलिये यहाँ के अधिकांश काव्य, विशेषतः नाटक, जिनका जन—जीवन पर साक्षात् प्रभाव पड़ता है, सदैव सुखान्त होते हैं।
८. संस्कृत नाटकों का विधान अपना विशिष्ट ही होता है, वस्तु, नेता और रस के

भली-भाँति निर्वाह पर कवि का ध्यान रहता है। नाटक अङ्कों में विभाजित होता है।

९. संस्कृत नाटकों का प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध दिखलाई पड़ता है। प्रकृति मानव मन के अनुरूप चित्रित की गयी है। अपनी सरस एवं सजीव स्पर्श से प्रकृति नटी रंगमञ्च को सदैव विभूषित करती रही है।

१.५ नाटक के मूल तत्त्व —

किसी भी नाटक के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है कि उसके मूल-तत्त्वों को ठीक समझ लिया जाय। नाट्यशास्त्र के मूलतत्त्वों का विस्तृत वर्णन धनञ्जयकृत दशरूपक १.११ और विश्वनाथकृत साहित्यदर्पण ६.४२ में है। यहाँ पर विद्यार्थियों के लाभार्थ उसकी संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जाती है। विस्तृत विवेचन के लिए उक्त दोनों ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं। धनञ्जय के अनुसार नाटक के तीन तत्त्व होते हैं, जिनके आधार पर उसका विभाजन होता है—

१.५.१ वस्तु, नेता और रस —

वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः (दशरूपक १-११)

१.५.१.१ वस्तु —

इसको कथा, कथावस्तु इतिवृत्त आदि नाम से पुकारा जाता है। इसका विशेष महत्त्व होता है।

वस्तु के भेद—

कथावस्तु को दो भागों में विभक्त किया गया है—

(१) आधिकारिक

(२) प्रासंगिक

१.५.१.२ आधिकारिक —

आधिकारिक वह कथावस्तु है जो मुख्य कथा होती है। अधिकार का अर्थ है— फल का स्वामित्व। अतः जो फल का स्वामी अर्थात् नायक होता है, उससे सम्बद्ध कथानक आधिकारिक होता है। जैसे— रामायण में रामचन्द्र की कथा।

१.५.१.३ प्रासंगिक —

प्रासंगिक वह कथा है, जो गौण रूप से हो, और मुख्य कथा का अंग हो। जैसे— रामायण में मृग्रीव या शबरी की कथा।

सांगिक कथा के भेद— इसके निम्नलिखित दो भेद हैं—

क) पताका, (ख) प्रकरी।

क) पताका— उस कथा को कहते हैं जो नाटक में दूर तक चलती है, इसका नायक दूसरा व्यक्ति होता है, वह मुख्य नायक का साथी होता है और गुणों में उससे न्यून होता है। उसके कार्य का उद्देश्य कोई स्वतन्त्र फल नहीं होता है। जैसे— रामायण में सुग्रीव की कथा।

ख) प्रकरी— छोटे-छोटे प्रसंग या कथानकों को प्रकरी कहते हैं जैसे— रामायण में शबरी आदि की कथाएँ।

५.१.४ विषय की दृष्टि से वस्तु के प्रकार —

विषय—सामग्री की दृष्टि से कथावस्तु के तीन प्रकार होते हैं—

१) प्रख्यात— जो इतिहास आदि पर अवलम्बित हो, उसे प्रख्यात कहते हैं जैसे— शाकुन्तल की कथा महाभारत पर और उत्तररामचरितम् की कथा रामायण पर अवलम्बित है।

२) उत्पाद्य— कवि द्वारा कल्पित होती है जैसे— शूद्रक का मृच्छकटिक तथा भवभूति का मालतीमाधव।

३) मिश्र— इसमें कुछ अंश इतिहास पर अवलम्बित होता है और अधिक अंश कविकल्पित होता है।

अभिनय की दृष्टि से कथावस्तु के दो भेद होते हैं—

१) अभिनेय और (ख) सूच्य।

(क) अभिनेय— जिन घटनाओं को सबके सामने अभिनय किया जाय वे अभिनेय हैं।

(ख) सूच्य— जिनकी सूचना मात्र दी जाय वे सूच्य कहलाती हैं।

५.१.५ अर्थोपक्षेपक —

व्य' घटनाओं की सूचना के लिए पाँच अर्थोपक्षेपकों का विधान है—

१) विष्कम्भक, (ख) प्रवेशक, (ग) चूलिका, (घ) अङ्कास्य एवं (ङ) अङ्कावतार।

२) विष्कम्भक—

बीती या आने वाली घटनाओं की सूचना मध्यम पात्रों के द्वारा अंकों के प्रारम्भ में दिये जाते हैं। को 'विष्कम्भक' कहते हैं। विष्कम्भक के दो भेद हैं— 'शुद्ध' और 'मिश्र'। जहाँ एक या दो मध्यम कोटि के आते हैं उसे 'शुद्ध' और जहाँ नीच और मध्यम दोनों प्रकार के पात्र आते

हैं, उसे 'मिश्र' विष्कम्भक कहते हैं। विष्कम्भक में संस्कृत का प्रयोग होता है।

(ख) प्रवेशक—

जब वृत्तवर्तिष्यमाण घटनाओं की सूचना नीच पात्रों के द्वारा दी जाती है, उसे 'प्रवेशक' कहते हैं। इसका प्रयोग दो अंकों के बीच में हो सकता है। इसमें प्राकृत भाषा का प्रयोग होता है।

(ग) चूलिका—

पर्दे के पीछे बैठे हुए पात्रों के द्वारा कथा की सूचना देने को 'चूलिका' कहते हैं।

(घ) अंकास्य—

अंक की समाप्ति पर निष्क्रान्त होने वाले पात्रों द्वारा अगले अंकों की कथा की सूचना को अंकास्य या अंकमुख भी कहते हैं।

(ङ) अंकावतार—

अंक समाप्त होने से पहले ही आगामी अंक की कथा प्रारम्भ कर देने को 'अंकावतार' अर्थोपक्षेपक कहते हैं।

१.५.१.६ कथनोपकथन—

तीन प्रकार के होते हैं।

(क) सर्वश्राव्य या प्रकाश— जिसे सबको सुनाना अभीष्ट हो।

(ख) स्वगत या अश्राव्य— जो बात दूसरों को सुनानी अभीष्ट न हो, मन ही मन कहने योग्य हो।

(ग) नियतश्राव्य— जो केवल कुछ ही पात्रों को सुनानी अभीष्ट हो। इसके भी तीन भेद होते हैं—

(१) जनान्तिक— जब दो पात्र हाथों की ओट करके बात करते हैं।

(२) अपवारितक— जब कोई पात्र मुँह फेर कर दूसरे पात्र की गुप्त बात कहता है।

(३) आकाशभाषित—जब कोई पात्र आकाश की ओर मुँह करके स्वयं प्रश्नोत्तर करता है, उसे 'आकाशभाषित' कहते हैं।

१.५.१.७ अर्थप्रकृतियाँ —

कथावस्तु के मर्यादित पल्लवन और उपसंहार के लिए पाँच अर्थप्रकृतियाँ, पाँच अवस्थाओं और पाँच सन्धियों का विधान किया गया है।

अर्थप्रकृतियाँ— अर्थप्रकृतियाँ नाटकीय कथावस्तु के पाँच तत्त्व हैं। धनञ्जय और विश्वनाथ ने अर्थप्रकृति का अर्थ किया है— प्रयोजनसिद्धिहेतवः। जो प्रयोजन की सिद्धि में कारण हो। ये अर्थप्रकृतियाँ पाँच हैं—

(क) बीज, (ख) बिन्दु, (ग) पताका, (घ) प्रकरी एवं (ङ) कार्य।

(क) बीज— वह तत्त्व है जो वृक्ष के बीज की तरह प्रारम्भ में संक्षेप में निर्दिष्ट और आगे उसका ही अनेक प्रकार से विस्तार हो। यह नायक के मुख्य फल का प्रमुख कारण होता है।

(ख) बिन्दु— अवान्तर कथा से मूल कथा के टूट जाने पर जो उसे जोड़ता है और आगे बढ़ाता है, उसे 'बिन्दु' कहते हैं।

(ग) पताका— वह प्रासङ्गिक कथा जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती है।

(घ) प्रकरी— वह प्रासङ्गिक कथा जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर चलती है।

(ङ) कार्य— कार्य का अर्थ फल है, जिस फल की प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है, जो साध्य होता है, वह कार्य है। जैसे— रामायण में रावण का वध। यह फल धर्म, अर्थ, काम में से कोई भी हो सकता है। इसको ही मुख्य प्रयोजन, लक्ष्य आदि कहते हैं।

१.५.१.८ पाँच अवस्थाएँ—

नाटक में जो कार्य प्रारम्भ किया जाता है, उसकी प्रगति के विभिन्न विश्रामों को 'अवस्थाएँ' कहते हैं। ये अवस्थाएँ उसकी गतिविधि को सूचित करती हैं। ये पाँच अवस्थाएँ हैं—

(क) आरम्भ, (ख) यत्न, (ग) प्राप्त्याशा, (घ) नियताप्ति एवं (ङ) फलागम।

(क) आरम्भ— मुख्य फल की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है उसे 'आरम्भ' कहते हैं।

(ख) यत्न— फल की प्राप्ति के लिए नायक बड़े वेग से जो प्रयत्न करता है, उसे 'यत्न' कहते हैं।

(ग) प्राप्त्याशा— जब अनुकूल परिस्थितियों के कारण, फल प्राप्ति की सम्भावना होती है और विघ्नों के कारण वह असम्भव दीखती है, उस संदिग्ध अवस्था को 'प्राप्त्याशा' कहते हैं।

(घ) नियताप्ति— जब विघ्नों के हट जाने के कारण फल की प्राप्ति निश्चित जान पड़ती है, उस अवस्था को 'नियताप्ति' कहते हैं।

(ङ) फलागम— जब इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है, उस अवस्था को 'फलागम' कहते हैं।

१.५.१.९ सन्धियाँ

पाँचों अर्थप्रकृतियों को पाँच अवस्थाओं से जो सम्बद्ध करती हैं, उन्हें सन्धियाँ कहते हैं। ये क्रमशः अर्थप्रकृति से अवस्था का संबंध करती हैं। सन्धियाँ पाँच हैं— मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं उपसंहृति या निवर्हण।

१.५.१.१.१ मुख— बीज और आरम्भ को मिलाकर मुख—सन्धि होती है।

१.५.१.१.२ प्रतिमुख— बिन्दु और यत्न को मिलाकर प्रतिमुख सन्धि होती है।

१.५.१.१.३ गर्भ— पताका और प्राप्याशा को मिलाकर गर्भ सन्धि होती है। जहाँ पताका न हो, वहाँ पर प्राप्याशा पर ही अवलम्बित रहती है।

१.५.१.१.४ विमर्शः— प्रकरी और नियताप्ति को मिलाकर 'विमर्श—सन्धि' होती है और इसको ही 'विमर्श' 'अवमर्श' भी कहते हैं। जहाँ प्रकरी न हो, वहाँ नियताप्ति पर ही निर्भर रहती है।

१.५.१.१.५ उपसंहृति— कार्य और फलागम को मिलाकर उपसंहृति सन्धि होती है। इसको ही 'निर्वहण' सन्धि कहते हैं। सन्धियों को कथा का स्थूल भाग कहा जा सकता है। इसके आधार पर ही नाटक का विभाजन किया जाता है। मुख—सन्धि में बीज की उत्पत्ति का वर्णन होता है। प्रतिमुख में बीज का कुछ प्रकट होना दिखाया जाता है। गर्भ में बीज का नष्ट होना और उसके लिए पुनः अन्वेषण का वर्णन होता है। विमर्श में गर्भ की अपेक्षा बीज अधिक प्रकट होता है, परन्तु शाप या क्रोध आदि के कारण उसमें विघ्न दिखाया जाता है। उपसंहृति में बिखरे हुए अर्थों को एकत्र किया जाता है और मुख्य फल का वर्णन होता है। अर्थप्रकृतियाँ आदि को निम्नलिखित रूप में रखकर सरलता से समझा जा सकता है। प्रथम में प्रथम का, द्वितीय से द्वितीय का, इस प्रकार इनका सम्बन्ध है।

अर्थप्रकृति	अवस्थाएँ	सन्धियाँ
बीज	आरम्भ	मुख
बिन्दु	यत्न	प्रतिमुख
पताका	प्राप्याशा	गर्भ
प्रकरी	नियताप्ति	विमर्श
कार्य	फलागम	उपसंहृति (निर्वहण)

१.६ नायक —

दशरूपककार ने नेता अर्थात् नायक का लक्षण इस प्रकार दिया है— “नायक, नम्र, मधुर, त्यागी, कुशल, प्रियवचन बोलनेवाला, लोकप्रिय, पवित्र, बोलने में प्रवीण, सुविख्यात कुलवाला, स्थिरयुवक, बुद्धिमान्, उत्साही, स्मरणशक्तिवाला, उचित—अनुचित का विचारक, कलाओं से सम्पन्न, मानी, शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रों के अनुसार कार्य करने वाला एवं धार्मिक होता है। (दशरूपक २-१-२)

नायक के प्रकार—

नायक की प्रकृति के आधार पर नायक के निम्न चार भेद हैं— धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत।

१.६.१ धीरोदात्त:-

धीरोदात्त प्रकृति का नायक प्रायः राजा या राजकुलोत्पन्न होता है। वह निरभिमानी अत्यन्त गम्भीर, स्थिरचित्त तथा अविकल्थन होता है। वह जो संकल्प या व्रत लेता है उसे पूरा करता है। वह आदर्श नायक के सभी गुणों से पूर्ण होता है। नाटक का नायक इसी प्रकृति का चुना जाता है। उत्तररामचरित एवं अभिज्ञानशाकुन्तल के नायक इसी कोटि के हैं।

१.६.२ धीरललित-

धीरललित नायक राज-पाट या दूसरी चिन्ताओं से मुक्त, संगीत, नृत्य, चित्र आदि कला का प्रेमी और रसिक-वृत्ति का होता है। वह प्रेम का उपासक और सदा भोग-विलास में लिप्त रहने वाला होता है। इसकी अनेक पत्नियाँ होती हैं। धीरललित नायक अधिकतर राजा होता है। उसका राज्य-कार्य मन्त्री आदि संभाले रहते हैं। भास का वत्सराज उदयन ऐसा ही धीरललित नायक है।

१.६.३ धीरप्रशान्त-

धीरप्रशान्त नायक धीरललित नायक से सर्वथा भिन्न होता है। वह शान्त प्रकृति का ब्राह्मण या वैश्य-कुलोत्पन्न होता है। वह कलाप्रिय भी होता है। प्रकरण नामक रूपक भेद का नायक धीरप्रशान्त ही होता है।

१.६.४ धीरोद्धत-

धीरोद्धत नायक घमण्डी, ईर्ष्यालु, विकल्थन तथा छली होता है। यही कारण है कि वह उद्धत कहा जाता है। परशुराम या भीमसेन इसी कोटि के नायक हैं-

१.७ प्रतिनायक -

नायक का शत्रु प्रतिनायक होता है। यह धीरोद्धत प्रकृति का होता है।

१.८ नायिका -

नाटकादि में जितना महत्त्व नायक का होता है उतना ही महत्त्व नायिका का भी होता है। टिका तो नायिका प्रधान होती ही है। नायिका का वर्गीकरण तीन आधारों पर किया जाता है-

१) नायक के साथ सम्बन्ध होने के आधार पर नायिका के १. स्वकीया, २. अन्या और ३. मान्या - तीन भेद होते हैं।

(ख) दूसरा आधार अवस्था का है। इसके अनुसार १. मुग्धा, २. मध्या और ३. प्रौढ़ा — तीन भेद होते हैं।

(ग) तीसरा आधार उसकी दशा है। इसके अनुसार नायिका आठ प्रकार की होती है— १. स्वाधीन—पतिका, २. वासकसज्जा, ३. विरहोत्कण्ठिता, ४. खण्डिता, ५. विप्रलब्धा, ६. कलहान्तरिता, ७. प्रोषितपतिका और ८. अभिसारिका।

१.९ रस तथा भाव —

रस की अनुभूति रसिक (सहृदय) को ही होती है। रसिक के चित्त में रति आदि भाव पहले से ही विद्यमान रहते हैं। जब काव्य के द्वारा विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव और व्यभिचारी भावों की उपस्थिति करायी जाती है तो उसके द्वारा रसिक के चित्त में स्थित रति आदि भाव पुष्ट हो जाते हैं। यही आस्वादयमान रति आदि भाव 'रस' कहलाते हैं, जो विशेष प्रकार की आत्मानन्दानुभूति ही हैं। आचार्य धनञ्जय आठ भाव को स्वीकार करते हैं तथा परवर्ती आचार्यों ने सर्वमान्य नौ भाव— १. रति, २. जुगुप्सा, ३. क्रोध, ४. हास, ५. विस्मय, ६. भय, ७. उत्साह ८. शोक व ९. शम माना है। इसी आधार पर शृंगार, वीभत्स, रौद्र, हास्य, अद्भुत, भयानक, वीर, करुण तथा शान्त ये नौ रस माने हैं। धनञ्जय ने शम को नाटक के लिए अनुपयुक्त मानकर शान्तरस को मान्यता नहीं दी है। भावों की संज्ञा साहित्य में स्थायी भाव दी गयी है क्योंकि ये मानव हृदय में सदा विद्यमान रहते हैं। ये भाव—विभावादि से पुष्ट होकर शृंगार आदि रसों में परिणत हो जाते हैं।

१.१० प्रेक्षागृह —

संस्कृत—नाटकों के लिए बड़े सुन्दर प्रेक्षागृहों का विधान था। संक्षेप में उनका स्वरूप यहाँ बताया जा रहा है— भरतमुनि ने तीन प्रकार के 'प्रेक्षागृह' बताये हैं—

(क) विकृष्ट, (ख) चतुस्त्र एवं (ग) त्र्यस्र।

(क) विकृष्ट— सबसे बड़ा होता था। यह देवताओं के लिए नियत था, तथा इसका परिमाण १०८ हाथ था। इसका आकार सम्भवतः गोल होता था।

(ख) चतुस्त्र— यह स्पष्टतः चौकोर होता था जिसकी लम्बाई ६४ हाथ तथा चौड़ाई ३२ हाथ होती थी। यह मध्यम कहलाता था तथा सम्भवतः राजाओं तथा प्रजाओं के लिए भी यह उपयोग में आता था।

(ग) त्र्यस्र— यह त्रिकोने आकार का होता था जिसकी प्रत्येक भुजा ३२ हाथ की होती थी। यह छोटे नाटकों के उपयोग में आता था।

रङ्गमञ्च की बनावट बड़ी वैज्ञानिक होती थी, जिसमें आवाज न गूँज सके तथा हवा एवं

प्रकाश का समुचित प्रबन्ध रहे। इस विषय में बड़े ही सूक्ष्म निर्देश नाट्यशास्त्र में दिये गये हैं। प्रायः आधे भाग में रङ्गमञ्च होता था और आधे भाग में दर्शकों के बैठने का स्थान होता था। रङ्गमञ्च का पिछला भाग रङ्गशीर्ष कहलाता था। उसके पृष्ठ में 'नेपथ्य' होता था, वहाँ पात्र अपनी वेशभूषा आदि परिवर्तित करते थे। नेपथ्यगृह से आगे रङ्गपीठ होता था। यह १६ हाथ लम्बा और ८ हाथ चौड़ा होता था। रङ्गपीठ के दोनों ओर डेढ़ हाथ ऊँची मत्तवारिणी होती थी। नाट्यमण्डप को दो मंजिला (द्विभूमिक) बनाया जाता था। ऊपरी खण्ड से देवताओं से सम्बंधित दृश्य दिखाये जाते थे। दर्शकों के बैठने के लिए आजकल के गैलरीनुमा आसनों की व्यवस्था थी।

रङ्गमञ्च पर अङ्क की समाप्ति होने पर पर्दा गिराया जाता था। इस पर्दे का शुद्ध नाम जवनिका है यवनिका नहीं। इसके यवनिका नाम को लेकर बहुत से समालोचकों ने भारतीय नाट्यकला पर यूनानी प्रभाव की घोषणा की है जिसका युक्तियुक्त उत्तर भारतीय विद्वानों ने दिया है। यहाँ पर कुछ विद्वानों के मत दिये जा रहे।

१. जवनं वेगेन प्रतिरोधनमस्ति अस्याः। जवनष्ठन् टाप् च (शब्दकल्पद्रुम)।

२. जूयते—आच्छाद्यते यया यस्यां वा सा जवनिका... इस अर्थ में किया गया है।

भारतीय प्रतिभा जिस प्रकार नाटक के विन्यास में स्वतन्त्र है, उसी प्रकार अभिनय कला में भी परमुखापेक्षी नहीं है। जवनिका के लिये भारतीय नाटककार यवनों के पराधीन नहीं हैं। नाटकीय पर्दा भारत की निजी वस्तु है, मंगनी की वस्तु नहीं।

१.११ अभ्यास प्रश्न—

क— अतिलघुत्तरीय प्रश्न—

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

- नाट्यशास्त्र के रचयिता के क्या नाम हैं?
- रूपक के कितने भेद हैं?
- नाटक के तत्त्व कितने हैं?
- वस्तु के कितने भेद हैं?
- अर्थोपक्षेपक के प्रकार बताइए?
- नाटक में नायक कितने प्रकार के माने जाते हैं?
- अर्थ प्रकृतियों के कितने भेद हैं?
- सन्धियों के कितने भेद हैं?

बलदेव उपाध्याय— संस्कृत साहित्य का इतिहास, तृतीय संस्करण १९५३, पृ० ४०६।

ख- रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

१. इतिहास आदि पर अवलम्बित कथा कहलाती है।
२. संगीतमय वेद कहते हैं।
३. नाटक के तत्त्व हैं।
४. काव्य की अपेक्षा रमणीय होता है।

ग- विस्तृत प्रश्न-

१. संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति के विषय में अपने विचार व्यक्त कीजिए।
२. वस्तु के भेदों का वर्णन कीजिए।
३. अर्थोपक्षेप पर प्रकाश डालिए।
४. सन्धियों की व्याख्या कीजिए।

इकाई २— भवभूति

इकाई की रूपरेखा

२.० उद्देश्य

२.१ भवभूति का जीवन परिचय

२.१.१ जन्म—स्थान

२.१.२ भवभूति के नाम

२.१.२.१ भवभूति और उम्बेक

२.२ भवभूति के गुरु

२.३ भवभूति के उपास्य देव

२.४ भवभूति का समय

२.५ भवभूति का पाण्डित्य

२.६ रचनाएँ

२.६.१ मालतीमाधव

२.६.२ महावीरचरितम्

२.६.३ उत्तररामचरितम्

२.७ भवभूति समीक्षकों की दृष्टि में

२.८ भवभूति की ख्याति

२.८.१ भवभूति का वैशिष्ट्य

२.९ भवभूति और कालिदास

२.१० भवभूति का काव्य—सौन्दर्य

२.११ अभ्यास प्रश्न

२.० उद्देश्य

- इस इकाई को पढ़ने के बाद आप—
- भवभूति के जीवन परिचय एवं कृत्तिव की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भवभूति के पाण्डित्य का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- भवभूति के गुरु एवं उपास्य देवविषयक जानकारी प्राप्त करेंगे।
- भवभूति और कालिदास का तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त करेंगे।

- भवभूति के काव्य-सौन्दर्य से अवगत होंगे।

२.१ भवभूति का जीवन परिचय —

भवभूति संस्कृत साहित्य के जगमगाते हुए रत्न हैं। संस्कृत नाटक-साहित्य में भवभूति रचित उत्तररामचरित नाटक का विशिष्ट स्थान है। वास्तव में महाकवि किसी देश विशेष या कालविशेष से परिच्छिन्न नहीं होते, उनका व्यक्तित्व तो इन सबसे ऊपर उठा हुआ होता है, वे सारे संसार के निधि होते हैं, यही कारण है कि संस्कृत कवियों ने प्रायः अपने विषय में मौन का ही अवलम्बन किया है। सौभाग्य का विषय है कि भवभूति ने अपने ग्रन्थों में, विशेषतः महावीर-चरित की प्रस्तावना में अपना यत्किंचित परिचय प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त मालती-माधव तथा उत्तररामचरित से भी इनका कुछ परिचय प्राप्त होता है। भवभूति के पूर्वज दक्षिण देश के पद्मपुर नामक नगर में रहते थे। इनका गोत्र काश्यप था। ये कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का अध्ययन करने वाले और 'उदुम्बर' इस नाम से प्रसिद्ध, अग्निचर्या में तत्पर सोमयज्ञ करने वाले तथा ब्रह्मवादी थे। इस वंश में 'महाकवि' नाम के एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुए जिन्होंने वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान किया। इन्हीं महाकवि की पांचवी पीढ़ी में भवभूति का जन्म हुआ। भवभूति के पितामह का नाम भट्टगोपाल पिता का नाम नीलकण्ठ माता का नाम 'जतुकर्णी' (अथवा जातूकर्णी) तथा गुरु का नाम 'ज्ञाननिधि' था।

अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र केचिन्तैत्तिरीयाः काश्यपाश्चरणगुरवः पङ्क्तिपावनः पञ्चाग्नयो धृतवताः सोमपीथिनः उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्र भवतो वाजपेय याजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्ति नीलकण्ठस्यात्म संभवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः कविर्मित्र धेयमस्माकमिति भवन्तः विदां कुर्वन्तु।

२.१.१ जन्म स्थान :—

मालती माधव के अनुसार पद्मपुर नगर विदर्भ में था। (द्रष्टव्य महावीर चरितम् १/५ तथा मालतीमाधव १/९१) इनके पूर्वजों का विदर्भ देश से संबंध होने के कारण डॉ० भण्डारकर अनुमान करते हैं कि भवभूति का जन्मस्थान नागपुर प्रदेश के चन्द्रपुर नामक स्थान के आस-पास कहीं रहा होगा, क्योंकि वहाँ अबतक भी तैत्तिरीय शाखा के मराठे ब्राह्मण रहते हैं। टीकाकार घनश्याम ने भवभूति द्वारा प्रयुक्त अनेक द्राविड़ प्रयोगों के कारण उनका जन्म-स्थान द्रविड़ देश में माना है—

उदाहरणार्थ— वासन्ती— हन्तमातर्जीवामि (उत्तरराम० २/७)

(द्रविड़स्त्री स्वभावोक्तिरियम् एवं वदता कविना निजं द्रविडत्वं प्रकटितमित्यहयम्— घनश्याम टीका)

सीता— वत्सयोः पितुः संनिधानेन (उ० रा० च० ३/१६) (एतेन कविना निजं द्राविडत्वमाविष्कृतमिति बोध्यम्—घनश्याम) तथा अकुङ्कुमकलङ्कित (उ० रा० च० ६/३७) कुङ्कुमादिप्रचुरः रङ्गविशेषपञ्चे

इति द्रविडः एतेन कविना निजद्राविडत्वं सूचितम्— घनश्याम टीका)

गोदावरी तथा विन्ध्याचल का जो हृदयग्राही वर्णन भवभूति ने अपनी रचनाओं में किया है उससे प्रकट होता है कि इनका इन दोनों से घनिष्ठ परिचय था अतः इन्हीं के समीप इनका जन्मस्थान मानना चाहिए। संभवतः इनके पूर्वजों का स्थान पद्मपुर ही रहा होगा।

२.१.२ भवभूति के नाम —

भवभूति का पितृकृत या असली नाम क्या था— श्रीकण्ठ या भवभूति? इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। भवभूति ने अपने नाटकों का प्रस्तावना में 'श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो' 'भवभूतिनीम जतुकर्णीपुत्रः' इस प्रकार अपने नाम का परिचय दिया है। इससे सुस्पष्ट है कि कवि का वास्तविक नाम 'भवभूति' था और श्रीकण्ठ इस उपाधि से वे बाद में अलंकृत किये गये। 'भवभूतिर्नाम' इसमें 'नाम' शब्द प्रसिद्धसूचक अव्यय है, इसलिए अधिकतर टीकाकारों ने 'भवभूति' प्रचलित नाम तथा 'श्रीकण्ठ' पैतृक नाम माना है। 'भवभूति' ऐसी प्रसिद्धि के लिये टीकाकारों ने अनेक हेतुओं की कल्पना कर डाली है। वीरराघव का कथन है कि "साम्बा पुनातु भवभूति पवित्रमूर्ति" इस पद्य में भवभूति शब्द के सुन्दर प्रयोग से सन्तुष्ट होकर किसी राजा ने उनको 'भवभूति' उपाधि से अलंकृत किया।

एतत्कृतः 'साम्बा पुनातु भवभूति पवित्रमूर्तिः' इति श्लोकसन्तुष्टो राजा भवभूतिरित्येनं ख्यापयामासेति कथा अत्रानुसन्धेया। एवमन्यत्रापि कवितानुसारेण तन्तन्नामधेयम्। यथा— रत्नखेटकः कोटिसारइति (उत्तरराम० वीरराघव—कृत टीका तथा महावीर० टीका)

वीर राघव का कथन है कि पद्यों के आधार पर भी कवियों के नाम पड़ते हैं, जैसे—रत्नखेटक, कोटिसार आदि।

कोई कहते हैं कि गिरिजा की स्तुति में रचे हुए 'गिरिजायाः कुचौ वन्दे भवभूति सिताननौ' इस श्लोक के कारण कवि की 'भवभूति' इस नाम से प्रसिद्धि हो गई। इसके अतिरिक्त वीरराघव तथा घनश्याम इन दोनों टीकाकारों ने 'भवभूति' शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर यह कल्पना की है कि भव (शिव) ने भिक्षुक रूप से आकर इन्हे भूति (सम्पत्ति) प्रदान की अतः इनका नाम भवभूति पड़ गया।

भवात् शिवात् भूतिः भस्म संपत् यस्य ईश्वरेणैव जातु द्विजरूपेण विभूतिर्दत्ता तदाप्रभृति भवभूतिरिति प्रसिद्धौ जात इति च परावरविदो वदन्ति। (उत्तरराम० प्रस्तावना, टीकाकार घनश्यामकृत व्याख्या)

पुनः इनके पिता का नाम 'नीलकण्ठ' होने के कारण उसी के अनुकरण पर 'श्रीकण्ठ' ही इनका पैतृक नाम रहा होगा, ऐसा भी कुछ लोग कहते हैं, परन्तु इस कल्पना में सार नहीं है,

१. लोकातिगकविशक्तिदर्शनाद्वाग्देवी नित्यकालमस्य कण्ठे वसतीति मत्वा तदानीं तनैः भवभूतेः श्रीकण्ठ इति विशेषणं परिकल्पितम् (काणे द्वारा उद्धृत)

क्योंकि कवि के पितामह का 'नाम भट्टगोपाल' होने पर भी पिता का नाम 'नीलकण्ठ' रखा गया। टीकाकारों की कल्पना के आधार पर डॉ० बेल्चल्कर भी 'श्रीकण्ठ' ही इनका पैतृक नाम मानते हैं। परन्तु मालतीमाधव में 'भवभूतिनाम' के स्थान पर 'भवभूतिनामा' पाठ है, जिससे इनका नाम 'भवभूति' ही था इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता। भवभूतिविषयक जनश्रुतियों का आधार यह प्रतीत होता है कि सूर, तुलसी, केशव, रहीम आदि कवियों के तुल्य भवभूति को भी यह रुचिकर था कि वह अपने श्लोकों में 'भवभूति' शब्द का प्रयोग करें तथा श्लेष के द्वारा अपना नाम और भवभूति (शिव का ऐश्वर्य, शिव का भस्म आदि) अर्थ प्रकट करें। भवभूति के ऐसे प्रयोगों से तत्कालीन राजा और विद्वान बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने भवभूति नाम को सार्थक मानते हुए उनकी प्रशंसा में विभिन्न जनश्रुतियाँ बनाई। राजशेखर, कल्हण, तथा गोवर्धनाचार्य जैसे प्राचीन ग्रन्थकारों ने भी भवभूति नाम से ही इनका उल्लेख किया है, 'श्रीकण्ठ' नाम से नहीं। अतः निश्चित रूप से भवभूति ही इनका पैतृक नाम था।

२.१.२.१ भवभूति और उम्बेक :-

नाटककार भवभूति और सुप्रसिद्ध मीमांसक उम्बेक एक ही व्यक्ति है या दो विभिन्न व्यक्ति? इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। डॉ० पी० वी० काणे^१, प्रो० कुपुस्वामी^२ शास्त्री^३ और श्री पण्डित एस आर० रामनाथ शास्त्री का मत है कि भवभूति और उम्बेक दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इसके विपरीत डॉ० मीराशी^४ तथा डॉ० कुन्हन राजा^५ ने भवभूति और उम्बेक को दो पृथक् व्यक्ति माना है। दार्शनिकों की गोष्ठी में भवभूति 'उम्बेक' नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने अपने गुरु का नाम 'ज्ञाननिधि' उल्लिखित किया है। मालती—माधव के एक प्राचीन हस्तलेख में वे कुमारिलभट्ट के शिष्य बतलाये गये हैं। अतः यह निश्चित है कि वे कुमारिलभट्ट के शिष्य थे तथा उनका नाम उम्बेक था। डॉ० काणे ने उम्बेक शब्द उमा या उम्बा (पार्वती) से माना है। उम्बा या: अयम् औम्बेयः औम्बेयक। उमा या उम्बा का पुत्र। औम्बेयक से औम्बेक उम्बेक। प्राकृत और पाली में 'अ' को 'उ' हो जाता है। डॉ० कपिलदेव द्विवेदी भवभूति और उम्बेक को एक ही व्यक्ति मानते हैं। भवभूति स्थान और समयानुसार नाटककर्ता होने से नाटकीय पात्रों के तुल्य अपना नाम बदलने में निपुण थे। दक्षिण भारत में उन्होंने द्रविडोचित उम्बेक या औम्बेक नाम रख लिया^६।

१. 'श्रीकण्ठ इति.....पैतृक नामधेयमिदम्' भवभूतिनाम भवभूतिरिति प्रसिद्धनामवान्। (वीराध०)

२. काणेकृत— उत्तरामचरित (प्रस्तावना, पृष्ठ २२ से २७ तथा हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र भाग ५ पृष्ठ ११८८—११९९)

३. प्रोसीडिंग्स ऑफ दी सेकेंड ओरियण्टल कान्फरेन्स कलकत्ता, १९२३, पृष्ठ ४१० से ४१२

४. क्वार्टर्ली जर्नल ऑफ आन्ध्र एच० आर० एस० (जन० १९२७ पृष्ठ १२५—१२९)

५. स्टडीज इन इण्डोलाजी (भाग १ पृष्ठ ४४—५२)

६. श्लोकवार्तिक पर उम्बेककृत तात्पर्यटीकायुक्त संस्करण की भूमिका।

७. उत्तरामचरितम् भूमिका पृ० २२ डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

२.२ भवभूति के गुरु —

भवभूति ने अपने गुरु का नाम ज्ञाननिधि बताया है। ज्ञाननिधि को भवभूति यथार्थनामा अर्थात् नामानुरूप गुण वाले (ज्ञान की राशि) बताते हैं:

श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणां यथा गिराः।

यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिः गुरुः॥

—महावीरचरित १/५

‘परमहंसानां श्रेष्ठ’ से अनुमान होता है कि संभवतः वे सन्यासी थे। सन्यासियों का ‘परमहंस’ अभिधान प्रचलित है। अपने ‘ज्ञाननिधि’ नामक गुरु की प्रशंसा भवभूति ने मालवीमाधव नाटक में भी की है:

गुणैः सतां न मम को गुणः प्रख्यापितो भवेत्।

यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः॥

—मालतीमाधव १/७

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भवभूति के गुरु का नाम ज्ञाननिधि था। वे अपने समय के अति प्रसिद्ध विद्वान् रहे होंगे।

परन्तु भवभूति ने अनेक शास्त्रों में उच्चकोटि की विद्वत्ता प्राप्त की थी अतः बहुत संभव है उन्हें अन्य गुरुओं से भी शिक्षा लेनी पड़ी हो। जैसा कि ‘उम्बेक’ और भवभूति की एकता के प्रसंग में कहा गया है। ५०० वर्षों की प्राचीन मालतीमाधव की एक हस्तप्रति के छठवें अंक की समाप्ति पर भवभूति को ‘श्रीकुमारिलस्वामिप्रसादप्राप्तवाग्वैभव’ बताया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि भवभूति ने कुमारिल से भी शिक्षा प्राप्त की थी। कुमारिलभट्ट मीमांसा के प्रचण्ड विद्वान् थे, जिन्होंने अपने प्रबल पाण्डित्य तथा युक्तिकौशल से बौद्धों को परास्त किया था। इनसे भवभूति ने मीमांसाशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी।

२.३ भवभूति के उपास्यदेव —

जैसा कि भवभूति के नाटकों की प्रस्तावनाओं से विहित है भवभूति का जन्म श्रोत्रिय ब्राह्मणवंश में हुआ था, जो कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी था। इनके पूर्वज वैदिक यज्ञों का सम्पादन करते थे और एक पूर्वज ने वाजपेय यज्ञ का भी अनुष्ठान किया था। मीमांसक होने से कर्मकाण्ड के प्रति भवभूति की भी अभिरुचि रही होगी यह सुतरां सिद्ध है, वे परम ब्रह्म के प्रशंसक थे तथा आत्मतत्त्व के भी ज्ञाता थे जैसा कि महावीरचरित की प्रस्तावना के मंगलश्लोक से स्पष्ट है :

अथ स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने।

त्यक्तकर्मविभागाय चैतन्यज्योतिषे नमः॥

—महावीरचरित, १/१

किन्तु लोक में भवभूति भक्त भी थे केवल ज्ञानी ही नहीं या यह भी कह सकते हैं कि उनका भक्त रूप अधिक व्यापक था जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है:

प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीनां

तत्पावनं रघुपतेः प्रणिनाय वृत्तम्।

भक्तस्य तत्र समरंसत मेऽपि वाच—

स्तत्सुप्रसन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम्॥

—महावीरचरित १/७

(आदिकवि मुनिश्रेष्ठ प्राचेतस वाल्मीकि ने श्रीरामचन्द्र का जो पावनचरित लिखा उसमें भक्त होने से मेरी वाणी भी श्रद्धापूर्वक आसक्त हो गयी, उसे प्रसन्नमना विद्वज्जन ग्रहण करें।)

भवभूति के नाटकों के अध्ययन से यह पता चलता है कि वे किसी देवता के कट्टर समर्थक और अन्यो के विनिन्दक न थे। इस विषय में वे शान्त तथा सौम्य प्रकृति के थे तथा समन्वयवादी कहे जा सकते हैं। धर्म के विषय में उनके विचार उदार थे। यथावसर उन्होंने विभिन्न देवताओं की स्तुतियाँ एवं प्रार्थनाएँ की हैं। भगवान् राम के प्रति उनकी अनुरक्ति तथा श्रद्धा पूर्वोद्धत पदम से स्पष्ट है। उनके दो नाटकों के नायक भी मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र हैं। अतः यह मानना स्वाभाविक है कि भवभूति की आसक्ति वैष्णव धर्म के प्रति है। अलका के मुख से श्रीरामचन्द्रजी के विषय में वस्तुतः यह भवभूति के हृदय का ही उद्गार है:

इदं हि तत्त्वं पुरुषार्थभाजाण्यं हि महापुरुषः पुराणः।

त्रिधा विभिन्ना प्रकृतिः किलैषा त्रातुं भुवि स्वेन सतोऽवतीर्णा॥

—महावीरच०, ७/२

(यह परमार्थज्ञानियों का परम तत्त्व है, यह साक्षात् पुरातन पुरुष है, यह तीन भागों (ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश अथवा सत्त्व, रज एवं तम) में विभक्त प्रकृति ही है जो पृथ्वी पर स्वयं सज्जनों की रक्षा वा मुक्ति के लिये (रामरूप में) अवतीर्ण हुई है।)

यही बात वशिष्ठ के मुख से भी भवभूति कहलवा रहे है:

क्षमायाः स क्षेत्र गुणमणिगणानां खनिः प्रपन्नानां मूर्तः सुकृतपरिपाको जनिमताम्।

कृपारामो रामो बहिरिव दूश्योपास्यत इति प्रमोदाद्वै तस्याप्युपरि परिवर्तामह इमे॥

—महावीर०, ७/३३

(श्रीराम क्षमा के आस्पद, गुणरूपी मणियों के निधान, शरणागत प्राणियों के साक्षात् पुण्यफल, परमदयालु एवं वाह्य दृष्टि से उपासित हो रहे हैं। आनन्द से हम अपने को उत्कृष्ट मान रहे हैं।)

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भवभूति भगवान् राम के उपासक हैं। किन्तु, अन्य देवताओं के प्रति भी उनमें समानरूपी भक्ति ही लक्षित हो रही है। किसी के प्रति न तो विशेष दुराग्रह है और न किसी से विद्वेष। मालतीमाधव की प्रस्तावना में उन्होंने भगवान् शंकर, गणेश एवं सूर्यदेव की स्तुति की है। शिव की स्तुति इस प्रकार कर रहे हैं :

चूडापीडकपालसंकुलगलन्मन्दाकिनीवारयो, विद्युत्प्रायललाटलोचनशिखिज्वालाविमिश्रित्विषः।

पान्तु त्वामकठोरकेतकशिखासन्दिग्धमुग्धेन्दवो

भूतेशस्य भुजंगविल्लिवलयसडनद्धजूटा जटाः॥

—मालती० १/१

(शिर में अवस्थित माला में विद्यमान नरकपालों में व्याप्त और गिरते हुये मन्दाकिनीजल से युक्त, विद्युत्पत् ललाट से स्थित लोचन की ज्वालाओं से मिश्रित कान्तिवाली, केतकी पुष्प के अग्रभाग का संदेह उत्पन्न करने वाली, चन्द्रमा तथा सर्पों से आवेष्टित भूतनाथ भगवान् शंकर की जटायें आप लोगों की रक्षा करें।)

इसी नाटक के अन्य श्लोक में सूर्यदेव की भी स्तुति की गयी है :

कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्ते!

धुर्या लक्ष्मीमिहमयि भृशं धेहि देव! प्रसीद।

यद्यत्पापं प्रतिजहि जगन्नाथ! नम्रस्य तन्मे

भद्रं भद्रं वितर भगवान्! भूयसे मङ्गलाय॥

—मालतीमा० १/३

इसी प्रकार गणेश (मालती० १/२), पूर्ववर्ती कवियों (उत्तर० १/१) आदि की भी स्तुति की गई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भवभूति की यद्यपि भगवान् श्रीरामचन्द्र के प्रति विशेष आस्था है तथापि वे शिव, गणेश, आदि देवताओं के प्रति भी आस्थावान् हैं। कालप्रियानाथ के मेले में इनके नाटकों का प्रथम अभिनय भी उन्हें शिव के प्रति श्रद्धालु बताता है।

२.४ भवभूति का समय —

भवभूति के काल के विषय में पुष्ट प्रमाणों का अभाव नहीं है, ८वीं शती से लेकर ११वीं शती तक के अनेक लेखकों ने अपनी रचनाओं में भवभूति का नाम उल्लेख किया है अथवा

उनकी रचनाओं से उद्धरण दिये हैं। यहाँ संक्षेप में उनका उल्लेख किया जा रहा है—

- (क) क्षेमेन्द्र (११वीं शती का उत्तरार्ध) औचित्यविचारचर्चा।
- (ख) महिमभट्ट (११वीं शती का आरम्भ) व्यक्तिविवेक जिसमें उ० रा० च० के 'इयं गेहे लक्ष्मीः' तथा 'रे हस्त दक्षिण' श्लोक उद्धृत हैं।
- (ग) धनञ्जय (१०वीं शती का उत्तरार्ध) दशरूपक (उत्तरराम० के अनेक श्लोक उद्धृत)।
- (घ) धनपाल (१०वीं शती का उत्तरकाल) तिलकमंजरी में भवभूति का उल्लेख।
- (ङ.) राजशेखर (२वीं शती का अन्त) काव्यमीमांसा में मालतीमाधव के श्लोक उद्धृत (तथा बालरामायण में भवभूति का उल्लेख)।
- (च) वामन (८वीं शती का उत्तरार्ध) काव्यालंकारसूत्रवृत्ति (इयं गेहे लक्ष्मीः इत्यादि उद्धृत)।

राजशेखर ने तो बालरामायण में अपने आपको भवभूति का अवतार ही माना है। राजशेखर का समय ९वीं शती का अन्त तथा १०वीं शती का आरम्भ है। वाण ने अपने हर्षचरित के आरम्भ में कालिदास भास—सुबन्धु इत्यादि का नाम तो लिया है परन्तु भवभूति के नाम का निर्देश नहीं किया है। यह कहना समीचीन होगा कि भवभूति का समय वाण के पश्चात् ही रहा होगा। वाण की शैली (गौडी रीति) का भी भवभूति की रचनाओं पर प्रभाव पड़ा है। वाण का समय ईसा की सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। अतः भवभूति का काल सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से लेकर ९वीं शती के अन्त तक रहा होगा। राजतरङ्गिणी के अनुसार भवभूति कन्नौज के राजा यशोवर्मा के आश्रित कवि थे, तथा प्राकृत काव्य 'गण्डवहो' के रचयिता वाक्पतिराज भी इन्हीं यशोवर्मा के आश्रित थे। वाक्पतिराज ने अपने 'गौडवहो' नामक प्राकृत काव्य में यशोवर्मा के पराक्रम और उनकी गण्डदेशाधिपति पर विजय का वर्णन किया है। यह काव्य अधूरा ही उपलब्ध होता है। इसका कारण यही ज्ञात होता है कि वाक्पतिराज ने इस काव्य की रचना यशोवर्मा के विजय दिनों में की थी किन्तु ललितादित्य के द्वारा उनके पराजित हो जाने पर उन्होंने इस काव्य को बीच में ही छोड़ दिया। अपने काव्य में वाक्पति ने भवभूति की बड़ी प्रशंसा की है।

भवभूह—जलहि—णिगगअ—कव्यामय—रसकणा इव फुरन्ति।

अस्स विसेसा अज्ज वि, वियडेसु कहाणिवेसेषु॥

(भवभूति जलधिनिर्गतकाव्यामृसरकणा इव स्फुरन्ति। यस्य विशेषमद्यापि, विकटेषु कथानिवेशेषु) गौडवहो ७९। इस पद से ज्ञात होता है कि भवभूति वाक्पतिराज से पहले हो चुके थे और तब तक उनकी पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी। गौडवहो (८३२ गाथा) में वर्णित एक सूर्यग्रहण के कालनिर्णय के अनुसार डॉ० जैकोबी, इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह ग्रहण १४ अगस्त ७३३

१. कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुति वन्दिताम् (राजतरङ्गिणी ४/१४४) वाक्पतिराज और भवभूति आदि कवियों से सेवित स्वयं (कन्नौज नरेश यशोवर्मा) कश्मीर नरेश (ललितादित्य से) पराजित होकर भाटों की भाँति उसकी स्तुति करने लगे।

ई० को हुआ था। भवभूति जो कि वाङ्मयतिराज के पूर्ववर्ती थे, निस्सन्देह इस समय से पहले ही हुए होंगे। इस प्रकार ७वीं शती का उत्तरार्ध या ८वीं शती का पूर्वार्ध भवभूति का काल सिद्ध होता है।

२.६ रचनाएँ —

भवभूति की तीन प्रसिद्ध रचनायें इस समय उपलब्ध हैं—तीनों नाटक हैं :—

मालतीमाधव, महावीरचरितम् एवं उत्तररामचरितम्

२.६.१ मालतीमाधव —

यह दश अंकों का एक विशेष प्रकार है। कथावस्तु कविकल्पना प्रसूत है। मालती तथा माधव का प्रेम—प्रसंग बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। इसमें यौवन के उन्मादक प्रेम का झड़ा ही रसीला चित्रण है। पूरे प्रकरण में प्रेम की बड़ी ही सजीव और उदात्त कल्पना दर्शकों के सामने रखी गयी है। धर्म से विरोध करने वाले प्रेम को भवभूति ने समाज के लिए हानिकारक समझा इसकी एकदम उपेक्षा कर दी है। इस प्रकरण की कथा कथासरित्सागर का आधार की 'मदिरावती' नामक कथा को माना जा सकता है।

२.६.२ महावीरचरित —

यह सात अंकों का नाटक है। इसमें रामचन्द्र जी के राज्याभिषेक तक की घटनाओं का वर्णन है। मालतीमाधव की अपेक्षा यह नाटक अधिक संगठित है। कवि ने इसमें अनेक नवीन कल्पनाएँ की हैं। आरम्भ में ही रावण को सीता—विवाह का अभिलाषी चित्रित करके कवि ने नाटक में संघर्ष की अवतारणा कर दी है। रामचन्द्र जी धनुष तोड़कर सीता जी से विवाह करते हैं, रावण अत्यन्त क्रुद्ध होता है, उसका मन्त्री माल्यवान् अपनी कूटनीति का प्रयोग करता है पहले तो वह रघुराम को राम के विरुद्ध भड़काकर भेजता है पर जब वह युक्ति असफल हो जाती है तब वह लूणखा को मन्थरा—वेश, में भेजकर कैकेयी से राम को वन भेजने का षड्यन्त्र करता है। वन में निवास करते समय माल्यवान् ही सीताहरण कराता है और बाली को भड़काता है। बाली राम से युद्ध करने आता है और मारा जाता है। अन्त में राम सुग्रीव की सहायता से लंका पर चढ़ाई करते हैं और रावण वध के अनन्तर पुष्पकविमान से राम अयोध्या लौट आते हैं।

मालतीमाधव की अपेक्षा महावीरचरित अधिक गूढ़ हुआ होने पर भी वर्णनों की अधिकता, सटीक चरित्र—चित्रण के अभाव एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की न्यूनता के कारण प्रथम की कथा का नाटक नहीं कहा जा सकता। महावीरचरित कवि की आरम्भिक रचना प्रतीत होती है।

२.६.३ उत्तररामचरित —

उत्तररामचरित ही भवभूति की प्रौढ़तम रचना है। इसमें भवभूति की नाट्यकला और काव्यकला दोनों का पूर्ण परिपाक है, अतः उत्तररामचरित को अन्तिम रचना मानने में किसी को

मतभेद नहीं है। इसके रचनाकाल तक भवभूति की ख्याति सर्वत्र फैल चुकी होगी इस ना-
उन्हे अपने विषय में कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई, केवल एक ही वा-
में उन्होंने अपना संक्षिप्त परिचय दे दिया। महावीरचरित की शैली भी उतनी परिष्कृत तथा प्रौढ़
नहीं है जितनी उत्तररामचरित की। इसका विस्तृत अध्ययन तृतीय इकाई में किया गया है।

२.७ भवभूति समीक्षको की दृष्टि में —

महावीरचरित में भवभूति ने अपने कटु आलोचकों का उल्लेख नहीं किया है* पर
मालतीमाधव में उन्होंने अपने कटु आलोचकों का निर्देश किया है और उत्तररामचरित में पुनः इस
प्रकार का कोई विशेष निर्देश नहीं मिलता^३ इससे प्रतीत होता है, महावीरचरित कवि की आरम्भिक
रचना है, जबकि आलोचकों ने उनकी ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया होगा। मालतीमाधव की रचना
के समय आलोचकों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ, और उत्तररामचरित की रचना के समय
सभी आलोचकों ने भवभूति का लोहा मान लिया। उत्तररामचरित भवभूति की सर्वोत्कृष्ट रचना है,
जिसके कारण वे कालिदास के समान नाटककार माने जाते हैं। इसका विस्तृत विवेचन तृतीय
इकाई में किया गया है।

अबतक जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसके आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा
सकता है कि भवभूति के उक्त तीन नाटक हैं। इन रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने कुछ और भी
रचनाएं अवश्य की होंगी। भवभूति और उम्बेक को एक व्यक्ति मानने पर उनके अन्य दो
दार्शनिक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं :— (१) कुमारिलभट्ट के श्लोकवार्तिक की तात्पर्यटीका (२)
मण्डनमिश्र के भावनाविवेक की टीका। निम्नलिखित सुभाषित—संग्रहों में भवभूति के उद्धरण प्राप्त
होते हैं :—

१. शार्ङ्गधरपद्धति
२. श्रीधरदासकृत सदुक्तिकर्णामृत
३. जल्हणकृत सूक्तमुक्तावली
४. गदाधरकृत रसिकजीवन,
५. सुभाषितावली
६. कवीन्द्रवचनसमुच्चय।

प्रायः सभी अलंकार ग्रन्थों में भवभूति के उद्धरण प्राप्त होते हैं। उनमें मुख्य ये हैं—

१. ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः। उत्पत्स्यते ऽस्ति
मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्यं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी, (कुमारिल के श्लोकवार्तिक पर
उम्बेककृत तात्पर्यटीका से)
२. यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधूत्वे दुर्जनो जनः। उत्तरराम० १.५

१. काव्यप्रकाश
२. दशरूपक
३. साहित्यदर्पण
४. सरस्वतीकण्ठाभरण
५. रसगंगाधर
६. काव्यालंकारवृत्ति
७. अलंकारसर्वस्व
८. काव्यानुशासन

भवभूति के तीनों नाटकों का अभिनय कलाप्रियानाथयात्रा (उत्सव) के अवसर पर हुआ। कतिपय विद्वानों के मत में उज्जैन स्थित महाकाल ही कालप्रियानाथ हैं परन्तु भवभूति कन्नौज के राजा यशोवर्मा के आश्रित कवि थे, अतः यह संभव नहीं प्रतीत होता कि भवभूति ने अपने नाटकों का अभिनय यशोवर्मा के राज्य में न कराकर उज्जैन में कराया हो, विस्तार भय के कारण यहाँ पर विद्वानों के मतों का उल्लेख नहीं किया जा रहा है। इसके लिये डॉ० कपिलदेव द्विवेदी उत्तररामचरित की प्रस्तावना को देखा जा सकता है। विद्वानों में इस विषय में अभी तक मतभेद ही बना हुआ है।

२.८ भवभूति की ख्याति :—

भवभूति के नाटकों की प्रस्तावना से सूचित होता है कि भवभूति को अपने जीवन काल में अपनी रचनाओं से कोई विशेष ख्याति नहीं प्राप्त हुई। उत्तररामचरित उनकी उत्कृष्ट रचना मानी जाती है, उसमें भी उन्होंने अपने कटु आलोचकों का यथा स्त्रीणां तथावाचां साधुत्वे दुर्जनों जनः उत्तरराम० १/५ कहकर कुछ संकेत किया है किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् शनैः शनैः उनके प्रशंसकों की संख्या बढ़ने लगी, और कुछ काल के पश्चात् भवभूति को कालिदास से भी बढ़कर माना जाने लगा।

कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः।

वर्तमान काल में भवभूति को कालिदास के समान ही विश्व का एक महान कवि माना जाता है। प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों ही प्रकार के साहित्यज्ञों ने भवभूति के उत्तररामचरित की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। भवभूति के नाटकों में नाटककला संबंधी कुछ दोष हैं: संभवतः उन्हीं दोषों के कारण ही भवभूति को जीवन भर अपने कुछ आलोचकों का सामना करना पड़ा होगा। घनश्याम ने भी अपनी टीका में अनेक स्थानों पर इस प्रकार के दोषों की आलोचना की है। छोटे-मोटे दोषों की ओर विद्वानों ने विशेष ध्यान न देकर उनको महाकवि पद से विभूषित किया है।

२.८.१ भवभूति का वैशिष्ट्य —

किसी भी रचनाकार की रचनाओं में उसका वैशिष्ट्य प्रतिबिम्बित रहता है। ग्रन्थकार के

व्यक्तिगत जीवन की, उसके आचरण की तथा उसके विचारों की छाप उसकी रचनाओं पर पड़े बिना नहीं रहती। भवभूति इस सामान्य नियम के अपवाद नहीं हैं। उत्तररामचरित नाटक के अध्ययन से भवभूति के जीवन की कुछ विशेषतायें स्पष्टतः सामने आती हैं।

भवभूति के दाम्पत्य प्रेम का आदर्श बहुत ही पवित्र तथा उच्च है। उत्तररामचरित के प्रथम तीन अंकों में दाम्पत्य प्रेम का यह उज्ज्वल आदर्श पाठक के ध्यान को आकर्षित किये बिना नहीं रहता। उनका दाम्पत्य प्रेम वासनाशून्य है, वह विषयीलोक की वस्तु नहीं है, वह सदा एकरस बना रहता है, वृद्धावस्था में घटता नहीं प्रत्युत और भी बढ़ता है, उसमें हृदय सदा ही विश्रान्ति प्राप्त करता है, धन्य है वह व्यक्ति जिसे ऐसा दाम्पत्यप्रेम प्राप्त है। भवभूति की दृष्टि में स्त्री भोग्यवस्तु नहीं, वह गृहलक्ष्मी है। इयं गेहलक्ष्मीः (उत्तरराम० १/३८) तथा अपनी उपस्थिति मात्र से गृह में सुख तथा शान्ति का प्रसार करती है,^१ किञ्चिदपि कुर्वाण सौख्यैर्दुःखान्यपोहति^२ भवभूति का वात्सल्य प्रेम भी एक ऊँचे आदर्श पर प्रतिष्ठित है। संतान दम्पति के हृदयों की एक आनन्दमय ग्रन्थि है, जो उनके हृदयों को सदा एक दूसरे से बाँधे रहती है। भवभूति स्वयं एक आदर्शपति तथा आदर्श पिता रहे होंगे। प्रकृति के वर्णन में भी वे प्रकृति की गंभीरता तथा गुरुता की ओर अधिक आकृष्ट हुए हैं, प्रकृति के हृदयहारी सौन्दर्य का वर्णन तो उन्होंने कम ही किया है। उत्तररामचरित में दण्डकारण्य प्रदेशों के भीषण आभोगों, उसके पर्वतों, गतों, दिशाओं आदि को झंकृत करते हुए निर्झरों तथा कान्तारों का बड़ी गम्भीरता के साथ वर्णन किया है। जनस्थान का वर्णन तो और भी लोमहर्षक है। जनस्थान के दीर्घ अरण्य बड़ी दूरतक फैले हुए हैं, जो उन्मत्त तथा प्रचण्ड श्वापदों से भरे हुए हैं। स्थान—स्थान पर उनकी भयंकर ध्वनि सुनाई पड़ रही है, बड़े—बड़े फणों वाले सपों के श्वासों से दावानल प्रदीप्त हो रहा है, तथा प्यासे सरट अजगरों के स्वेद पी रहे हैं। मानव की अन्तः प्रकृति के वर्णन में भी भवभूति ने हृदय के शोक तथा क्षोभ का जितना विशद वर्णन किया है, उतना आमोद—प्रमोद का नहीं। अपनी इस गंभीर प्रकृति के कारण ही अपनी सर्वोत्कृष्ट रचना को उन्होंने करुणरस प्रधान बनाया और करुणरस को ही एकमात्र रस तथा शेष रसों को उसका विवर्त माना है।^३ उनके इस नाटक में विदूषक का एकदम अभाव भी उनके गंभीर स्वभाव का ही परिचायक है। संपूर्ण उत्तररामचरित में केवल दो—तीन स्थानों पर ही हास्यरस का कुछ पुट है—प्रथम अंक में चित्रदर्शन के समय लक्ष्मण अपनी पत्नी उर्मिला के चित्र की ओर संकेत न करके आगे बढ़ जाते हैं, इस पर सीता पूछती है—‘वत्स इयमप्यपरा का’ (उत्तरराम० प्रथम अंक)। चतुर्थ अंक के विष्कम्भक में सौधातकि जीर्णकूर्च वसिष्ठ की हँसी उड़ाता है और उनके आतिथ्य के निमित्त बछिया का बध किये जाने के कारण उनके विषय में अपने साथी दाण्डायन से कहता है—मैंने समझा था कि यह कोई बाघ या भेड़िया है जिसके द्वारा आते ही ‘सा वराकी कपिला कल्याणी मडमडायिता।

इसी अंक में ब्रह्मचारियों द्वारा अश्वमेधीय अश्व के वर्णन में भी हास्य का कुछ पुट

१. अद्वैतं सुखदुःखयोः, उत्तरराम० १/३९

२. अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्। आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति वध्यते। उत्तरराम० २/१४

३. उत्तरराम० २/१५, १६

(उत्तरराम० चतुर्थ श्लोक २६)। गंभीरता के साथ ही साथ भवभूति में अपनी कवित्वशक्ति के लिए अभिमान का भाव भी है जिसका उन्होंने उत्तररामचरित में प्रदर्शन किया है। वाग्देवी उनके वशीभूत हैं तथा सदा ही उनकी इच्छा का अनुवर्तन करती हैं, ऐसा वे आरम्भ में कह देते हैं और अन्त में भरत-वाक्य में अपनी रचना को वाल्मीकि की रामायण के समान उत्कृष्ट तथा अपने आपको भी वाल्मीकि के समान ही शब्द ब्रह्मविद् तथा प्राज्ञ मानते हैं।

२.९ भवभूति और कालिदास —

कविताकामिनी के विलास कालिदास की समकक्षता में बैठने का श्रेय यदि किसी कवि को प्राप्त है तो वह भवभूति को ही है। इन दोनों की तुलना साहित्य में एक मनोरंजक चर्चा का विषय है। कुछ विद्वानों के अनुसार कालिदास श्रेष्ठ हैं, तो कुछ के अनुसार भवभूति। भवभूति के समर्थकों का कथन है कि कालिदास तो केवल कवि है परन्तु भवभूति महाकवि।

कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः।

तरवः पारिजाताद्याः स्नुहीवृक्षो महातरुः॥

कालिदास और भवभूति इन दोनों में किसे प्रथम स्थान दिया जाय, इसका अभी तक कोई निर्विवाद निर्णय नहीं हो सका है। इन दोनों महाकवियों की तुलना में कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित हैं—

१. कालिदास का काव्यक्षेत्र भवभूति से अधिक विस्तृत है उन्होंने महाकाव्य, खण्डकाव्य, (गीतिकाव्य), तथा नाटक इन तीनों प्रकार के काव्यों की रचना की है, अपने इन तीनों क्षेत्रों में कालिदास अब भी अद्वितीय माने जाते हैं। भवभूति ने केवल नाटकों की रचना की है, उनकी अन्य कोई रचना इस समय उपलब्ध नहीं है।
२. कालिदास की शैली प्रसादगुण युक्त है। वे वैदर्भी रीति के कवि हैं, उनकी कोमलकान्त पदावली पाठकों के हृदय में एक अपूर्व आनन्द का उद्रेक करती है। रस के अनुसार ही उनका पदविन्यास मधुर है, वस्तुतः कालिदास माधुर्य के उपासक हैं, उनकी कथावस्तु, शैली, तथा कल्पना सभी माधुर्य से आते-प्रोते हैं। भवभूति गंभीर प्रकृति के कवि हैं, वे अपनी प्रकृति के अनुसार ही प्रसाद गुण की अपेक्षा ओज को अधिक पसन्द करते हैं उनकी शैली वाण की शैली से प्रभावित है। लम्बे-लम्बे समास, क्लिष्टपद तथा विकटबन्ध उनकी रचना को दुरूह बना देते हैं। कालिदास की शैली में समता है, किन्तु भवभूति की शैली में 'समता' का अभाव है।
३. कालिदास का प्रधान रस शृंगार है जो कुमारसंभव में तो कहीं-कहीं अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया है परन्तु भवभूति करुणरस के प्रधान कवि हैं, उनका उत्तररामचरित करुणरस की सर्वश्रेष्ठ रचना है। कालिदास की दृष्टि में शृंगार रसराज है, परन्तु भवभूति 'एको रसः करुण एव' मानते हैं। जिस प्रकार शृंगार रस की रचना में कालिदास अद्वितीय

है, उसी प्रकार करुणरस की रचना में भवभूति अद्वितीय माने जाते हैं।

कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते।

४. कालिदास व्यञ्जनावृत्ति का अधिक उपयोग करते हैं। वे रस को लक्षणा अथवा व्यञ्जना से अभिव्यक्त करते हैं। रस की अभिव्यक्ति के लिये वे अभिधावृत्ति का आश्रय लेते हैं। वे किसी भी बात को पाठक की कल्पना के लिये नहीं छोड़ते स्वतः ही उसका विस्तृत वर्णन कर देते हैं। कालिदास राजसभा के शिष्टाचार तथा वैभव से प्रभावित हैं, उनकी भाषा परिष्कृत, संयत तथा वैभवयुक्त है। वे राजवैभव का लुभावना चित्र उपस्थित करते हैं परन्तु भवभूति कन्नौजराज के आश्रित कवि होते हुए भी राजवैभव से आकर्षित नहीं प्रतीत होते। अतएव उनमें राजसभा की कृत्रिमता नहीं है। वे सरल बालक के समान अपने भावों को प्रकट करते हैं। राजवैभव की अपेक्षा विशाल प्रकृति का उदात्त तथा गौरवपूर्ण वैभव ही उनके हृदय को अधिक स्पर्श करता है।
५. प्रकृति—चित्रण में कालिदास ने प्रकृति के प्रायः सुकुमार तथा मनोरम रूप को ही ग्रहण किया है। वे प्रकृति की शोभा का अतीव रमणीय चित्र उपस्थित करते हैं। उनको प्रकृति में सर्वत्र सौन्दर्य ही दीख पड़ता है—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं

मलिनमपि हिमांशोलक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

(शाक० १/१७)

कालिदास के दिलीप श्वापदसंकुल वन में विचरते हुए भी अपनी दृष्टि को पर्वतों की शोभा निरखने में ही लगाए हुए है।

अद्रिशोभाप्रहितक्षणेन। रघु० २/२७

परन्तु भवभूति को प्रकृति का गंभीर कठोर तथा विकटरूप ही अधिक आकर्षित करता है। उत्तररामचरित के द्वितीय अंक में शम्बूक राम का ध्यान कौचावत् पर्वत के कुंजों में घूत्कार करते हुए उलूकों, उनके डर से मूक बने कौवों तथा पुराने चन्दन वृक्षों के तनों पर रेंगते हुए कुम्भीनसों (सर्पविशेष) की ओर ही आकर्षित करता है, अद्रिशोभा की ओर नहीं। उत्तरराम० १.२.५९ इसके शम्बूक राम को प्रकृति के विशाल तथा गंभीर रूप का ही दर्शन कराता है। गगनचुम्बी पर्वत आकाश में अपना सिर उठाये हुए हैं, उनकी गुहाओं में टकराकर गोदावरी का जल घोर ध्वनि कर रहा है, अगाध जलवाले नदी संगम एक दूसरे से टकराकर परस्पर मिलती हुई उत्ताल तरंगों के कोलाहल से पूर्ण हैं (उत्तरराम० २/३०)। भवभूति का प्रकृति चित्रण कभी-कभी तो अतीव लोमहर्षक तथा विभत्स हो उठा है। (उत्तरराम० २/१६)। इनका प्रकृतिवर्णन कवि समयसिद्ध न होकर नवोद्भावित है।

६. कालिदास में कल्पना का प्राधान्य है, किन्तु भवभूति में भावुकता है। कालिदास ने न तो अपने आपको और न अपने पात्रों को भावुकता के प्रबल प्रवाह में बहने दिया। उनका दुष्यन्त शकुन्तला के विरह में न तो राम जैसा विलाप ही करता है, और न मूर्छित ही होता है। भवभूति भावुक प्रकृति के कवि हैं और उन्होंने अपने समान ही भावुक पात्रों की सृष्टि की है। उत्तररामचरित के पात्र राम, सीता, वासन्ती, कौसल्या, पृथिवी आदि पद-पद पर मूर्छित हो जाते हैं, मानों मूर्छित होना एक साधारण सी बात है, जनक जैसे स्थितप्रज्ञ राजर्षि को भी भवभूति नहीं छोड़ा प्रत्युत उनको तो राम की माताओं से पहले ही मूर्छित करा देते हैं। (उत्तरराम० ६/४१)। भवभूति के राम वन में सीता का स्मरण कर अशरण की भांति रोते हैं

अपि ग्रावा रोहित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्

— उत्तरराम० १/२८।

२.१० भवभूति का काव्य सौन्दर्य —

१. भवभूति एक उच्चकोटि के नाटककार होने के साथ ही उच्चकोटि के महाकवि हैं। उनका हृदय मनोरम कल्पनाओं, ऊँची उड़ानों और सुकुमार भावनाओं से युक्त है। वे उत्तररामचरित में अनेक प्रसंगों में कथाप्रवाह की चिन्ता न करके किसी भी सुन्दर भाव के सांगोपांग वर्णन में तल्लीन हो जाते हैं। अतएव कतिपय आलोचकों ने उन्हें सफल नाटककार के स्थान पर सफल महाकवि कहा है और उत्तररामचरित को कवित्वपूर्ण नाटक। भवभूति में कवि के सभी गुण पूर्णरूप से हैं। वे सूक्ष्म-प्रकृति निरीक्षक हैं, उनमें संवेदना और संहानुभूति है, उनका भाव और भाषा पर असाधारण अधिकार है। वे सरल से सरल और कठिन से कठिन भावों को सुपुष्ट भाषा में वर्णन कर सकते हैं। उनमें असाधारण पाण्डित्य और वैदग्ध्य है। उनके नाटकों में प्रौढ़ता, भावों का उत्कर्ष और अर्थगौरव, इन तीनों गुणों का सुन्दर समन्वय है।
२. उत्तररामचरित के मार्मिक प्रसंगों में निम्नलिखित स्थल विशेष उल्लेखनीय हैं— प्रथम अंक में चित्रदर्शन, द्वितीय और तृतीय अंक में दण्डक वन तथा पंचवटी का वर्णन, चतुर्थ अंक में बालक लव का वर्णन, पंचम अंक में लव और चन्द्रकेतु के विवाद का वर्णन, षष्ठ अंक में राम के द्वारा सीता का वर्णन और सप्तम अंक में गंगा तथा पृथ्वी का वार्तालाप।
३. भवभूति प्रकृति के साथ तादात्म्य का अनुभव करते हैं। पृथ्वी और गंगा सीता—परित्याग से उतनी ही दुःखित हैं, जितना कोई सामान्य सहृदय व्यक्ति। वनदेवता वासन्ती है। (अपि कठोर, ३-२७)। तमसा मुरला और गोदावरी नदियाँ राम और सीता की सुरक्षा के लिए उतनी ही दत्तचित्त हैं, जितना कोई एक सेवक हो सकता है। राम के दुःख में प्रकृति भी दुःखित होती है, पर्वत भी रो पड़ते हैं। इतना ही नहीं वज्र का भी हृदय फट जाता है (अपि ग्रावा रोदित्यपि० उत्तरराम० १/२८) राम पंचवटी को एक सहृदय व्यक्ति समझते हैं और सीता—परित्याग के कारण उससे मिलने से झिझकते हैं (पापः पंचवटी विलोकयतु०

उत्तरराम० २/२८) राम पंचवटी के वृक्षों और मृगों को अपना बन्धु बताते हैं। (यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बान्धवो मे० उत्तरराम० २.८)। सीता द्वारा पालित मोर सीता को माता समझता है और सीता को स्मरण करता है। (स्मरति गिरिमयूरः एष देव्याः। उत्तरराम० ३.२०) सीता मृगों पक्षियों और वृक्षों को पुत्रवत् मानकर पालती हैं। “ते एव जातनिर्विशेषा मृगपक्षिणः पादपाशच” सीता वृक्षों को जल से, पक्षियों को धान्य से और मृगों को घास से प्रतिदिन पालती थी। उनके प्रति उनका पुत्रवत् स्नेह था। (करकमल वितीर्णैः० उत्तरराम० ३-२५)

४. सौन्दर्य और प्रेम के चित्रण में भवभूति ने शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य को अधिक महत्व दिया है। वे कहते हैं— गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः (उत्तरराम० ४.११) भवभूति गुणों को सर्वोत्तम आदर का स्थान मानते हैं। भवभूति प्रेम को अकारण और नैसर्गिक मानते हैं। उनका कथन है कि प्रेम आन्तरिक कारणों से उत्पन्न होता है। व्यतिषजति पदार्थान् उत्तरराम० ६/१२ वे प्रेम को संसार का एक पवित्र बन्धन मानते हैं। स हि स्नेहात्मकस्तन्तु० उत्तरराम० ५.१७। प्रेम का संसार की स्थिति का कारण मानते हैं। प्रेम से ही संसार चल रहा है। भवभूति ने दाम्पत्य प्रेम का अत्युत्तम वर्णन किया है और उसे जीवन का सार बताया है। “अद्वैतं सुखदःखयोरनुगतं” (उत्तरराम० १/१९)। भवभूति ने यौवनकाल की उद्दाम कामवृत्ति का वर्णन मालतीमाधव में किया है, और विश्वस्त हृदय के सच्चे शुद्ध प्रेम का चित्र उत्तररामचरित में दिया है। भवभूति के पात्र कहीं भी ‘स्वच्छन्द’ यथा ‘उन्मुक्त’ प्रेम के पक्षपाती नहीं हैं, प्रत्युत समाज के द्वारा अभिनन्दित धर्मानुयायी प्रणयमार्ग के पथिक हैं।

५. भवभूति ने उत्तररामचरित में अलौकिक तत्वों को भी स्थान दिया है। कोई अलौकिक देवता महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में स्तन्यत्याग के बाद लवकुश को पोषणार्थ पहुँचा देता है। (केनापि देवताविशेषेण० उत्तरराम० २/१२) अंक दो में ब्राह्मण बालक की मृत्यु पर आकाशवाणी होती है और कहती है कि शम्बूक नामक शूद्र तपस्या कर रहा है, उसका बध । करके बालक को जीवित करो। ‘अशरीरिणी वागुदचरत’ अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने गोदावरी नदी को सन्देश दिया है कि वह राम की सुरक्षा करें।

गंगा पृथ्वी को समझाती है कि वह राम पर क्रोध न करें (उत्तरराम० ७/४०)। गंगा का जल क्षुब्ध होता है और गंगा तथा पृथ्वी सीता को लेकर जल से उपर निकलती हैं (उत्तरराम० ७/१७)। भवभूति प्रकृति प्रेम, भाषा के सौन्दर्य, लालित्य और माधुर्य आदि वर्णन—शैली की दृष्टि से वस्तुतः एक उच्चकोटि के महाकवि हैं। इन्हीं विशिष्टताओं के फलस्वरूप प्राचीन आलोचकों की सर्वमान्य सम्मति रही है— “उत्तरे रामचरित भवभूति विशिष्यते”।

२.११ अभ्यास—प्रश्न

क. अतिलघूत्तरीय —

१. भवभूति के माता एवं पिता का क्या नाम है?
२. भवभूति का उपनाम क्या है?

३. 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' किसे कहा जाता है?
४. भवभूति का समय क्या है?
५. भवभूति का जन्म स्थान कहां है?
६. भवभूति की कितनी रचनाएँ हैं?

ख. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें —

१. भवभूति.....रस के कवि हैं।
२. उत्तररामचरित मेंअंक हैं।
३. भवभूति का प्रकरणहै।

ग. विस्तृत प्रश्न —

१. महाकवि भवभूति के काव्य—सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।
२. भवभूति का जीवन—परिचय दीजिए।
३. भवभूति के जीवन—दर्शन पर प्रकाश डालिये।

इकाई ३ — उत्तररामचरितम् की संक्षिप्त कथा

इकाई की रूपरेखा —

- ३.० उद्देश्य
 - ३.१.१ प्रथम अंक
 - ३.१.२ द्वितीय अंक
 - ३.१.३ तृतीय अंक
 - ३.१.४ चतुर्थ अंक
 - ३.१.५ पंचम अंक
 - ३.१.६ षष्ठ अंक
 - ३.१.७ सप्तम अंक
 - ३.२.१ कथा का आधार
 - ३.२.२ वाल्मीकि रामायण में वर्णित कथा
 - ३.२.३ पद्मपुराण में वर्णित कथा
 - ३.२.४ मूलकथा में परिवर्तन
 - ३.२.४.१ प्रथम अंक विषयक परिवर्तन
 - ३.२.४.२ द्वितीय अंक विषयक परिवर्तन
 - ३.२.४.३ तृतीय अंक विषयक परिवर्तन
 - ३.२.४.४ चतुर्थ अंक विषयक परिवर्तन
 - ३.२.४.५ पंचम अंक विषयक परिवर्तन
 - ३.२.४.६ षष्ठ अंक विषयक परिवर्तन
 - ३.२.४.७ सप्तम अंक विषयक परिवर्तन
- ३.३ उत्तररामचरितम् में वर्णित समाज एवं संस्कृति
- ३.४ उत्तररामचरितम् की आलोचना
- ३.५ उत्तररामचरितम् में रस—निरूपण
 - ३.५.१ उत्तररामचरितम् का प्रधान रस करुण है
 - ३.५.२ उत्तररामचरितम् में करुण रस मानने के कारण
- ३.६ अभ्यास प्रश्न

३.० उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप उत्तररामचरित की कथा वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

- वाल्मीकिरामायण और पद्मपुराण में वर्णित कथा का स्वरूप क्या है? यह जान सकेंगे।
- मूल कथा में भवभूति द्वारा किस अंक में क्या परिवर्तन किया गया है? इसकी

जानकारी प्राप्त करेंगे।

- उत्तररामचरित में वर्णित समाज एवं संस्कृति के स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।
- आलोचनात्मक दृष्टि से उत्तररामचरित का अध्ययन करेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् भवभूति के जीवन दृष्टि से अवगत होंगे।
- उत्तररामचरित के प्रधान रस का बोध प्राप्त करेंगे।

३.१ उत्तररामचरित की संक्षिप्त कथा—

३.१.१ प्रथम अंक —

(स्थान अयोध्या) नान्दीपाठ के पश्चात् सूत्रधार नाटककार भवभूति का परिचय देता है और सूचित करता है कि राज्याभिषेक के समय आए हुए अतिथियों को महाराज राम ने विदा कर दिया है। महाराज दशरथ की पुत्री शान्ता के पति ऋष्यशृङ्ग ने बारह वर्ष चलने वाला यज्ञ प्रारम्भ किया है। उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए महर्षि वसिष्ठ के नेतृत्व में राम की माताएँ और अरुन्धती गई हैं। सूत्रधार सीता विषयक लोकापवाद का संकेत करता है और नट कहता है कि सीता की अग्निशुद्धि पर लोगों को अविश्वास है। सूत्रधार आशंका प्रकट करता है कि यदि यह बात राम तक पहुँचेगी तो अनिष्ट की संभावना है। नट विश्वास प्रकट करता है कि देवगण सर्वथा कल्याण करेंगे। महाराज जनक की विदाई से सीता दुःखित हैं। उन्हें सान्त्वना देने के लिए राम अन्तःपुर में जाते हैं। (प्रस्तावना)

तदनन्तर सीता को आश्वासन देते हुए राम का रंगमंच पर प्रवेश। ऋष्यशृङ्ग के आश्रम से महर्षि वसिष्ठ आदि का संदेश लेकर आए हुए अष्टावक्र का प्रवेश। अष्टावक्र ने सन्देश सुनाया कि वसिष्ठ ने सीता को आशीर्वाद दिया है कि वह वीर प्रसवा हो। अरुन्धती और शान्ता आदि ने राम से आग्रह किया है कि वह गर्भिणी सीता के दोहदों (गर्भिणी की इच्छाएँ) को पूर्ण करें। ऋष्यशृङ्ग ने कहा है कि वह पुत्रवती सीता का दर्शन करेंगे। वसिष्ठ ने राम को आदेश दिया है कि वह प्रजा को सर्वथा प्रसन्न रखें। इसके उत्तर में राम का कथन है कि मैं प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए सीता को भी छोड़ सकता हूँ। राम का यह कथन सीता के भावी परित्याग की सूचना देता है। अष्टावक्र का प्रस्थान। लक्ष्मण का प्रवेश। वे खिन्न सीता के मनोविनोदार्थ चित्रवीथी में रामचरित से संबद्ध चित्रों को देखने के लिए ले जाते हैं। इस चित्रवीथी में सीता की अग्निशुद्धि तक के चित्र हैं। राम सीता की पूर्ण पवित्रता की घोषणा करते हैं। जृम्भक अस्त्रों के चित्र को देखकर राम सीता को वर देते हैं कि ये जृम्भक अस्त्र तुम्हारी सन्तान को प्राप्त होंगे। तत्पश्चात् राम का अपने विवाह, मन्थरा-दृष्टान्त, वनवासरथ, जटा-धारण, भागीरथी नदी, यमुनातटवर्ती वट-वृक्ष, विराध राक्षस की घटना, जनस्थान-प्रस्रवण पर्वत, गोदावरी नदी, शूर्पणखा विवाद, सीता को रावण के द्वारा हरण की स्मृति, राम के द्वारा सीता को आश्वासन, जटायु के पराक्रम का चित्र, कुञ्जावान पर्वत, मतंगशृङ्ग के आश्रम में श्रमणा नामक सिद्ध तपस्विनी, पम्पा तालाब, हनुमान् और माल्यवान् पर्वत के चित्रों को देखना। सीता का वन-वन विहार, गङ्गा स्नान का दोहद। तदर्थ राम का लक्ष्मण को रथ लाने का आदेश। सीता को नींद आना। दुर्मुख नामक दूत का प्रवेश। वह सीता-विषयक

लोकापवाद की सूचना राम को देता है। इस सूचना से राम का मूर्च्छित होना। लोकाराधन के लिए राम का सीता को निर्वासित करने का निश्चय। राम का अपने आपको दोषी बताना। राम के आदेशानुसार लक्ष्मण का सीता को रथ में बैठाकर वन में छोड़ने के लिए जाना।

३.१.२ द्वितीय अंक —

(स्थान— दण्डकारण्य का जनस्थान प्रदेश) विष्कम्भक में सीता—परित्याग के बाद बारह वर्षों में घटित घटनाओं की सूचना दी गई है। तपस्विनी आत्रेयी और वनदेवता का प्रवेश। आत्रेयी ने सूचित किया कि किसी देवता ने महर्षिवाल्मीकि को कुश और लव नाम के दो बालक लाकर समर्पित किए हैं। इन्होंने अभी माता का दूध छोड़ा है। ये दोनों बालक अदभुत गुणों वाले हैं। इन्हे रहस्य सहित जृम्भक अस्त्र जन्मसिद्ध है। वाल्मीकि ने इनका पालन—पोषण किया है, इनका क्षत्रियोचित उपनयन संस्कार करके इन्हे वेदत्रयी तथा अन्य तीन विधाएँ आन्वीक्षिकी वार्ता और दण्डनीति सिखाई है। दोनों बालक अत्यन्त प्रतिभाशाली हैं। महर्षिवाल्मीकि को कौच वध के कारण दया और सहसा 'मा निषाद' श्लोक का उद्गार। ब्रह्मा का वाल्मीकि को आर्षदृष्टि देना और आदेश देना कि तुम रामचरित वर्णन करो। आत्रेयी सूचित करती है कि ऋष्यशृङ्ग का १२ वर्ष चलने वाला यज्ञ समाप्त हो गया है। वसिष्ठ, अरुन्धती आदि सीता—परित्याग के कारण राम से अप्रसन्न हैं, अतः वे वाल्मीकि के आश्रम जाते हैं। उधर राम ने अश्वमेध नामक यज्ञ प्रारम्भ किया है और उसमें पत्नी के स्थान पर सीता की स्वर्ण—मूर्ति स्थापित की है। दिग्विजय के निमित्त अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा गया है और उसके रक्षकों का नेतृत्व लक्ष्मण का पुत्र चन्दकेतु कर रहा है। इस बीच एक ब्राह्मण बालक की अकालमृत्यु होती है और आकाशवाणी होती है कि शम्बूक नाम का एक शूद्र तप कर रहा है, उसको मारकर ब्राह्मण बालक को पुनर्जीवित करो। राम शम्बूक को ढूँढते हुए दण्डकारण्य में जाते हैं। (विष्कम्भक)

राम का शम्बूक को मारना। शम्बूक का दिव्य पुरुष का रूप धारण करके राम के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना। शम्बूक से यह जानकर कि यह दण्डक वन है, राम का पूर्व घटनाओं का स्मरण करना और विलाप करना। अगस्त्य के नियन्त्रण पर पंचवटी—दर्शन के बिना ही पुष्पक विमान से राम का अगस्त्य के आश्रम के लिए प्रस्थान।

३.१.३ तृतीय अंक —

(स्थान—दण्डकारण्य पंचवटी प्रदेश)। विष्कम्भक में शरीरधारी तमसा और मुरला नामक दो नदी—देवताओं का प्रवेश। दोनों के संवाद से सूचित होता है कि सीता के परित्याग से राम अत्यधिक दुःखित एवं शोकातुर हैं। गोदावरी नदी से प्रार्थना की गई है कि वह राम के जीवन के प्रति सावधान रहे। कुश और लव के विषय में और विवरण प्राप्त होता है कि वाल्मीकि के आश्रम के समीप सीता को छोड़कर जब लक्ष्मण लौट जाते हैं तब सीता ने प्रसवपीड़ा से पीड़ित होकर अपने आपको गंगा के प्रवाह में डाल दिया और वहीं उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। गंगा और पृथ्वी कृपा करके सीता को पाताल ले गई। जब दोनों बालकों ने माता का दूध छोड़ दिया तब देवी गंगा

ने स्वयं दोनों बालकों को महर्षि वाल्मीकि को समर्पित की। इधर राम अगस्त्य के आश्रम से लौटकर पंचवटी में आते हैं। गंगा को सन्देह है कि कहीं राम कुछ अनिष्ट न कर बैठें अतः वह सीता—सहित गोदावरी के पास आती है। उस दिन कुश और लव की १२वीं वर्षगांठ थी। गंगा ने सीता को आदेश दिया कि वह अपने हाथ से एकत्रित फूलों से सूर्य की पूजा करे। साथ ही सीता को सिद्धि प्रदान की कि, वह अदृश्य होकर रहेगी। उसे मनुष्य ही नहीं अपितु वनदेवता भी नहीं देख सकेंगे। अतएव आगे के वर्णन में राम भी सीता को नहीं देख पाते हैं। सीता गोदावरी के जल से निकलती है और साक्षात् करुणा की मूर्ति एवं शरीरधारिणी पृथ्वी की विरह व्यथा प्रतीत होती है। (विष्कम्भक)।

राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं और अपने पूर्वपरिचित स्थानों को देखकर मूर्च्छित होते हैं। सीता अपने हाथ के स्पर्श से राम को होश में लाती है। राम सीता के प्रति अपने हार्दिक एवं नार्मिक उद्गार प्रकट करते हैं। सीता भी अदृश्य रहते हुए राम के हार्दिक भावों से परिचित होती है। वनदेवता वासन्ती का पंचवटी में राम से मिलना। राम वासन्ती से वार्तालाप करते हैं, उधर भ्रष्ट रहते हुए सीता तमसा से वार्ता करती है। पंचवटी के दृश्यों का वर्णन। वासन्ती राम से सीता के विषय में प्रश्न पूछती है और सीता—परित्याग के लिए राम की भर्त्सना करती है कि नीर्तिलाभ के लिए क्या सीता—परित्याग उचित कार्य था? राम दुःखित होते हैं और आशंका प्रकट करते हैं कि वन में सीता को हिंसक पशु खा गए हैं। राम भावावेश में विलाप करते हैं। वे मूर्च्छित होते हैं और सीता के हस्तस्पर्श से होश में आते हैं। राम सूचित करते हैं कि उन्होंने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया है और उसमें सीता की स्वर्ण प्रतिमा को उन्होंने पत्नी के स्थान पर रखा है। राम अश्वमेध के लिए अयोध्या लौट जाते हैं और सीता पुत्रों की वर्षगांठ मनाने के लिए गंगा के पास आती है।

१.४ चतुर्थ अंक —

(स्थान—महर्षि वाल्मीकि के आश्रम का समीपवर्ती स्थान) वाल्मीकि के शिष्य सौधातकि र दण्डायन के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि के आश्रम में वसिष्ठ, अरुन्धती, राम माताएँ और जनक अतिथिरूप में आए हैं। सीता के शोक से सन्तप्त राजर्षि जनक आश्रम बाहर वृक्ष के नीचे बैठे हैं। (विष्कम्भक)।

जनक का प्रवेश, वे सीता के शोक में विलाप करते हैं। वसिष्ठ के आदेशानुसार अरुन्धती के साथ कौसल्या जनक से मिलने आती हैं। जनक और कौसल्या राम और सीता के विवाह पश्चात् की घटनाओं को स्मरण करके दुःखित होते हैं। अरुन्धती का कथन है कि वसिष्ठ ने या है कि इन घटनाओं का अन्त सुखद होगा। नेपथ्य में शिष्टानध्याय के कारण खेलते हुए बालकों का कोलाहल। बालकों में राम के सदृश आकृति वाला बालक दिखाई देता है। जनक उसे की से बुलवाते हैं। बालक लव आकर उन वृद्धों को प्रणाम करता है। कौसल्या यह देखकर नन्दित होती है कि लव की आकृति सीता से मिलती—जुलती है। कौसल्या लव से उसके —पिता का नाम पूछती है। लव अपने आप को वाल्मीकि का पुत्र बताता है। लव रामायण

की कथा तथा उसके पात्र राम, लक्ष्मण, जनक आदि की जानकारी प्रकट करता है। जनक के यह पूछने पर कि दशरथ के किस-किस पुत्र के कितनी सन्तान हैं? लव सूचित करता है कि यह अंश अभी तक अप्रकाशित है और वाल्मीकि ने यह अंश मेरे बड़े भाई कुश के संरक्षण में अभिनय के लिए भरत मुनि के पास भेजा है। इसी बीच अश्वमेध का अश्व आश्रम के समीप आता है। कौतूहल से भरा हुआ बालक लव अश्व को खींचकर वहाँ ले जाता है, अश्व के रक्षकों से विवाद बढ़ जाने के कारण लव युद्ध के लिए संनद्ध हो जाता है।

३.१.५ पंचम अंक —

(स्थान— वाल्मीकि के आश्रम का समीपवर्ती स्थान) सारथि सुमन्त्र के साथ लक्ष्मण—पुत्र चन्द्रकेतु का प्रवेश। दोनों यह देखकर आश्चर्य चकित हैं कि लव ने अश्व—रक्षकों को हरा दिया है और मार भगाया है। चन्द्रकेतु लव को युद्धार्थ आवाहन करता है। वार्तालाप में विघ्न करने के कारण लव जृम्भक अस्त्र के प्रयोग से सैनिकों को निश्चेष्ट कर देता है। लव राम के शौर्य को कुछ नहीं समझता है और उन पर आक्षेप करता है। क्रुद्ध चन्द्रकेतु लव से युद्ध के लिए तैयार हो जाता है।

३.१.६ षष्ठ अंक —

(स्थान— वाल्मीकि के आश्रम का समीपवर्ती)

विष्कम्भक में विद्याधर और विद्याधरी के संवाद से सूचना मिलती है कि लव और चन्द्रकेतु में दिव्य अस्त्रों से घोर युद्ध हो रहा है। चन्द्रकेतु ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया है, उसके प्रतिकार—स्वरूप लव ने वारुण अस्त्र का प्रयोग किया है पुनः उसके प्रतिकार रूप में चन्द्रकेतु ने वायव्य अस्त्र छोड़ा है। इसी समय शम्बूक के बध के बाद लौटे हुए राम का प्रवेश। (विष्कम्भक)

रू लव और चन्द्रकेतु राम को प्रणाम करते हैं। लव को देखकर राम की हार्दिक प्रसन्नता होती है और वे उसे गले लगाते हैं। लव जृम्भक अस्त्र को लौटा लेता है। लव राम को सूचित करता है कि जृम्भक अस्त्र उसे जन्मसिद्ध है। इसी समय भरत के आश्रम से लौटे हुये कुश का प्रवेश। कुश लव से राम का परिचय प्राप्त करके उन्हें प्रणाम करता है। राम कुश और लव की आकृति से अनुमान करते हैं कि ये दोनों बालक सीता के पुत्र हैं, ये युगल हैं। इन्हें जृम्भक अस्त्र जन्मसिद्ध है। अपने अनुमान की पुष्टि के लिए वे उनसे कुछ प्रश्न पूछते हैं, परन्तु सीता के विषय में उनके उत्तर उदासीन के तुल्य हैं, अतः राम अपना अनुमान त्याग देते हैं। शिशु कलह को सुनकर वसिष्ठ वाल्मीकि, जनक, दशरथ की रानियाँ और अरुन्धती वहाँ पहुँचते हैं। शोकसंतप्त एवं लज्जित राम उनको प्रणाम करने के लिए जाते हैं।

३.१.७ सप्तम अंक —

(स्थान— वाल्मीकि के आश्रम का समीपवर्ती)

इस अंक में वाल्मीकि आश्रम के समीप गंगा के तट पर वाल्मीकि की कृति का अप्सराओं के द्वारा अभिनय दिखाया गया है। इस अभिनय को देखने के लिए राम सहित सारी प्रजा उपस्थित होती है। वाल्मीकि ने अपनी तपस्या के प्रभाव से चराचर समस्त देवों और असुरों को वहाँ बुला लिया है। इस गर्भनाटक का उद्देश्य है—सीता को सर्वथा निर्दोष सिद्ध करके उसका तथा कुशल का राम के साथ समागम और नाटक को सुखान्त बनाना। इसमें सीता परित्याग से लेकर कुशल—लव के जन्म तक की कथा का वर्णन है। सीता प्रसव वेदना से पीड़ित होकर अपने आपको गंगा में डाल देती है। सीता जल में ही पुत्रों को जन्म देती है। गंगा और पृथ्वी एक—एक बच्चे को गोद में लिये हुए सीता को सहारा देकर जल से बाहर लाती है। पृथ्वी सीता—परित्याग के कारण राम पर क्रुद्ध होती है, गंगा उसे समझाती है। आकाश में तीव्र प्रकाश होता है और प्रकाशमय जृम्भक अस्त्र कुशल तथा लव को प्राप्त होते हैं। पृथ्वी के आदेशानुसार सीता दूध छोड़ने तक दोनों बालकों का पालन करती है और तत्पश्चात् गंगा उन दोनों को महर्षिवाल्मीकि को समर्पित करती है। सीता के रसातल में प्रवेश करने का समाचार सुनकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं इसी समय गंगा और पृथ्वी के साथ सीता जल से प्रकट होती है। सीताके हस्तस्पर्श से राम होश में आते हैं। पृथिवी अपने उत्तरदायित्व से मुक्त होती है कि अब तक मैंने सीता की रक्षा की। राम पृथ्वी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। अरुन्धती सीता की पवित्रता की घोषणा करती है। सभी देवादि तथा चराचर प्राणि वर्ग उसका समर्थन करते हैं। राम निर्दोष सीता को स्वीकार करते हैं। कुशल और लव के साथ वाल्मीकि का प्रवेश। कुशल और लव का माता—पिता से मिलन। भरत वाक्य के साथ नाटक की समाप्ति।

३.२.१ कथा का आधार —

उत्तररामचरित में वर्णित कथा का मूल आधार वाल्मीकिरामायण का उत्तरकाण्ड है। इसमें राम के राज्याभिषेक तथा सीता के परित्याग के बाद की घटनाओं का वर्णन है। भवभूति ने अपने नाटकीय कौशल और प्रतिभा का परिचय देते हुए मूलकथा में अनेक परिवर्तन किए हैं। वाल्मीकीय रामायण की कथा दुःखान्त है, परन्तु भवभूति ने भारतीय पद्धति का अनुसरण करते हुए नाटक को सुखान्त बनाया है।

महाभारत (सभा पर्व अ० ३८, वन पर्व अ० २७७) में तथा कुछ पुराणों (यथा—गरुड पुराण, ब्रह्मपुराण स्कन्दपुराण अग्निपुराण आदि) में रामकथा वर्णित है। परन्तु इनमें राम के राज्याभिषेक के बाद की घटनाओं का उल्लेख नहीं है और इस अंश के वर्णन का अभाव है।

पद्मपुराण के चतुर्थ खण्ड (पाताल खण्ड अध्याय १ से ६८) तथा पंचम खण्ड (सृष्टि खण्ड) में राम कथा वर्णित है, परन्तु दोनों खण्डों में वर्णित कथाओं में भेद है। सृष्टिखण्ड में वर्णित कथा और वाल्मीकीय रामायण की कथा से मिलती जुलती है, परन्तु पाताल खण्ड में वर्णित कथा और उत्तररामचरित की कथा में बहुत अधिक साम्य है। यदि यह कहा जाए कि भवभूति ने इस नाटक की कथा के लिए पद्मपुराण (पाताल—खण्ड) की कथा को आधार बनाया है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। भवभूति ने पद्मपुराण की कथा में भी कई परिवर्तन किए हैं, जो भवभूति की मौलिकता एवं निजी कल्पना है।

३.२.२ वाल्मीकि रामायण में वर्णित कथा —

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड (सर्ग ४२ से सर्ग ९७ तक) में राम के राज्याभिषेक से लेकर सीता के पृथ्वी में अन्तर्धान होने तक का वर्णन है। संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :—

राम का राज्याभिषेक होता है। सीता को गर्भवती जानकर सभी को प्रसन्नता है। राम सीता से पूछते हैं कि कोई अभिलाषा बताओं, जिसे पूरा करूँ। सीता ने पवित्र तपोवन देखने की इच्छा प्रकट की। राम ने स्वीकृति दी। उसी दिन राजसभा में भद्र नायक सभासद ने लोकापवाद की बात कही कि रावण द्वारा अपहृत सीता को राम ने तुरन्त स्वीकार कर लिया है और उन्होंने इसकी थोड़ी भी निन्दा नहीं की है। (कीदृशं हृदये तस्य सीतासंभोगजं सुखम्..... रक्षसां वशमापन्नां कथं रामो न कुत्सति, सर्ग ४३, १४-१८) इससे राम को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने लक्ष्मण को आदेश दिया कि सीता को रथ पर बैठाकर वाल्मीकि के आश्रम के समीप छोड़ आओ। लक्ष्मण ने वैसा किया। रोती हुई सीता को मुनि—बालकों ने देखा और उन्होंने यह सूचना महर्षि वाल्मीकि को दी। वाल्मीकि आश्वासन देकर सीता को अपने आश्रम में ले गए। कुछ समय बाद राम ने लवणासुर को मारने के लिए सेनापति शत्रुघ्न को मधुपुर भेजा। जाते समय शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम में रुके। उसी दिन रात्रि में सीता के दो पुत्र हुए —

“तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम्”, (६६-१)

लवणासुर को मारकर १२ वर्ष बाद शत्रुघ्न लौटते समय फिर वाल्मीकि के आश्रम में रुके उस समय कुश—लव १२ वर्ष के हो गए थे और उन्हें रामायण कण्ठस्थ था। शत्रुघ्न अयोध्या लौटे। राम ने उन्हें मधुपुर का राजा बनाकर भेज दिया। इसके बाद राज्य में किसी ब्राह्मण का पुत्र मर गया। वह उसे राजद्वार पर लाया और कहा कि बालक की मृत्यु राजा के दोष के कारण हुई है। राम ने महर्षियों के सामने यह प्रश्न रखा। नारद ने कहा कि एक शूद्र की तपस्या के कारण यह अकालमृत्यु हुई है। राम पुष्पक विमान से उसे ढूँढ़ने निकले। दक्षिण में पहाड़ पर शम्बूक नामक शूद्र को तपस्या करते हुए देखा और उसका वध किया। ब्राह्मण बालक जीवित हो गया। राम अगस्त्य मुनि का दर्शन करके अयोध्या लौटे। अयोध्या लौटकर अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। उसमें वाल्मीकि को भी बुलाया था। उनके साथ लव—कुश भी आए। वहाँ लव—कुश ने रामायण सुनाई। परिचय पूछने पर वाल्मीकि ने बताया कि ये सीता के पुत्र हैं। दूतों के द्वारा सीता को अयोध्या यज्ञभूमि में बुलावाया गया और सीता से कहा गया कि वह वाल्मीकि के संमुख अपनी निर्दोषता प्रमाणित करें। सीता आई और यज्ञभूमि में अपनी निर्दोषता की शपथ लेते हुए पृथ्वी से प्रार्थना की कि वह अपने अन्दर उसे स्थान दे। इसी बीच पृथ्वी फटी और भूमि के अन्दर से एक दिव्य सिंहासन निकला। पृथ्वी ने सीता का अभिनन्दन किया और हाथ पकड़कर उसे सिंहासन पर बैठा लिया। उस समय देवों ने उस पर पुष्प वृष्टि की। फिर वह आसन सीता सहित भूमि के अन्दर चला गया। वाल्मीकि रामायण के अनुसार यह कथा दुःखान्त है।

भवभूति ने वाल्मीकि रामायण के तीन श्लोक (अंक ६.३१, ३२.३६,) मूलरूप में दिये हैं। क्रौञ्च

कथानक (अंक-२) पूरा लिया है। अंक ७ में वाल्मीकि को रंगमंच पर भी लाए हैं। इस प्रकार वे वाल्मीकि के पूर्णतया ऋणी हैं।

उत्तररामचरितम् की संक्षिप्त कथा

३.२.३ पद्मपुराण में वर्णित कथा —

पद्मपुराण में वर्णित कथा का उत्तररामचरित की वर्णित कथा से बहुत अधिक साम्य है। अतः पद्मपुराण की कथा को उत्तररामचरित की कथा का आधार कहा जा सकता है। पद्मपुराण (पातालखण्ड, अध्याय १-६८) में वर्णित कथा संक्षेप में इस प्रकार है :-

राम का राज्याभिषेक, जनापवाद के कारण बाध्य होकर राम के द्वारा सीता का परित्याग, वाल्मीकि के द्वारा लव कुश का पालन और उन्हें अस्त्रविद्या की शिक्षा देना, अश्वमेध यज्ञ के अश्व का वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचाना, लव का अश्व को पकड़ना, सैनिकों से लव का युद्ध, वाल्मीकि द्वारा लव-कुश का राम से परिचय कराना तथा अन्त में राम-सीता का मिलन।

इस प्रकार यह कथा सुखान्त है तथा उत्तररामचरित में वर्णित प्रायः सभी तथ्य इसमें प्राप्त होते हैं।

भवभूति ने पद्मपुराण में वर्णित कथा में निम्न परिवर्तन किये हैं:-

- (१) पद्मपुराण में अश्वमेधीय अश्व का रक्षक भरत का पुत्र पुष्कल है, उत्तररामचरित में लक्ष्मण-पुत्र चन्द्रकेतु है।
- (२) पद्मपुराण में वाल्मीकि ने लव-कुश को अस्त्रविद्या सिखायी है, उत्तरराम० में जृम्भकादि दिव्य अस्त्र उन्हें जन्मसिद्ध हैं।
- (३) पद्म० में लव पहले विजयी होता है, पर बाद में बन्दी बना लिया जाता है, बाद में कुश आकर सारी सेना को जीतता है और लव को मुक्त कराता है। सीता बीच में पड़कर बन्दी बने सेनापतियों को तथा अश्वमेधीय अश्व को मुक्त कराती हैं।
- (४) अश्वमेध यज्ञ में राम ने वाल्मीकि से लव-कुश के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त की। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि ये दोनों बालक राम के ही पुत्र हैं।
- (५) अश्वमेध यज्ञ में सीता को बुलवाया जाता है। वाल्मीकि के कहने पर राम सीता को ग्रहण करते हैं।
- (६) पद्म० में राम युद्धभूमि में नहीं आते हैं, उनका अयोध्या में लव-कुश से परिचय होता है। पद्म० में पृथ्वी भी प्रकट नहीं होती है।

३.२.४ मूलकथा में परिवर्तन —

भवभूति ने 'यद्यपि रामायण की कथा को आधार बनाया है तथापि कथावस्तु के लिए पद्मपुराण को ही विशेषरूप से आधार माना है। भवभूति ने उसमें भी आवश्यकतानुसार अनेक

परिवर्तन किए हैं। विभिन्न प्रसंगों को नाटकोपयोगी बनाने के लिए, आवश्यक था कि वह उनमें उचित परिवर्तन करें।

यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि भवभूति का उद्देश्य है, करुणरस का प्रवाह लाना और सभी अन्य रसों को करुणामूलक सिद्ध करना, अतएव उसने प्रत्येक घटना के मूल में करुणा की भावना को स्थान दिया है। भवभूति ने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए घटनाओं में यथास्थान परिवर्तन किया है घटनाओं के क्रम को बदला है, नवीन दृश्यों को जोड़ा है, नवीन पात्रों की कल्पना की है और नाटक को सुखान्त बनाया है। इन परिवर्तनों के कारण भवभूति की मौलिकता और नाटकीय प्रतिभा का परिचय मिलता है। भवभूति ने विभिन्न प्रसंगों को इस प्रकार जोड़ा है कि उनमें नाटकीय गति और स्वाभाविकता प्रतीत होती है जो निम्न प्रकार हैं —

३.२.४.१ प्रथम अंक विषयक परिवर्तन —

चित्रवीथी का दृश्य भवभूति की मौलिक कल्पना है। इसके द्वारा वे राम—सीता के पारस्परिक अगाध प्रेम को प्रदर्शित करते हैं और सीता—परित्याग के लिए उपयुक्त आधार तैयार करते हैं। सीता स्वयं दोहद के कारण वन दर्शनार्थ जाना चाहती हैं, उसको ही बहाना बनाकर राम द्वारा सीता को वन भेजा जाता है।

यहाँ लोकपवाद का सूचक भद्र सभासद के स्थान पर दुर्मुख नामक गुप्तचर है। अष्टावक्र की उपस्थिति भी सीता—परित्याग में सहायक हुई है। अन्य प्रसंग में रामायण में वर्णित लवणासुर—वधार्थ शत्रुघ्न को भेजने का यहाँ दूसरे प्रसंग में वर्णन है।

३.२.४.२ द्वितीय अंक विषयक परिवर्तन —

सीता गंगा के प्रवाह में दो बच्चों को जन्म देती है, गंगा और पृथ्वी उसे बाहर लाती है। दूध छोड़ने के बाद वाल्मीकि के पास रहते हैं और सीता गंगा के संरक्षण में पाताल में रहती है। मूलकथा में सीता ने आश्रम में ही बच्चों को जन्म दिया और वही रही। उत्तरराम० में जम्भाकास्र कुश—लव को जन्मसिद्ध प्राप्त है, पद्म० में वाल्मीकि ने उन्हें ये सभी अस्त्र सिखाये हैं। रामायण में अन्य प्रसंग में वर्णित क्रौंच—वध और शम्बूक—वध उत्तरराम० में इस अंक में वर्णित है। यह सीता—परित्याग के १२ वर्ष बाद की घटना है। शम्बूक के प्रसंग से राम दण्डक वन में आते हैं और पूर्वानुभूत स्थानों का दर्शन करते हैं। इसके द्वारा राम और सीता के मिलन के लिए भूमिका तैयार होती है। राम परिचित स्थानों को देखकर बार—बार सीता को स्मरण करते हैं।

३.२.४.३ तृतीय अंक विषयक परिवर्तन —

इस अंक में छायादृश्य भवभूति की मौलिक कल्पना है। इस दृश्य के द्वारा भवभूति नाटक में छायादृश्य के तुल्य ही छायादृश्य उपस्थित करने की नवीन योजना रखी है। नाटकीय पात्रों के अतिरिक्त सीता और तमसा अदृश्य रहते हुए राम और वासन्ती का वार्तालाप सुनती हैं और पर्व पर छाया के तुल्य दिखायी जाती है। वे दोनों परस्पर वार्तालाप करती हैं। तमसा के कहने

पर मूर्छित राम को सीता हस्तस्पर्श से होश में लाती है। मूल कथा में तृतीय अंक की कथा का सर्वथा अभाव है। वासन्ती, तमसा और मुरला भवभूति की मौलिक कल्पनाएँ हैं। वासन्ती सीता—परित्याग के लिए राम को कड़े ढंग से फटकारती है (उत्तरराम० वाक्य १०७ से ११६)। राम और सीता दोनों के हृदयों से ही कटुता समाप्त हो गई है। दोनों पुनर्मिलन के लिए उद्यत दिखाए गए हैं। दोनों शोक के कारण बार—बार मूर्च्छित होते हैं।

३.२.४.४ चतुर्थ अंक विषयक परिवर्तन —

मूल कथा में चतुर्थ अंक की कथा का सर्वथा अभाव है। भवभूति ने इस अंक में वसिष्ठ, अरुन्धती कौसल्या आदि तथा राजर्षि जनक सभी को वाल्मीकि के आश्रम में एकत्र किया है। कौसल्या जनक का संवाद, जनक का अपनी पुत्री सीता के लिए शोक करना, खेलते हुए बालकों का कोलाहल, कौसल्या और जनक का मुखाकृति—सादृश्य के आधार पर लव को रामपुत्र होने का अनुमान करना, वाल्मीकि रचित नाटक की चर्चा, ये घटनाएँ मूलकथा में नहीं हैं। मूलकथा में अश्वमेधीय अश्व का रक्षक भरत—पुत्र पुष्कल है, जबकि उत्तरराम० में लक्ष्मण—पुत्र चन्द्रकेतु है।

३.२.४.५ पंचम अंक विषयक परिवर्तन —

इस अंक में चन्द्रकेतु और लव का वार्तालाप है। लव ने जृम्भक अस्त्र से चन्द्रकेतु की सेना को निश्चेष्ट कर दिया है। लव राम के पौरुष की निन्दा करता है। दोनों युद्धार्थ तैयार होते हैं। मूलकथा में चन्द्रकेतु के स्थान पर पुष्कल है। राम के पौरुष की निन्दा नहीं है।

३.२.४.६ षष्ठ अंक विषयक परिवर्तन —

चन्द्रकेतु और लव का दिव्य अस्त्रों से युद्ध होता है। इसी समय राम वाल्मीकि आश्रम में आते हैं। दोनों तुरन्त युद्ध रोक देते हैं। कुश का आगमन, लव—कुश को पुत्र मानकर राम का उनसे प्रेम करना, कुश—लव का राम के प्रति उदासीन सा व्यवहार वसिष्ठ, वाल्मीकि, जनक आदि युद्ध स्थल पर पहुँचना और उनका सीता—वियुक्त राम को धैर्य बधाना, ये घटनाएँ मूलकथा में नहीं हैं। मूलकथा में लव बन्दी बनाया जाता है और कुश उसे छुड़ाता है। सीता बीच में पड़कर अश्व को मुक्त कराती हैं। राम वाल्मीकि के आश्रम में नहीं आते हैं और न उनके कारण युद्ध बन्द होता है।

३.२.४.७ सप्तम अंक विषयक परिवर्तन—

इस अंक में गर्भनाटक का दृश्य भवभूति की मौलिक कल्पना है। इसके द्वारा भवभूति सभी पात्रों एवं समस्त चराचर जनगत् को वाल्मीकि के आश्रम में एकत्र किया है। वाल्मीकि के तपोवन का महत्व भी दिखाया गया है। गंगा और पृथ्वी सीता के चरित्र की पूर्ण पवित्रता की शोषणा करती हैं। सभी देवता सीता के ऊपर पुष्पवृष्टि करते हैं। अरुन्धती और जनमत के गद्देशानुसार राम सीता को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार वाल्मीकि के आश्रम में ही राम—सीता

का तथा उनका अपन पुत्र कुश—लव से मिलन होता है। पद्मपुराण में अश्वमेध यज्ञ में सीता बुलाई जाती है और वाल्मीकि के आदेशानुसार राम सीता को स्वीकार करते हैं।

३.३ उत्तररामचरित में वर्णित समाज एवं संस्कृति —

उत्तररामचरित से उस समय की सामाजिक अवस्था का पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है। उत्तररामचरित में जिस समाज और संस्कृति का वर्णन है, वह प्रायः रामायण कालीन संस्कृति है। यहाँ संक्षेप में उसकी रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है —

उस समय का समाज उन्नत अवस्था में था। समाज धर्मप्रिय था। वर्णाश्रम व्यवस्था प्रचलित थी। वेदादि के अध्ययन, अस्त्र—शस्त्रादि के शिक्षण तथा कलात्मक प्रवृत्तियों में जनता की अभिरुचि थी। उनकी यज्ञ, संस्कार, तप और दार्शनिक विचारों के प्रति विशेष निष्ठा थी।

ब्रह्मचारी ऋषि—महर्षियों के आश्रम में रहकर संयमी जीवन बिताते थे और शिक्षा प्राप्त करते थे। वे गुरुकुलीय जीवन व्यतीत करते थे। वे ब्रह्मचारी के लिए विहित जटा, मेखला, यज्ञोपवीत, दण्ड, मृगचर्म धारण करते थे। क्षत्रिय बालक धनुष, बाण, तूणीर, भी धारण करते थे। इन गुणों से युक्त बालक लव का वर्णन द्रष्टव्य है।

पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपर पैप्पलः उत्तरराम० ४-२०

वेदारम्भ से पूर्व गुरु उनका यज्ञोपवीत करता था, तत्पश्चात् वेदत्रयी की शिक्षा दी जाती थी। क्षत्रिय का उपनयन ११ वर्ष की आयु में होता था। यज्ञोपवीत से पहले आन्वीक्षिकी (न्यायशास्त्र) वार्ता (अर्थशास्त्र) और दण्डनीति (राजनीति शास्त्र) की शिक्षा वाल्मीकि ने कुश—लव को दी थी।

तयोस्त्रयी वर्जमितरास्तिष्ठो विद्याःसावधानेन परिनिष्ठापिताः। — तदनन्तरं

भागवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्यपितौ। — (उत्तरराम० अंक २)

क्षत्रिय बालक आयुर्वेद, धनुर्वेद, और गान्धर्ववेद भी पढ़ते थे। उपनयन के बाद षडंग वेदों की शिक्षा दी जाती थी।

गृहस्थ लोग विवाह के बाद आहिताग्नि (अग्निहोत्री) होते थे। गृहस्थ जीवन में व्यक्तियों को झंझट लगे रहते थे, अतः उनका जीवन प्रायः कष्टमय होता था।

संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता — उत्तरराम० १.८

दुर्जन उनके सत्कार्यों में विघ्न डालते रहते थे।

“दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति” — उत्तरराम० अंक—१

स्त्री को प्रसन्न रखना पति अपना कर्तव्य समझता था।

“कान्तानुवृत्तिचातुर्यमपि शिक्षितं वत्सेन” — उत्तरराम० अंक—३

गर्भवती स्त्री की इच्छा (दोहद) को पूर्ण करना आवश्यक कार्य माना जाता था।

यः कश्चिद् गर्भदोहदो भवव्यस्याः सोऽवश्यमचिरान्मा नयितव्यः — उत्तरराम० अंक-१

यज्ञ में पति के साथ पत्नी भी बैठती थी। पत्नी के अभाव में उसकी स्वर्णमूर्ति रखकर काम चलाया जाता था —

हिरव्यमयीसीता प्रतिकृतिर्गृहिणीकृता। — उत्तरराम० अंक-२

समाज में स्त्रियों का स्थान ऊँचा नहीं था। जनता रूढ़िवादों से ग्रस्त थी। सीता की अग्निशुद्धि पर भी लोगों ने अविश्वास किया। अनुचित अन्धविश्वास के कारण राम को बाध्य होकर सीता परित्याग करना पड़ा।

यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।

देव्यामपि हि वैदेह्यां सापवादो यतो जनः॥

उत्तरराम० १.५, व १.६

स्त्रियाँ आभूषण एवं कंकण धारण करती थी। उत्तरराम० १-१८ स्त्रियाँ वेद और वेदान्त आदि दर्शन पढ़ती थी तथा ब्रह्मविद्या की उच्च शिक्षा प्राप्त करती थी।

वनदेवता के पूछने पर, आत्रेयी कहती है—

अस्मिन्नगस्त्य प्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।

लेभ्याऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वदिह पर्यटामि॥

(उत्तरराम० २-३)

इस प्रदेश में अगस्त्य आदि अनेक ब्रह्मवेत्ता ऋषि रहते हैं। उनसे वेदान्त विद्या का अष्ट प्रयत्न करने के लिए वाल्मीकि ऋषि के पास से यहाँ आ रही हूँ।

शम्पती के लिए पुत्र प्राप्ति का बहुत महत्व था। वह आनन्द की ग्रन्थि माना जाता था।

आनन्द ग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते — (उत्तरराम० ३-१७)

वृद्धावस्था में पुत्रों को उत्तराधिकारी बनाकर वानप्रस्थ लेते थे और जटा आदि रखते थे। (उत्तरराम० १.२२)

ब्रह्मण अपनी विद्या और वाणी के बल के लिए प्रसिद्ध होते थे। उनकी वाणी में तेज होता था। ये तत्त्वज्ञानी और सिद्ध होते थे। ये असत्यभाषण को महापाप समझते थे। (उत्तरराम० ४. ८ व ५.३२)

ऋषि महर्षि सहस्रों वर्ष की समाधि लगाते थे और वे अपने तपोबल से इष्टसिद्धि प्राप्त करते थे। वे तपोबल से जृम्भक आदि अस्त्रों को सिद्ध करते थे। वाल्मीकि जैसे महर्षि अपने

तपोबल से सारे चराचर जगत् को एकत्र कर सकते थे। (उत्तरराम० १.१५ अंक— ७)

क्षत्रिय बालक वाल्यावस्था में वेदत्रयी के साथ धनुर्विद्या आदि की उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे। वे युद्ध शिक्षा में निपुण होते थे। कुश—लव और चन्द्रकेतु उच्चकोटि के योद्धा थे। राज लोकोपकारी कार्य में व्यस्त रहता था। प्रजा पालन उसका मुख्य कार्य था। वह राक्षसों का नाश करता था। यश को परमधन समझता था। राम प्रजारंजनार्थ सीता तक को छोड़ते हैं।

यदि वा जनकीमपि, —

आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा — (उत्तरराम० १.१२)

जनक जैसे राजर्षि आवश्यकतानुसार चाप और शाप दोनों का प्रयोग कर सकते थे।

चापेन शापेन वा (उत्तरराम० ४.२४)

समाज में शूद्रों का स्थान निकृष्ट था। उन्हें तपस्या करने का अधिकार नहीं था। ब्राह्मण बालक की अकालमृत्यु के लिए शूद्र को दोषी ठहराया गया और राम ने उसका बध किया।

शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्येततपः।

शीर्षच्छेद्यः स ते राम तं हत्वा जीवय द्विजम्॥ (उत्तरराम० २—८)

उस समय यज्ञों और संस्कारों का बहुत महत्व था। ऋष्यशृङ्ग ने १२ वर्ष चलने वाल यज्ञ किया था।

द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्

(उत्तरराम० अंक—३)

बच्चों की वर्षगांठ मनाने की प्रथा थी। सीता कुश—लव को बारहवीं वर्षगांठ मनाती है उत्तरराम० अंक ३।

उस समय कलाप्रियता उन्नति की ओर अग्रसर थी। प्रथम अंक में वर्णित चित्रवीथि से इसकी पुष्टि होती है। वाल्मीकि रचित नाटक का अभिनय भरत ने अप्सराओं से करवाया है, इससे सिद्ध होता है कि उस समय ऐसे भी नाटकों का अभिनय होता था, जिसमें केवल स्त्री पात्र ही अपना और पुरुष—पात्रों का भी अभिनय करती थी।

स किल भगवान् भरतस्तमप्सरोभिः प्रयोजयिष्यतीति। (उत्तरराम० अंक—४)

भवभूति ने दार्शनिक विचारों का भी उल्लेख किया है। कर्मफल और भवितव्यता पर लोगों का विश्वास था।

“भवितव्यं तथेत्युपजातमेव।” (उत्तरराम० अंक—४)

भवभूति ने कई स्थानों पर शब्दब्रह्म और विवर्त का उल्लेख किया है तथा रामायण को शब्दब्रह्म का विवर्त माना है। विवर्तवाद वेदान्तदर्शन का पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ है—

किसी वस्तु का अतात्विक रूपान्तरण जैसे— ब्रह्म से अविद्या या माया। ये अन्य रसों को भी करुण रस का विवर्त मानते हैं। उन्होंने वेदान्त विद्या का भी उल्लेख किया है। अगस्त्य उस समय बड़े ब्रह्मवेत्ता और तत्त्वज्ञानी थे। उत्तरराम० अंक—२ वा. २४

पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रचलन में था इस प्रकार उत्तररामचरित से तत्कालीन सामाजिक स्थिति एवं धार्मिक और दार्शनिक विचारों का पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है।

३.४ उत्तररामचरित की आलोचना —

उत्तररामचरित का संस्कृत के नाटक साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान है। सभी आलोचकों ने इस नाटक को भवभूति की सर्वश्रेष्ठ कृति माना है। इसमें भवभूति ने अपनी ऊँची कल्पना, उर्वरा प्रतिभा, मानव हृदय के आकर्षण, संसार के क्लेशों से पीड़ित प्राणियों के प्रति संवेदना के भाव तथा चरित्रचित्रण के कौशल का प्रचुर परिचय दिया है। भाषा के ऊपर भवभूति का विलक्षण अधिकार है, उनका शब्दचयन तथा वाक्य विन्यास भी असाधारण है, उनके श्लोकों से संगीत की ध्वनि निकलती है, और वे भावों को नेत्रों के सामने मूर्त रूप में उपस्थित कर देते हैं। भवभूति ने अनेक स्थलों पर अमूर्त भावों को उपमान के रूप में उपस्थित किया है। कई स्थलों पर दो पात्र मिलकर एक ही वाक्य अथवा श्लोक को एक दूसरे के प्रति बोलते हैं, जैसा कि छठे अंक के १६, १८, १९वें श्लोकों को लव तथा चन्द्रकेतु दोनों ही एक साथ एक दूसरे के प्रति बोलते हैं, जो कि अस्वाभाविक सा लगता है। कभी—कभी एक ही श्लोक के भिन्न—भिन्न अंशों को भिन्न—भिन्न पात्र बोलते हैं। यथा सातवें अंक के गर्भनाटक में चौथे श्लोक ('सोढशिवरं.....') के पूर्वार्द्ध को पृथिवी तथा उत्तरार्द्ध को भागीरथी बोलती है। चौथे अंक के २४वें श्लोक के पूर्वार्द्ध को जनक, तृतीय चरणा को लव, और चतुर्थ चरण को अरुन्धती बोलती है।

भवभूति कथनानुसार एक करुण रस ही भिन्न—भिन्न रूप धारण करके इस नाटक में सर्वत्र अभिव्यक्त हो रहा है ('एको रसः करुणा एवं' इत्या०, ३—४७)। भवभूति के पात्र स्वयं रोते हैं और दर्शकों को भी रूला देते हैं। वे सभी शील तथा सौजन्य की प्रतिमूर्ति हैं।

इस नाटक की रचना में भवभूति ने नाट्यकला संबंधी अपने ज्ञान का पर्याप्त परिचय देया है प्रथम अंक में सीतानिर्वासन से पहले ही कवि ने राम की माताओं, अरुन्धती, तथा वसिष्ठ ने ऋष्यशृङ्ग के आश्रम में भेजकर राम के प्रजानुरंजक रूप कर्तव्यपालन के मार्ग को निर्विघ्न बना दिया है।

इस अंक में चित्र—वीथिका के दृश्यका सन्निवेश बहुत ही उपयुक्त हुआ है और भिन्न—भिन्न चित्रों के दर्शन के समय राम, सीता, अथवा लक्ष्मण द्वारा जो उक्तियाँ कही गई हैं नका सम्बन्ध सप्तम अंक तक की घटनाओं से है, चित्रदर्शन के इस महत्व के कारण इस अंक

इस आलोचना के साथ इसी भूमिका में दिया हुआ 'उत्तररामचरित सामान्य परिचय' तथा 'भवभूति की विशेषताएँ' भी देखिये।

का नाम ही कवि ने 'चित्रदर्शन' रक्खा है। दूसरे अंक में आत्रेयी तथा वासन्ती का संवाद तथा जनस्थान के पूर्व परिचित प्रदेशों का वर्णन है। यह राम के वनवास कालीन वृत्तों का दुःखद स्मरण कराने के कारण बड़ा ही हृदयस्पर्शी है। तीसरा अंक नाटकीय कलाकी दृष्टि से इस नाटक का सबसे श्रेष्ठ अंक है। यह अंक कवि की भव्य भावुकता तथा कमनीय कल्पना की सुन्दर कृति है और करुणारस की अभिव्यक्ति में अद्वितीय है। चौथे अंक में वाल्मीकि के तपोवन में वसिष्ठादि वृद्ध अतिथियों के आने का उल्लेख है। तपोवन में इनकी उपस्थिति से दर्शकों के हृदय में इनके प्रति श्रद्धा तथा भक्ति का भाव उदित होता है। उनके विलाप दर्शकों को भी रूलाते हैं। इस अंक के अन्तिम भाग में ब्रह्मचारी बालकों के खेल से तथा लव की इन वृद्धजनों के साथ बातचीत से दर्शकों में कुछ सुख तथा कौतूहल का भाव पैदा होता है। पाँचवें अंक में चन्द्रकेतु और लव के वीरसंवाद के कारण पूर्व अंकों से जनित शोक से मन को कुछ निर्वृति प्राप्त होती है। इस अंक में वीररस की अभिव्यक्ति में भी कवि उतना ही सफल हुआ है जितना कि वह इससे पूर्व के अंकों में करुणा रस की अभिव्यक्ति में। छठा अंक दर्शकों को सातवें अंक में होने वाले राम तथा सीता के सुखद समागम के लिए तैयार करता है। सातवें अंक में गर्भनाटकी योजना द्वारा राम तथा सीता का समागम कराकर नाटक को सुखान्त बनाया है। गर्भनाटक की यह योजना भवभूति की कविप्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है।

यह नाटक इतना उत्कृष्ट होते हुए भी दोषों से मुक्त नहीं है। सबसे बड़ा दोष तो इसका घटनाप्रधान न होकर वर्णनप्रधान है। घटनाएँ जिस मन्द गति से आगे बढ़ती हैं उसको देखकर मैकडॉनल जैसे विद्वान ने उत्तररामचरित को 'नाटकीयकाव्य' की उपाधि दे डाली है। भवभूति ने इस नाटक में छोटे-छोटे प्रसंगों का भी लम्बा तथा विस्तृत वर्णन दिया है, जिससे इसकी कथावस्तु के विकास में शिथिलता आ गई है। द्वितीय तथा तृतीय अंक में यद्यपि हमें मनोभावों का सुन्दर विश्लेषण तथा घोर अन्तर्द्वन्द्व मिलता है और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये अंक बड़े महत्व के हैं, परन्तु इन दोनों अंकों ने कथावस्तु के विकास में बहुत ही कम सहायता की है, और नाटक के फल (राम तथा सीता के पुनः समागम) के प्रति इनका उपयोग नगण्य है। पाँचवें अंक के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। उसमें युद्ध क्षेत्र का दृश्य, तथा लव और चन्द्रकेतु का वार्तालाप कथावस्तु के विकास में कुछ भी सहायता नहीं करता। एक आलोचक ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि इस नाटक में से दूसरा तथा पाँचवाँ अंक निकाल भी दें, तो कथावस्तु के विकास और नाटक के सौन्दर्य में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ेगा। वस्तुतः भवभूति ने घटनाओं के संकलन तथा उनके समुचित संनिवेश में और कथावस्तु के क्रमिक विकास में कुशलता का परिचय नहीं दिया। शैलीसम्बन्धी दोष भी है—

(१) भवभूति प्रायः कठोर ध्वनिवाले तथा अप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग करते हैं और उनकी रचना लम्बे समासों वाली तथा प्रसादगुण से रहित है।^१

१. गोवर्धनाचार्य ने आर्यापत्तशती के प्रसिद्ध श्लोक—'भवभूतेः सम्बन्धात् भूधर-भूरेव भारती भाति। एकत्कृतकारूप्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा।' में भवभूति की परुष रचना की पर्वभूमि (भूधरभूः से उपमा दी है। (इस श्लोक का अर्थ प्रशंसापरक भी किया जाता है।)

(२) उन्होंने शब्दों, वाक्यों तथा श्लोकों तक को अनेक बार दोहराया है, उत्तररामचरित में 'जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमंगलम्' श्लोकांश दो बार तथा 'ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय इत्या०' पूरा श्लोक दो बार प्रयुक्त हुआ है, इसके अतिरिक्त अनेक वाक्यों की भी पुनरावृत्ति हुई है। काणे महोदय के कथनानुसार उत्तररामचरित में सत्रह श्लोक ऐसे हैं जो महावीर चरित अथवा मालतीमाधव में मिलते हैं।

भवभूति ने काल तथा स्थान की अन्विति का ध्यान नहीं रक्खा है, पहले तथा दूसरे अंक के बीच में तो बारह वर्ष का समय बीतता है, और शेष अंकों की घटनाएं एक दो दिन के समय में एक-दूसरे के अनन्तर शीघ्रता से समाप्त हो जाती हैं। तो भी अन्विति का यह अभाव अखरता नहीं, क्योंकि भवभूति दर्शकों के कौतूहल को बनाए रखते हैं, फिर संस्कृत नाटकों में काल तथा स्थान की अन्विति का अभाव इतना अवांछनीय भी नहीं है, जितना यूनानी नाटकों में, क्योंकि विष्कम्भकों द्वारा बीती हुई घटनाओं का आगे होने वाली घटनाओं से सम्बन्ध बना रहता है। यदि दर्शकों का कौतूहल कम न होने पावे तो इस अन्विति के अभाव से कोई विशेष हानि नहीं होती।

उत्तररामचरित में नाटक-रचना सम्बन्धी भी कुछ दोष हैं। प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है—'एषोऽहं कार्यवशादायोध्यकस्तदानींतनश्च संवृतः' और रंगभूमिका त्याग किये बिना ही—(समन्तादवलोक्य) भो भो:किमिति विश्रान्तचारणानि चत्वरस्थानानि' ऐसा प्रश्न करता है, और उसके पश्चात् नट प्रवेश करता है और तब आयोध्यक बने हुए सूत्रधार तथा नट के बीच में संलाप चलता है, जिसमें 'भाव' तथा 'मारिष' सम्बोधनों का भी प्रयोग किया जाता है। अब आयोध्यक द्वारा पूछे हुए 'किमिति विश्रान्तचारणानि चत्वरस्थानानि' प्रश्न से नाटक के अभिनय का आरम्भ हो जाता है, अतः इससे पहले 'एषोऽस्मि-संवृतः' के पश्चात्—(निष्क्रान्तः) इस रंगनिर्देश से प्रस्तावना समाप्त हो जानी चाहिये थी और फिर '(ततः प्रविशति कश्चिदायोध्यकः) आयोध्यकः—(समन्तादवलोक्य) भो भो:.....; इत्यादि रूप में नाटक के अभिनयका आरम्भ होना चाहिये था।

इसी प्रकार के दोष इस नाटक में अनेक स्थानों पर देखे जा सकते हैं। रंगनिर्देश में भी अनेक स्थानों पर भूल हुई है, जिनका टीकाकारों ने संकेत किया है। चतुर्थ अंक में—अरुन्धती—(अपवार्य—संहर्षम्) इदं नाम..... में अपवार्य के स्थान पर 'स्वगतम्' होना चाहिये था, इत्यादि।

नायक के चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में भी भवभूति ने ५वें अंक के ३५वें श्लोक ('वृद्धास्ते न विचारणीयचरिता:.....' में लव से राम के चरित्रपर आक्षेप कराकर नायक के चरित्र का अपकर्ष किया है, जो नाट्यकला की दृष्टि से अनुचित है)।^१

१. तुल० माल० मा०—सूत्रधारः—बाढम्। एषोऽस्मि कामन्दकी संवृतः। नटः—अहमप्यवलोकितः। (इति परिक्रम्य निष्क्रान्तः)। (प्रस्तावना)। (ततः परिवृत्य रक्तपट्टिकनेपथ्ये कामन्दक्यवलोकिते प्रविशतः)।

२. दे० ५/३५ की टिप्पणी।

उत्तररामचरित के ये दोष उसके उत्कृष्ट गुणों के सामने छिप से जाते हैं, अतएव यह नाटक करुणारस का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। साहित्यशास्त्र के नियमों के अनुसार नाटक का प्रधानरस शृंगार अथवा वीर होना चाहिए परन्तु भवभूति ने इस नियम के विपरीत करुणारस—प्रधान नाटक बनाकर नाटकक्षेत्र में एक अपूर्व क्रान्ति की है। भवभूति के अनुसार तो इस नाटक में करुणारस निमित्तभेद से शृंगार वीर, अद्भुत आदि रसों के रूप में अभिव्यक्त हुआ है ('एको रसः करुण एवं निमित्तभेदाद् भिन्नः पृथक्पृथग्विश्रयते विवर्तान्।' ३/४७), यही इसका अद्भुत संविधान है ('अहो संविधानक्रम' ३/४६)।

३.५ उत्तररामचरितम् में रस निरूपण —

३.५.१. उत्तररामचरितम् का प्रधान रस करुण है —

विद्वानों में इस विषय में बहुत अधिक मतभेद है कि उत्तररामचरित में अंगी या प्रधान रस कौन सा है? कोई करुण—विप्रलम्भ नामक शृंगाररस मानते हैं कोई और करुण रस। दोनों पक्षों में बहुत कुछ कहा जा सकता है। शास्त्रीय दृष्टि से कुछ अंश तक यह सिद्ध भी किया जा सकता है कि उत्तररामचरित में करुण—विप्रलम्भ नामक शृंगाररस है। कुछ शास्त्रज्ञ विद्वानों ने निःसंकोच अपना यह मत व्यक्त भी किया है, परन्तु वस्तुस्थिति सर्वथा इसके विपरीत है। उत्तररामचरित में 'करुण—विप्रलम्भ नामक शृंगाररस मानना भवभूति की आत्मा के साथ विद्रोह है।' भवभूति स्पष्टरूप से इसे करुणारस—प्रधान नाटक मानते हैं। इतना ही नहीं वह करुण रस को अन्य रसों का आधारभूत रस मानते हैं। उनके मतानुसार करुणारस ही रूपान्तरित होकर शृंगार वीर आदि रसों के रूप में परिणत होता है। सर्वत्र रसों की आत्मा के रूप में करुण रस है। करुण रस प्रकृति है और शृंगाररस आदि विकृति हैं।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्

भिन्नः पृथक् पृथग्विश्रयते विवर्तान्।

आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा—

नम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समस्तम्॥

(उत्तरराम० ३—४७)

इस श्लोक में विवर्त शब्द परिणाम या विकार के अर्थ में है, अतएव तृतीय चरण में विकारान् पद दिया गया है। इस श्लोक के प्रारम्भ में 'तमसा— अहो संविधानकम्' का भाव वीरराघव ने स्पष्ट किया है कि भवभूति तमसा के द्वारा अपना अभीष्ट प्रकट करना चाहते हैं कि करुणारस का यह अपूर्व नाटक आश्चर्य की बात है। (अपूर्वरूपकनिर्माणं विस्मयनीयम् इत्यर्थः, विरराघव)। टीकाकार वीरराघव और घनश्याम ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि भवभूति का अभिमत है कि करुण ही एक रस है, वह प्रकृतिरूप है, अन्य रस उसकी विकृति हैं। करुणारस ही अन्य रसों के रूप में परिणत होता है।

इदमत्र कवेर्मतम्— यद्यपि शृङ्गार एक एव रस इति शृङ्गारप्रकाशकारादिमतम्, तथापि प्राचुर्याद् रागिविरागिसाधारण्यात् करुण एक एव रसः। अन्ये तु तद्विकृतयः। (वीरराघव ३-४७ पर)

एवं च रसान्तरापेक्षया प्रकृतित्वमेव करुणस्य। (वीरराघव ३-४७ पर)

शृङ्गारादिरसोपाधिभिर्भिन्न इव दृश्यमानोऽपि करुणो रसः अन्यतस्तदभिन्नः सन् एक एवेति भावः। (घनश्याम ३-४७ पर)

इससे अधिक स्पष्ट शब्दों में भवभूति ने इस नाटक में करुण रस माना है। राम के अन्दर करुण रस का प्रवाह। राम अन्दर ही अन्दर पुटपाक के तुल्य घुटते रहते हैं और उनकी व्यथा बहुत घनी है।

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः। (उत्तर० ३-१)

तृतीय अंक का प्रारम्भ इस 'करुणो रसः' से होता है और इस अंक की समाप्ति 'एको रसः करुण एव०' से होती है। इन दोनों श्लोकों से कवि ने अत्यन्त स्पष्ट निर्देश किया है कि इस नाटक में करुण रस है। यदि उसे विप्रलम्भ-शृङ्गार या करुण-विप्रलम्भ-शृङ्गार अभिमत होता तो वह ऐसा लिखने में नाममात्र भी संकोच न करता। अतएव महावीरचरित में उसने स्पष्ट निर्देश किया है कि इस नाटक में वीर रस है। 'यत्र वीरः स्थितो रसः' (महा० १-३)।

इससे भी अधिक स्पष्ट शब्दों में भवभूति ने स्वीकार किया है कि इस नाटक में करुण रस है और निर्वहण संधि में उसने अद्भुत रस का आश्रय लिया है। इस प्रकार करुण-रस-प्रधान और गौण अद्भुतरस से युक्त यह नाटक है।

यदिदमस्माभिरार्षेण चक्षुषा समुद्वीक्ष्य पावनं वचनमृतं करुणाद्भुतरसं च किचिदुपनिबद्धम्, तत्र काव्यगौरवादववातव्यमिति। (उत्तरराम० अंक ७ वाक्य सं० ७)

सूत्राधार महर्षि वाल्मीकि का कथन प्रस्तुत करता है कि यह नाटक आर्ष दृष्टि से देखकर अमृतमय वचनों से युक्त तथा करुण और अद्भुत रसों से युक्त बनाया गया है। यदि भवभूति को करुण-विप्रलम्भ या विप्रलम्भ शृङ्गार अभीष्ट होता तो वह यह वाक्य नाटक में आने ही न देता।

३.५.२ उत्तररामचरितम् में करुण रस मानने के कारण —

१. भवभूति को उत्तररामचरित में करुण रस ही मान्य है। इसका उसने स्वयं स्पष्ट एवं असन्दिग्ध शब्दों में उल्लेख किया है।
२. सामान्यतया करुण-विप्रलम्भ-शृङ्गार अविवाहित प्रेमी-प्रेमिका के प्रणय-सम्बन्ध से संबद्ध है। उसके आलम्बन विवाहित दम्पती नहीं हैं, यह विश्वनाथ की व्याख्या से स्पष्ट है।
३. विप्रलम्भ शृङ्गार के लिए स्थायिभाव रति का निर्बाध रहना अनिवार्य है। उत्तररामचरित में

सीता के परित्याग से पूर्व रति निर्बाध है, परन्तु सीता—परित्याग के साथ रति समाप्त हो जाती है। इष्ट—व्यक्ति के वियोग या नाश से तथा अनिष्ट की प्राप्ति से करुणरस होता है। इसका स्थायिभाव शोक है और शोचनीय व्यक्ति इसका आलम्बन होता है। सीता—परित्याग सीतानाश के समकक्ष है। शोचनीय सीता इसका आलम्बन है। सीता—विषयक शोक स्थायिभाव है। उत्तररामचरित के आद्यान्त वर्णनों से स्थायिभाव शोक की पुष्टि होती है और करुणरस का परिपाक होता है।

४. रति दाम्पत्य—संबन्ध और दाम्पत्य—सुख का मूल है। सीता—परित्याग से पूर्व यह रति थी। रावण—द्वारा सीता—हरण काल में विप्रलम्ब शृंगार मान्य है, परन्तु उत्तररामचरित में सीता परित्यक्ता, निर्वासिता, अपमानिता और विधुरा है। परित्याग के साथ ही वह अपना सौभाग्य खो चुकी है। वह और उसके बच्चे अनाथ हो चुके हैं। राम के द्वारा सीता—परित्याग के साथ सीता और राम का दाम्पत्य—मूलक रति समाप्त हो चुकी है। अतः संभोग या विप्रलम्ब दोनों शृंगार समाप्त हो चुके हैं। रति शोक में परिणत हो चुकी है।

इस सन्दर्भ में ये वचन ध्यान देने योग्य हैं — (१) तमसा— सीता करुणा की मूर्ति है या शरीरधारिणी विरह—व्यथा है। (करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी, विरहव्यथेव वनमेति जानकी, उत्तरराम० ३-४)। (२) सीता— राम ने मेरा अकारण परित्याग किया है (निष्कारणपरित्यागिनोऽप्येतस्य० उत्तरराम० ३वा० ४८)। (३) सीता— राजा मुझे देखकर तथा मेरे सामीप्य से क्रुद्ध होंगे। (मां प्रेक्ष्यानभ्यनुज्ञातेन संनिधानेन राजाधिकं कोपिष्यति, उत्तरराम० ३ वा० ४२)। (४) सीता— मेरा हृदय अकारण परित्याग के कारण अत्यन्त दुःखित है (निष्कारणपरित्यागशल्यितः, उत्तरराम० ३ वा० ५१)। (५) सीता— मुझ अभागिनी के लिए दिखाई पड़ता हुआ भी यह संसार अब नहीं के बराबर है (मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमेवैतन्नास्ति, उत्तरराम० ३ वा० ९३)। (६) सीता— मैं अकेली और असहाय हूँ (एकाकिनीमशरणाम्, उत्तरराम० ७ वा० ९)। (७) सीता— मेरे ये दोनों बालक अनाथ हैं। गंगा— सनाथ हैं कि अनाथ? सीता— मैं अभागिनी सनाथ कहाँ हूँ? (सीता— किमेताभ्याम् अनाथभ्याम्। सीता— कीदृशं मे अभाग्यायाः सनाथत्वम्, उत्तरराम० ७ वा० ४९ से ५२)। (८) सीता— मैं लोगों के इस अपमान को सहन नहीं कर सकती। (न सहिष्ये ईदृशं जीवलोकस्य परिभवमनुभवितुम्, उत्तरराम० ७ वा० ७३)।

५. सीता—परित्याग के साथ ही राम के लिए भी सीता नहीं है। राम का भी दाम्पत्यसंबन्ध समाप्त हो गया है। राम विधुर हैं। सीता—परित्याग के कारण वे दोषी और पापी हैं। वे सीता के स्पर्श के भी अधिकारी नहीं हैं। संभोग या विप्रलम्ब—मूलक रति तो बहुत दूर रही। राम के लिए सीता मर चुकी है। जीवित सीता भी उनके लिए मृततुल्य है, क्योंकि अब वे उसके पति नहीं हैं। परित्याग के साथ ही उसका संबन्ध—विच्छेद हो गया है। राम अब असहाय हैं। उनके लिए सारा संसार सूना हो गया है।

इस सन्दर्भ में ये वचन अवधेय हैं— (१) राम— मैं अस्पृश्य और पापी हूँ। मुझे अदि

आकार नहीं है कि सीता को अपने स्पर्श से दूषित करूं। मैं असहाय हूँ। संसार मेरे लिए सूना हो गया है। मेरा जीवन व्यर्थ है। (तत्किमस्पृश्यः पातकी देवीं दूषयामि, शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्, अशरणोऽस्मि, उत्तरराम० १ वा० १४१ ख)। (२) राम— मैं विधुर और अभागा हूँ। (विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा..... मन्दभाग्यः, उत्तरराम० ३-३८)। (३) राम— मैं असहाय हो रहा हूँ। (अशरणैरद्यास्माभिः.....रुद्धते, उत्तरराम० ३-३२)। (४) राम— मैंने स्वयं सीता का परित्याग किया है, अतः मुझे रोने का अधिकार नहीं है। (स्वयं कृता त्यागं० उत्तरराम० ३-३)। (५) राम— सीता को अवश्य ही हिंसक पशु खा गये हैं। (ऋव्याद्विरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता, उत्तरराम० ३-२८)। (६) राम— मेरे लिए संसार सूना हो गया है। (शून्यं मन्ये जगद्०, उत्तरराम० ३-३८)।

६. राम का रोदन वियोगी प्रेमी का रोदन नहीं है अपितु विधुर पति का रोदन है। वह नाशितप्रियतमः है, उसने स्वयं अपनी पत्नी का विनाश किया है। सदा के लिए सीता का निर्वासन का पूर्ण उत्तरदायित्व उस पर है। प्रजानुरंजन के लिए उसने सीता की बलि चढ़ाई है। जनता ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी कि सीता के पूर्ण परित्याग के अतिरिक्त राम के पास और कोई चारा नहीं था। अब राम के हृदय में शोक है, न कि रति।

द्रष्टव्य प्रसंग— (१) राम— मेरा हृदय फट रहा है। (स्फुटति हृदयम्, उत्तरराम० ३-३८)। (२) राम— मेरा हृदय शोकाधिक्य से फट रहा है। (दलति हृदयं शोकोद्वेगात्, उत्तरराम० ३-३१)। (३) राम— सीता को मेरे हुए १२ वर्ष हो चुके हैं। (देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः, उत्तरराम० ३-३३)। (४) राम— मैंने अपनी प्रियतमा सीता का स्वयं विनाश किया है। (एकः संप्रति नाशितप्रियतमः०, उत्तरराम० २-२८)। (५) भागीरथी— लोगों ने लोकापवाद के द्वारा राम को बाध्य किया कि वह सीता का परित्याग करे। (घोरं लोके विततमयशो.....किं स वत्सः करोतु, उत्तरराम० ७-६)।

७. यदि सीता—परित्याग सावधि होता और पुनर्मिलन की आशा होती तो विप्रलंभ शृंगार माना जा सकता है। परन्तु यह परित्याग निरवधि है और इसमें पुनर्मिलन की कोई आशा नहीं है। (कटुस्तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं तु प्रविलयः, उत्तरराम० ३-४४)। लोगों के कहने से आकर राम ने सीता का स्थायी परित्याग किया गया है, न कि वह प्रवास में गई है। राम उसको मृत समझते थे। सीता के हाथ स्पर्श से उन्हें सीता के अस्तित्व का कुछ विश्वास है। सीता भी राम के दाम्पत्य—संबन्ध के लिए अस्तित्व—हीन है। सीता—परित्यागा—जन्य शोक ही स्थायी भाव है, अतः करुणरस मान्य है।

८. परित्यक्ता सीता के प्रति सभी की सहानुभूति है। समस्त शिष्टवर्ग सीता—परित्यागार्थ राम को दोषी मानता है। राम भी अपने आपको दोषी मानते हैं। इस बीभत्स कृत्य के कारण राम अपने आपको चाण्डाल कहते हैं। (अपूर्वकर्मचण्डालम्, उत्तरराम० १ वा० १४१ ख)। यदि राम में आत्मिक बल न होता तो संभव था कि वे कभी के मर चुके

होते या उन्होंने आत्महत्या कर ली होती। (न च रामो न जीवति, उत्तरराम० ३-३३, न मुञ्चति चेतनाम्, उत्तरराम० ३-३१)। सीता-परित्याग के कारण जनक, अरुन्धती, कौसल्या आदि सभी दुःखित हैं। करुणरस में अन्य व्यक्ति भी उस दुःख से दुःखित होते हैं, विप्रलम्भ शृंगार में केवल पति या पत्नी ही दुःखित होते हैं। सीता के परित्याग से न केवल उसके संबन्धी ही शोकाकुल हैं, अपितु गंगा, पृथ्वी तथा ऋषि-मुनि आदि सभी शोकाकुल हैं।

९. भवभूति ने नाटक को सुखान्त बनाने के लिए अन्त में अद्भुत रस का आश्रय लिया है। वाल्मीकि के प्रताप से तथा गंगा और पृथ्वी के सहयोग से गंगाप्रवाह से निकलती हुई सीता का दर्शन कराया जाता है। सारी प्रजा एवं देव, ऋषि आदि सीता को निदोष बताते हैं। अरुन्धती के प्रस्ताव को सभी स्वीकार करते हैं। देवता, ऋषि आदि के आदेशानुसार राम सीता को पुनः स्वीकार करते हैं। भवभूति इस प्रकार अद्भुत रस का आश्रय लेकर करुण को भी सुखान्त बनाता है।

३.६ अभ्यास प्रश्न —

क. अतिलघूत्तरीय —

१. उत्तररामचरितम् की कथा वस्तु का आधार क्या है?
२. महाराज दशरथ की पुत्री कौन थी एवं उसके पति का क्या नाम था?
३. वशिष्ठ ने सीता को क्या आशीर्वाद दिया था?
४. वशिष्ठ ने राम को क्या आदेश दिया था?
५. लव-कुश का पालन-पोषण किसने किया था?
६. छाया अंक किसे कहा जाता है?
७. गर्भनाटक किस अंक में है?
८. सीता के पवित्रता की घोषणा किसने किया?

ख. रिक्त-स्थानों की पूर्ति—

१. चित्रवीथि में सीता कीतक के चित्र हैं।
२. सीता विषयक लोकापवाद की सूचना.....राम को देता है।
३. उत्तररामचरितम् का गर्भांक अंक..... है।
४. अश्वमेध यज्ञ में पत्नी के स्थान परकी स्वर्ण मूर्ति स्थापित की है।
५. राम.....ढूढ़ते हुए दण्डकारण्य में जाते हैं।

विस्तृत प्रश्न —

१. उत्तररामचरितम् की मूल कथा में परिवर्तन को स्पष्ट कीजिए।
२. उत्तररामचरितम् में वर्णित समाज एवं संस्कृति पर प्रकाश डालिए।
३. उत्तररामचरितम् में छाया अंक की व्याख्या कीजिए।
४. “उत्तररामचरितम् में प्रधान रस करुण है” इस कथन की व्याख्या कीजिए।

इकाई — ४ चरित्र—चित्रण

इकाई की रूपरेखा

४.० उद्देश्य

४.१ नाटकीय पात्रों का विवरण

४.२ प्रमुख पात्रों का चरित्र—चित्रण

४.२.१ राम

४.२.१.१ मातृ—पितृवत्सल

४.२.१.२ प्रजावत्सल

४.२.१.३ आदर्शराजा

४.२.१.४ आदर्शपति

४.२.१.५ आदर्शपिता

४.२.१.६ त्याग व तपस्या की प्रतिमूर्ति

४.२.१.७ विनयशील

४.२.१.८ क्षमाशील व उदार

४.२.२ सीता

४.२.२.१ पतिपरायणा

४.२.२.२ उदारहृदया

४.२.२.३ कोमलांगी एवं कष्टसहिष्णु

४.२.२.४ अनिन्द्यसुन्दरी

४.२.२.५ व्यवहार कुशला

४.२.३ चन्द्रकेतु

४.२.४ लव

४.२.५ कुश

४.२.६ जनक

४.२.७ लक्ष्मण

४.२.८ कौसल्या

४.२.९ वासन्ती

४.३ अभ्यास प्रश्न

४.० उद्देश्य —

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकेंगे कि—

- उत्तररामचरित के कुल पुरुष एवं स्त्री पात्रों की संख्या कितनी है?
- नाटकीय दृष्टि से पात्रों की भूमिका क्या है?
- प्रमुख पात्रों का चारित्रिक वैशिष्ट्य क्या है?
- नाटक के नायक राम किस कोटि के नायक हैं?
- सीता एक आदर्श भारतीय नारी हैं।
- भवभूति राम के माध्यम से समाज को क्या संदेश देना चाहते हैं।
- भारतीय आर्ष (ऋषि) परम्परा क्या है?

४.१ नाटकीय पात्र का कुल विवरण —

क्रम—संख्या व नाम	परिचय
१. सूत्रधार	नाटक का प्रारम्भकर्ता व रंगमंच का अध्यक्ष।
२. नट	सूत्रधार का सहयोगी।
३. राम (रामभद्र)	अयोध्या के सूर्यवंशी राजा व नाटक के नायक।
४. लक्ष्मण	राम के छोटे भाई, सुमित्रा के पुत्र।
५. जनक	मिथिला के राजा और राम के श्वशुर।
६. अष्टावक्र	विकृत अंगों वाले एक महामुनि।
७. वाल्मीकि	रामायण के रचयिता, कुश—लव के संरक्षक।
८. सौधातकि	वाल्मीकि का शिष्य।
९. दण्डायन	वाल्मीकि का शिष्य।
१०. कुश	राम और सीता का पुत्र, लव का बड़ा भाई।
११. लव	राम और सीता का पुत्र, कुश का छोटा भाई।
१२. चन्द्रकेतु	लक्ष्मण का पुत्र, अश्वमेधीय अश्व का संचालक।
१३. सुमन्त्र	चन्द्रकेतु का वृद्ध सारथि।
१४. विद्याधर	एक देव विशेष।
१५. कंचुकी	अन्तःपुर में रहने वाला वृद्ध ब्राह्मण।
१६. दुर्मुख	राम का गुप्तचर
१७. शम्बूक	शूद्र तपस्वी।

१८. बटवः वाल्मीकि के आश्रम के मुनि कुमार।
 १९. पुरुष अश्वमेधीय अश्व का रक्षक सैनिक।

स्त्री-पात्र

२०. सीता राजा जनक पुत्री व राम की पत्नी।
 २१. वासन्ती (वनदेवता) वनदेवता सीता की सखी।
 २२. आत्रेयी (तापसी) एक तपस्विनी ब्रह्मचारिणी।
 २३. तमसा एक नदी की अधिष्ठात्री देवी।
 २४. मुरला एक नदी की अधिष्ठात्री देवी।
 २५. भागीरथी गंगा की अधिष्ठात्री देवी।
 २६. पृथिवी पृथिवी की अधिष्ठात्री देवी, सीता की माता।
 २७. कौसल्या राम की माता।
 २८. अरुन्धती महर्षि वसिष्ठ की पत्नी।
 २९. विद्याधरी विद्याधर की पत्नी।
 ३०. प्रतिहारी अन्तःपुर की द्वार पालिका।

अन्य पात्र (जिनका केवल उल्लेख मात्र है)

१. वसिष्ठ एक महर्षि तथा रघुकुल के कुलगुरु।
 २. शत्रुघ्न लक्ष्मण के छोटे भाई, सुमित्रा के पुत्र।
 ३. ऋष्यशृङ्ग शान्ता के पति, राम के जीजा।
 ४. लवण एक राक्षस, मथुरा का राजा।
 ५. शान्ता राम की बहन।
 ६. गोदावरी गोदावरी नदी की अधिष्ठात्री देवी।

५.२ चरित्र-चित्रण —

भवभूति एक सिद्धहस्त नाटककार है। यही कारण है कि उनके पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त उत्कृष्ट रूप से किया गया है। उनके पात्र सजीव एवं सक्रिय हैं। उनमें स्फूर्ति एवं भाव-प्रकाशन की क्षमता है। उनमें उत्साह और संघर्ष करने की शक्ति है। वे भावहीन एवं शून्य दय नहीं हैं। उनमें मानव को मानव बनाने वाले सभी गुण हैं, जैसे— परिस्थिति के अनुसार अपने आपको बनाना, कठिन परिस्थितियों में कठोरता और सामान्य परिस्थितियों में कोमलता, दया, प्रेम, हानुभूति, सहनशीलता आदि। वे मानव पात्रों को मानवीय स्तर पर ही रखते हैं और देवों को दैवी स्तर पर। मानव को अमानवीय स्तर पर ले जाना उन्हें प्रिय नहीं है। राम और सीता में भी मानवीय बलताएँ हैं। राम कर्तव्यनिष्ठ हैं। कर्तव्यनिष्ठा के कारण सीता का परित्याग करते हैं, परन्तु एक आदर्श पति के रूप में उन्हें सीता वियोग से उतना ही दुःख है जितना एक सामान्य व्यक्ति को होता है। वे बार-बार रोते हैं, विलाप करते हैं और मूर्च्छित हो जाते हैं। उनका रोदन मनुष्यमात्र को नहीं अपितु पर्वतों और वज्र का भी हृदय द्रवित कर देता है। परित्यक्ता सीता में भी राम के प्रति सहानुभूति और सद्भाव है। वह राम के जीवन की रक्षा के लिए सदा उद्यत है। जनक राजर्षि

होते हुए भी सीता वियोग से खिन्न और विषण्ण है। अरुन्धती सत्वगुण सम्पन्न श्रद्धेय तपस्विनी है। जनक के क्रुद्ध होने पर वह उन्हे शान्त करती है। लव और कुश के चरित्र में बालोचित चंचलता है। उनमें गुरुजनों के प्रति आदरभाव है। वे जनक आदि को प्रणाम करते हैं। उनमें जन्मसिद्ध वीरता और शस्त्रास्त्र निपुणता है। वे बड़ी से बड़ी सेना को हराने की क्षमता रखते हैं। कुश जब आवेश में आता है, तो लव उसे समझा कर शान्त कर देता है।

भवभूति के प्रत्येक पात्र अपने आप में पूर्ण है। प्रत्येक पात्र किसी सांस्कृतिक आदर्श को प्रस्तुत करते हैं। यथा— राम कर्तव्यनिष्ठा को, सीता आदर्श स्त्रीत्व को, लव क्षत्रियोचित वीरत्व को, वाल्मीकि शान्ति और सद्भावना को। भवभूति के पात्रों में गंभीरता और आत्मसंयम है। उनमें तुच्छता, हीनता और उच्छृंखलता नहीं है। उनमें चुलबुलापन की भी कमी है। भवभूति के नाटकों में विदूषक का पूर्णतया अभाव है। उनके नाटकों में अधिक गंभीरता है, अतः विदूषक का समावेश अधिक उपयुक्त नहीं है। भवभूति के नाटकों में पात्रों का वैविध्य उतना नहीं मिलता, है, जितना भास के नाटकों में मिलता है।

भवभूति के पात्रों में मौलिकता है, गंभीरता है, कर्तव्यनिष्ठा है और आदर्शवादिता है, परन्तु उनमें मृच्छकटिक के पात्रों के तुल्य सजीवता और चुलबुलापन नहीं है। भवभूति के पात्र एक प्रकार के हैं। सभी गंभीर शान्त और आदर्शवादी हैं। उनमें वैविध्य नहीं है। भवभूति अपनी गंभीर, प्रकृति के अनुरूप ही पात्रों का चरित्र—चित्रण प्रस्तुत करते हैं। यहाँ कतिपय प्रमुख पात्रों का चरित्र—चित्रण प्रस्तुत किया जा रहा है —

४.२.१ राम—

उत्तररामचरित के नायक राम पौराणिक मान्यताओं के अनुसार भगवान् विष्णु के अवतार माने जाते हैं। अपने महनीय गुणों तथा मर्यादित व्यवहारों के कारण वे 'मर्यादापुरुषोत्तम' कहे जाते हैं। उनमें शक्ति, शील, सौन्दर्य, धैर्य, विवेक, त्याग, धर्म तथा प्रजावत्सलता की भावना कूट-कूट कर भरी है। इनकी कुछ प्रमुख चरित्रगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं —

४.२.१.१ मातृ—पितृ—वत्सल —

राम में माता—पिता के प्रति सम्मान की भावना है। वे भारत के लिए ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के मानवों के लिए शाश्वतरूप में एक आदर्श हैं। वे अपने व्यवहार से कभी भी माता—पिता ही क्या, किसी भी व्यक्ति को क्लेश नहीं पहुँचाना चाहते हैं।

४.२.१.२ प्रजा—वत्सल —

राज्याभिषेक के बाद प्रजानुरंजन राम का एक महान् व्रत है। उसके लिए वे सीता तक का परित्याग करने को तैयार हैं—

“स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।

चरित्र-चित्रण

आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥”

॥ उत्तररामचरित १/१२॥

राम का राज्य एक आदर्शराज्य है। इस आदर्श में कोई दाग (कलंक) न लगने पावे, इस निमित्त वे लोकमत की उपेक्षा नहीं करना चाहते हैं यहाँ तक कि सीता को परम सती जानते हुए भी प्रजा के भावों को ध्यान में रखते हुए सीता को निर्वासित करके अपने आपको शोक सागर में निमग्न कर लेते हैं।

राम ब्राह्मण—बालक की मृत्यु होने पर उसकी प्राणरक्षा हेतु शम्बूक—वध के लिए प्रस्थान करते हैं। यद्यपि उस तपस्वी मुनि (शम्बूक) पर कृपाण—प्रहार करने में राम असह्य वेदना का अनुभव करते हैं, परन्तु यह कहते हुए कृपाण से प्रहार करते हैं कि ‘ऐ मेरे दाहिने हाथ! तू राम का अंग है। आसनप्रसवा सीता के निर्वासन में भी तुझे दया नहीं आयी,^१ तो भला इस कार्य में दया कैसे आ सकती है?’ एक ही बार में शम्बूक का सिर धड़ से अलग हो जाता है और ब्राह्मण—बालक जीवित हो उठता है।

४.२.१.३ आदर्श राजा —

राम के चरित्र की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनका राजनैतिक आदर्श है, जो मानव—जाति के इतिहास में अपूर्व है। राजा चूँकि प्रजा का आदर्श होता है, अतः “यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयम् नाचरणीयम्” इस न्याय पर ध्यान देते हुए, अपने नयनों की अमृत—शलाका, जीवन की सर्वस्वभूत अपनी प्राणप्रिया सीता को उत्पत्तिपरिपूता होने पर भी, अग्निपरीक्षा लेने के बाद लोकापावाद के कारण वन में निर्वासित करके प्रजानुरंजन की वेदी पर अपने समस्त सुखों की बलि चढ़ा देते हैं। वस्तुतः इस सीता—निर्वासन में राम के जीवन की अद्भुत महत्ता तथा अलौकिकता का दर्शन होता है। कर्तव्यपालन का इससे उच्च आदर्श भला क्या हो सकता है? यह सच है कि राम एक आदर्श पति थे, किन्तु साथ—साथ वे एक आदर्श राजा भी थे। दो आदर्शों में संघर्ष होने पर बड़े आदर्श के लिए छोटे आदर्श का त्याग करना ही पड़ता है।

४.२.१.४ आदर्श पति —

एकपत्नी व्रत की साक्षात् प्रतिमूर्ति राम एक आदर्श पति है। सीता—निर्वासन के पश्चात् भ्रश्वमेध यज्ञ में पत्नी की अनिवार्यता को देखते हुए सीता की हिरण्मयी प्रतिमा पत्नी के रूप

रे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य,

जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।

रामस्य गात्रमसि निर्भरगर्भखिन्न,

सीताविवासनपटो करुणा कुतस्ते॥

॥ उत्तररामचरितम् २/१०॥

में स्वीकार करते हैं। एकपत्नीव्रत उदाहरण अत्यन्त दुर्लभ है। लोकानुरञ्जन हेतु सीता निवासन रूप अपने नृशंसकर्म के लिए राम अपने आपको बराबर धिक्कारते रहते हैं। दुःख का असह्य वेग उनके हृदय को विदीर्ण करता रहता है —

दलित हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते,

वहति विकलः कामो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।

ज्वलयति तनून्तर्दाहः करोति चभस्मसात्

प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्॥ ॥ उत्तरराम० ३/३१ ॥

शम्बूक वध प्रकरण में पञ्चवटी के पूर्व परिचित प्रदेशों को देखकर सीता का स्मरण होने से बार—बार राम का मूर्च्छित होना तथा करुणापूर्ण विलाप करना सीता के प्रति अगाध प्रेम को प्रदर्शित करता है।

४.२.१.५ आदर्श पिता —

युद्ध क्षेत्र में कुश तथा लव को देखकर राम का हृदय वात्सल्य से ओत—प्रोत हो जाता है। वे लव से कहते हैं कि बेटा तुम बार—बार मेरा गाढ़ा आलिङ्गन करो —

“अनेकप्रारम परिश्रयं परिष्वसस्यमाम्” उत्तरराम०

सुविकसित तथा पूर्णता को प्राप्त कमल के भीतरी दल के समान स्थूल, चिकना, कोमल तथा चन्द्रमा और चन्दन के समान शीतल तुम्हारा स्पर्श मुझे अत्यन्त आह्लादित कर रहा है —

परिणतकठोरगर्भच्छदपीनममृण सुकुमारः।

नन्दयति चन्द्र चन्दन निष्यन्द जडस्तव स्पर्शः॥ (उत्तरराम० ६/१३)

कुश के प्रणाम करने पर उसको आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि जल से पूरित मेघ के समान नेत्रों को आनन्द देनेवाला गात्र है जिसका, ऐसे तुम्हारे को मैं आलिङ्गन उत्सुक हूँ —

अमृताश्मातजीमूत स्निग्धसंहननस्य ते।

परिष्वङ्गाय वात्सल्यादयमुत्कण्ठते जनः॥ (उत्तरराम० ६-२१)

यह सब राम के आदर्श पितृत्व को सूचित करता है।

४.२.१.६ त्याग व तपस्या की प्रतिमूर्ति —

राम का सम्पूर्ण जीवन त्याग व तपस्या का पर्याय है। बाल्यावस्था को गुरुकुल में ब्रह्मचारी के रूप में बिताकर, कुमारवस्था को ऋषि विश्वामित्र के साथ संन्यासी के रूप में जंगल में बिताकर, युवावस्था को १४ वर्षों तक कष्टसाध्य जंगल में बिताकर, सीताहरणादिजन्य क्लेशों

गे सहकर राज्यसिंहासन पर आरुढ़ होते हैं। जब वैवाहिक एवं राज्य सुख भोगने का समय आता , तो प्रजानुरंजन—हेतु आसन्नप्रसवा सीता को निर्वासित करके अपने सम्पूर्ण जीवन को गोक—सागर में उत्सर्जित कर देते हैं। विश्व के इतिहास में त्याग व तपस्या का ऐसा उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलता। यही कारण है कि राम को आज 'मर्यादापुरुषोत्तम' की संज्ञा दी जाती है।

२.१.७ विनयशील —

विनयशीलता राम का नैसर्गिक गुण है। उनके चरित्र में अभिमान के लिए लेशमात्र का गान नहीं है। चित्रवीथिका में चित्रदर्शन के समय परशुराम—विषयक अपनी वीरता की प्रशंसा को सुनना भी उचित नहीं समझते, अतः लक्ष्मण को बीच में ही रोकते हैं। राम की इस विनयशीलता की प्रशंसा करती हुई सीता स्वयं कहती है—

“सुष्ठु शोभसे आर्युपुत्र एतेन विनयमाहात्म्येन।”

२.१.८ क्षमाशील तथा उदार —

‘क्षमाशीलता’ तथा ‘उदारता’ राम के जीवन के अभिन्न अंग हैं। चित्रदर्शन प्रसंग में लक्ष्मण द्वारा कैकेयी तथा मन्थरा के चित्र की ओर निर्देश किये जाने पर, वे तुरन्त ही उस वृत्तान्त की ओर से सीता का ध्यान हटाकर दूसरे चित्र की ओर ले जाते हैं। इस पर लक्ष्मण की स्वगत कृत अत्यन्त प्रासंगिक व भावपूर्ण है—

“अये! मध्यमाम्बावृत्तान्तरितमार्येण।”

२.२ सीता —

इस नाटक की नायिका भगवती ‘सीता’ का चरित्र भारतीय नारियों के लिए प्रेरणादायक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करता है। इनका नाममात्र लेने से हृदय में पवित्रभाव प्रस्फुटित होते हैं। सावित्री, दमयन्ती आदि सती नारियों के साथ सीता का नाम भी अग्रगण्य है। महाकवि भूति ने इनके चरित्र को अपनी प्रौढ़ कल्पना का रंग देकर और अधिक उज्ज्वल बनाने का र्थक प्रयास किया है। इनकी कुछ प्रमुख चरित्रगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं —

२.२.१ पतिपरायणा —

महाकवि भवभूति की ‘सीता’ परम सती तथा पतिपरायणा आदर्श नारी हैं। पति ही उनका स्व है। पति के बिना वे अपने जीवन को अपूर्ण ही नहीं, अपितु निरर्थक समझती हैं। राम के गल की कल्पना मात्र से वे सिहर उठती हैं। महाकवि कालिदास की उक्ति “भर्तृविप्रकृतापि णतया मा प्रतीपं गमः॥” सही अर्थों में भवभूति के उत्तररामचरितम् में सीता के परिप्रेक्ष्य में तार्थ्य हुई है। आजन्मपरिपूता सीता की अग्निपरीक्षा लेने के बाद भी लोकापवाद के भय से राम को निर्वासित कर देते हैं, परन्तु वह सीता, राम के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं बोलती है,

अपितु राम से अगाध प्रेम करती है जो पंचवटी में राम—सीता—सम्बन्धी वार्तालाप से ज्ञात होता है। जबकि इस उक्ति के स्रष्टा कालिदास की शकुन्तला, दुष्यन्त द्वारा परित्याग किये जाने पर सभा—भवन (यज्ञशाला) में ही दुष्यन्त की काफी कठोर शब्दों में निन्दा करती है। इसके विपरीत भवभूति की सीता, पंचवटी में जब वासन्ती के मुख से राम के प्रति कहे गये (सीतानिर्वासन—सम्बन्ध) कठोर शब्दों को सुनती है, तो वासन्ती को ही दोषी ठहराती हुई कहती है —

“त्वमेव सखी वासन्ति दारुणा कठोरा च यैवयार्वपुत्रं प्रदीप्तं प्रदीपयसि।”

यह वाक्य कहकर राम के प्रति सीता अपने आदर व स्नेह भाव को प्रकट करती हैं।

४.२.२.२ उदारहृदया —

भवभूति की सीता उदारता की प्रतिमूर्ति हैं। एक आदर्श भारतीय नारी होने के कारण उनके जीवन का प्रत्येक क्रिया—कलाप उदारता से संपृक्त दिखायी देता है। अग्निपरीक्षा के बाद भी लोकापवाद भीरु राम के द्वारा निर्वासित किये जाने पर सीता के स्वभाव में लेशमात्र भी अनुदारता का दर्शन नहीं होता है, अपितु वासन्ती के कठोर शब्दों में राम की निन्दा को सुनकर सीता को बहुत कष्ट होता है। राम के प्रति सीता के मुख से निकलते हुए प्रत्येक शब्द उसके उदारहृदय का प्रतिबिम्ब जान पड़ते हैं।

४.२.२.३ कोमलांगी एवं कष्टसहिष्णु —

सीता बाल्यावस्था से ही राजक्रीय वैभवों से पालित—पोषित होकर बड़ी हुई है। उनकी अंगकान्ति के आगे कोमलता स्वयं लज्जित हो जाती है, लेकिन इसके बाद भी वह समय के सापेक्ष शीतोष्णादि द्वन्द्वों को सहने की शक्ति रखती है। आसन्नप्रसवा होने के बाद भी निर्वासन के दौरान विविध कष्टों को सहन करती हैं। जो एक क्षण के लिए भी राम से अलग नहीं होना चाहती थी, वही अपने सम्पूर्ण जीवन को राम के विरह में व्यतीत करते हुए विरहदावानल में अपने को समर्पित कर देती हैं। कष्ट को सहन करने की ऐसी विलक्षण क्षमता हरिश्चन्द्र की तारा के बाद यदि किसी में देखने को मिलता है, तो वह सीता में ही। सातवें अंक में स्वयं पृथ्वी, भागीरथी से कहती हैं, “इसका राक्षसों के बीच में रहना बहुत समय तक सहन किया गया, परन्तु निर्वासनरूप दूसरा त्याग तो अत्यन्त ही दुःसह है।”

४.२.२.४ अनिन्द्य सुन्दरी —

सीता एक अनिन्द्य सुन्दरी नायिका है। इसके स्वरूप में कहीं से किसी भी प्रकार के दोष की अभिव्यक्ति नहीं होती है। निर्वासनजन्य विरहरूपी अग्नि में सन्तप्त होने के बाद भी उनका रूप दूषित नहीं होता, अपितु सुवर्णवत् और भास्वर स्वरूप में सामने आता है। इसके द्वारा आचरित त्याग, तपस्या, सद्भाव व उदारता उनके स्वरूप में एक नया प्रकाश भर देते हैं, जो सप्तम अंक में राम के साथ सुखमय समागम होने पर राम के जीवन में भी एक नये तेज का संचार करते

२.२.५ व्यवहार कुशल —

भगवती सीता अन्यान्य सद्गुणों के साथ-साथ एक अत्यन्त व्यवहारकुशल महिला के रूप में भवभूति के समक्ष उपस्थित होती हैं। कहाँ, कब, कैसे और किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। इसको सीताजी खूब अच्छी तरह जानती हैं। इनके उसी लौकिक व्यवहारों के ज्ञान की प्रस्तुति प्रतिप्रेम, सौहार्द, वात्सल्य, लज्जा, गुरुसेवा, अतिथिसेवा, विनयशीलता यदि चारित्रिक विशेषताओं के रूप में होती है। इसका सबसे अच्छा नमूना उत्तररामचरितम् के तीसरे तथा सप्तम अंक में देखा जा सकता है।

सीता का चरित्र आदर्श भारतीय नारी तथा भारतीय संस्कृति का प्रबल पोषक है। इनको रूप में चित्रित करके महाकवि भवभूति ने निश्चित ही भारतीय समाज तथा संस्कृति का बहुत सा उपकार किया है। वाल्मीकि रामायण में सीता के पृथ्वी में विलीन होने से जहाँ दुःखमय स्थान होता नजर आता है, वहीं भवभूति के उत्तररामचरितम् में त्याग व तपस्या की मूर्ति देवी सीता राम के साथ सुखद समागम होने से नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुकूल प्रस्तुत नाटक का समय अवसान होता है।

२.३ चन्द्रकेतु —

लक्ष्मणपुत्र राजकुमार चन्द्रकेतु अश्वमेधीय अश्व के रक्षकों का नायक है। वह वीर है उसका व्यवहार दूसरों के प्रति शिष्टतापूर्ण है। दूसरों के गुणों के प्रति उसके हृदय में आदर, एक हाने पर भी वह क्षात्रतेज से पूर्ण और युद्ध विद्या में प्रवीण है। इसीलिए राम ने उसे अश्वमेध अश्व की रक्षा का भार सौंपा है। लव को अकेले ही अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ युद्ध करते कर चन्द्रकेतु उस शिशु की प्रशंसा करता हुआ नहीं अघाता। वह वीर लव के लिये आदर र्शित करने को अपने रथ से उतर पड़ता है। वह स्वयं रथ में बैठकर पैदल लव से युद्ध करने लिये तैयार नहीं है, और लव से एक दूसरे रथ पर बैठने के लिये आग्रह करता है।

वर्ति महाभागोऽप्यन्यं रथमलङ्करोतु।

अपने ज्येष्ठ तात राम के प्रति चन्द्रकेतु के हृदय में अत्यन्त ही पूज्यभाव है। लव के से उनके आचरण के विषय में आक्षेप सुनकर वह लव से युद्ध के लिए संनद्ध हो जाता है। के युद्धक्षेत्र में आने पर जब युद्ध बन्द हो जाता है तब चन्द्रकेतु बड़ी उदारता के साथ लव परिचय राम से कराता है और उसे अपना प्रिय वयस्य कहकर सम्बोधन करता है। जिससे के हृदय की उदारता तथा निर्मत्सरता स्पष्ट सूचित होती है।

२.४ लव —

लव सीता का पुत्र है। वह युगल पुत्र है और कुश का छोटा भाई है। माँ का दूध छोड़ने

के बाद उसका पालन—पोषण तथा क्षत्रियोचित संस्कार महर्षि वाल्मीकि ने किया है। उसने धनुर्विद्या का असाधारण अभ्यास किया है। जृम्भकास्त्र उसे जन्मसिद्ध है। वह अत्यन्त धीर—वीर तथा पराक्रमी है। उसमें स्वाभिमान उच्चकोटि का है। वह अपने समान किसी को वीर नहीं समझता है। राम की वीरता को भी वह अपने से घटिया समझता है और उन्हे वृद्ध समझकर उनकी निन्दा से बचता है। ताड़कवध, बालिवध और खर—युद्ध में उनकी कमजोरी का संकेत करता है। (वृद्धास्ते० उ० रा० च० ५/३४) क्षत्रियवंशनाशक पशुराम को वह एक साधारण वीर ब्राह्मण समझता है। वह अश्वमेध के अश्व को पकड़ लेता है और वीरता से पूरी सेना के साथ युद्ध करता है। चन्द्रकेतु से उसका घनघोर युद्ध होता है जिसमें आग्नेय, वायव्य, वारुण और जृम्भक अस्त्रों का प्रयोग होता है। राम के आगमन से युद्ध रुक जाता है। लव सरल तथा निर्दोष शिशु है, और जनक को इस शिशु में सीता तथा राम की आकृति के समान वही कान्ति, वही वाणी, वही विनय तथा वहीं अनुभाव दृष्टिगोचर होते हैं। राम लव और कुश को उनकी आकृति से अपना पुत्र होने का अनुमान करते हैं। लव अपने आपको वाल्मीकि का पुत्र बताता है और कहता है कि पिता—माता का नाम अज्ञात है। वह विनीत है, राम को सादर प्रणाम करता है, मर्यादापालक है। उसने वेद, शास्त्र, धनुर्वेद, रामायण आदि भलीभांति पढ़ा है। वह अपनी बालसुलभ चंचलता, वीरता, विनम्रता, सहजता आदि गुणों से सब के मन को हर लेता है।

४.२.५ कुश —

यह लव का ज्येष्ठ भ्राता है। महर्षि वाल्मीकि मुनि ने स्वयं उसकी शिक्षा—दीक्षा तथा संस्कार किए हैं। वह भी लव के तुल्य महापराक्रमी है। वाल्मीकि मुनि ने स्वयं रचित संदर्भ के साथ भरतमुनि के पास भेजा है। वहाँ से लौटते ही वह दत्तेन्द्राभयदक्षिणैः इत्यादि कथन में अपनी वीरता की घोषणा करता है। जृम्भक अस्त्र उसको भी जन्मसिद्ध है। वह लव और चन्द्रकेतु के युद्ध को सुनकर इतना उत्तेजित हो जाता है कि संसार से राजा शब्द का नाम ही मिटा देना चाहता है। (अद्यास्तमेतु० उत्तरराम० ६/१६) राम उसे वीर रस की प्रतिमूर्ति कहते हैं। उसमें अनिवर्चनीय पौरुषातिरेक का दर्शन करते हैं। राम अपने भाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं —

दृष्टि सृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा,

धीरोद्धता नमयतीव धतिर्धरित्रीम्।

कौमारकेऽपिगिरिवदगुरुतां दधानो

वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव॥

उत्तरराम० ६/१९

लव के कहने पर वह शान्त हो जाता है और राम को प्रणाम करता है। उसमें शौर्य, वीरता, पराक्रम और विनय आदि गुणों का समन्वय है।

४.२.६ जनक —

जनक मिथिला के महाराज और सीता के पिता हैं। उन्होंने महर्षि याज्ञवल्क्य से बह्विद्या सीखी है। (उत्तरराम० ४.९)। वे महाराज दशरथ के घनिष्ठ मित्र थे। वे दशरथ और कौशल्या के

रेलू झगड़ों को भी निपटारा करते थे। (उत्तरराम० ४/१४)।

दशरथ उन्हें सदा पूजनीय समझते थे। वे राम के द्वारा सीता के परित्याग के कारण देन—रात दुःखी रहते हैं। उन्होंने अनेक व्रत और उपवास किये हैं। वे सीता को अग्नि से भी अधिक पवित्र मानते थे। वे राम और प्रजा को शाप देना चाहते हैं परन्तु अरुन्धती की प्रार्थना पर वे अपने क्रोध को रोक लेते हैं द्रष्टव्य है (उत्तरराम० ४.२४ व २५)। वे लव में सीता के सभी गुणों को देखते हैं और आकृष्ट हो जाते हैं। वे पवित्रता की मूर्ति हैं।

१.२.७ लक्ष्मण —

लक्ष्मण राम के छोटे भाई और उनके सेवक हैं। प्रथम अंक में वह राम और सीता के अनोदार्थ चित्रवीथि के चित्र दिखाते हैं। वे राम के यह पूछने पर कि ये चित्र कहां तक बने हैं? उन्होंने अग्निशुद्धि तक बताकर राम और सीता की मनोव्यथा को उद्बुद्ध किया है। वे राम की प्राचीन घनाओं का उल्लेख करते हैं। जब राम खिन्न होते हैं तब उन्हें धैर्य बंधाते हैं। राम के आदेशानुसार सीता को वन में छोड़ने जाते हैं। सप्तम अंक में वाल्मीकि के आश्रम में जब राम मूर्च्छित होते तो वे ही राम को धैर्य बंधाते हैं। लक्ष्मण ही अन्त में निवेदन करते हैं कि सारा संसार निर्दोष निता है और प्रणाम करता है। लक्ष्मण एक आदर्श भाई हैं। वे वीर, पराक्रमी और विनम्रता आदि गुणों से विभूषित हैं।

१.२.८ कौसल्या —

कौसल्य राम की माता हैं। राम ने उनकी अनुपस्थिति में सीता का परित्याग किया है, तः ऋष्यशृङ्ग के यज्ञ से लौटने पर वे क्रुद्ध होकर अयोध्या न जाकर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम जाती हैं। वही पर उनकी राजर्षि जनक से भेंट होती है। वे जनक के सामने जाने में झिझकती सीता परित्याग की घटना से अत्यन्त दुःखित हैं। वे लव को देखकर उसे सीता का पुत्र होने अनुमान करती हैं। वे सीता के समान साध्वी पतिव्रता नारी हैं।

१.२.९ वासन्ती —

वासन्ती दण्डकारण्य की वनदेवता है और सीता तथा राम की पुरानी सखी है। वह दण्डक में राम से वार्तालाप करती है। सीता का विवरण पूछती है। सीता—परित्याग के समाचार से अत्यन्त दुःखी है। वह राम को कठोर उलाहना देती है कि तुम्हें यश प्रिय है, परन्तु मृगनयनी सीता नहीं है। उसका क्या हुआ? (अयि कठोर यशः उत्तरराम० ३.२७)।

वे राम को निरुत्तर कर देती हैं। वह वार्तालाप में अत्यन्त निपुण है। वह राम को दण्डकारण्य के विभिन्न दृश्यों को दिखाती हैं। वह दुःखित राम को धैर्य बंधाती है। वह ब्रह्मर—कुशल है। राम को विलम्ब न हो, अतः उन्हें लौटने को कहती है। वह सुन्दर, व्युत्पन्न ब्रह्मरकुशल और सहानुभूतिपूर्ण नारी है।

४.२.१० तमसा —

तमसा एक नदी है। वह अधिष्ठात्री देवी के रूप में रंगमंच पर आती है। अदृश्य सीता के साथ प्रारम्भ से अन्त तक रहती है। वही सीता से वार्तालाप करती है और उसका मनोविनोद करती है। वह सीता को करुण 'रस की मूर्ति' और 'शरीरधारी विरह' व्यथा कहती है।

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी,

विरहव्यथेव वनमेति जानकी।

उत्तरराम० ३/४

वह मूर्च्छित सीता को होश में लाती है। उसे मनोभावों का सूक्ष्मतम ज्ञान है। उसने राम दर्शन से उत्पन्न सीता के मनोभावों का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है।

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुष।

(उत्तरराम० ३.१३)

भवभूति ने अपना सैद्धान्तिक श्लोक (एको रसः करुण एव० उत्तरराम० ३/४) उसके मुख से ही कहलवाया है। वह सीता की हितैषिणी, वाक्पटु विदुषी स्त्री है।

४.२.११ अरुन्धती —

अरुन्धती महर्षि वसिष्ठ की पत्नी है। वह शील, सदाचार, तपस्या एवं गुणों की प्रतिमूर्ति है। छोटे से लेकर बड़े से बड़े उसका आदर करते हैं। वह चतुर्थ अंक में कौसल्या के साथ राजर्षि जनक के पास जाती है। जनक ने उसे उषा—देवी की उपमा दी है और जगद्वन्द्या कहा है।

यथा पूतमन्यो निधिरपि पवित्रेण महषः,

पतिस्ते पूर्वेषामपि खलु गुरुणां गुरुतमः।

उत्तरराम० ४/१०

वह सीता की पवित्रता और पूज्यता को घोषित करती है। (शिशुर्वा शिष्या उत्तरराम० ४/११) उनमें स्त्रीजनोचित सुकुमारता है। वह नारी के गौरव को समझती है। (पुरन्ध्रीणां० उत्तरराम० ४.१२) उसने ही कौसल्या आदि को संकेत किया है कि नाटक का अन्त सुखद होगा।

कल्याणोदकं भविष्यतीति (उत्तरराम० ४ वाक्य ५१)

वह आदर्श ब्रह्मवादिनी है।

४.२.१२ वाल्मीकि —

महर्षि वाल्मीकि आदि कवि एवं रामायण के रचयिता हैं। उन्होंने ही कुश और लव का दूध छोड़ने के बाद पालन पोषण किया है। उनमें पितृतुल्य हित—बुद्धि और मातृ—तुल्य स्नेह है। उन्होंने ही कुश—लव का यज्ञोपवीत संस्कार किया तथा उन्हें वेद, शास्त्र, धनुर्वेद, आदि की उच्चकोटि की शिक्षा दी। वे बहुश्रुत-बहु विद्यापारंगत एवं अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि हैं।

यत्त्रैचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ (उत्तरराम० २/५)

उनकी यह उक्ति आदर्श वाक्य बन गयी। उनके प्रताप से ही यह नाटक सुखान्त हो सका है। वे नाटक के अन्त में रंगमंच पर आते हैं और केवल तीन वाक्य बोलते हैं। राम नाटक के सुखान्त होने के लिए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। वे सिद्ध सन्त, ब्रह्मविद् परमतेजस्वी महर्षि हैं।

४.३ अभ्यास प्रश्न —

क. अतिलघूत्तरीय —

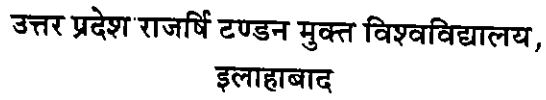
१. उत्तररामचरित में कुल पुरुष एवं स्त्री पात्रों की संख्या कितनी है?
२. राम किस कोटि के नायक हैं?
३. नाटक में सूत्रधार की भूमिका क्या होती है?
४. सीता की सखियों का नाम लिखो?
५. अरुन्धती किस की पत्नी हैं?
६. अष्टावक्र कौन हैं?
७. राम ने किसका वध किया?

ख. रिक्तस्थान —

१. अयोध्या केसूर्यवंशी राजा नाटक के नायक हैं।
२.एक गुप्तचर है।
३. सुमन्त्रका वृद्ध सारथी है।
४.रामायण के रचयिता एवं लव—कुश के संरक्षक हैं।
५. चन्द्रकेतु है.....।

विस्तृत —

१. राम का चरित्र—चित्रण कीजिए।
२. “सीता एक आदर्श भारतीय नारी है” इस कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
३. भवभूति के नाटकीय पात्रों की सृष्टि विषयक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।



खण्ड-दो

उत्तररामचरितम्

इकाई- 5

5

उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक की व्याख्या

परामर्श-समिति

प्रो० केदार नाथ सिंह यादव

कुलपति - अध्यक्ष

डॉ० हरीशचन्द्र जायसवाल

कार्यक्रम - संयोजक

डॉ० रत्नाकर शुक्ल

कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ-समिति

1- प्रो० श्री नारायण मिश्र

सेवानिवृत्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

2- प्रो० युगल किशोर मिश्र

संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

3- प्रो० हरे राम त्रिपाठी

म० गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

4- प्रो० श्रीकिशोर मिश्र

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सम्पादक

प्रो० के० पी० सिंह

वरिष्ठ परामर्शदाता (संस्कृत)

लेखक

डॉ० शिव शंकर सिंह यादव

रीडर (संस्कृत)

श्रीमती इन्दिरा गाँधी रा० महाविद्यालय

लालगंज, मिरजापुर

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ. ए. के. सिंह,
कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, जुलाई 2014
मुद्रक : नितिन प्रिन्टर्स, 1 पुराना कटरा, इलाहाबाद।

परिचय-कार्यक्रम

इस पाठ्यक्रम में पाँच खण्ड हैं।

प्रथम खण्ड में चार इकाइयाँ हैं। इनमें क्रमशः नाटक, भवभूति, उत्तररामचरितम् की संक्षिप्त कथा तथा पात्रों के चरित्र का निरूपण किया गया है।

द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत पाँचवीं इकाई है, जिसमें उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक की विस्तार व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

तृतीय खण्ड के अन्तर्गत छठीं इकाई है। जिसमें उत्तररामचरितम् के द्वितीय अंक की व्याख्या विस्तारपूर्वक दी गई है।

चतुर्थ खण्ड के अन्तर्गत सातवीं तथा आठवीं इकाइयाँ हैं, जिनमें क्रमशः उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक की विस्तृत व्याख्या तथा पाठ्यक्रम में निर्धारित सभी तीनों अंकों के सुभाषित वचनों की प्रसङ्ग व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

पञ्चम खण्ड के अन्तर्गत कुल चार इकाइयाँ (9-12) हैं, जिनमें क्रमशः छन्द का सामान्य परिचय, प्रमुख छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण, अलङ्कार का सामान्य परिचय तथा प्रमुख अलङ्कारों के लक्षण, उदाहरण और उनमें पारस्परिक भेद विस्तार के साथ वर्णित हैं।

इकाई – 5 उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

५.० उद्देश्य

५.१ उत्तररामचरित के प्रथम अंक की व्याख्या

५.२ अभ्यास प्रश्न

५.० उद्देश्य –

- प्रस्तुत इकाई में उत्तररामचरित के प्रथम अंक की व्याख्या की जा रही है।
- व्याख्या के क्रम में श्लोकों का अन्वय, शब्दार्थ, अनुवाद, व्याकरण तथा टिप्पणी दी जायेगी।
- इस इकाई को पढ़ने के बाद प्रथम अंक में वर्णित कथावस्तु से अवगत होंगे।
- भवभूति की काव्यगत विशेषताओं से अवगत होंगे।
- व्याख्येय श्लोकों की सन्दर्भ सहित व्याख्या को पढ़कर आप काव्यांशों को विश्लेषित कर सकेंगे।

५.१ उत्तररामचरित के प्रथम अंक की व्याख्या –

{चित्रदर्शनम्}

इदं 'कविभ्यः पूर्वभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे।

वन्देमहि च तां वाचममृतामात्मनः कलाम्॥१॥

अन्वयः— पूर्वभ्यः कविभ्यः इदं नमोवाकं प्रशास्महे; आत्मनः कलां ताम् मृतां वाचं वन्देमहि च।

शब्दार्थ :- पूर्वभ्यः = प्राचीन। कविभ्यः = कवियों के लिए। इदम् = स। नमोवाकं = नमस्कार वचन को। प्रशास्महे = हम निर्देश करते हैं (कथन करते हैं)। आत्मनः = परमात्मा की। कलाम् = कला, अंश। ताम् = उस (प्रसिद्ध)। मृताम् = नित्य। वाचम् = वाणी (वाग्देवता) को। वन्देमहि = हम प्रणाम करें।

अनुवाद :- {वाल्मीकि, व्यास आदि} प्राचीन कवियों के लिए इस

गुरुभ्यः

विन्देम देवतां

वाणीम्

(मङ्गलाचरणरूप) 'नमस्कार' वचनका [हम] निर्देश (कथन) करते हैं; तथा परमात्माकी कला, उस (प्रसिद्ध) नित्य वाग्देवताको प्रणाम करते हैं।

व्याकरण :- कविभ्यः — यहाँ 'नमोवाकं' के एक देश 'नमः' के योग में चतुर्थी है ('नमः स्वस्ति०' पा० २।३।१६) नमोवाकं— 'नमोवाकः' का द्वि० ए० व०; 'नमः' इति शब्दस्य वाकः — उक्तिः (उच्चारण) नमोवाकः वाक् (पुं०)— √ वच् (परिभाषणे) २. प० (वाक्ते) + घञ् भावे। प्रशास्महे— 'आडः शासु इच्छायाम्' इस धातुपाठ के अनुसार यद्यपि 'शास्' धातु आङ्पूर्वक होने पर ही; इच्छार्थक तथा आत्मनेपदी होती है; परन्तु यह आङ्पूर्वकत्व प्रायिक है, अनिवार्य नहीं, अतः 'आशास्महे' के बदले 'प्रशास्महे' क्रियापद भी व्याकरण-सम्मत है {'आङ्पूर्वकत्वं प्रायिकं, तेन 'नमोवाकं प्रशास्महे' इति सिद्धम्'; सि० कौ०}। 'प्र-√ शास्' का अर्थ इच्छा करना के अतिरिक्त 'निर्देश करना', 'प्रार्थना करना', 'कर्म करना' आदि भी होता है। यह धातु √ शास् (अनुशिष्टौ) २. प० से सर्वथा भिन्न है। √ शास् द्विकर्मक है और उसका अर्थ शासन करना, उपदेश करना आदि होता है, जैसे 'माणवकं धर्मं शास्ति' इत्यादि। यदि ये दोनों धातुएँ एक ही होतीं, तो प्रशास्महे न होकर प्रशिष्महे रूप होता। वाच् (-क) (स्त्री)— √ वच् + क्विप्, दीर्घोऽसम्प्रसारणं च ('क्विब्वचिप्रच्छि—' वा०)।

टिप्पणी (Notes)

ग्रन्थ के आरम्भ में मङ्गलाचरण एक प्रकार का शिष्टाचार तथा ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति का कारण माना गया है। यह आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक होता है (दे०—'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्' दण्डी); नाटक के आरम्भ में वह नान्दीपाठात्मक भी होता है। 'इदं कविभ्यः' इत्यादि श्लोक इस नाटक के आरम्भ में किया हुआ नान्दीपाठात्मक मङ्गल ही है।

इदं:- 'इदं' पद 'नमोवाकं' का विशेषण है। यद्यपि 'इदं' पद नपुंसक है तथा 'वाकं' पद पुल्लिङ्ग है; और विशेषण तथा विशेष्य का लिंग समान होना चाहिए, तथापि 'इदं' को 'सामान्ये नपुंसकम्' मान लेने पर यह असंगति दूर हो जाती है। (तुल०—'शक्यमंजलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः' रामा०, तथा 'विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः' म० स्मृ० २।२०६)। वीरराघव ने 'इदं' को उद्देश्य और 'नमोवाकं' को विधेय मानकर इस असंगति को दूर करने का प्रयत्न किया है। कुछ टीकाकारों ने 'इदंकविभ्यः' ऐसा एक पद (तत्पुरुष समास) मानकर इसकी 'अस्याः (रामकथायाः) कविभ्यः' इस प्रकार व्याख्या की है।

नमोवाकं :- 'नमः' इति शब्दस्य 'वाकः' उक्तिः (भावे घञ्), 'प्रशास्महे' कर्म। 'इदं नामोवाकं प्रशास्महे' = हम इस नमोवचन को कहते हैं। 'इदं' तथा 'नमोवाकं' के बीच की लिंगविषयक असंगति को दूर करने के लिए 'नमोवाकं' क

इस प्रकार भी व्याख्या की जाती है—‘नमः’ इति शब्दस्य वाकः (वचन) यस्मिन् तद् नमोवाकं (बहुव्रीहि), ऐसा मान लेने पर यह पद ‘इदं’ (मंगलकर्म) का विशेषण हो जायगा और पूरे वाक्य का अर्थ इस प्रकार होगा—प्राचीन कवियों के लिए ‘नमः’ शब्द का उच्चारण है जिसमें, ऐसे इस मंगल को हम करते हैं (प्रशास्महे = कुर्महे)। ‘नमोवाकं’ को दो पद मानकर भी इसकी व्याख्या की गई है—उच्यते यत् तद् वाकं (कर्मणि घञ्); वाकं नमः = वाचिकं नमः। [जब घञ् प्रत्यय भाव में होता है तभी घञन्त शब्द पुलिङ्ग होता है, कर्म में घञ् प्रत्यय होने पर घञन्त शब्द का लिंग अपने विशेष्य के अनुसार ही होता है। तुल०—‘आसीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः’ रघु० २१४]।

पूर्वभ्यः कविभ्यः— वाल्मीकि, व्यास आदि प्राचीन कवियों के लिए। कुछ विद्वानों के मतानुसार ‘कविभ्यः’ शब्द केवल आदिकवि वाल्मीकि के लिए ही प्रयुक्त हुआ है और बहुवचन आदरार्थ है (दे० वीरराघव टीका)। घनश्याम ने ‘कविभ्यः’ से ‘गणपतये’ अर्थ लिया है, और इसकी पुष्टि में ‘गणपतिं हवामहे कविं कवीनाम्’ श्रुतिवाक्य उद्धृत किया है। परन्तु ‘गणपति’ अर्थ लेने पर पूर्वभ्यः विशेषण व्यर्थ हो जाता है।

आत्मनः— परमात्मा की [कला]। ‘आत्मन्’ शब्द जब अकेला प्रयुक्त होता है, तब इसका अर्थ प्रायः परमात्मा (ब्रह्म) होता है, और जब ब्रह्म तथा जीव में भेद बतलाना होता है, तब ‘आत्मन्’ शब्द के पूर्व क्रमशः ‘पर’ (जैसे परमात्मा), तथा ‘प्रत्यग्’ (जैसे प्रत्यगात्मा) शब्द जोड़ देते हैं।

कलाम्— कलामिव, अर्थात् जो (वाणी) परमात्मा की कला के समान है, जो ब्रह्म का एक रूप है। विष्णुपुराण (१।२।८४, में शब्द को विष्णु (परब्रह्म) की मूर्ति माना गया है। भवभूति ने स्वयं भी इस नाटक के द्वितीय अंक में ‘शब्दब्रह्म’ ऐसा प्रयोग किया है।

अमृताम् वाचम् — वागधिष्ठात्री देवता (सरस्वती) तो, देवता होने के कारण, नित्य मानी ही जाती है, ‘आत्मनः कला’ होने से उच्चारणात्मक वाणी को भी नित्य माना गया है, और मीमांसादर्शन के अनुसार शब्द नित्य है भी।

वन्देमहि च तां वाचम् — वीरराघव तथा घनश्याम दोनों टीकाकारों ने वन्देमहि च तां वाणीम् ऐसा पाठ माना है, परन्तु इसके स्थान पर ‘विन्देम देवतां वाचम्’ ऐसा पाठ भी प्रायः मिलता है। इस पाठ के होने पर पूरे श्लोक का अर्थ इस प्रकार होगा—‘पूर्वभ्यः कविभ्यः नमः’ इति वाकः उक्तिर्यस्मिन् कर्मणि तद्यथा तथा क्रिया विशेषणं} इदं वक्ष्यमाणं प्रशास्महे प्रार्थयामहे, यद् आत्मनः कलाम् अमृतां देवतां वाचं विन्देम लभेमहि (प्राचीन कवियों से नमस्कारवचनपूर्वक हम यह प्रार्थना करते हैं, कि परमात्मा की अंशभूत अमर दिव्यवाणी को हम प्राप्त करें।

विशेषः— नान्दी होने के कारण इस श्लोक द्वारा संक्षेप में काव्यार्थ की सूचना भी मिलती है। 'आत्मनः कलाम्' ये दो पद क्रमशः नाटक के नायक (राम) तथा नायिका (सीता) को सूचित करते हैं। 'कविभ्यः' इस पद से, कवियों में आदिकवि वाल्मीकि के प्राधान्य के समान, राम का प्राधान्य तथा लक्ष्मण—शत्रुघ्न का गौणभाव और लक्ष्मण का सीता—परित्याग के लिए भेजा जाना इत्यादि प्रथमांक का अर्थ ध्वनित होता है। 'अमृताम्' इस पद से गंगापतन से संभावित सीतामरण का प्रतिषेध, तथा अन्त में गंगा और पृथिवी द्वारा कराई हुई राम को सीता की पुनः प्राप्ति इत्यादि द्वितीय अंक से लेकर सप्तम अंक तक का काव्यार्थ ध्वनित होता है।

(नान्द्यन्ते)

3— सूत्रधारः— अलमतिविस्तरेण। अद्य खलु भगवतः 'कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। एवमत्रभवन्तो विदाङ्कुर्वन्तु—अस्ति खलु तत्रभवान् काश्यपः श्रीकण्ठपद— लांछनः' पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम 'जातूकर्णीपुत्रः।

शब्दार्थ :- नान्द्यन्ते = नान्दी (देखिये टिप्पणी) के अन्त में। सूत्रधारः = रंगशालाका व्यवस्थापक प्रधान नट। अलम् = बस {करें}। विस्तरेण = शब्द के फैलाव (वाग्बाहुल्य) से। भगवतः = ऐश्वर्यादि गुणसम्पन्न। कालप्रियानाथस्य = {कालप्रिया = अम्बिका, (पार्वती) का नाथ = स्वामी (शिव)} काल प्रियानाथनामक शिवलिंग की। यात्रायाम् = यात्रा, महोत्सव पर। आर्यमिश्रान् = पूज्य महानुभावों विज्ञापयामि = आवेदन करता हूँ। एवम् = इस प्रकार से। अत्रभवन्तः = पूजनीय आपलोग। विदाङ्कुर्वन्तु = जानें। खलु = (यहाँ वाक्यालंकार (expletive) में प्रयुक्त हुआ है)। तत्रभवान् = पूज्य। काश्यपः = कश्यपगोत्रोत्पन्न। श्रीकण्ठपदलांछनः = 'श्रीकण्ठ' इस उपाधि से युक्त। पदवाक्यप्रमाणज्ञः = व्याकरण, न्याय तथा मीमांसा का परिज्ञाता। भवभूतिर्नाम = भवभूति नाम से प्रसिद्ध प्रकाश्य (प्रसिद्धि) सूचक अव्यय है}। जातूकर्णीपुत्रः = जतूकर्णगोत्र में उत्पन्न स्त्री का पुत्र है।

अनुवाद :- (नान्दी के अन्त में—)

सूत्रधार— {नान्दीपाठके} अति बाहुल्य से कोई प्रयोजन नहीं। आद्य भगवान् कालप्रियानाथ के यात्रा महोत्सव पर {आप} पूज्य महानुभावों को मैं निवेदन करता हूँ, इस प्रकार आदरणीय आपलोग जानें कि—पूज्य कश्यपगोत्र में उत्पन्न, 'श्रीकण्ठ' इस उपाधि से युक्त, व्याकरण, न्याय तथा मीमांसा के परिज्ञात

१. प्रिय०,।

२. लांछनो भवभूतिर्नाम।

३. कविः, जतुकर्णीपुत्रः।

‘भवभूति’ इस नाम से प्रसिद्ध तथा जातूकर्णी के पुत्र { एक महाकवि } हैं।

व्याकरण :- नान्दी- √ नन्द (समृद्धौ) + घञ् + डीप्। सूत्रधार:- (सूत्रं धारयतीति), सूत्र- √ धृ + कर्मण्यण्, उपपदसमास। विस्तर:- वि- √ स्त (आस्तरणे) ९ प० + अप्; [विस्तर:-शब्द का फैलाव अर्थात् वाग्बाहुल्य। शब्द के अतिरिक्त अन्य पदार्थ के फैलाव को प्रकट करने के लिए ‘विस्तार’ शब्द प्रयुक्त होता है, जैसे पटस्य विस्तारः (परन्तु शब्दस्य विस्तरः); विस्तारः - वि- √ स्तख + घञ् (‘प्रथने वावशब्दे’ पा० ३।३।३३] विदाङ्कुर्वन्तु-विद् (ज्ञाने) २ प० लोट् (पा० ३।१।४१); अत्रभवान् सुप्सुपेतिसमासः; ‘इतरेभ्योऽपि दृश्यन्ते’ (पा० ५।३।१४) इस सूत्र के अनुसार ‘भवत्’ शब्द के योग में इदम् तथा तद् शब्द की सभी विभक्तियों में त्रल् प्रत्यय होता है; जैसे इमं भवन्तम्-अत्र-भवन्तम्; तं भवन्तम् - तत्रभवन्तम् इत्यादि। कश्यपः - कश्यपस्य गोत्रापत्यं पुमान्; कश्यप + विदादित्वात् अञ् (पा० ४।१।१०४)।

टिप्पणी (Notes)

नान्दी :- नाटक के आरम्भ होने से पूर्व रंगशाला के विघ्नों की शान्ति के निमित्त नट लोग वाद्य, गीत, स्तुतिपाठ आदि के रूप में जो मंगलकर्म करते हैं उसे ‘पूर्वरंग’ कहते हैं; पूर्वरंग का सबसे प्रधान अंग नान्दी है। नाटक के आरम्भ में सूत्रधार द्वारा की जानेवाली देव, द्विज इत्यादि की काव्यार्थसूचक स्तुति को ‘नान्दी’ कहते हैं। जैसा कि भरत ने लक्षण किया है “आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः। नान्दीति कथ्यते.....।।” आदि।

सूत्रधार:- (सूत्रं कथासूत्रं धारयति प्रवर्तयतीति सूत्रधारः) रंगशालाका व्यवस्थापक नटविशेष; अद्य खलु इत्यादि-सूत्रधार (स्थापक) द्वारा की हुई स्थापना का ‘प्ररोचना’ नामक अंग है; ‘यं ब्रह्माणम्’ इत्यादि श्लोक पर इस प्ररोचनाका अंत होता है (दे० भूमिका)।

कालप्रियानाथस्य:- कालः शिवः तस्य प्रिया पार्वती तस्याः नाथः। कुछ विद्वानों के मत में उज्जयिनी में प्रतिष्ठित महाकाल नामक शिवलिंग (जिसका वर्णन मेंघदूत में कालिदास ने किया है) कालप्रियानाथ है। अन्य विद्वानों के मत में भवभूति का जन्मस्थान विदर्भ देश के पद्मपुर नामक नगर में प्रतिष्ठित महादेव ही कालप्रियानाथ है। ‘कालप्रियानाथस्य’ यह पाठ भी प्रायः मिलता है, किन्तु दोनों का अर्थ एक ही है, क्योंकि ‘ङ् यापोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्’ (पा० ६।३।६३) इस सूत्र के अनुसार वैकल्पिक द्वस्व होता है।

यात्रायाम् :- यात्रा का यहाँ अर्थ है देवता की पूजा के निमित्त किया जाने वाला उत्सव। आजकल भी उड़ीसा प्रान्त के ‘पुरी’ नामक नगर में प्रतिवर्ष ‘जगन्नाथ यात्रा’ नामक उत्सव मनाया जाता है। भवभूति के तीनों नाटकों का

अभिनय कालप्रियानाथ के उत्सव पर किया गया ऐसा उनके वचन से प्रकट होता है। प्राचीन काल में नाटकों का अभिनय एक धार्मिक कृत्य माना जाता था, जो प्रायः किसी विशेष उत्सव अथवा पर्व के अवसर पर किया जाता था।

आर्यमिश्रान् :- 'मिश्र' शब्द पूजार्थक है ('स्यादुत्तरपदे मिश्रत्रिषु श्रेष्ठार्थवाचकः')। इस अर्थ में यह शब्द समास के अन्त में बहुवचन में प्रयुक्त होता है। अतिप्रसिद्ध विद्वानों के नाम के अंत में (एकवचन में) भी यह प्रायः जोड़ा जाता है; जैसे मण्डनमिश्रः, वाचस्पतिमिश्रः इत्यादि।

अत्रभवान् :- तत्रभवान्— ये दोनों शब्द 'पूज्य' अर्थ में प्रयुक्त होते हैं (पूज्ये तत्रभवानत्रभवांश्च भवानापि)। उपस्थित सज्जनों के लिए 'अत्रभवान्' तथा अनुपस्थित के लिए 'तत्रभवान्' शब्द प्रयुक्त होता है।

श्रीकण्ठपदलाञ्छन :- वीरराघव तथा घनश्याम दोनों टीकाकारों के अनुसार 'श्रीकण्ठ' यह कवि का पैतृक नाम था। डॉ० बिल्वावलिकर भी इसी मत का अनुमोदन करते हैं, परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार यह शब्द कवि की उपाधि था, नाम नहीं।

पदवाक्यप्रमाणज्ञः— 'पद' शब्द से अभिप्राय है सुप्तिङन्तपदविषयक व्याकरणशास्त्र, अनुमानवाक्य विषयक होने से न्याय (अर्थात् तर्कशास्त्र) को 'वाक्य' कहा है, तथा शब्दादि प्रमाणों की विवेचना करने के कारण मीमांसा दर्शन (पूर्व तथा उत्तर) 'प्रमाण' कहाता है। भवभूति ने अपने तीनों ही नाटकों में अपने लिए इस विशेषण का प्रयोग किया है।

भवभूतिर्नाम :- महावीरचरित तथा उत्तररामचरित दोनों नाटकों में यही पाठ है, इसका अर्थ है—'भवभूति' ऐसी प्रसिद्धिवाला ('नाम' प्रसिद्धिसूचक अव्यय है)। मालतीमाधव में 'भवभूतिनामा' ऐसा पाठ है, जिसका अर्थ है—'भवभूतिनामवाला' (भवभूतिरिति नाम यस्य); जिससे सिद्ध होता है कि कवि का पैतृक नाम 'भवभूति' ही था।

विशेष :- प्रस्तावना के आरम्भ में सूत्रधार को कवि के नाम, गोत्र आदि का कीर्तन करना चाहिए; {"रङ्गं प्रसाद्य मधुरैः श्लोकैः काव्यार्थसूचकैः। रूपकस्य कवेराख्यां गोत्राद्यपि स कीर्तयेत्।।" (सा०द०) तथा 'प्रसाद्य' रङ्ग विधिवत् कवेर्नाम च कीर्तयेत्" (नाट्य०)} इसी नियम के अनुसार यहाँ कवि के नामादि का कथन किया गया है।

2— यं 'ब्रह्माणामियं देवी 'वाग्वश्येवानुवर्तते।

उत्तरं रामचरितं 'तत्प्रणीतं 'प्रयोक्ष्यते।।२।।

१. ब्राह्मणम्।

२. वश्यैवान्ववर्तते।

३. यत्।

४. प्रयुज्यते।

अन्वयः— इयं देवी वाक् वश्या इव यं ब्रह्माणम् अनुवर्तते। तत्प्रणीतम् उत्तरं रामचरितं प्रयोक्ष्यते।

उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक
की व्याख्या

1 शब्दार्थ :- ब्रह्माणं = अध्यापनादि षट्कर्म में निरत। यं = जिस (भवभूति) को। इयं = यह (अर्थात् प्रसिद्ध)। वाग्देवी = भगवती वाणी अथवा वाग्मिणी सरस्वती। वश्या इव = वशीभूत [स्त्री] के समान। अनुवर्तते = अनुसरण करती है। तत्प्रणीतं = उस (भवभूति) के द्वारा रचा हुआ। उत्तरं रामचरितं = उत्तररामचरित (नाटक)। प्रयोक्ष्यते = अभिनय किया जायेगा।

अनुवाद :- अध्यापनादि षट्कर्म में निरत जिस [भवभूति] को यह (प्रसिद्ध) वाग्देवता अधीना—सी अनुसरण करती है, उसके द्वारा रचे हुए 'उत्तररामचरित' [नामक नाटक] का [हमारे द्वारा] अभिनय किया जायेगा।

टिप्पणी (Notes)

व्याकरण— देवी (स्त्री०)—देवस्य स्त्री देवी, अथवा दीव्यति प्रकाशयति प्रकाशते इति वा देवी, √ दिव् ४ प०, पचादित्वाद् अच्, डीप् (देवट्, टित्त्वाद् डीप्)। वश्या (वि०, स्त्री०) —वशं गता, वश + यत् (पा० ४।४।८६) + टाप्। (पुं०—वश्यः)। चरितं— √ चर् + क्त ('नपुंसके भावे क्तः' पा०) प्रणीतम् — प्र— √ नी + कर्मणि क्तः, 'उपसर्गादसमासेऽपिणोपदेशस्य' (पा० ८।४।१४) इति णत्वम्। प्रयोक्ष्यते—प्र— √ युज् ७ आ० + कर्मणि लृट् । लट् कर्तरि—प्रयुङ्क्ते, कर्मणि— प्रयुज्यते। यहाँ पर 'वर्तमानसामीप्य' में लृट् है।

टिप्पणी (Notes)

ब्रह्माणम् :- इस शब्द में श्लेष है, 'ब्रह्मा' का अर्थ है ब्राह्मण अथवा 'ब्रह्मा' नामक देवता ["वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म, ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः।" अ० को०]। 'ब्रह्माणं' शब्द के प्रयोग से इस श्लोक में उपमा अलंकार व्यंग्य है, जिस प्रकार वाग्देवी (सरस्वती) ब्रह्मा (प्रजापति) का अनुवर्तन करती है, उसी प्रकार वह भवभूति (अध्यापनादि षट्कर्म में निरत ब्राह्मण) का अनुवर्तन करती है। कहीं—कहीं 'ब्राह्मणं' पाठ भी मिलता है। 'ब्रह्माणं' (अथवा 'ब्राह्मणं') शब्द लाक्षणिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, मुख्यार्थ (विप्र) में नहीं, क्योंकि भवभूति को 'ब्राह्मण' वर्णवाला प्रख्यापित करने से कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होता; अतः यहाँ 'ब्रह्माणं' (अथवा 'ब्राह्मणं') शब्द का लाक्षणिक अर्थ है—अध्यापनादि षट्कर्म में निरत। "अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहञ्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ (म. स्मृ. १।४८)।

वश्येवः— वशंगता इव, कवि की इच्छा के अधीन—सी, अर्थात् कवि के मानों संकल्पमात्र से ही उसके लिए अवसरोचित शब्द तथा अर्थ को उपस्थित करती हुई। इस अर्थ में उत्प्रेक्षा अलंकार है। कुछ लोगों ने 'इव' शब्द को यहाँ उपमावाची माना है (अधीना भार्या के समान) (तुल०—'वश्यवाचः कवेर्वाक्यं सा च रामाश्रया कथा'—महावी० १।४)। वश्यैव पाठा० है, वीरराघवने अपनी टीका में स्त्री

पाठ को ग्रहण किया है, और इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—‘वश्या सत्येव विधि प्रतिषेधार्हा सत्येव’।

उत्तरं रामचरितम् :- ‘राम का उत्तरकालीन (अर्थात् राज्याभिषेक के बाद का) चरित’ ऐसा इसका अर्थ है; किन्तु अभेदोपचार से ‘उत्तररामचरित’ का अर्थ ‘उत्तररामचरितं नाम नाटकं’ ऐसा हो जाता है, जैसे ‘शारीरक’ का अर्थ है ‘शरीरी आत्मा’ किन्तु अभेदोपचार से ‘शारीरक’ का अर्थ वेदान्तसूत्रों पर लिखित शांकर भाष्य भी है (‘शारीरकं भाष्यमिति त्वभेदोपचारात्’ पा० ४।३।८७ पर सि. कौ.)। अथवा उत्तरं रामस्य चरितं लक्षणया तद्वर्णनं यस्मिन् ग्रन्थे तद् ‘उत्तररामचरितम्’ इस प्रकार लक्षणा करनी होगी। ‘महावीरचरित’ नाटक में कवि ने राज्याभिषेक से पूर्व का रामचरित वर्णन किया है। चरित तथा चरित्र ये शब्द कभी-कभी भिन्न-भिन्न अर्थों को सूचित करते हैं, ‘चरित’ से अभिप्राय है ‘जीवनवृत्त’ (Biography) तथा ‘चरित्र’ से अभिप्राय है ‘आचरण’ अथवा ‘शील’ (Character)।

प्रयोक्ष्यते :- प्रपूर्वक युज् धातु प्रायः आत्मनेपदी है और अभिनय करने के अर्थ में भी प्रयुक्त होती है, (तुल०—आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्—शाकु० १।२)। ‘प्रयोक्ष्यते’ में कर्मणि लृट् है, तथा वर्तमान सामीप्य (Near future) में लृट् प्रयुक्त हुआ है। ‘प्रयोक्ष्यते’ के स्थान में ‘प्रयुज्यते’ पाठ भी मिलता है। इसमें लट् लकार है, किन्तु अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता, क्योंकि वर्तमानसामीप्य (Near future) में लृट् तथा लट् दोनों का ही प्रयोग हो सकता है (‘वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा’ पा० ३।३।१३१)।

विशेष :- यह भारतीवृत्तिका ‘प्ररोचना’ नामक अंग है, यहाँ पर ज्ञातव्य है कि साहित्यदर्पणकार ने अर्थ के उपसंहार को दिखाना प्ररोचना माना है, किन्तु प्रस्तुत स्थल में दर्पणकार का लक्षण घटित नहीं होता प्रत्युत आचार्य भरत का—‘निवेदनं प्रयोज्यस्य निर्देशोदेशकालयोः कविकाव्यनटादीनां प्रशंसा तु प्ररोचना, अर्थात् जिसमें प्रयोज्य वस्तु का निवेदन, देशकाल का निर्देश और कविकाव्यादि की प्रशंसा हो वह प्ररोचना है’ यह लक्षण ठीक घटता है। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है, उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

३- सूत्रधारः—‘एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्य^१कस्तदानीन्तनश्च संवृतः। (समन्तादवलोक्य) भो भो यदि तावदत्रभवतः^२ पौलस्त्यकुल धूमकेतोर्महाराजरामस्यायमभिषेकसमयो रात्रिदिवम्, संहतानन्दनान्दीकस्तत्किमिदानीं^३ विश्रान्त चरणानि चत्वरस्थानानि।

१. एषोऽहम्।

२. कविवशाद्।

३. आयोध्यायकः।

४. तत्रभवतः।

५. असंहतनान्दीकः।

६. चरणानि, चारचरणानि।

शब्दार्थ :- कार्यवशाद् = अभिनयादि कार्य के अनुरोध से। आयोध्यकः = अयोध्यावासी। तदानीन्तनः = उस (अर्थात् राम के) समयवाला, रामकालीन। संवृत्तः = हो गया हूँ। समन्ताद् = सब ओर, चारों ओर। अवलोक्य = देखकर। भो भो = हे, ओ ! यदि तावद् = यद्यपि अब। अत्रभवतः = पूज्य। पौलस्त्य - कुलधूमकेतोः = रावणकुल का नाश करने में धूमकेतु तारे के समान। अभिषेकसमयः = राज्याभिषेक का मुहूर्त। रात्रिदिवम् = रात दिन। {आनन्दनान्दी = (स्त्री०) आनन्द हेतुक मंगलपट्टह (नौबत)}। असंहतानन्दनान्दीकः = नहीं बन्द की जाती है आनन्दसूचक नान्दी जिसमें ऐसा (अभिषेक समय)। तत् किम् = तब क्यों। इदानीम् = इस समय, अर्थात् राज्याभिषेक के अवसर पर। चत्वरस्थानानि = चतुष्पथों (चौराहों) के स्थान, अथवा आँगन की भूमियाँ। {चरण (न०) = संचार, चहल-पहल।} विश्रान्तचरणानि = बन्द है चहल-पहल जहाँपर, ऐसे। {विश्रान्तचारणानि (पाठा०) = गीतवाद्यादि व्यापार से विरत हैं चारण लोग (नट) जहाँपर ऐसे।}

अनुवाद :- अब मैं कार्यवश अयोध्या में रहने वाला तथा उसी समय का (अर्थात् रामकालीन) बन गया हूँ। (सब ओर देखकर) अरे, अब रावणकुल के धूमकेतु, पूज्य महाराज राम का यह, रात दिन न बन्द होने वाले आनन्दसूचक मंगलाचार से युक्त, राज्याभिषेक का समय है, तो क्यों इस समय चतुष्पथों (चौराहों) के स्थान { मनुष्यों के } संचार (चहल-पहल) से रहित हैं।

व्याकरण :- आयोध्यकः- अयोध्यासम्बन्धिकः, अयोध्या + शैषिको वुञ् (पा० ४।२।१२१)। { (पाठा०) आयोध्यकः - अयोध्यायां भवः, अयोध्या + ठञ् ('अध्यात्मादेष्टुमिष्यते' वा०, 'तत्रभवः' पा० ४।३।५३ सूत्र पर)}। संवृत्तः-सम्- √ वृत् आ० + क्त (कर्तरि)। अवलोक्य - अव- √ लोक १ आ० + ल्यप् (क्त्वार्थक)। पौलस्त्यः पुलस्तेः गोत्रापत्यं पुमान्, पुलस्ति + यञ् {गर्गादिभ्यो यञ् पा० ४।१।१०५}, भोभोः 'भोस्' शब्द (सम्बोधनार्थक अव्यय) से परे कोई भी घोषवर्ण (स्वर, अन्तःस्थ, तथा तृतीय चतुर्थ और पंचम वर्गीय वर्ण) हो, तो 'भोस्' के स् का लोप हो जाता। अभिषेक- (पुं०)-अभि- √ सिच् ६ पृ० + घञ् भावे। रात्रिदिवम् (अ०)-रात्रौ दिवा च (द्वन्द्वसमासः), 'अचतुरविचतुर-' (पा० ५।४।७७) इस सूत्र से यह शब्द पैदा होता है।

टिप्पणी (Notes)

कार्यवशाद् :- अधिकतर टीकाकारों ने 'कार्यवशात्' का अर्थ 'आटकप्रयोगानुरोधात्', 'प्रयोगाष्ठानानुरोधात्', 'अभिनयरूपकार्यानुरोधात्' इत्यादि दिया है। इन सब अर्थों का एक ही अभिप्राय है। किसी कार्य के प्रयोजन से ऐसा

भी इसका अर्थ हो सकता है और इससे आगे आनेवाले 'वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि' इस वाक्य की संगति भी हो जाती है।

आयोध्यकः— घनश्याम ने ऐसा ही पाठ रक्खा है, और इसका अर्थ 'आयोध्यासम्बन्धी' किया है। वीरराघव ने इसके स्थान पर 'आयोध्यकः' पाठ रक्खा है, और इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—“आयोध्यकः आयोध्यासंबन्धिक इत्यर्थः, 'धन्वयो पधाद्भुज' (प्रा० ४।२।१८१)..... आयोध्यासम्बन्धित्वं च तस्यां कादाचित्कावस्थानरूपम्, तेन वैदेशिकोऽस्मीति उपरितनग्रन्थेन न विरोधः”।

तदानीन्तनः— इसके 'तद्' शब्द से पूर्वश्लोकरस्थ 'रामचरितम्' का एकदेश 'राम' शब्द निर्दिष्ट है, अतः 'तदानीन्तनः' से अभिप्राय है रामकालीनः।

पौलस्त्यः— पुलस्ति का पौत्र, तथा विश्रवस् का पुत्र, रावण।

धूमकेतुः— अग्नि, अथवा धूमकेतु नामक उत्पातग्रह। यहाँ यह शब्द लाक्षणिक है, और इसका अर्थ है—अग्नि के समान दहनकर्ता, अथवा धूमकेतुग्रह के समान विनाशक। यद्यपि धूमकेतुग्रह प्रायः विनाशसूचक ही माना गया है (तुल०—“शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनं.....” माघ), तथापि अनेक स्थलों पर 'विनाशक' अर्थ में भी इसका लाक्षणिक प्रयोग हुआ है (तुल०—“म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालं, धूमकेतुमिव किमपि करालम्।” जयदेव)।

अभिषेकसमयः— वीरराघव ने इसके स्थान में 'पट्टाभिषेकसमयः' ऐसा पाठ रक्खा है, 'पट्टः' का यहाँ अर्थ है 'स्वर्णमुकुट', जो राज्याभिषेक के समय धारण किया जाता है (तुल० पट्टप्रधानः अभिषेकः पट्टाभिषेकः (शाकपार्थिवादिसमासः)। वीरराघव ने 'समयः' शब्द से 'मुहूर्त' तथा 'आचार' दोनों ही अर्थ लिए हैं (पट्टाभिषेकसमयः पट्टाभिषेकमुहूर्तः, यद्वा पट्टाभिषेकरूपोपचारः) और 'यदि' के स्थान में 'यदा' पाठ रक्खा है।

रात्रिंदिवम्— 'रात्रौ च दिवा च', इस प्रकार सप्तमी के अर्थ में द्वन्द्व समास है, और 'अचतुरविचतुर' इत्यादि पाणिनिसूत्र (५।४।७७) द्वारा निपातित है। यद्यपि सप्तम्यर्थवृत्ति में यहाँ द्वन्द्व समास किया गया है, किन्तु प्रयोगबल से प्रातिपदिकार्थवृत्ति मानकर फिर अत्यन्तसंयोगे द्वितीया माननी चाहिए।

असंहृतानन्दनान्दीकः— 'नान्दी' शब्द का अर्थ यहाँ शहनाई आदि मंगल वाद्यों की उस क्रिया से है, जो किसी उत्सव के अवसर पर की जाती है।

विश्रान्तचारणानि— विश्रान्ताः निवृत्तव्यापाराः चारणाः येषु तानि। घनश्यामने 'विश्रान्तचरणानि' पाठ रक्खा है और इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—विशेषण श्रान्तानि चरणानि (संचाराः) येषु तानि। 'चरण' शब्द जब नपुंसक होता है तब इसका अर्थ भ्रमण, अथवा गति या संचार होता है, इस अर्थ में इसमें भावे ल्युट

प्रत्यय जुड़ा होता है, परन्तु जब यह शब्द पुलिङ्ग होता है तब इसका अर्थ 'पाद' (पैर, चरण) होता है, इस अर्थ में इसमें करणे ल्युट् (चरत्यनेन इति चरणः) प्रत्यय जुड़ता है।

चत्वरस्थानानि :- 'चत्वर' शब्द का अर्थ आंगन, चतुष्पथ आदि है, परन्तु यहाँ यह शब्द 'चतुष्पथ' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है, क्योंकि आयोध्यकने आगे कहा है 'एहि, राजद्वारमुपतिष्ठावः', जिससे स्पष्ट है कि राजभवन में पहुँचने से पूर्व ही उसने 'यदि तावद्' इत्यादि शब्द कहे थे। 'समन्तादवलोक्य' इस सूचना से भी 'चतुष्पथ' अर्थ ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

विशेष :- 'एषोऽस्मि कार्यवशाद्' इत्यादि वचनों के साथ आयोध्यक के रूप में पात्रप्रवेश मानना चाहिए और इसीलिए यहीं प्रस्तावना का अन्त भी हो जाना चाहिए था, इसके आगे का भाग बीते हुए तथा भावी काव्यार्थ की संक्षेप में सूचना देने वाले विष्कम्भक के रूप में होना चाहिए था परन्तु सूत्रधार ने रंगभूमि का त्याग किये बिना ही उसी अपने वेश में रामकालीन आयोध्यक के रूप में अभिनय किया है, अतः उसके सूत्रधारत्व की हानि भी नहीं हुई और प्रस्तावनात्व का निर्वाह भी हो गया (दे० वीरराघव-“सूत्रधारस्यैव काव्यकथाघटकदेशकाल संबंधमंगीकृत्य विष्कम्भकवर्णकथोपन्यासः सूत्रधारत्वापरित्यागाच्च प्रस्तावनात्वाहानिः”)।

4. नटः- भाव प्रेषिता हि ते स्वगृहान्महाराजेन लङ्कासमरसुहृदो महात्मानः प्लवङ्गमराक्षसाः सभाजनोपस्थायिनश्च नानादिगन्तागता ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च यत्समाराधनाय एतावतो दिवसान् उत्सव आसीत्।

सूत्रधारः-आ अस्त्येतन्निमित्तम्।

शब्दार्थ :- भाव = मान्य, विद्वान् । प्रेषिताः = भेज दिये गये हैं। लङ्कासमरसुहृदः = लङ्का के युद्धकाल में मित्र। महात्मानः = महाधैर्यशाली अथवा महाप्रयत्नवान्, प्लवङ्गमराक्षसाः = उछलकर चलनेवाले कपि = वानर और राक्षस। सभाजनोपस्थायिनः = अभिनन्दन के लिए उपस्थित होने वाले। नानादिगन्तागताः = अनेक दिशाओं के छोरों से आये हुए। ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च = ब्रह्मर्षि और राजर्षिगण। यत्समाराधनाय = जिनकी पूजा के लिए, जिनके सन्तोष के लिए। एतावतो दिवसान् = इतने दिनों तक। उत्सव आसीत् = आमोद-प्रमोद था। आ = (ओ, याद आ गया)। निमित्तम् (न०) = कारण।

१. हीतः।
२. समाजोपस्थायिनो।
३. दिगन्तपावनाः।
४. यदाराधनाय, यत्संभावनाय।
५. प्रमोद।
६. आसीत् सम्प्रति हि वसिष्ठः०।

अनुवाद :- नट— मान्यवर! क्योंकि लंका के युद्ध में सहायक, महा धैर्यसम्पन्न वानर और राक्षस लोग, तथा { राम का } अभिनन्दन करने के लिए उपस्थित होने वाले, भिन्न-भिन्न दिशाओं के छोरों से आए हुए { गौतम आदि } ब्रह्मर्षि लोग तथा { जनक आदि } राजर्षि लोग महाराज {राम} द्वारा अपने-अपने घरों को भेज दिये गये हैं, जिनके सत्कार के लिए इतने दिनों तक { गीत वाद्य आदि } उत्सव था।

व्याकरण :- भावः—भावयति (चिन्तयति) पदार्थान् √ भू १० उ + अच्। प्रेषितः—प्र— √ इष् ४ प० (गतौ) + णिच् + क्त (कर्मणि)। सुहृद-शोभनं हृदयं यस्य, 'सुहृदुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' (५।४।१५०) इति निपातः। प्लवंगमः — प्लवेन गच्छति, (जो कूदकर चलता है) प्लव-√ गम् + खच् ('गमश्च' पा० ३।२।४७), मुम् च। 'प्लवग' (प्लव-√ गम्-ड) भी होता है (दे० पा० ३।२।४७, ४८ तथा वार्तिक)।

टिप्पणी (Notes)

भाव :- नाटक में पारिपार्श्विक (अर्थात् सूत्रधार का सहायक नट) सूत्रधार को 'भाव' शब्द से सम्बोधित करता है, दे०—सा. द. ६।१४७ 'सूत्रधारं वदेद्भाव इति वै पारिपार्श्विकः'। 'भाव' शब्द का अर्थ है विद्वान्; 'भावो विद्वान्' अ. को.।

सभाजनोप० :- सभाजनाय (अथवा सभाजने) उपतिष्ठन्ति ते; अभिनन्दन अथवा बधाई के लिए उपस्थित होने वाले। 'समाजोपस्थायिनः' ऐसा पाठ भी मिलता है, इसका अर्थ है समूह रूप से उपस्थित होने वाले, अथवा राज्याभिषेक के समारोह में उपस्थित होने वाले।

नानादिगन्तागताः - (विभिन्न दिशाओं से आए हुए)। 'नाना' शब्द अव्यय है तथा इसका अर्थ 'विभिन्न' अथवा 'अनेक' है, 'नानादिगन्ताः' इसमें 'सुप् सुपा' इस नियम के अनुसार समास हुआ है। नानादिगन्तपावना—ऐसा पाठ भी मिलता है, इसका अर्थ है—विभिन्न दिशाओं को पवित्र करने वाले।

ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च :- ब्रह्मकल्पा ऋषयो ब्रह्मर्षयः (शाकपार्थिवादि समास), राजान ऋषय इवेति राजर्षयः (उपमितकर्मधारय)।

5. नटः — अन्यच्च।

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता 'रामस्य मातरः।

अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम्॥३॥

अन्वयः— वसिष्ठधिष्ठिता देव्यो रामस्य मातरः अरुन्धती पुरस्कृत्य यज्ञे
जामातुराश्रमं गताः ।

अनुवाद :- वसिष्ठ के संरक्षण में राम की माताएँ देवियाँ अरुन्धती को आगे
करके यज्ञ में जामाता के आश्रम में गई हैं।

व्याकरण :- अन्यत्— 'अन्य' (सर्व०) का प्रथमा तथा द्वितीया के
एकवचन में रूप (पा० ७१।२५), अधिष्ठित—अधि— √ स्था १. प० (तिष्ठति) +
कर्मणि क्तः 'स्था' के आ को इकार ('स्थाघ्वोरिच्च' पा० १।२।१७) । गताः— √ गम् १.
प० (गच्छति + कर्तरि क्तः अनुनासिक लोप (पा० ६।४।३७) । पुरस्कृत्य—पुरस्— √
कृ क्त्वो ल्यप्; 'पुरस्' (अ०) गति संज्ञक है ('पुरोऽव्ययम्' पा० १।४।६७); अतएव
इसके साथ गति समास में √ कृसे परे क्त्वाको ल्यप् हुआ { 'समासेऽनञ्पूर्वे
क्त्वोऽल्यप्' पा० ७१।३७} । यज्ञ (पुं०)— √ यज् + नङ् (पा० ३।३।९०)—यज् + —ञ्
— यज्ञ ।

टिप्पणी (Notes)

वशिष्ठ :- रघुकुल के पुरोहित ब्रह्मर्षि वशिष्ठ एक जन्म में ब्रह्मा के पुत्र
थे, और दूसरे जन्म में मित्र तथा वरुण के पुत्र थे (इसीलिए इन्हें 'मित्रावरुणि' भी
कहा जाता है) । पुरस्कृत्य—'पुरस्' (पुरः) शब्द जब अव्यय होता है, तब इसकी
'गति' संज्ञा होती है {'पुरोऽव्ययम्' पा० १।४।६७}, और इसका अर्थ होता है सामने
अथवा आगे । गतिसंज्ञा होने के कारण कृदन्त के साथ इसका समास हो जाता
है {'कुगतिप्रादयः' पा०}, और समास में अधोष कवर्ग से पूर्व भी इसके स को
वेसर्ग न होकर स् ही बना रहता है {'नमस्पुरसोर्गत्योः' पा० ८।३।४०} ।

यज्ञे :- यज्ञ के निमित्त, अर्थात् यज्ञ में उपस्थित होने के लिए, ऐसा अर्थ
नेने पर यहाँ 'निमित्तात्कर्मयोगे सप्तमी' इस वार्तिक के अनुसार सप्तमी होगी ।
अथवा 'यज्ञे सति' इस प्रकार 'सति' का अध्याहार करके 'वहाँ यज्ञ होने के कारण'
इसा अर्थ करना चाहिए । (दे० वीरराघव) ।

सूत्रधारः —वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि कः पुनरसौ जामाता

नटः — कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत् ।

अपत्यकृतिकां राज्ञे' लोमपादाय 'यां ददौ ।।४।।

अन्वयः— राजा दशरथः शान्तां नाम कन्यां व्यजीजनत्, अपत्यकृतिकां यां
लोमपादाय राज्ञे ददौ ।

शब्दार्थ :- वैदेशिकः = विदेश में रहने वाला, परदेशी । व्यजीजनत् =
त्पन्न की । अपत्यकृतिका = कृत्रिमपुत्री । लोमपादाय राज्ञे = लोमपाद नाम के

लोमपादाय

तां

राजा के लिए।

अनुवाद :- सूत्रधार- मैं विदेशी हूँ, इसलिए पूछता हूँ वह जामाता कौन है। नट- राजा दशरथ ने शांता नाम की कन्या को उत्पन्न किया, जिसको कृत्रिम (गोद ली हुई) पुत्री के रूप में राजा लोमपाद को दे दिया।

व्याकरण :- वैदेशिकः - विदेशे भवः; विदेश-ठञ् ('अध्यात्मादेष्टञ् इष्यते' वार्तिक)। व्यजीजनत्-वि-√जन् ४ आ० चिण् प्र० लुङ् प्र० पु० ए० व०, अपत्यकृतिका-कृता एव कृतिका (स्वार्थे कन्, टाप् च), अपत्यं च सा कृतिका अपत्यकृतिका (कर्मधा०)। ददौ - दा ३ उ० लिट् प्र० पु० ए० व०।

टिप्पणी (Notes)

अपत्यकृतिकाम् - इस पदकी अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है- अपत्यस्य कृतिर्व्यापारो यस्याः, अथवा अपत्याय कृतिर्ग्रहणं यस्याः; इन दोनों जगह इस पदको बहुव्रीहि मानकर व्याख्या की है (बहुव्रीहि में 'कप्' समासान्त विकल्प से जुड़ता है); अथवा अपत्यं च सा कृतिका (कृत्रिमा) इति अपत्यकृतिका (कर्मधा०)। 'अपत्य' शब्द का अर्थ है 'सन्तान' (कन्या अथवा पुत्र), और 'कृतक' (स्त्री०-कृतिका) का अर्थ है 'कृत्रिम'। 'कृतक' का प्रयोग समास के आदि तथा अन्त दोनों ही में मिलता है; जैसे, 'सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते' (शकु०), 'कृतककलहं कृत्वा' (मुद्रा०), 'यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे' (मेघ०)।

लोमपाद (अथवा रोमपाद) :- रामायण में लोमपाद को अंगदेश का राजा बताया गया है। रामायण के वचनों से प्रतीत होता है कि शांता लोमपाद की ही पुत्री थी (दे० बालकाण्ड ११।२-५), किन्तु विष्णुपुराण में शांता को दशरथ की ही पुत्री बताया गया है, जिसको राजा दशरथ ने कृत्रिमपुत्री के रूप में अपने मित्र अंगधिपति रोमपाद को दे दिया (तु०-"ततश्चित्रस्था रोमपादसंज्ञः, यस्य दशरथो मित्रं जज्ञे, यस्याजपुत्रो दशरथश्शान्तां नाम कन्यामनपत्यस्य दुहितृत्वे युयोज।")

7. विभाण्डकसुतस्ताम् ऋष्यश्रृंग उपयेमे। तेन च साम्प्रतं द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्। तदनुरोधात् कठोरगर्भामपि वधूं जानकीं विमुच्य

गुरुजनस्तत्र गतः।

शब्दार्थ :- विभाण्डकसुतः = विभाण्डक के पुत्र, ऋष्यश्रृंगः = ऋष्यश्रृंग ने। ताम् = उस [शान्ता] को, उपयेमे = विवाहा। तेन च = और उस [ऋष्यश्रृंग] के द्वारा, साम्प्रतं = इस समय, द्वादशवार्षिकं = बारह वर्षों में समाप्त होने वाला सत्रम् = यज्ञ, आरब्धम् = आरम्भ किया गया है। तदनुरोधात् = उस [ऋष्यश्रृंग] के आग्रह से। कठोरगर्भाम् अपि = पूरे गर्भवाली [होने पर] भी। वधूं जानकीं = वधू जानकी को। विमुच्य = छोड़कर। गुरुजनः = गुरु लोग [वसिष्ठ, अरुन्धती कौसल्या आदि]। तत्र = वहाँ। गतः = गये हैं।

अनुवाद :- विभाण्डक के पुत्र ऋष्यश्रृंग ने उस शान्ता को विवाहा, उसी ऋष्यश्रृंग ने इस समय बारह वर्षों में समाप्त होने वाला यज्ञ आरम्भ किया है और उसी के अनुरोध से गुरुजन पूर्णगर्भा वधू जानकी को छोड़कर भी दहाँ गये हैं।

व्याकरण :- उपयेमे - उप - √ यम् १ उ० लिट् प्र० पु० ए० व०; पत्नी रूप में स्वीकार करने के अर्थ में प्रयुक्त उपपूर्वक √ यम् आत्मने० होती है (उपाद्यमः स्वकरणे पा० १।३।५६)। द्वादशवार्षिकं - द्वादशवर्षाणि व्याप्य भविष्यति द्वादशवर्षिकं 'तमधीष्टो भूतो भूतो भावी' (पा० ५।१।८०) इस सूत्र के अनुसार यहाँ 'भावी' (भविष्यति) इस अर्थ में 'द्वादशवर्ष' से ठज् तद्धित प्रत्यय जुड़ा। 'द्वादशवार्षिक' तद्धितार्थ में द्विगु समास है 'अनुशतिकादीनाञ्च' (पा० ७।३।२०) इस सूत्र के अनुसार उभयपदवृद्धि हुई। आरब्धम् आ- √ रभ् १ आ० + कर्मणि क्तः। विमुच्य-वि- √ मुच् ६ उ० (मुंचति, -ते) + क्त्वार्थे ल्यप्।

टिप्पणी (Notes)

ऋष्यश्रृंगः - 'ऋष्य' एक प्रकार का मृग होता है (√ ऋष् गतौ-क्यप्), ऋष्य मृग के सींग के समान एक सींग उस ऋषि के मस्तक पर था, इसीलिए वह ऋष्यश्रृंग कहलाया (ऋष्यस्य श्रृंगमिव श्रृंगं यस्य)। अंग देश के राजा रोमपाद ने गणिकाओं द्वारा बहकाकर उसे अपने देश में बुलवाया; अंग देश में ऋष्यश्रृंग की उपस्थिति से वर्षा हुई, और रोमपाद ने अपनी गोद ली हुई पुत्री, शांता को, भार्या रूप में उसे दिया। इन्हीं ऋष्यश्रृंग ने राजा दशरथ के लिए पुत्रकामेष्टि का अनुष्ठान किया।

द्वादशवार्षिकम् :- द्वादशवर्षाणि भूतं भावि वा द्वादशवार्षिकम् (बारह वर्षों में समाप्त हुआ, अथवा बारह वर्षों में समाप्त होगा), इन दोनों अर्थों में 'द्वादशवार्षिक' शब्द प्रयुक्त होता है (द्वादशवर्ष + ठज् दे० व्याकरण)। भूतार्थ में प्रयुक्त 'द्वादशवार्षिक' शब्द में केवल उत्तरपदवृद्धि हुई है; किन्तु भविष्यदर्थ में प्रयुक्त 'द्वादशवार्षिक' शब्द में 'अनुशतिकादीनाञ्च' (पा० ७।३।२०) सूत्र के अनुसार उभयपदवृद्धि माननी पड़ेगी क्योंकि 'वर्षस्याभविष्यति' (पा० ७।३।१६) इस सूत्र के अनुसार अभविष्यत् (अर्थात् भूत) अर्थ में ही उत्तरपद 'वर्ष' में वृद्धि होती है, भविष्यदर्थ में नहीं, जैसे द्वे वर्षे भूतो द्विवार्षिकः (जो दो वर्षों में समाप्त हुआ है), किन्तु द्वे वर्षे भावी द्वैवर्षिकः (जो दो वर्षों में समाप्त होगा)। द्वितीयाऽङ्क में प्रयुक्त 'द्वादशवार्षिकं पद' ('सम्प्रति तु परिसमाप्तं तद्द्वादशवार्षिकं सत्रं') भूतार्थवाची है।

8. सूत्रधारः- तत्किमनेन। एहि, राजद्वारमेव स्वजातिसमयेन उपतिष्ठामः।

नटः- तेन निरूपयतु राज्ञः सुपरिशुद्धामुपस्थानस्तोत्रपद्धतिं भावः।

शब्दार्थः- तत् = तब, अनेन = इस {उत्सवविरामहेतु के चिन्तन} से। किम् = क्या {लाभ}, एहि = आओ, स्वजातिसमयेन = अपनी {चारण} जाति के

आचार के अनुसार। राजद्वारम् = राजभवन के द्वारपर, एव = ही, उपतिष्ठावः = [हिम दोनों] जाकर उपस्थित हों। नट-तेन हि = तब तो [स्वजातिमर्यादापालन के हेतु], भावः = मान्य, आप, राज्ञः = राजाकी, सुपरिशुद्धाम् = विशुद्ध, सर्वथा दोषरहित, उपस्थानस्तोत्रपद्धतिं = उपासनाकालीन स्तुति परिपाटी को, निरूपयतु = विचार लें।

अनुवाद :- सूत्रधार- तब इस उत्सव के विराम से अपने को क्या? आइये अपनी चारण जाति के आचार के अनुसार राजद्वार में उपस्थित हों। **नट-** तब तो राजा के समीप उपस्थित होने के समय जिस प्रकार की विशुद्ध स्तोत्र परिपाटी का अनुसरण करना उचित हो उसको, मान्यवर, पहले से ही 'निश्चित' कर लें।

व्याकरण :- एहि - आ- √ इ २ प०-लोड म० पु० ए० व०। उपतिष्ठावः-उप-√ स्था १. प०-लट् उ० पु० द्विव०। राज्ञः-‘राजन्’ शब्द ष० ए० व०, कृदन्त शब्द (उपस्थान) के योग में कर्मणि षष्ठी। स्तोत्रं-स्तुवन्त्यनेनेति स्तोत्रं; √ स्तु २. प० + ष्टन् (पा० ३।२।१८२)। पद्धतिः (स्त्री०) - पद-हतिः; पदाभ्यां हन्यते इति पद्धतिः; पाद-√ हन् २ प०-कर्मणि क्तिन्, ‘हिमकाषिहतिषु च’ (पा० ६।३।५४) इस सूत्र के अनुसार ‘पाद’ शब्द को ‘पद’ आदेश।

टिप्पणी (Notes)

उपतिष्ठावः- उप-√ स्था का अर्थ होता है समीप में अवस्थान करना, सेवा करना। देवपूजा, संगतिकरण, मित्रकरण तथा पन्था इन अर्थों में उपपूर्वक स्था धातु सदा आत्मनेपद में ही प्रयुक्त होती है; जैसे आदित्यमुपतिष्ठते, गंगा यमुनामुपतिष्ठते, रथिकान् उपतिष्ठते मित्रीकरोतीत्यर्थः), पन्थाः सुग्धमुपतिष्ठते (प्राप्नोतीत्यर्थः); (‘उपादेवपूजा- संगतिकरण मित्रकरणपथिष्ठितिवाच्यम्’ वार्तिक पा० १।३।२५ पर); किन्तु इन अर्थों के अभाव में यहाँ परस्मैपद प्रयुक्त हुआ है। अथवा ‘वा लिप्सायामिति वक्तव्यम्’ इस वार्तिक के अनुसार यहाँ ‘धनलाभ की इच्छा से निकट जाकर सेवार्थ उपस्थित होना’ इस अर्थ में वैकल्पिक परस्मैपद मानना पड़ेगा; यथा भिक्षुः प्रभुमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा (दे. सि. कौ.)।

उपस्थानस्तोत्रपद्धतिम् :- उपस्थाने (कर्तव्यस्य) स्तोत्रस्य प्रशस्तेः पद्धतिः (प्रकारः) ताम्। ‘उपस्थान’ शब्द का अर्थ है निकट जाकर सेवार्थ उपस्थित होना।

९. सूत्रधारः- मारिष,

सर्वथा ‘व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।

यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः॥५॥

[अन्वयः— सर्वथा व्यवहर्तव्यं, अवचनीयता कुतः। हि जनो यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनः]

शब्दार्थः— सूत्रधार—मारिष = हे आर्य, सर्वथा = सब प्रकार से [अर्थात् चाहे जैसे भी हो], व्यवहर्तव्यम् = व्यवहार करना चाहिए [अर्थात् आचार की रक्षा करनी चाहिए, अथवा कर्तव्य का पालन करना चाहिए], हि = क्योंकि, अवचनीयता = अनिच्छता, निर्दोषता, कुतः = कैसे [सम्भव है]? जनः = लोक, यथा = जैसे, स्त्रीणाम् = स्त्रियों के, साधुत्वे = निर्दोषपन में, [पातिव्रत्य में] तथा = उसी प्रकार, वाचाम् = प्रबन्धादिरूप वाणियों के साधुत्वे = निर्दोषपन में, [प्रसादमाधुर्यादि गुणों में] दुर्जनः = नीचाशय अर्थात् दोषदर्शी है।

अनुवाद :- हे मारिष ! चाहे जैसे भी हो व्यवहार करना चाहिये क्योंकि निर्दोषता कैसे सम्भव है। लोग जैसे स्त्रियों के पातिव्रत्य पर शंकालु ही रहते हैं वैसे ही कवियों के काव्य के विषय में भी।

व्याकरण :- व्यवहर्तव्यम्—वि—अव—√ ह + भावे 'तव्य' प्रत्यय। कुतः—किम् + तसिल्। अवचनीयता—न वचनीयम्, अवचनीयम्, (√ वच् + कर्मणि अनीयर), तस्य भावः अवचनीयता (भावे तल)।

टिप्पणी (Notes)

मारिषः— नाटक में सूत्रधार द्वारा पारिपार्श्विक नट के लिए प्रयुक्त संबोधन; तु० "सूत्रधारं वदेद्भाव इति वै पारिपार्श्विकः। सूत्रधारो मारिषेति" (सा. द. ६१४७, १४८)। 'मारिष' शब्द नाट्योक्ति में पर्यायवाची है (दे०—अ० को०) क्षीरस्वामी ने 'मर्षणात् सहनात् मारिषः' इस प्रकार√ मृषसे इसकी व्युत्पत्ति मानी है।

सर्वथा व्यवहर्तव्यः— लोकनिन्दा की उपेक्षा करके चाहे जैसे भी हो हमें अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए, क्योंकि लोग तो गुणों में भी दोषारोप करते हैं 'व्यवहर्तव्य' के स्थान पर 'व्यवहर्तव्ये' ऐसा पाठ होने पर इसका भाव इस प्रकार होगा—कर्तव्यपालन में सर्वथा लोकनिन्दा से बचना कैसे सम्भव हो सकता है, अथवा सर्वथा (अनिवार्य) कर्तव्यपालन में लोकापवाद से कहाँ तक बचा जा सकता है।

यथा स्त्रीणां तथा० :- इसमें अर्थान्तरन्यास अलंकार है, 'कुतो ह्यवचनीयता' इस सामान्य अर्थ का समर्थन इस उत्तरार्ध में कहे हुए विशेष अर्थ द्वारा किया गया है।

वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः — संभवतः भवभूति ने यह उक्ति अपने कटु, आलोचकों को लक्ष्य में रखकर की हो; तु० 'ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां' मालती० १।६ यथा स्त्रीणां (साधुत्वे दुर्जनो जनः) सूत्रधार के इस कथन में

सीताविषयक जनापवादरूप भावी अर्थ की सूचना है।

10. नटः— अतिदुर्जन इति वक्तव्यम्

‘देव्यामपि हि वैदेह्यां सापवादो यतो जनः।

रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः॥६॥

{अन्वयः— यतो हि जनो देव्यां वैदेह्यां अपि सापवादः। रक्षोगृहस्थितिः मूलम्, अग्निशुद्धौ तु अनिश्चयः}।

शब्दार्थः— नटः—अतिदुर्जनः = ‘अत्यन्त दुर्जन है।’ इति = इस प्रकार। वक्तव्यम् = कहना चाहिए। यतः = क्योंकि। हि = निश्चय से, जनः = लोक। देव्यां वैदेह्याम् = देवी {अर्थात् अयोनिजा} वैदेही {के विषय} में। अपि = भी, सापवादः = अपवादसहित अर्थात् निंदा करने वाला है। रक्षोगृहस्थितिः = राक्षस के घर में अवस्थान {ही}। मूलम् = {उस लोकापवाद का} कारण है। तु = और। अग्निशुद्धौ = अग्निद्वारा {निर्णीत चरित्रकी} शुद्धि में। अनिश्चयः = निश्चय का अभाव अर्थात् संशय है।

अनुवादः— {स्त्रियों के साधुत्व अर्थात् निर्दोषता के विषय में ‘लोक दुर्जन है’ ऐसा न कहकर} ‘अत्यन्त दुर्जन है’ ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि अयोनिजा देवी सीता के विषय में भी लोग दोष देखते हैं। उनका राक्षस के घर में रहना तो लोगों को दीखता है किन्तु अग्निपरीक्षा पर विश्वास नहीं करते।

व्याकरणः— वक्तव्यम्—√ वच् २ ष० + भावे ‘तव्य’ प्रत्ययः। वैदेह्याम्— ‘वैदेही’ शब्द का स० वि० ए० व०, विदेहस्य अपत्यं स्त्री वैदेही, विदेह + अञ् + डीप्, ‘जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्’ (पा० ४११६८) इति अञ्, ‘टिड्ढाणञ्’ (पा० ४११५) इति डीप्। राक्षस्—सकारान्त नपुंसक, प्र० वि०।

टिप्पणी (Notes)

देव्यामपि० :— ‘देवी’ तथा ‘वैदेही’ इन दोनों पदों से सीता के चरित्र का अलौकिक उत्कर्ष ध्वनित होता है। सीता ‘देवी’ अर्थात् अयोनिजा है, वह उत्पत्ति परिपूता है (तु०—श्लो० १३), तिस पर भी वह ‘वैदेही’ अर्थात् आत्मज्ञानी विदेहराज जनक की संतान है, वह चारित्र्य की साक्षात् मूर्ति है; फिर भी लोग केवल मात्र ‘रक्षोगृहस्थिति’ के कारण उसके चरित्र की निन्दा करते हैं, और अग्निशुद्धि में भी विश्वास नहीं करते; अतएव उन्हें दुर्जन न कहकर अतिदुर्जन कहना चाहिए।

१. देव्या अपि हि वैदेह्याः (टी०)।

२ रक्षोगृहे।

सापवादो जन :- रामायण में मात्र एक धोबी (रजक) ही सीता को घर में रखने के लिए राम को दोषी ठहराता है; किन्तु भवभूति ने जनसामान्य को सीता के चरित्र की निन्दा करने वाला बनाकर अपने चरित्रनायक राम के लिए सीता त्याग का उचित हेतु उपस्थित किया है।

11. सूत्रधार:- यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराजं प्रति स्यन्देत ततः कष्टं स्यात्।

नट:- सर्वथा ऋषयो देवताश्च श्रेयो विधास्यन्ति। (परिक्रम्य) भो भोः क्वेदानीं महाराजः। (आकर्ण्य) एवं जनाः कथयन्ति।

शब्दार्थ :- यदि = यदि। पुनः = फिर। इयम् = यह। किंवदन्ती = जनश्रुति। {लोकप्रवाद} महाराजं प्रति = महाराज तक। स्यन्देत = फूट निकले। ततः = तब। कष्टम् = अनर्थ। स्यात् = हो जावे।

अनुवाद :- सूत्रधार— यदि फिर यह लोकप्रवाद महाराज {राम} तक पहुँच जाय, तब अनर्थ हो जायेगा।

व्याकरण :- किंवदन्ती (स्त्री०)—किं वदन्ति (जनाः) इत्याख्यायमाना; किम्-√ वद् १ प० + अच् (अन्त) + स्त्रियां डीप्; अथवा √ वद् + शतृ + डीप् = वदन्ती (कहती हुई), कुत्सिता वदन्ती अथवा किंचिद् वदन्ती = किंवदन्ती, 'किम् क्षेपे' (पा० २१।६४) इति समासः। स्यन्देत-√ स्यन्द (प्रस्रवणे) १ आ०-वि० लिङ्, प्र० पु० ए० व०। स्यात्-√ अस् (भुवि) २. प० वि० लिङ्। श्रेयः-‘श्रेयस्’ (सकारान्त नपुंसक) का द्वि० ए० व०; श्रेयस् = प्रशस्य + ईयस्-अ + ईयस्। विधास्यन्ति = वि-√ धा ३. उ०-लृट्; आकर्ण्य-आ-√ कर्ण् १० + ल्यप्।

टिप्पणी (Notes)

यदि पुनरियं० :- सूत्रधार की इस उक्ति से प्रथमांक का अर्थ सूचित होता है। सर्वथा ऋषयः श्रेयो विधास्यन्ति:- नट की इस उक्ति से शेष अंकों के अर्थ की सूचना मिलती है, वाल्मीकि ऋषि तथा पृथिवी और गंगा देवताओं के अनुग्रह से नाटक के अन्त में सीता और राम के पुनर्मिलन तथा राम को पुत्रों की प्राप्ति से नाटक का सुखान्त होना सूचित होता है। इस उक्ति में श्रेयोविधान रूप बीज के उपस्थित होने से यह यहाँ उपक्षेप नामक संध्यंग है।

स्यन्देत :- √स्यन्द का अर्थ है चूना, बहना, शनैः शनैः पहुँचना, इसके स्थान में स्पृशेत् तथा 'परिस्यन्देत' ये पाठ भी मिलते हैं; स्पृशेत् = श्रुतिपथं गच्छेत्, कर्णगोचरा भवेत्; परिस्यन्देत = महाराजश्रवणान्तिकं शनैर्गच्छेत्।

भो भोः कथयन्ति :- नट की यह उक्त आकाशभाषित कहाती है, रंगमंच पर स्थित किसी पात्र का अप्रविष्ट पात्र अथवा पात्रों के साथ प्रश्नोत्तर रूप में जो

संवाद होता है उसे आकाशभाषित कहते हैं (तु०—‘अप्रविष्टैः सहालापः भवेदाकाशभाषितम्।’)

12. नटः— स्नेहात् सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि

नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।

देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय

धर्मासनाद् विशति वासगृहं नरेन्द्रः॥७॥

(इति निष्क्रान्तौ)

इति प्रस्तावना

[अन्वयः— स्नेहात् सभाजयितुम् एत्य, अमूनि दिनानि उत्सवेन नीत्वा, जनकः अद्य विदेहान् गतः, ततः विमनसः देव्याः परिसान्त्वनाय नरेन्द्रः धर्मासनात् वासगृहं विशति।]

शब्दार्थः— स्नेहात् = स्नेह के [प्रीति के] कारण। सभाजयितुम् = अभिनन्दन करने के लिए, बधाई देने के लिए। एत्य = आकर, अमूनि दिनानि = इतने दिनों को, उत्सवेन = उत्सव [आनन्द प्रमोद] द्वारा, नीत्वा = बिताकर। जनकः = विदेहराज, अद्य = आज, विदेहान् = विदेह नाम के जनपद को, गतः = चले गये हैं, ततः = इस कारण से, विमनसः = उदास चित्तवाली, खिन्न, देव्याः = देवीके, परिसान्त्वनाय = आश्वासन के [मनोविनोदके] लिए, नरेन्द्रः = नरपति, राजा, धर्मासनात् = न्यायासन से, [उठकर], वासगृहम् = शयन मन्दिर में, विशति = प्रवेश करते हैं। इति = ऐसा कहकर, निष्क्रान्तौ = दोनों निकल गये।

अनुवादः— प्रीति के कारण [राम को] अभिनन्दित करने के लिए [अयोध्या में] आकर इन दिनों को राज्याभिषेक के उत्सव में (अथवा आनन्द प्रमोद से) बिताकर राजा जनक आज विदेह देश को चले गये हैं। इस कारण दुःखित-हृदया देवी (सीता) के आश्वासन (विनोद) के लिए राजा न्यायासन को छोड़कर शयनगृह में प्रवेश करते हैं।

ऐसे कहकर दोनों (सूत्रधार तथा नट) [रंगभूमि से] निकल गये।

प्रस्तावना [समाप्त]

व्याकरणः— सभाजयितुम्—√ सभाज् (प्रीतिसेवनयोः) १० उ० + तुमुन्। एत्य—आ—√ इ (गतौ) २ प० + ल्यप्, ‘ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्’ (पा० ६।१।७९) इति तुक्। विमनसः—‘विमनस्’ (विमनाः) का ष० ए० व०, ‘देव्याः’ का विशेषण, विगतं मनो यस्याः सा विमनाः, प्रादिसमासः। देव्याः—‘परिसान्त्वनाय’ के योग में कृद्योगे कर्मणि षष्ठी। धर्मासनाद्—धर्मासनं परित्यज्य, ल्यब्लोपे कर्मणि पंचमी।

निष्क्रान्तौ-निस्-√ क्रम् + क्त। प्रस्तावना-प्र-स्तु + णिच् + युच् भावे स्त्रियाम्।

उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक
की व्याख्या

टिप्पणी (Notes)

सभाजयितुम् :- {राज्याभिषेक के समय} राम का अभिनन्दन करने के लिए अथवा उन्हें बधाई देने के लिए, (तु० 'देवं सभाजयितुमागताः' शकु०)।

विदेहान् :- विदेहानां जनपदः विदेहः तान्, निवासियों के नाम पर यदि किसी देश का नाम हो, तो वह बहुवचन में प्रयुक्त होता है। जैसे पंचालाः, कलिङ्गाः, अङ्गाः इत्यादि। विदेह जनपद मगध के उत्तर पूर्व में स्थित था और इसमें आधुनिक तिरहुत जिले का उत्तरी भाग तथा नेपाल का भी कुछ भाग सम्मिलित था। मिथिला इसकी राजधानी थी।

धर्मासन :- धर्म = न्यायविचार, व्यवहार, 'धर्मासन' का अर्थ है न्यायविचार का आसन। 'धर्मासन' के लिए कार्यासन (विक्र० २), तथा 'व्यवहारासन' (रघु० ८१८) शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। धर्मासनाद्विशति-राजकार्य को भी छोड़कर राम स्वयं सीता को सान्त्वना देने के लिए वासगृह में गये, इससे सीता के प्रति राम का स्नेहातिशय सूचित होता है। राजा का सिंहासन ही उसका धर्मासन होता है।

वासगृहम् :- वासयोग्यं गृहम् अथवा वासमध्ये गृहम्, मध्यगृह अर्थात् घर के बीच का कमरा (जहाँ प्रायः शयन आदि करते हैं)। संस्कृत में इसका पर्यायवाची 'गर्भागारम्' है जिसका अर्थ गर्भ मध्ये आगारम् है (तु०-'गर्भागारं वासगृहम्' अ० को०)।

विशति नरेन्द्रः - इससे पात्र-प्रवेश की सूचना दी गई है। संस्कृत नाट्यशास्त्र का यह एक नियम है कि रंगमंच पर पूर्वसूचना के बिना पात्र का प्रवेश नहीं कराया जाता (तु०-"नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेशो निर्गमोऽपि वा")।

प्रस्तावना :- नाटक के आरम्भ में जहाँ नटी, विदूषक अथवा पारिपाश्विक सूत्रधार के साथ संलाप करते हैं और उस संलाप में आगे आने वाले विषय की सूचना देते हैं उसे प्रस्तावना अथवा आमुख कहते हैं। "नटी विदूषको वापि पारिपाश्विक एव वा। सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।। चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः। आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा।।" (सा० द० ६।३१ उ०) प्रस्तावना के पाँच भेद होते हैं, उनमें से यहाँ प्रयोगातिशय नाम की प्रस्तावना है। जहाँ प्रकृत विषय का अतिक्रमण करके दूसरा विषय (प्रयोग) छेड़ दिया जाय और उसी के द्वारा पात्र का प्रवेश हो, वहाँ प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना होती है (दे० सा० द० ६।३६)। यहाँ सूत्रधार तथा नट राजद्वार पर जाकर स्तुति पाठ की तथा उसी के साथ सीता विषयक अपवाद की बातें करते हैं, किन्तु बीच ही में यह विषय छोड़कर रामचन्द्र जी का प्रस्ताव छेड़ देते हैं और उसी के द्वारा पात्र (राम

तथा सीता) का प्रवेश होता है। इसमें वसन्ततिलका छन्द है।

(ततः प्रविशत्युपविष्टो रामः सीता च)

13. रामः— देवि वैदेहि, समाश्वसिहि। ते हि गुरवो न शक्नुवन्ति विहातुमस्मान्।

किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।

संकटाह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता॥८॥

अन्वयः— किन्तु अनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यम् अपकर्षति। हि आहिताग्नीनां गृहस्थता प्रत्यवायैः संकटा।

शब्दार्थः— ततः = तब, उपविष्टः = बैठे हुए, रामः = राम, प्रविशति = प्रवेश करते हैं, सीता च = तथा सीता भी।

अनुवादः— (तब बैठे हुए राम प्रवेश करते हैं, तथा [बैठी हुई] सीता भी)। राम— हे देवि विदेहराजकुमारि, धैर्य धारण करो; क्योंकि वे गुरुजन (अर्थात् आपके पिता) हमको छोड़ नहीं सकते हैं।

परन्तु [अग्निहोत्रादि] विहित कर्मों की नियतकर्तव्यता स्वच्छन्दता को छीन लेती है; क्योंकि साग्निक पुरुषों का गृहस्थाश्रम [विहित कर्मों के अनाचरण से उत्पन्न होने वाले] प्रत्यवायों (पातज्यों) के कारण दुःखरूप है, अथवा प्रत्यवायों (विघ्नों) से पूर्ण है।

टिप्पणी (Notes)

ततः प्रविशतिः— नाटक का यह एक पारिभाषित संकेत है। बैठे हुए राम तथा सीता का रंगशाला में चलकर प्रवेश करना संभव नहीं है, अतएव यहाँ 'प्रविशति' का अर्थ 'आविर्भवति' लेना पड़ेगा।

गुरवः— गुरु अर्थात् सीता के पिता जनक; आदरार्थ में बहुवचन का प्रयोग (तु0—'आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया' रघु0 १४१६)। प्रस्तावना (श्लो0 ७) में जनक का विदेह जाना कहा गया है, उसी का यहाँ निर्देश है।

अनुष्ठाननित्यत्वं— 'नित्यत्वं' शब्द के दो अर्थ हैं—अहरहः क्रियमाणत्वं (प्रतिदिन किया जाना), अथवा नियतकर्तव्यत्वं (नियत काल में किया जाना। नियमेन भवं नित्यम्)। सन्ध्योपासन, वैश्वदेव आदि प्रतिदिन करने होते हैं, तथा दर्शपूर्णमासेष्टि इत्यादि नियत काल में ही करने होते हैं। आहिताग्नि गृहस्थ को वैवाहिक अग्नि में होमादि कर्म का अनुष्ठान प्रतिदिन सायं प्रातः करना होता है (तु0—'कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही' पा0 स्मृ0; 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति' इति श्रुतिश्च) नित्य कर्मका उल्लंघन करने पर प्रत्यवाय होता है, और

प्रायश्चित्त करना पड़ता है। जनक भी आहिताग्नि गृहमेधी थे। अतः अनुष्ठाननित्यत्व के अनुरोध से उन्हें जल्दी ही अपने गृह को लौट जाना पड़ा, स्नेहाभाव के कारण नहीं। प्रवासकाल में अग्निहोत्रादि नित्य कर्मों का अनुष्ठान स्वपत्नी अथवा ऋत्विक् के ऊपर छोड़ा जा सकता है, किन्तु यह प्रतिनिधि—विधान स्वल्पकाल के लिए ही है (तु०—“निक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्प्यात्विजं तथा। प्रवसेत् कार्यवान् विप्रो वृथैव न चिरं वसेत्।।” शातातप)।

‘नित्यत्व’ के स्थान पर ‘नित्यत्वे’ :—ऐसा पाठ होने पर ‘अपकर्षति’ क्रिया का कर्ता ‘गृहस्थता’ है, किन्तु उस अवस्था में ‘हि’ शब्द निरर्थक हो जायेगा। आहिताग्नीनाम्—गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि (अन्वाहार्यपचन) ये तीन श्रौत अग्नि हैं; इन्हें आधान संस्कार द्वारा स्थापित करना होता है। इसमें अनुष्टुप् छन्द है।

14. सीता— जाणामि अज्जउत्त जाणामि। किन्दु संदावआरिणो बन्धुजण विप्पओआ होन्ति। [जाणामि आर्यपुत्र जाणामि। किंतु सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति।]

राम— एवमेतत्। एते हि हृदयमर्मच्छिद ‘संसारभावा’ येभ्यो वीभत्समानाः संत्यज्य सर्वान् कामान्^१ अरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः।

शब्दार्थ :— जाणामि = जानती हूँ, आर्यपुत्र = हे आर्यपुत्र, जाणामि = जानती हूँ। किंतु = परन्तु, बन्धुजनविप्रयोगाः = स्वजनों से वियोग, सन्तापकारिणाः = खेदजनक, भवन्ति = होते हैं। एतत् = यह [बात, एवम् = ऐसी ही है; हि = निश्चय से, एते = ये, संसारभावाः = संसार के धर्म, सांसारिक विषय, हृदयमर्मच्छिदः हृदय के मर्मस्थलों को छेदने वाले हैं। येभ्यः = जिनसे, वीभत्समानाः = घृणा करते हुए, विरक्त होते हुए, मनीषिणः = धीर पुरुष, सर्वान् कामान् = सब कामनाओं को, संत्यज्य = त्यागकर, अरण्ये = वन में, विश्राम्यन्ति = विश्राम करते हैं, शान्ति प्राप्त करते हैं।]

अनुवाद :— सीता— जानती हूँ, आर्यपुत्र ! जानती हूँ। किन्तु स्वजनों के वियोग क्लेशजनक होते हैं।

राम— यह बात ऐसे ही है। ये सांसारिक विषय निश्चय से हृदय के मर्मस्थानों को छेदनेवाले हैं, जिनसे घृणा करते हुए (विरक्त होते हुए) धीर पुरुष सब कामनाओं को त्यागकर वन में विश्राम (शान्तिलाभ) करते हैं।

१. भिदः

२. भागाः (बी०), भोगाः (घन०)

३. एतन्नास्ति क्वचित्

सीता का यह संलाप शौरसेनी प्राकृत में है।

आर्यपुत्र :- आर्यस्य श्रेष्ठस्य (श्वसुरस्य) पुत्रः आर्यपुत्रः। संस्कृत नाटकों में स्त्री अपने पति को 'आर्यपुत्र' शब्द से संबोधन करती है।

संसारभावाः- संसार के स्वभाव, संसार की बातें, सांसारिक विषय। वीरराघव ने इसके स्थान पर 'संसारभागाः' प्रयुक्त किया है; 'भाग' शब्द का यहाँ अर्थ है—सुख अथवा दुःख का वह भाग (अंश) जो किसी प्राणी को अपने कर्मफल के रूप में भोगना पड़ता है। घनश्याम ने 'संसारभोगाः' प्रयुक्त किया है; 'भोग' शब्द का अर्थ है सुख अथवा दुःखका अनुभव।

कामान् :- 'काम' शब्द का अर्थ अभिलाष, इच्छा, कामना होता है (√ कम् 1 आ० + भावे घञ्); इसके अतिरिक्त 'काम्यन्ते इति कामाः' (कर्मणि घञ्) इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'काम्य पदार्थ' (स्त्री, पुत्र, धन इत्यादि) भी इसका अर्थ है।

मनीषिणः- 'मनीषा' शब्द का अर्थ है—बुद्धि, {'बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः' अ० को०}; मनीषा विद्यतेऽस्येति मनीषी (मनीषा + इन्, ब्रीह्यादित्वात्), {'धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः' अ० को०}।

15. कंचुकी—रामभद्र—(इत्यर्धोक्ते साशंकम्) महाराज—

रामः— (सस्मित) आर्य, ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य। तद्यथाऽभ्यस्तमभिधीयताम्।

शब्दार्थ :- इति = इस प्रकार, अर्धोक्ते = आधा कहने पर। साशंकम् = आशंका अर्थात् भय के साथ। सस्मितं = मुस्कराहट के साथ, आर्य = हे आर्य, तातपरिजनस्य = पिता के भृत्यका, माम् प्रति = मेरे प्रति, रामभद्र इति एव = 'रामभद्र' इस प्रकार ही, उपचारः = शब्दव्यवहार, शोभते = सुहाता है। तद् = अतएव, यथाऽभ्यस्तं = अभ्यास के अनुसार ही, अभिधीयताम् = कहिये।

अनुवाद :- (प्रवेश करके) कंचुकी :- रामभद्र!— (इसप्रकार आधा कहने पर भय के साथ) महाराज— रामः— (मुस्कराहट के साथ) आर्य, पिता के भृत्य का, मेरे प्रति 'रामभद्र' इसी प्रकार का शब्दव्यवहार शोभा देता है। अतएव अभ्यास के अनुसार ही कहिये।

व्याकरण :- उपचारः = उपचरत्यनेन; उप-√ चर् + घञ् करणे। तातपरिजनस्य (उपचारः) = कृद्योगे कर्तरि षष्ठी।

कंचुकी (कंचुकिन):— कंचुकः चोलः अस्यास्तीति। यह एक सदाचारी वृद्ध ब्राह्मण होता था, जो राजा के अन्तःपुर की व्यवस्था करता था। कंचुक अर्थात् चोल पहिनने के कारण यह कंचुकी कहलाता था। भरत ने इसके लिए 'कंचुकेय' शब्द का तथा भासने अपने नाटकों में 'कांचुकेय' शब्द का प्रयोग किया है।

रामभद्र :— नाटक में छोटी श्रेणी के लोग राजकुमार को 'भद्र', 'सौम्यमुख' इत्यादि शब्दों से सम्बोधित करते हैं ('भद्र' शब्द में आशीर्वाद का भाव निहित है)। इसी शब्द से राजा दशरथ के समय वृद्ध कंचुकी राजकुमार राम को सम्बोधित करता था किन्तु राम का राज्याभिषेक हो चुका है, अतः अब वे राजकुमार नहीं, राजा हैं; इसीलिए महाराज राम के लिए 'रामभद्र' ऐसा सम्बोधन कंचुकी को अनुचित जान पड़ा।

तद्यथाभ्यस्तमभिधीयताम् :— जो सेवक पिता के समय से चले आ रहे हैं वे निश्चय ही अधिक अवस्था के होंगे, जीवन भर वे जैसा व्यवहार करते आये हैं उसे बदलने में उन्हें कठिनाई होगी, यह सोचकर ही राम ने कहा—जैसा कहने का तुम्हें अभ्यास है वही कहो। राम की इस उक्ति से उनका अपने परिजनों के प्रति भी विनययुक्त व्यवहार तथा दाक्षिण्य सूचित होता है। उत्तरराम० के राम ६ पिरोदात्त नायक हैं।

आर्य :— इस शब्द का प्रयोग मान्य व्यक्तियों (जैसे ज्येष्ठ भ्राता इत्यादि) के प्रति किया जाता है। नाटक में कंचुकी के लिए भी 'आर्य' शब्द का ही प्रयोग विहित है उस समय कंचुकी का पद सम्माननीय माना जाता था; क्योंकि वह विद्वान्, चतुर और राजनीतिज्ञ व्यक्ति होता था।

उपचार :— इस शब्द का अर्थ 'व्यवहार' है; किन्तु यहाँ 'आमंत्रणपद' अर्थात् 'सम्बोधन के निमित्त प्रयुक्त शब्द' अथवा 'सम्बोधन का प्रकार' ऐसा है।

16. कंचुकी— देव, ऋष्यश्रृंगाश्रमादष्टावक्रः संप्राप्तः।

सीता— अज्ज, तदो किं विलम्बीअदि। {आर्य, ततः किं विलम्ब्यते}

रामः— त्वरितं प्रवेशय।

(कंचुकी निष्क्रान्तः)

शब्दार्थ :— देव = महाराज, ऋष्यश्रृंगाश्रमाद् = ऋष्यश्रृंगके आश्रम से, अष्टावक्रः = अष्टावक्र (नाम के ऋषि), संप्राप्तः = आए हैं। ततः = तब, किं = क्यों, विलम्ब्यते = देर की जावे। त्वरितं = शीघ्र, प्रवेशय = प्रवेश कराओ।

अनुवाद :— कंचुकी— हे देव, ऋष्यश्रृंग के आश्रम से अष्टावक्र आए हैं।

सीता— आर्य, तब क्यों देर की जावे। राम— शीघ्र प्रवेश कराइये।

टिप्पणी (Notes)

देव— नाटक में उच्चश्रेणी के भृत्य राजा को 'देव' शब्द से सम्बोधन करते हैं (दे०—'राजा स्वामीति देवेति भृत्यैः' सा० द० ६१४४)।

अष्टावक्रः— अष्टसु शरीरावयवेषु वक्रोऽष्टावक्रः, 'अष्टनः संज्ञायाम्' (पा० ६।३।१८५) के अनुसार 'अष्ट' शब्द को दीर्घादेश होता है, जैसे अष्टापद। जब ये माता के गर्भ में थे तब गर्भ से ही इन्होंने स्वाध्याय करते हुए अपने पिता उद्दालक को, आठ बार अशुद्धियों के लिए टोका था, इसी से क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दे दिया और ये जन्म के समय से ही शरीर के आठ अंगों में वक्र थे (दे० 'यस्मात्कुक्षौ वर्तमानो ब्रवीषि तस्माद्वक्रो भवितास्यष्टकृत्वः' म० भा०)।

17. अष्टावक्रः— स्वस्ति वाम्।

रामः— भगवन्, अभिवादये। इत आस्यताम्।

सीता— भवन् नमो दे। अविकुशलं सजामातुअस्त गुरुआणस्स अज्जाए सन्ताए अ। [भगवन्, नमस्ते! अपि कुशलं सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्यायाः शान्तायाश्च।]

शब्दार्थ :— वां = आप दोनों का। स्वस्ति = कल्याण हो। अभिवादये = अभिवादन {नमस्कार} करता हूँ। इतः = यहाँ। आस्यताम् = बैठिये। नमस्ते = तुम्हें नमस्कार हो। अपि = क्या। सजामातृकस्य = जामाता के सहित। गुरुजनस्य = गुरुजनों की। आर्यायाः शान्तायाः च = और आर्या शान्त की। कुशलम् = कुशल क्षेम है।

अनुवाद :— (प्रवेश करके) अष्टावक्र :— आप दोनों का कल्याण हो। राम—भगवन्, नमस्कार करता हूँ। यहाँ बैठिये। सीता— भगवन्, आपको नमस्कार हो। जामाता (ऋष्य श्रृंग) सहित गुरुजनों (कौसल्या आदि) की तथा आर्या शान्ता की कुशल तो है।

व्याकरण :— वाम्='युष्मद्' शब्दका च० द्विव०; 'नमः स्वस्तिस्वाहास्वहा ऽल्लवषड्योगाच्च' (पा० २।३।१६) सूत्र के अनुसार स्वस्ति के योग में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। आस्यताम् = आस् (उपवेशने) २. आ०—भावे लोट्। नमस्ते = नमः शब्द के योग में चतुर्थी। सजामातृकस्य = जामात्रा सहितः सजामातृकः तस्य (बहुव्री०; 'नद्यृतश्च' पा० ५।४।१४३, इति कप)

टिप्पणी (Notes)

इत आस्यताम् :— विनय तथा दाक्षिण्य प्रदर्शित करने के निमित्त वक्ता कर्तरि लोट् के स्थान में भावे लोट्का प्रयोग करता है।

अपि :- यह अव्यय यहाँ इष्ट प्रश्नसूचक है। प्रश्नसूचक के रूप में 'अपि' का प्रयोग प्रायः वाक्य के आरम्भ में ही होता है, जैसे, 'अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशम्' कुमा० ५।३३।

18. राम:- निर्विघ्नः 'सोमपीथी' आवुत्तो मे भगवान् ऋष्यश्रृंग आर्या च शान्ता?

सीता-अहो 'वा' सुमरेदि? [अस्मान् वा स्मरति ?]

अष्टावक्र:-(उपविश्य) अथ किम्। देवि, कुलगुरुर्भगवान् वसिष्ठस्त्वामिदमाह—

शब्दार्थ— सोमपीथी = सोम पान करनेवाले, मे = मेरे, आवुत्तः = बहनोई, आर्या च शान्ता = और पूज्य शान्ता, निर्विघ्नः = विघ्नरहित, सकुशल [तो हैं ?] अस्मान् = हमको, स्मरति = याद करते हैं? उपविश्य = बैठकर, अथ किम् = हाँ ! देवि = हे महारानी, कुलगुरु = सूर्यकुल के गुरु, भगवान् = भगवान्, वसिष्ठः = वसिष्ठ ने, त्वाम् = तुम्हें, इदम् = यह, आह = कहा है।

अनुवाद :- राम— सोमपान करने वाले मेरे बहनोई, भगवान् ऋष्यश्रृंग, और आर्या शान्ता विघ्नरहित (सकुशल) हैं? सीता—हमें याद भी करते हैं? अष्टावक्र— (बैठकर) और क्या! हे महारानी, कुलगुरु भगवान् वसिष्ठ ने तुम्हें यह कहा है।

व्याकरण :- निर्विघ्नः = निष्क्रान्ताः विघ्नाः यस्मात्; विघ्नः = विहन्यते अनेन; वि-√ हन् २. प० + घञर्थे कः । सोमपीथी = सोमस्य पीथं सोमपीथं; √ पा (पाने) १. प० + औणादिकः थक्, तदस्यास्तीति सोमपीथी, इनिः। सोमपीती (इति पाठे) = पीतमनेनेति पीती (इष्टादिभ्यश्चेति इनिः) सोमे पीती इति सोमपीती; 'क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्' (वा०) इति सप्तमी समासः। आवुत्त = आपनमाप्। संपदादित्वात् विवप् (पा० ३।३।१८४) आपमुत्तनोति 'अन्योभ्योपि ———' (बा० ३/२/०१) इति डः। आह— ब्रू २३० के लट् लकार में प्रथम पाँच रूप विकल्प से आह, आहतुः, आहुः, आत्थ, आहथुः भी होते हैं।

टिप्पणी (Notes)

सोम :- प्राचीन वैदिक यज्ञीय साहित्य में सोम का नाम अत्यधिक आता है। यह एक लता होती थी, जिसका रस अमृत के समान माना जाता था। देवता भी इसके लिए तरसते थे और प्रत्येक यज्ञ में इसका पान होता था। इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। सुश्रुत चिकित्सास्थान अध्याय २९ में इसका विशद वर्णन मिलता है। इसे त्रिदोषघ्नी और परम रसायनी कहा गया है। किन्तु खेद है

१. पीती
२. भावुको (वी० रा०)
३. वि {अपि}

कि आज इसका नाम ही शेष रह गया है, व्यवहारतः पहिचान किसी को नहीं।

आवुत्तः— नाट्योक्ति में भगिनीपति को 'आवुत्त' कहते हैं। 'आवुत्तः' के स्थान में 'भावुकः' ऐसा भी पाठ है; 'भावुकः' का अर्थ वीरराघव ने 'पूज्यः' दिया है।

अथ किम् :— इसे अङ्गीकार के अर्थ (हाँ) में एक ही अव्यय माना जा सकता है, अथवा पृथक्-पृथक् दो अव्यय—अथ = अनन्तरं, भवद्वाक्यानन्तरम्, किम् = किमु वक्तव्यमिति शेषः।

गुरु निर्विघ्नः— अर्थात् ऋष्यश्रृंग तथा शान्ता दोनों का सोमपान (सोमयज्ञ) निर्विघ्न तो हो रहा है।

19. विश्वंभरा भगवती भवतीमसूत,

राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।

तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां,

येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ॥९॥

तत्किमन्यदाशास्महे। केवलं वीरप्रसवा भूयाः।

अन्वयः— भगवती विश्वंभरा भवतीम् असूत, प्रजापतिसमः राजा जनकः ते पिता। हे नन्दिनि, तेषां पार्थिवानां त्वं वधूः असि, येषां कुले सविता गुरुः, वयं च गुरुवः।

शब्दार्थ :— भगवती = माहात्म्यसम्पन्ना, देवी, विश्वंभरा = विश्व को धारण तथा पोषण करने वाली वसुन्धरा ने, भवतीम् = आपको। असूत = जन्म दिया है। प्रजापतिसमः = प्रजापति के समान, राजा जनकः = राजा जनक, ते = तुम्हारे, पिता = पिता, पालन करने वाले, हैं। नन्दिनि = हे आनन्ददायिनी, वत्से, त्वम् = तू, तेषाम् पार्थिवानाम् = उन भूपतियों की, वधूः = पतोहू है, येषाम् = जिनके, कुलेषु = कुलों में (अर्थात् कुल में), सविता = सूर्य, गुरुः = वंशप्रवर्तक है। वयम् च = और हम, {गुरुवः = उपदेश देनेवाले आचार्य, अथवा पुरोहित हैं}। तत् = तब, अन्यत् किम् = और क्या, आशास्महे = चाहें, प्रार्थना करें, केवलं = केवल, वीर प्रसवा = वीर सन्तान को जन्म देने वाली, भूयाः = होओ।

अनुवाद :— विश्व को भरण करने वाली देवी वसुन्धरा ने आपको जन्म दिया है, प्रजापति (ब्रह्मा) के समान राजा जनक तुम्हारे पिता हैं। हे आनन्ददायिनी (वत्से) उन {लोकविश्रुत} भूपतियों की तुम पतोहू हो, जिनके कुल में सूर्यदेव गुरु (वंशप्रवर्तक, आदिपुरुष) हैं और हम {गुरु = उपदेष्टा अथवा पुरोहित हैं}।

तब {इसके अतिरिक्त} और क्या चाहें (प्रार्थना करें), केवल {तुम} वीर

प्रसवा (वीर सन्तान को जन्म देनेवाली) होओ। [यही आशोर्वाद देते हैं]।

व्याकरण :- विश्व-√ भृ (धारणपोषणयोः) ३. प० + खच् ('संज्ञायां भृत्-' पा० ३।२।४६), मुम् च, स्त्रियां टाप्। असूत-√ सू (प्रसवे) २. आ०-लङ् प्र० ए० व०। प्रजापतिसम-प्रजापतिना प्रजापतेः वा समः; 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्' (पा० २।३।७) इति तृतीया षष्ठी वा ततः समासः। नन्दिनी-नन्दयति इति√ नन्द + णिच् + कर्त्तरि णिनि स्त्रियां ङीप्। पार्थिवाः-पृथिव्याः ईश्वराः, 'तस्येश्वरः' (पा० ५।४।४२) इति पृथिवी + अण। आशास्महे-आडः शास् इच्छायाम् इति इच्छार्थकः आङ् पूर्वकः शास् धातुः आत्मनेपदी। प्रसवः-प्रसूयते इति प्रसवः अपत्यम्, प्र-√ सू + अप् कर्मणि। भूयाः-√ भू (सत्तायाम्) १. प०-आशिषि लिङ्, म० पु० ए० व०।

टिप्पणी (Notes)

प्रजापतिसमः- अपने समय के प्रसिद्ध ब्रह्मवेत्ता तथा कर्मयोगी होने के कारण जनक प्रजापति (ब्रह्मा) के समान बताये गये हैं। उपनिषदों में उनको ब्रह्मवित्तम तथा ब्रह्मनिष्ठ राजा कहा गया है। वह जीवन्मुक्त थे (तु० 'अभयं वै जनकं प्राप्तोऽसि' वृ० उप० ४।२।४), तथा एक प्रसिद्ध कर्मयोगी थे (तु० 'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिताः जनकादयः' भ० गी०)।

येषां कुलेषु सविता गुरुः- सूर्यवंश का आरम्भ सूर्य (विवस्वान्) के पुत्र वैवस्वत मनु से माना जाता है (दे० विष्णुपुराण ४।१)।

वयम्० :- हम जैसे लोकवन्द्य ऋषि जिस कुल के गुरु हैं। यहाँ 'प्रजायाम् बहुवचनम्' मानना चाहिए, अथवा 'अस्मदो द्वयोश्च' (पा० १।२।५९)। इस सूत्र के अनुसार एकवचन (अहम्) के बदले बहुवचन (वयम्) का प्रयोग मानना चाहिए। यद्यपि 'सविशेषणस्य प्रतिषेधः' इस वार्तिक के अनुसार सविशेषण अस्मद् के एकवचन अथवा द्विवचन के अर्थ में बहुवचन का प्रयोग नहीं होता, किन्तु जहाँ विशेषण विधेय के रूप में हो वहाँ यह प्रतिषेध नियम नहीं लगेगा, 'वयं च गुरुवः' में 'गुरुवः' विधेय विशेषण है। अथवा 'वयम्' शब्द बहुवचन के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ माना जा सकता है, उस अवस्था में 'वयम्' से वसिष्ठ के अतिरिक्त वामदेव, विश्वामित्र आदि का भी ग्रहण करना होगा। छन्द वसन्ततिलका है। उपमा एवं तुल्योगिता अंलकार है।

20. रामः- अनुगृहीताः स्मः।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।

ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति^१। १०।।

अन्वयः— लौकिकानां साधूनां वाक् अर्थम् अनुवर्तते, पुनः आद्यानाम् ऋषीणां वाचम् अर्थः अनुधावति ।

शब्दार्थः— अनुगृहीताः = जिनपर अनुग्रह किया गया है ऐसे, स्मः = हम हैं। हि = क्योंकि, लौकिकानां साधूनाम् = लोकविदित अर्थात् साधारण महात्माओं की, वाक् = वाणी, अर्थम् = वस्तुको, अनुवर्तते = अनुसरण करती है। पुनः = किन्तु, आद्यानाम् ऋषीणाम् = पुरातन, लोकोत्तर ऋषियों की, वाचम् = वाणीको, अर्थः = वस्तु, अनुधावति = (उसके) पीछे-पीछे दौड़ती है, अनुसरण करती है।

अनुवादः— राम-हम अनुगृहीत (कृतार्थ, उपकृत) हैं। क्योंकि, लौकिक अर्थात् अवैदिक महात्माओं की वाणी तो वस्तु का अनुसरण करती है, किन्तु पुरातन (वैदिक अथवा लोकोत्तर) ऋषियों की वाणी के पीछे अर्थ स्वयं चलता है।

व्याकरणः— अनुगृहीत-अनु-√ ग्रह ९. उ० । लौकिक (वि०)-लोकेविदितः इति लौकिकः; लोक + ठञ् (पा० ५.१.४३, ४४)। साधु (पुं०) -साध्नोति धर्म, √ साध् + उ उणादि। आद्य (वि०)-आदौ भवः; आदि + यत् दिगादित्वात्।

टिप्पणी (Notes)

इस श्लोक के भाव की शाकुन्तल के 'भगवन् वरः खल्वेष नाशीः' (अंक ४), तथा 'तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पन्नः' (अंक ७) इन वाक्यों के भाव से तुलना की जा सकती है।

लौकिकानाम् :- घनश्याम ने इसका अर्थ 'अवैदिकानाम्' दिया है, वीरराघवने भी इस शब्द का यही अभिप्राय लिखा है। आद्यानां ऋषीणां लौकिकानाम् शब्द से वैपरीत्य सूचित करने के लिए आद्यानाम् शब्द दिया है अतः आद्यानाम् का अर्थ होगा, 'वैदिकानाम्' वैदिक ऋषि मन्त्रद्रष्टा थे निरुक्त में उन्हें 'साक्षात्कृत धर्माणः' कहा गया है। वसिष्ठ प्रसिद्ध मन्त्रद्रष्टा थे, उनका दिया हुआ आशीर्वाद अवश्य फलित होगा यही सोचकर राम ने उनके आशीर्वाद को सुनकर अपने आपको तथा सीता को अनुगृहीत माना है।

विशेष— यहाँ यह भी विचारणीय है कि कार्यकारणसम्बन्धादि तथा वस्तुगति का विचार करके उसके अनुसार वाणी का प्रयोग करने वाले लौकिक साधु हैं, ऋषि नहीं, किन्तु अर्थानुसन्धान के बिना ही अपनी तपः सिद्धि द्वारा सार्थक वाणी का प्रयोग करने वाले मन्त्रद्रष्टा ऋषि ही हो सकते हैं। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द तथा व्यतिरेक अलंकार है।

21. अष्टावक्रः— इदं च भगवत्याऽरुन्धत्या देवीभिः शान्तया च भूयो भूयः
संदिष्टम्। यः कश्चिद् 'गर्भदोहदोऽस्या भवति सोऽवश्यमचिरात्
'सम्पादयितव्य' इति।

रामः— क्रियते यद्येषा कथयति।

अष्टावक्रः— ननान्दुः पत्या च देव्याः संदिष्टमृष्यश्रृङ्गेण "वत्से। कठोरगर्भेति
नानीतासि। वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद्विनोदार्थमेव स्थापितः।
तत्पुत्रपूर्णोत्संगमायुष्मतीं द्रक्ष्याम" इति।

रामः— क्रियते यद्येषा कथयति।

शब्दार्थः :- इदं च = और यह, भगवत्या अरुन्धत्या = भगवती अरुन्ध-
ती द्वारा, देवीभिः = [दशरथ की] राजमहिषियों द्वारा, शान्तया च = और शान्ता
द्वारा, भूयो भूयः = बार-बार, संदिष्टम् = संदेश दिया गया है, यः = जो, कश्चिद्
= कोई, अस्याः = इसका। गर्भदोहदः = गर्भावस्था का, अभिलाष, भवति, हो
अचिरात् = शीघ्र, संपादयितव्यः = पूरा किया जाना चाहिए। यदि = जब, एषा =
यह, कथयति = कहेगी, क्रियते = किया जायेगा। च = और, ननान्दुः = ननदके,
पत्या = पति, ऋष्यश्रृङ्गेण = ऋष्य श्रृंग द्वारा, देव्याः = देवी [सीता] का, संदिष्टम्
= सन्देश दिया गया है—वत्से = हे बच्ची, कठोरगर्भा = [तू] पूर्ण गर्भवाली है, इति
= इसलिए, न आनीता असि = नहीं लाई गई है। वत्सः = वत्स, रामभद्रः =
रामभद्र, अपि = भी, त्वद् विनोदार्थम् = तेरे मनोरंजन के लिए, एव = ही, स्थापितः
= रखे गये हैं, तत् = अतः, पुत्रपूर्णोत्संगम् = पुत्र से भरी हुई है गोद जिसकी
ऐसी [तुझ], आयुष्मतीम् = आयुष्मती को, द्रक्ष्यामः = हम देखेंगे—इति = इस
प्रकार।

अनुवाद :- अष्टावक्र— और यह भगवती अरुन्धती द्वारा, देवियों द्वारा,
और शान्ता द्वारा बराबर संदेश दिया गया है—“जो कोई इसका गर्भावस्था का
अभिलाष हो, वह अवश्य शीघ्र पूरा किया जाना चाहिए।”

राम—जो यह कहेगी किया जायेगा।

अष्टावक्र (देवी सीता की) ननद के पति ऋष्यश्रृङ्ग द्वारा भी महारानी
(सीता) को सन्देश दिया गया है कि हे पुत्री, तू पूर्ण गर्भवाली है, इसलिये यहाँ नहीं
लाई गई है। वत्स रामभद्र भी तेरे मनोरंजन के लिये ही (अयोध्या में) रखें हैं। अतः
पुत्र से भरी हुई गोदवाली (तुझ) आयुष्मती को (हम) देखेंगे।

१. गर्भदोहदोदयः

२. मानयितव्यः

३. यद्येषा।

व्याकरण :- भूयोभूयः (भूयस् भूयस्)-आभीक्ष्ये द्विरुक्तिः। 'भूयस्' शब्द अव्यय है। संदिष्टम्-सम्-√ दिश् ६. प० + कर्मणि क्तः। सम्पादयितव्यः-सम्-√ पद ४. आ० + णिच् + तव्य। ननान्दुः- 'ननान्दु' (स्त्री०) का ष० ए० व०; 'मातृ' वत्। पत्या- 'पति' (पुं०) का तृ० ए० व०; समास में 'कवि' के समान; जैसे भूपतिना। आनीता-आ-√नी (प्रापणे) १. उ० + क्त। विनोदार्थम्- विनोदाय इदम् ('अर्थेन सह नित्यसमासः विशेष्यलिंगता च' वा०)। स्थापितः-√ स्था-णिच् + क्त। द्रक्ष्यामः-√ दृश् १. प० (पश्यति)-लृट् उ० पु० ब० व०।

टिप्पणी (Notes)

गर्भदोहदः- दोहम् (√ दुह-भावे घञ्) आकर्ष ददाति उत्पादयति इति दोहदः (दोहदं वा), जो किसी पदार्थ के प्रति आकर्षण उत्पन्न करता है, इच्छामात्र अथवा गर्भिणी की इच्छा 'दोहद' शब्द के साथ 'गर्भ' शब्द का प्रयोग विशेषार्थ के लिए ही है। गर्भकृतः दोहदः इति गर्भदोहदः। 'दोहद' के स्थान में 'दौहद' अथवा 'दौहृद' शब्द का भी प्रयोग मिलता है (द्विहृद = गर्भिणी)। 'दोहद' शब्द पुलिंग तथा नपुंसक दोनों हैं, दोहद की पूर्ति न होने से गर्भविकृति अथवा गर्भस्राव होने का भय रहता है ('दोहदस्याप्रदानेन गर्भे दोषमवाप्नुयात्')।

यद्येषा कथयति- राम के इस वचन से सीता की लज्जाशीलता सूचित होती है। इसके स्थान में 'यद्येषा कथयति' पाठ भी है, किन्तु इस पाठ से सीता के चरित्र की कोई विशेषता नहीं सूचित होती।

22. रामः- (सहर्षलज्जास्मितम्) तथाऽस्तु। भगवता वसिष्ठेन न किञ्चिदादिष्टोऽस्मि ?

अष्टावक्रः- श्रूयताम्।

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धा-

स्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।

युक्तः प्रजानामनुरंजने स्या-

स्तस्याद्यशो यत् परमं धनं वः ॥११॥

अन्वय :- जामातृयज्ञेन निरुद्धाः त्वं बालः एव असि राज्यं च नवम्। प्रजानाम् अनुरंजनेयुक्तः स्याः; तस्माद् यशः यत् वः परमं धनम्।

शब्दार्थ :- सहर्षलज्जास्मितम् = हर्ष, लज्जा तथा स्मित (मुस्कराहट) के साथ। निरुद्धाः = रोक लिए गये हैं। प्रजानाम् अनुरंजने = प्रजाओं के संतोषण में। युक्तः = निरत, संलग्न। तस्माद् = उस {प्रजानुरंजन} से। यशः (यशस्) = कीर्ति। वाः = आप लोगों का।

अनुवाद :- राम— (हर्ष, लज्जा तथा मुस्कराहट के साथ) ऐसा ही होवे। भगवान् वरिष्ठ द्वारा मुझे कुछ आदेश नहीं दिया गया है? अष्टावक्र—सुनिये— हम जामाता के यज्ञ के कारण रुके हुए हैं। तुम बालक ही हो, और नया राज्य है। प्रजाओं के संतोषण में निरत होओ, उससे यश [होता है], जो आप लोगों का उत्कृष्ट धन है।

व्याकरण :- श्रूयताम्—√ श्रु—भावे लोट्। निरुद्धाः—नि—√ रुध् ७. उ० + क्त। युक्तः—√ युज् ७. उ० + क्त। अनुरञ्जनं—अनु—√ रंज् (रागे) ४. उ० + भावेल्युट्। स्याः—√ अस् २. प०—विधिलिङ्, म० पु० ए० व०। वः— 'युष्मद्' का ष० ब० व०; अस्मद् यथा युष्मद् के द्वितीय चतुर्थी तथा षष्ठी में दो-दो प्रकार के रूप होते हैं; षष्ठी—तव, ते; युवयोः, वां; युष्माकम् वः।

टिप्पणी (Notes)

भगवता आदिष्टोऽस्मि :- इस वाक्य से राम का विनीत स्वभाव तथा गुरु के प्रति पूज्य भाव प्रकट होता है; उन्होंने 'संदिष्टोऽस्मि' न कहकर 'आदिष्टोऽस्मि' का प्रयोग किया है। इस श्लोक के भाव की तुलना के लिए दे० इसी अंक का श्लोक ४१। भगवान् वसिष्ठ का राम के प्रति यह संदेश सीता विवासन विषयक राम के निश्चय का प्रथम हेतु है।

युक्तः प्रजानामनुरंजने स्याः— भारतीय संस्कृति में रामराज्य की कल्पना आदर्श मानी जाती है और उसका बीज वसिष्ठ जी के इस आदेश में निहित है। राजा शब्द की निष्पत्ति ही प्रजाओं का रंजन करने से होती है, वसिष्ठ का आदेश है कि राजा का यश तभी होता है जब वह प्रजाओं का अनुराग भाजन बना रहता है। इसकी पुष्टि में उन्होंने राम के पूर्वजों का ही उदाहरण दिया है कि तुम्हारे पूर्वजों ने यश को ही परम धन माना है, उनका यश इसीलिए हुआ कि वे प्रजाओं के अनुरंजन में युक्त रहते थे। तुम नये राजा हो तुम्हें भी इस आदर्श का पालन करना चाहिए।

तस्माद्यशः — घनश्याम ने इसके स्थान में 'स्वस्माद्यशः' पाठ रक्खा है, जिसका अर्थ है 'अपने प्राणों से भी यश [अधिक उत्कृष्ट धन है]'; तु० 'अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद्यशोधनानां हि यशो गरीयः' रघु० १४।३५। इन्द्रवज्रा छन्द तथा काव्यलिङ्ग अलंकार है।

23— रामः— यथा 'समादिशति भगवान् मैत्रावरुणिः।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।

आराधनाय 'लोकानां मुंचतो नास्ति मे व्यथा'। १२॥

सीता— अदो जेव्व 'राहवकुलधुरंधरो अज्जउत्तो। [अतएव राघवकुलधुरंधर आर्यपुत्रः]

अन्वयः— लोकानाम् आराधनाय स्नेहं, दयां तथा सौख्यं यदि वा जानकीम् अपि मुञ्चतः मे व्यथा न अस्ति।

शब्दार्थः— समादिशति = आदेश देते हैं। मैत्रावरुणिः = मित्र तथा वरुण की सन्तान, वसिष्ठ। स्नेहं = भार्यादि विषयक अनुराग। सौख्यं = सुख। आराधनाय = अनुरञ्जन के लिए। राघवकुलधुरंधरः = रघुकुल में अग्रगण्य, रघुकुलश्रेष्ठ।

अनुवादः— राम-भगवान् मैत्रावरुणि (वसिष्ठ) जैसा आदेश देते हैं। प्रजाओं के अनुरञ्जन के लिए प्रेम को, दया को, सुख को अथवा जनकतनया [सीता] को भी छोड़ते हुए मुझे पीड़ा नहीं है। सीता—अतएव आर्यपुत्र रघुकुल में अग्रगण्य हैं।

व्याकरणः— मैत्रावरुणिः (पुं०)—मित्रश्च वरुणश्चेति मित्रावरुणौ, 'देवताद्वन्द्वे च' (पा० ६।३।२६) इस सूत्र के अनुसार नियतसाहचर्य के कारण मित्र तथा वरुण इन दोनों देवताओं के द्वन्द्व में पूर्वपद के अकारको आनङ् होता है। मित्रावरुणयोरपत्यं पुमान् मैत्रावरुणिः, 'अत इज्' इति अपत्यार्थे इज्। सौख्यं—मुख + स्वार्थे ष्यञ्। लोकानामाराधनाय— लोकान् आराधयितुम्, 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' (पा० २।३।१५) इति चतुर्थी। मुञ्चतः—√ मुच् + शतृ, ष० ए० व०, व्यथा—√ व्यथ् १ आ० + अङ् भिदादित्वात्। धुरंधरः—धुरं धरति, धुर्—√ धृ + खच् मुम् निपातः।

टिप्पणी (Notes)

मैत्रावरुणिः— मित्र तथा वरुण देवताओं का पुत्र, वसिष्ठ। उत्पत्ति के लिए दे० रामायण, उत्तरकाण्ड सर्ग ५७, ६७ तथा ऋ० वे० मं० ७, सूक्त ३३, ऋ० ११ पर सायण भाष्य।

विशेषः— इस श्लोक से राम के चरित्र की उत्कृष्टता पूर्णतया स्फुट होती है। राम की दृष्टि में प्रजा का हितसाधन ही उनका सर्वोपरि कर्तव्य है, इस कर्तव्य का पालन करने के लिए वे अपना सर्वस्व त्यागने के लिए उद्यत हैं। यदि

१. आह।

२. लोकस्य।

३. राहवधुरन्धरो।

वा जानकीमपि—इन शब्दों में सीता के भावी विवासन की सूचना निहित है, अतएव यह नाटक का बीज है। जानकीम्—रामने यहाँ 'सीता' न कहकर 'जानकी' शब्द का प्रयोग किया है, इस पर वीरराघव कहते हैं—“सीतामित्यनुक्त्वा जानकीमित्युक्तिर्लोकाराधनापेक्षया ब्रह्मवित्तमजनकानुरोधोऽप्यकिंचित्कर इति सूचयति।”

अतएव इ० :- राम के मुख से अपने त्याग की बात सुनकर भी सीता को विक्षोभ नहीं होता है, किन्तु वे कर्तव्यनिष्ठा के लिए राम की सराहना करती हैं (तु०—‘दिष्ट्या अपरिहीनराजधर्मः स राजा’ अंक ३), इससे सीता के चरित्र की उदात्तता ध्वनित होती है। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द तथा तुल्ययोगिता एवं अर्थापत्ति अलंकार है।

रामः— कः कोऽत्र भोः। ‘विश्राम्यतामष्टावक्रः।

अष्टावक्रः— (उत्थाय परिक्रम्य च) अये, कुमारलक्ष्मणः प्राप्तः।

(इति निष्क्रान्तः)

शब्दार्थ :- विश्राम्यताम् = विश्राम कराया जाय। प्राप्तः = आया है।

अनुवाद :- राम—अरे, यहाँ कोई है ? अष्टावक्र को विश्राम कराया जाय।

अष्टावक्र— (उठकर और घूमकर) अये, कुमार लक्ष्मण आये हैं।

(ऐसा कहकर निकल जाते हैं)

टिप्पणी (Notes)

विश्राम्यताम्— इसके स्थान में ‘विश्राम्यतात्’ पाठ भी मिलता है, ‘विश्राम्यतात्’ = वि-√श्रम्-कर्तरि आशिषि परस्मैपद लोट्, तातङ्, विश्रमं प्राप्नोतु, विश्राम करें। अष्टावक्र के इस वाक्य से कुमार लक्ष्मण के प्रवेश की सूचना मिलती है, ‘नासूचितं विशेत् पात्रम्’ भरत।

लक्ष्मणः— जयति जयत्यार्यः! आर्य! तेन चित्रकरेणास्मदुपदिष्टमार्यस्य चरितमस्यां वीथिकायामभिलिखितम्। तत्पश्यत्यार्यः।

रामः— जानासि वत्स दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुम्। तत्कियन्तमवधिं यावत् ?

लक्ष्मणः— यावदार्याया हुताशने विशुद्धिः।

रामः— शान्तं पापम्! (ससान्त्ववचनम्।)

१. विश्राम्यतात्, विश्राम्यता भगवान्

२. अर्जुनेन चिह्नाकरेण (वी० रा०)

३. वीथ्याम्

४. कियानवधिः

५. ‘पापम् (ससान्त्ववचनम्)’ इत्येतन्नास्ति क्वचित्।

शब्दार्थः— अस्मदुपदिष्टम् (अस्मद् उपदिष्टम्) = हमारे द्वारा बतलाया हुआ। चरितम् = कर्म, जीवनवृत्त। वीथिका (स्त्री०) = चित्रभित्ति, गृह का वह भाग जहाँ चित्र बने हों। अभिलिखित = चित्रित। दुर्मनायमाना = खिन्न, उदास। कियन्तम् अवधिं यावत् = कितनी सीमा तक, कहाँ तक। यावत् = जहाँ तक। हुताशन = अग्नि।

अनुवाद :— (प्रवेश करके) लक्ष्मण— आर्य की जय हो। आर्य, उस चित्रकार से हमारे द्वारा वर्णित आर्य का चरित इस चित्रभित्ति पर चित्रित किया गया है; उसे आर्य देखें।

राम— वत्स, [तुम] खिन्न मनवाली देवी (सीता) का मनोरंजन करना जानते हो। तो [चरित की] कितनी सीमा पर्यन्त [वह चित्र खींचा गया है]?

लक्ष्मण— जहाँ तक आर्या (पूजनीया) की अग्नि में शुद्धि [हुई]?

राम— पाप शान्त हो (अर्थात् ऐसा मत कहो)। (अत्यन्त मधुर वचनों के साथ)।

टिप्पणी (Notes)

विशेषः— लक्ष्मण के इस वाक्य से सीताविवासनरूप व्यापार की सिद्धि के लिए आलेख्यदर्शन रूप व्यापार का आरम्भ होता है, जो नाटक की 'कार्यसंधि' की 'प्रयत्न' नामक अवस्था है ("अपश्यतः फलप्राप्तिं यो व्यापारः फलं प्रति। परं चोत्सुक्यगमनं प्रयत्नः परिकीर्तितः।" नाट्यशास्त्र)।

कियन्तमवधिं यावत्ः— 'यावत्' यहाँ अधिकारार्थक अव्यय है; इसलिए 'कियन्तमवधिम् अधिकृत्य' ऐसा अर्थ होता है, और 'अवधिम्' अन्तर्भूत अधिकरण क्रिया का कर्म है।

शान्तं पापम्ः— यह एक लोकोक्ति है, इसमें 'शान्तम्' पद वारणार्थक मकारान्त अव्यय है ('अव्ययं वारणे शान्तम्' मे० को०)। इष्टजन के प्रति कहे हुए अनिष्ट वचनों को सुनकर 'ऐसा न कहो' इस अर्थ में हितैषी व्यक्ति द्वारा इस उक्ति का प्रयोग होता है।

26. रामः— उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः।

तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः॥१३॥

देवि देवजनसंभवे, प्रसीद। एष ते जीवितावधिः प्रवादः।

अन्वयः—उत्पत्तिपरिपूतायाः अस्याः पावनान्तरैः किम्। तीर्थोदकं च वह्निः च अन्यतः शुद्धिं न अर्हतः।

शब्दार्थः— उत्पत्तिपरिपूतायाः अस्याः = जन्म से ही शुद्धतम इस [सीता] का। पावनान्तरैः = अन्य पवित्रताकारक पदार्थों से किम् = क्या [प्रयोजन]।

तीर्थोदकम् = तीर्थका जल। वह्निः च = और अग्नि। अन्यतः = किसी औरसे। शुद्धिम् न अर्हतः = शुद्धिकी अपेक्षा नहीं रखते हैं। देवि = हे महारानी! देवयजनसंभवे = यज्ञभूमि से उत्पन्न हुई [तुम]। प्रसीद=प्रसन्न होओ, खेद मत करो। जीवितावधि = जीवनपर्यन्त स्थायी। प्रवादः = अपवाद, निन्दा।

अनुवाद :- राम-जन्म से ही शुद्धतम इस [सीता] का अन्य पवित्रताकारक पदार्थों से क्या [प्रयोजन है]? तीर्थ का जल और अग्नि किसी अन्य से शुद्धि की अपेक्षा नहीं रखते हैं। यज्ञभूमि से उत्पन्न हे देवि, प्रसन्न होओ (शोक त्यागो)। यह तुम्हारा जीवनपर्यन्त रहनेवाला अपवाद है।

व्याकरण :- पावनान्तरैः—पावयन्तीति पावनानि, 'नन्दिग्रहि—' (पा० ३११३४) इति ल्युः, अन्यानि पावनानि, पावनान्तराणि, 'मयूरव्यंसकादयश्च' (पा० २११७२) इतिनित्यसमासः। देवयजनसंभवे— इज्यते इति यजनं, √ यज् १ उ० + भावे ल्युट्, देवानां यजनं यत्र तद् देवयजनं। यद्वा देवाः इज्यन्ते यत्र, 'करणाधिकरणयोश्च' (पा० ३।३।११७) इति अधिकरणे ल्युट् प्रसीद—प्र—√ सद (षदलृ) १ प०—लोट् म० पु० ए० व०।

टिप्पणी (Notes)

उत्पत्तिपरिपूतायाः— सीता अयोनिजा है, वह न केवल साधारण भूमि से किंतु देवयज्ञभूमि से उत्पन्न हुई है, अतः वह उत्पत्ति से ही परिपूत (पूर्णतया पवित्र) है।

प्रसीद :- राम के प्रश्न पर लक्ष्मण द्वारा हुताशनविशुद्धि का निर्देश किये जाने पर सीता के विक्षुब्ध होने की सम्भावना थी, क्योंकि इससे सीता के मन में अग्निशुद्धि के समय उसके प्रति कहे हुए राम के कटु वाक्यों तथा अन्य घटनाओं की स्मृति जागरित हो गई होगी; अतः राम ने सीता के क्षोभ तथा क्लेश को दूर करने के लिए प्रसीद इत्यादि वचन कहे। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है तथा प्रतिवस्तूपमा व दृष्टान्त अलंकार है।

27— 'कष्टं' जनः कुलधनैरनुरञ्जनीय—

'स्तत्रो' अयदुक्तमशिवं न 'हि तत्क्षमं ते।

नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा

मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ॥१४॥

अन्वयः— कष्टं, कुलधनैः जनः अनुरञ्जनीयः, तत् यत् नः अशिवम् उक्तम्

१. कष्टो, क्लिष्टो जनः क्लिजनैः (वी०रा०)।

२. तन्मे।

३. दुरुक्तम्।

४. च।

तत् हि ते क्षमं न। सुरभिणाः कुसुमस्य मूर्ध्नि स्थितिः नैसर्गिकी सिद्धा, चरणैः अवताडनानि न।

शब्दार्थ :- कष्टम् = दुःख है, कुलधनैः = कुल [का यश] ही है धन जिनका ऐसे व्यक्तियों द्वारा। जनः = लोक, प्रजा। अनुरञ्जनीयः = संतोषणीय है। तत् = इस कारण से। यत् = जो। नः = हमारा। अशिवम् = अशुभ, अमंगलजनक। उक्तम् = वचन [है]। तत् = वह। हि = निश्चय से। ते = तुम्हारे। क्षमं = योग्यं। न = नहीं है। सुरभिणः कुसुमस्य = सुगन्धित पुष्प का। स्थितिः = अवस्थान। मूर्ध्नि = सिरपर। नैसर्गिकी = स्वाभाविक। सिद्धा = प्रसिद्ध है। चरणैः = चरणों द्वारा। अवताडनानि = प्रहार। न = नहीं।

अनुवाद :- राम— दुःख है, कुल [का यश] ही है धन जिनका ऐसे व्यक्तियों द्वारा लोक को प्रसन्न करना ही पड़ता है। इस कारण से जो हमारा अशुभ वचन है, वह निश्चय ही तुम्हारे योग्य नहीं है। सुगन्धित पुष्प का सिर पर अवस्थान स्वाभाविक प्रसिद्ध है, [उसपर] चरणों से प्रहार [स्वाभाविक प्रसिद्ध] नहीं है।

व्याकरण :- अनुरञ्जनीयः—अनु—√ रञ्ज्—णिच् + अनीय। उक्तम्—√ वच् + क्त ('नपुंसके भावे क्तः'), सम्प्रसारण ('वचिस्वपियजादीनां किति' पा० ६।१।५)। नैसर्गिकी—निसर्गाद् आगता, निसर्ग + ठक् + स्त्रियां डीप्। स्थितिः—√ स्था + क्तिन्।

टिप्पणी (Notes)

कष्टं :- घनश्याम ने इसके बदले 'कष्टों' पाठ माना है। 'कष्टः' का अर्थ होगा 'कष्टकरः'; ओर 'कष्टो जनः' इत्यादि की व्याख्या इस प्रकार होगी—'कष्टो जनः दुष्टोऽपि लोकः कुलधनैः संतोषणीयः। वीरराघवने 'किलष्टो जनः किल जनैरनुरञ्जनीयः' ऐसा पाठ रक्खा है ओर उसकी व्याख्या इस प्रकार की है—'किलष्टो जनो दुःखितो जनो जनैरनुरञ्जनीयः क्लेशं विस्मर्य लालनीय इत्यर्थः, न तु पूर्वानुभूत दुःखस्मारणीन क्लेशयितव्य इति।'

कुलधनैः :- 'कुल' शब्द का यहाँ उपादानलक्षणा से 'कुलकीर्तिः' ऐसा अर्थ होगा। परन्तु अंक ७ के श्लोक ६ ('इक्ष्वाकूणां कुलधनमिदं यत्समाराधनीयः' इत्या०) में 'कुल' शब्द का मुख्यार्थ ही ग्रहण करना होगा।

नो यदुक्तं :- अग्निशुद्धि से पूर्व सीता के प्रति राम के वचन—“प्राप्तचारित्र संदेहा मम प्रतिमुखे स्थिता। दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढम्।। तदगच्छ त्वमनुज्ञाता यथेष्टं जनकात्मजे। एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया (रामा०)। 'किलष्टो जनः' इत्यादि पाठ होने पर 'नो यदुक्तं' से तात्पर्य लक्ष्मण द्वारा

कहे हुए 'यावदार्यायाः हुताशने विशुद्धिः' इस वचन से है।

उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक
की व्याख्या

नैसर्गिकी.....अवताडनानि :- 'जिस प्रकार सुरभित कुसुम सिर पर धारण किये जाते हैं, उसी प्रकार सीता का पूत चरित्र भी सराहने योग्य है, तथा जिस प्रकार वे पुष्प पैरों से रौंदे नहीं जाते, उसी प्रकार सीता के पवित्र चरित्र में किसी भी प्रकार का दोषारोपण करना अनुचित है' ऐसा राम का अभिप्राय है। श्लोक के ये दोनों चरण मालतीमाधव (९।५१) में भी मिलते हैं, जहाँ 'चरणैरवताडनानि' के स्थान में 'मुसलैर्बत कुट्टनानि' पाठ है। इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द तथा दृष्टान्त अलंकार है।

28. सीता- होदु अज्जउत्त होदु। एहि पेक्खद्द दाव दे चरिदम्। (इत्थुत्थाय 'परिक्रामतः)। भवतु आर्यपुत्र भवतु। एहि प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम्}।

लक्ष्मण:- इदं तदालेख्यम्।

सीता- (निर्वर्ण्य) के एदे उपरिणिरन्तरव्विदा उवत्थुवन्दि विअ अज्जउत्तम्? [के एते उपरिनिरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवार्यपुत्रम् ?]

शब्दार्थ :- प्रेक्षामहे = देखते हैं, देखें। तावत् = सबसे पहले। आलेख्यं = चित्र। निवर्ण्य = देखकर। उपरिनिरन्तरस्थिताः = उपर (आकाश में) [एक दूसरे से] सटकर खड़े हुए। उपस्तुवन्ति = स्तुति कर रहे हैं।

अनुवाद :- सीता- होने दीजिये, आर्यपुत्र, होने दीजिये। आइये, अब आपके चरित को देखें। (इन वचनों के अनन्तर उठकर दोनों घूमते हैं)। लक्ष्मण-यही वह चित्र है। सीता- (देखकर) कौन ये उपर [एक दूसरे से] सटकर खड़े हुए आर्यपुत्र की मानों स्तुति कर रहे हैं?

टिप्पणी (Notes)

निर्वर्ण्य:- 'निस्' पूर्वक वर्ण (१०. उ०) धातु का अर्थ देखना, अथवा ध्यान से देखना है, दे० 'निर्वर्णनं तु निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम्' (अ० को०)।

29. लक्ष्मण:- देवि, एतानि तानि सरहस्यानिः जृम्भकास्त्राणि यानि भगवतः 'कृशाशवात् 'कौशिकमृषिमुपसंक्रान्तानि', तेन च ताटकावधे प्रसादीकृतान्यार्यस्य।

परिक्रामति।

तावद्।

परःसहस्रं शरदाम्।

अदर्शन्।

मुनयः।

शब्दार्थ :- सरहस्यानि = (प्रयोग तथा संहार के) मन्त्रों सहित। जृम्भकास्त्राणि = जंभाई लाने वाले। अस्त्र भगवतः कृशाश्वत् = समर्थ ऋषि कृशाश्व से। कौशिकम् = विश्वामित्र को। उपसंक्रान्तानि = प्राप्त हुए। तेन च आर्यस्य प्रसादीकृतानि = और उन्होंने आर्य राम को अनुग्रहपूर्वक दिये।

अनुवाद - लक्ष्मण- हे देवि, मन्त्रों सहित वे जृम्भक अस्त्र हैं जो भगवान् कृशाश्व से कौशिक (विश्वामित्र) को प्राप्त हुये और उन्होंने ताड़का वध करते समय आर्य राम को अनुग्रहपूर्वक दिये।

30. राम:- वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि।

राम- हे देवि, दिव्य अस्त्रों को नमस्कार करो।

राम:- ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा

परःसहस्राः शरदस्तपांसि।

‘एतान्यपश्यन्गुरवः’ पुराणाः

स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि ।।१५।।

अन्वय:- ब्रह्मादयः पुराणाः गुरवः ब्रह्महिताय परःसहस्राः शरदः तपांसि तप्त्वा एतानि स्वानि तपोमयानि तेजांसि एव अपश्यन्।

शब्दार्थ :- ब्रह्मादयः = ब्रह्मा आदि। पुराणः = प्राचीन। गुरवः = गुरुओं ने। ब्रह्महिताय = वेद की रक्षा के लिए। परःसहस्राः = सहस्र वर्षों से अधिक (‘शरदः’ का विशेषण)। शरदः = वर्षों तक। तपांसि = तपों को। तप्त्वा = तपकर। स्वानि एव = अपने ही। तपोमयानि = तपःसमुद्भूत। तेजांसि = तेजों को। एतानि = इनको। अपश्यन् = देखा।

अनुवाद :- ब्रह्मा आदि प्राचीन गुरुओं ने वेद [प्रतिपाद्य धर्म] के हित के लिए सहस्र से अधिक वर्षों तक तपस्या करके अपने ही तपः समुद्भूत तेजों के रूप में इन [जृम्भकास्त्रों] को देखा।

व्याकरण :- परःसहस्राः - सहस्रात् पराः इति परःसहस्राः, ‘पंचमी भयेन’ (पा० २।१।३७) सूत्र के ‘पंचमी’ इस योगविभाग से पंचमी तत्पुरुष होता है, अथवा सुप्सुपासमास होता है, ‘राजदन्तादिषु परम्’ (पा० २।२।३१) इस सूत्र के अनुसार ‘सहस्र’ शब्द का परनिपात होता है, तथा पारस्करादित्वात् सुट्का आगम होकर ‘परःसहस्राः’ बनता है। श्रीभोज ‘परस्’ शब्द को निपात मानते हैं, जैसे ‘परोक्ष’ में।

१. परःसहस्रं शरदां।

२. अदर्शन्।

३. मुनयः।

ब्रह्महितायः— 'ब्रह्मन्' शब्द जब नपुंसक (ब्रह्म) होता है, तब इसके अर्थ वेद, तत्त्वज्ञान, तथा तप होते हैं, किन्तु पुलिङ्ग 'ब्रह्मन्' (ब्रह्मा) शब्द का अर्थ ब्राह्मण अथवा ब्रह्मा नामक प्रजापति है, 'वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म, ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः' (अ० को०)। 'ब्रह्महिताय' में 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ 'वेद' है, वेद के हित के लिए।

परःसहस्राः शरदः— इसके स्थान में 'पर-सहस्रं शरदां' ऐसा पाठ भी है, वीरराघव ने 'परःसहस्रं शरदः' पाठ भी ठीक माना है; 'परःसहस्रं' का अर्थ भी 'सहस्रात् पराः' ऐसा होता है; तथा 'विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्योपसंख्ययोः' इस वचन के अनुसार 'परःसहस्रं' शब्द एकवचन में प्रयुक्त हुआ है; जैसे सहस्रं पुरुषाणाम् अथवा सहस्रं पुरुषाः इत्यादि।

एतान्यपश्यन् :- 'अपश्यन्' शब्द यहाँ पारिभाषिक है। ऋषि लोग 'मन्त्रद्रष्टारः' कहे गये हैं, 'मन्त्रकर्तारः' नहीं।

तपोमयानि :- तपसः आगतानि, कार्यकारणभावात् तपसाम् अस्त्राणां चाभेददर्शनम्। यह श्लोक महावीर चरित (१४२) में भी मिलता है।

31. सीता— णमो एदाणां {नम एतेभ्यः}।

रामः— सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति।

सीता— अणुगृहीदमिह {अनुगृहीतास्मि}।

शब्दार्थ :- सर्वथा = सब प्रकार से, निश्चय से। त्वत्प्रसूतिम् = तेरी सन्तान को। उपस्थास्यन्ति = प्राप्त होंगे, सेवा करेंगे।

अनुवाद :- सीता—इनको नमस्कार है। राम—सब प्रकार से अब {ये} तुम्हारी संतान को प्राप्त होंगे। सीता— मैं अनुगृहीत (उपकृत) हूँ।

टिप्पणी (Notes)

एदाणांः— षष्ठी का बहुवचन। प्राकृत में चतुर्थी विभक्ति नहीं है। किन्तु संस्कृत में 'नमः' के योग में चतुर्थी प्रयुक्त होती है, अतः 'एदाणां' का संस्कृत रूप 'एतेभ्यः' होगा।

32. लक्ष्मणः— एष मिथिलावृत्तान्तः।

सीता— अहमे! दलन्तणवणीलुप्पलसामलसिणिद्धमसिणसोहमाणमंसलेन देहसोहग्गेण विम्ह— अत्थिमिदताददीसन्तसोम्मसुन्दरसिरी 'अणादरखंडि' दसंकरसरासणो सिंहण्डमुद्धमुहमण्डलो' अज्जउत्तो आलिहिदो।

१. अनाआस

२. क्खु—थु—डिद् (झुटित)

३. मुद्धमंडणो

[अहो! दलत्रवनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमसृणशोभमानमांसलेन देहसौभाग्येन विस्मयस्तिमिततात— दृश्यमानसौम्यसुन्दरश्रीरनादरखण्डितशंकरशरासनः शिखण्डमुग्धमुखमण्डल आर्यपुत्र आलिखितः।]

शब्दार्थ :- दलत् = खिलता हुआ, ('नीलोत्पल' का विशेषण) नीलोत्पल = नीलकमल। स्निग्ध = चिकना। मसृण = कोमल। शोभमान = शोभायुक्त। मांसल = मांस से भरा हुआ, पुष्ट। देहसौभाग्य = शरीर का सौन्दर्य अथवा माधुर्य। विस्मयस्तिमित = विस्मय (आश्चर्य) से निश्चल, ('तात' का विशेषण) सौम्य = शांत, आह्लादजनक, ('श्री' का विशेषण) सुन्दर = मनोहर, ('श्री' का विशेषण) श्रीः = शोभा। शरासन = धनुष। शिखण्ड = शिर के दोनों ओर कानों के उपर लटकने वाले बालों के गुच्छे काकपक्ष। मुग्ध = मनोहर, ('मुखमण्डल' का विशेषण)।

अनुवाद :- लक्ष्मण— यह मिथिला का वृत्तान्त [चित्रित] है। सीता— अहो! खिलते हुए नवीन नीलकमल के समान श्याम, चिकने, कोमल, शोभायुक्त तथा पुष्ट शरीर के सौन्दर्य से [विशिष्ट], [सौन्दर्याधिक्य के कारण] आश्चर्य से निश्चल हुए पिता (जनक) द्वारा देखी जाती हुई शान्त तथा मनोहर शोभा है जिनकी ऐसे, अवहेलनापूर्वक तोड़ दिया है शिवधनुष जिन्होंने ऐसे, [तथा] काकपक्ष (केशशिखाओं) से मनोहर है मुखमण्डल जिनका ऐसे, आर्यपुत्र चित्रित किये गये हैं।

टिप्पणी (Notes)

अहोहे :- आश्चर्यसूचक अव्यय है। यह अव्यय स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त होता है। किन्हीं के मत में 'अहोहे' शब्द प्राकृत में ही प्रयुक्त होता है, संस्कृत में इसके लिए 'अहो' शब्द है।

मांसलेन :- 'मांसल' शब्द का मुख्य अर्थ 'दृढमांसयुक्त' अथवा 'पुष्टगात्रवाला' है (मांसम् अस्मिन् अस्ति, मांस + लच्); परन्तु उपचार से इसका अर्थ यहाँ 'प्रभूत' (अत्यधिक बढ़ा हुआ) है; यह शब्द यहाँ 'देहसौभाग्येन' का विशेषण है। तुल०—'ध्वनिश्च मांगल्यमृदङ्गमांसलः' (उत्तरराम० ६।२५), यहाँ 'मांसल' शब्द ध्वनिका विशेषण है, और उसका अर्थ 'गंभीर' है।

श्यामलस्निग्धेत्यादि :- शब्दों के वाच्य श्यामलत्व स्निग्धत्व इत्यादि धर्म देह के ही हो सकते हैं, 'देहसौभाग्य' के नहीं, अतः यहाँ 'देहसौभाग्य' से तात्पर्य 'सुभगदेह' लिया जायेगा [दि० 'भावानयनेन द्रव्यानयनम्' महाभाष्य]।

33. लक्ष्मणः—आर्ये, पश्य पश्य—

सम्बन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति।

गौतमश्च शतानन्दो जनकानां पुरोहितः।१६।।

[अन्वयः— एषः तव तातः सम्बन्धिनः अर्चति तथा जनकानां पुरोहितः, गौतमः शतानन्दः, वसिष्ठादीन् अर्चति] ।

शब्दार्थः — एषः = यह । तव = तेरा । तातः = पिता (जनक) । सम्बन्धिनः = सम्बन्धियों (दशरथ आदि) को । अर्चति = पूजता है । जनकानाम् = जनकवंशियों का । पुरोहितः = पुरोहित । गौतमः = गौतम का पुत्र । शतानन्दः = शतानन्द नामक मुनि । वसिष्ठादीन् = वसिष्ठ आदि को । अर्चति = पूजता है । द्रष्टव्यम् = दर्शनीय, देखने योग्य ।

अनुवाद :— लक्ष्मण— आर्ये, देखें, देखें — ये आपके पिता [दशरथ आदि] सम्बन्धियों को पूज रहे हैं; तथा जनकवंश के पुरोहित, गौतम के पुत्र शतानन्द, वसिष्ठ आदि को पूज रहे हैं । राम— यह [दृश्य] देखने योग्य है ।

व्याकरण :— गौतमः—गौतमस्यापत्यं पुमान्, गौतम + अपत्यार्थे अण् ('ऋष्यन्धक—', पा० ४।१।१४) । पुरोहितः—पुरो धीयते इति पुरोहितः, पुरस्—√धा + कर्मणि क्तः ।

टिप्पणी (Notes)

वीरराघव ने इस श्लोक की व्याख्या इसी प्रकार की है; किन्तु अधिकतर टीकाओं में इस श्लोक का अर्थ कुछ भिन्न प्रकार से दिया गया है— 'आपके पिता तथा जनकवंश के पुरोहित, गौतम शतानन्द, वसिष्ठ आदि सम्बन्धियों की पूजा कर रहे हैं' । श्लोक की रचना को देखते हुए भी यही अर्थ ठीक प्रतीत होता है । परन्तु ऐसा अर्थ करने पर 'अर्चति' के स्थान पर 'अर्चतः' ऐसा द्विवचन रूप अधिक उचित था ।

गौतमः शतानन्दः— गौतम ऋषि तथा अहल्या के पुत्र, शतानन्द, जनक कुल के पुरोहित थे ।

जनकानाम् :— यहाँ बहुवचन 'वंश' सूचक है, यथा 'रघूणाम्' (उत्तरराम० १।१७; रघु० १।१९) । अयोध्या के रघुकुल के समान मिथिला का जनक कुल (अथवा विदेहकुल) भी एक प्रसिद्ध राजवंश था । सीता के पिता का नाम 'सीरध्वज' था (दे० उत्तरराम० ४।१९) ।

द्रष्टव्यम् :— वीरराघव ने इसके स्थान पर 'सुश्लिष्टं' पाठ दिया है जिसका अर्थ किया है 'सुतरां युक्तम्' । इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द, तुल्योगिता अलंकार है ।

34. रामः— जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः।

यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दनः ॥१७॥

अन्वयः— जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य प्रियः न। यत्र स्वयं कुशिकनन्दनः दाता ग्रहीता च।

शब्दार्थः— जनकानां = जनककुलवालों का। रघूणाम् च = और रघु कुलवालों का। सम्बन्धः = विवाह सम्बन्ध। कस्य न प्रियः = किसको अभीष्ट नहीं है। यत्र = जिसमें। स्वयम् = स्वयं, अपने आप। कुशिकनन्दनः = कुशिक की संतान (विश्वामित्र)। दाता = [कन्या का] दान करने वाले। ग्रहीता च = और [कन्या का] ग्रहण करने वाले हैं।

अनुवाद :- जनकवंशियों और रघुवंशियों का सम्बन्ध किसको प्रिय नहीं है, जहाँ पर स्वयं ऋषि विश्वामित्र दाता और ग्रहीता हैं।

व्याकरण :- जनकानाम्— जनकस्य गोत्रापत्यानि पुमांसः जनकाः; बहुवचन में गोत्रापत्य प्रत्यय (अञ्) का लुक् (पा० २।४।६४)। ग्रहीता—√ग्रह् + तृच्।

टिप्पणी (Notes)

यत्र दाता ग्रहीता० :- दाता—कन्यादान करने वाला; ग्रहीता—कन्या को पुत्रवधू के रूप में ग्रहण करने वाला। विश्वामित्र इन दोनों कुलों के पूज्य थे और उनकी आज्ञा से ही राम ने धनुष तोड़कर सीता को विवाहना स्वीकार किया था तथा जनक कन्यादान करने को तत्पर हुए थे इसीलिए उन्हें उपचारात् दाता और ग्रहीता कहा गया है। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

35. सीता—एदे क्खु तत्कालकिद्गोदानमंगला चत्तारो भादरो विआहदिक्खिदा तुम्हे। अम्हो, जाणामि तस्सि जेव्व पदेसे तस्सि जेव्व काले वत्तामि।

{एते खलु तत्कालकृतगोदानमंगलाश्चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम्। अहो, जानामि तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वर्ते।}

रामः—एवम्।

शब्दार्थ :- गोदान = केशान्त—संस्कार नामक क्षौरकर्म। विवाहदीक्षिताः = विवाह में दीक्षित हुए, विवाह के हेतु व्रत का पालन करते हुए।

अनुवादः— सीता — उसी समय किया गया है गोदान (केशान्त संस्कार) नाम मंगलकर्म जिनका ऐसे ये विवाह में दीक्षित आप चारों भाई हैं। अहो, मुझे लग रहा है कि मैं उसी प्रदेश में तथा उसी काल में वर्तमान हूँ। राम— हाँ [जैसा आप कहती हैं, वैसा ही है]।

व्याकरण :- गोदानं—गावः केशाः दीयन्ते खण्डयन्ते अस्मिन् (संस्कारे) इति गोदानं, गो + √दो (अवखण्ड ने) ४. प० (द्यति) + अधिकरणे ल्युट्। दीक्षिताः— दीक्षा संजाता एषां ते दीक्षिताः, तारकादित्वात् इतच्।

गोदानमंगल :- गावो लोमानि दीयन्ते छिद्यन्ते अस्मिन् इति गोदानं, तदेव मंगलम्; विवाह से पूर्व किया जाने वाला केशान्त नामक संस्कार {'गो' शब्द का एक अर्थ 'लोम' भी होता है, दे० "गौर्नादित्ये बलीवर्दे.....। पुंस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाणलोमसु।।" केशव} मनुस्मृति (२-६५) के अनुसार यह संस्कार ब्राह्मण का १६वें वर्ष में, क्षत्रिय का २२वें वर्ष में तथा वैश्य का २४वें वर्ष में किया जाना चाहिए। याज्ञवल्क्य भी यही कहते हैं—'केशान्तश्चैव षोडशे' (१।२६), जिसपर मिताक्षरा में कहा गया है—'केशान्तः पुनः गोदानाख्यं कर्म गर्भादारभ्य षोडशे वर्षे ब्राह्मणास्य कार्यम्।' विवाह—संस्कार से पूर्व यह संस्कार किया जाता था, तुल०—“अथाऽस्य गोदानविधेरन्तरं विवाहदीक्षां निरवर्तयद्गुरुः” (रघु० ३।३३)। अपि च तुल०—“गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः। वित्तमन्यच्च सुबहु द्विजेभ्यो रघुनन्दनः। ददौ गोदानमुद्दिश्य पुत्राणां पुत्रवत्सलः” (रामा०); यहाँ 'गोदान (केशान्त) विधिके उद्देश्य से गौओं का दान भी किया गया' ऐसा अर्थ स्पष्ट है; अतः 'गोदानमंगल' में 'गोदान' का अर्थ गौओं का दान करना नहीं है, जैसा अनेक लोग मानते हैं। आश्वलायन सूत्र के अनुसार केशान्त संस्कार की दक्षिणा 'गोमिथुन' थी; अतः गौओं का दान करना केशान्त संस्कार का एक आवश्यक अंग माना जाता था। सम्भवतः इसीलिए केशान्त संस्कार का नाम 'गोदान' पड़ गया हो।

36. रामः— समयः स वर्तते इवैष यत्र मां

समनन्दयत् सुमुखि गौतमार्षितः।

'अयमागृहीतकमनीयकङ्कण—

स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः ।।१८।।

[अन्वयः— हे सुमुखि, एषः सः समयः वर्तते इव, यत्र गौतमार्षितः आगृहीतकमनीयकङ्कणः अयम् तव करः, मूर्तिमान् महोत्सवः इव, माम् समनन्दयत्।]

शब्दार्थ :- सुमुखि = हे सुन्दर मुखवाली। एषः = यह। सः समयः = वही [पूर्वानुभूत] समय। वर्तते इव = मानों वर्तमान है। यत्र = जिस समय। गौतमार्षितः = गौतम (गौतम के पुत्र शतानन्द मुनि) द्वारा अर्पित किया हुआ। आगृहीतकमनीयकङ्कणः = धारण किया है सुन्दर कंकण (करभूषण, कंगना) जिसने ऐसा। अयम् = यह। तव करः = तेरा हाथ। मूर्तिमान् महोत्सव इव = शरीरधारी महोत्सव के समान। माम् = मुझको। समनन्दयत् = आनन्दित करता था।

अनुवाद :- राम— हे सुन्दर मुखवाली यह वही समय मानों वर्तमान है, जब गौतम के पुत्र (शतानन्द मुनि) द्वारा अर्पित किया हुआ, तथा सुन्दर कंगना

मुद्रगृहीत, स्वयमागृहीतः

व्याकरण :- समनन्दयत् सम्-√नन्द १. प० णिच् लङ्। सुमुखी-शोभनं
मुख्यम् अस्याः, रथांगाच्चोपसर्जनादसंयोगोपाधात्' (पा० ४.१.५४) इति डीष्।

आगृहीतः :- आगृहीत = धारण किया हुआ, पहिना हुआ; 'कङ्कण' का अर्थ यहाँ 'वियाह सूत्र' (कंगना) ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। आगृहीत कमनीयं कङ्कणं येन यस्मिन्त्या। घनश्याम ने इसकी व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार से की है— 'आदरादगृहीतश्चासौ कमनीयकङ्कणश्च' अर्थात् जो (हाथ) आदरपूर्वक {मुझसे} पकड़ा गया, तथा जो सुन्दर कङ्कण धारण किये हुए था। इस श्लोक में मञ्जुभाषिणी छन्द तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

37. लक्ष्मणः— इयमार्या । इयमध्यार्या माण्डवी । इयमपि वधूः श्रुतकीर्तिः ।

सीता— वच्छ, इअं वि अवरा का ? {वत्स, इयमप्यपरा का?}

लक्ष्मणः— ('सलज्जस्मितम् । 'आत्मगतम्) अये! उर्मिलां पृच्छत्यार्या । भवतु, अन्यतः संघारयामि । (प्रकाशम्) आर्यं दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत् । अयं च भगवान्भार्गवः ।

सीता- ('ससंभ्रमम्)-कम्पिदम्हि । {कम्पितास्मि} ।

रामः— ऋषे नमस्ते ।

शब्दार्थ :- अपरा = अन्य, दूसरी । सलज्जस्मितम् = लज्जा तथा मुस्कराहट के साथ । आत्मगतं = स्वगत । अन्यतः = दूसरी ओर । संचारयामि = आकर्षित करता हूँ । द्रष्टव्य = दर्शनीय, देखने योग्य । भार्गवः = भृगुकुलोत्पन्न, परशुराम । ससंभ्रमम् = संभ्रम (भय अथवा घबराहट) के साथ ।

अनुवाद:- लक्ष्मण- यह आर्या (अर्थात् आप) हैं। यह आर्या माण्डवी (भरत-पत्नी) हैं। यह वधू श्रुतकीर्ति (शत्रुघ्नभार्या) है। सीता- वत्स, यह दूसरी कौन है? लक्ष्मण- (लज्जा और मुस्कराहट के साथ, स्वगत) अरे! आर्या (सीता) उर्मिला को पूछ रही हैं। अच्छा, दूसरी ओर [इनका ध्यान] आकर्षित करता हूँ। (प्रकाश) आर्ये! इस दर्शनीय [दृश्य] को देखिये। ये भगवान् भृगुकुलोत्पन्न [परशुराम] हैं। सीता- (घबराहट से) मैं काँप गई हूँ। राम- ऋषे, आपको नमस्कार है।

६४. सलंडजा०

६. अपवार्थ

६६. ससाधिसम्

६७, भीदस्मि (भीतास्मि) ।

व्याकरण :- संचारयामि- सम्-√ चर्-णिच्, लट् उ० पु० ए० य० ।
दृश्यताम्-√ दृश्-कर्मणि लोट् । भार्गवः-भृगोर्गोत्रापत्यं पुमान्, भृगु + अण्
'ऋष्यन्धक'- पा० ४१११४ ।

उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक
की व्याख्या

टिप्पणी (Notes)

आर्या:- राम की पत्नी सीता तथा भरत की पत्नी माण्डवी के लिए लक्ष्मण ने 'आर्या' शब्द का प्रयोग किया है, और शत्रुघ्न की पत्नी, श्रुतकीर्ति के लिए 'वधू' शब्द का प्रयोग किया है। सीता तथा उर्मिला ये दोनों जनक सीरध्वज की, तथा माण्डवी और श्रुतकीर्ति जनक के छोटे भ्राता कुशध्वज की कन्याएँ थीं।

आत्मगतम् :- अर्थात् स्वगतं; 'अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्' सा० द० । कहीं-कहीं 'आत्मगतम्' अथवा 'स्वगतम्' के स्थान पर 'अपवार्य' ऐसा पाठ भी मिलता है, जिसपर घनश्याम ने लिखा है- 'रहोऽन्येन सहोक्तौ स्यादपवार्य जनान्तिकम्।' इति लक्षणात् प्रकृते अन्येन सह भाषणाभावात् कवेः प्रमादः। दूसरों से छिपाकर एकान्त में किसी एक पात्र से फिरकर बात करने को 'अपवारित' कहते हैं। (....."तद्भवेदपवारितम्। रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्त्य प्रकाश्यते।।" सा० द०) और जो बात किसी भी अन्य पात्र को न सुनाकर कोई पात्र स्वयं अपने आप ही बोलता है उसे 'स्वगत' कहते हैं ('अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।' सा० द०)। स्पष्ट है, यहाँ 'अपवार्य' के स्थान में 'आत्मगत' अथवा 'स्वगत' पाठ ही युक्त है।

प्रकाशम् :- 'सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्' सा० द० ।

ससंभ्रमम् :- 'ससंभ्रमम्' शब्द के अर्थ भय, घबराहट, विक्षोभ, त्वरा (शीघ्रता) आदि हैं। प्रकृत में इसका अर्थ भय अथवा घबराहट है।

38. लक्ष्मणः- आर्यं पश्य, पश्य। अखमसावार्येण- (इत्यर्थोक्ते)।

रामः- (साक्षेपम्)। अयि वत्स, बहुतरं द्रष्टव्यम् अन्यतो दर्शय।

सीता- (सस्नेहबहुमानं निर्वर्ण्य)। सुटु सोहसि अज्जउत्त, एदिणा विणअमाहम्मेण। [सुष्ठु शोभसे आर्य पुत्र, एतेन विनयमाहात्म्येन।]

शब्दार्थ :- साक्षेपम् = आक्षेप (प्रतिषेध) सहित, बीच में रोकते हुए।
अन्यतः = अन्य स्थल में, अथवा और कुछ। सस्नेहबहुमानं = स्नेह तथा अतिसम्मान के साथ। निर्वर्ण्य = देखकर। सुष्ठु = अतीत, बहुत अधिक।
विनयमाहत्म्य (न०) = विनयप्रकर्ष, विनयाधिक्य।

अनुवाद :- लक्ष्मण-आर्य, देखिये-देखिये। यह (परशुराम) आर्य द्वारा

(इस प्रकार आधा कहने पर)। राम—(बीच में रोकते हुए) अरे भाई, बहुत कुछ देखना है, अन्यत्र दिखलाओ। सीता—(स्नेह तथा अत्यन्त आदर के साथ देखकर) हे आर्यपुत्र, विनय की अधिकता से आप अत्यन्त शोभित हो रहे हैं।

व्याकरण :- माहात्म्यं (न०)—महान् (विपुलः) आत्मा (स्वरूप) यस्य स महात्मा, तस्य भावः माहात्म्यम्, भावे ष्यञ् ।

टिप्पणी (Notes)

राम की इस उक्ति से उनका धीरोदात्त होना सूचित होता है। धीरोदात्त नायक के लक्षण—“अविकथनः क्षमावान् अतिगम्भीरो महासत्त्वः। स्थेयान् निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः।।”

साक्षेपम् :- लक्ष्मण को उसके वाक्य के बीच में ही प्रतिषेध करते हुए, जिससे लक्ष्मण का ध्यान राम की प्रशंसा से हटकर अन्यत्र चला जाय। इसके स्थान में ‘साक्षेपम्’ पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ है—लक्ष्मण की भर्त्सना अथवा निन्दा करते हुए। पहला पाठ अधिक उपयुक्त है।

विनयमाहात्म्येन :- ‘भावानयने द्रव्यानयनम्’ इस नियम के अनुसार इसका अर्थ है— महता विनयेन; तुल० ‘देहसौभाग्येन’।

39. लक्ष्मणाः— एते वयमयोध्यां प्राप्ताः।

रामः— (सास्रम्) स्मरामि हन्त स्मरामि।

जीवत्सु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे।

मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः।।१९।।

अन्वयः— तातपादेषु जीवत्सु दारपरिग्रहे नवे मातृभिः चिन्त्यमानानां नः ते हि दिवसाः गताः।

शब्दार्थ :- सास्रम् = आँसुओं सहित। हन्त = विषादसूचक अव्यय। तातपादेषु जीवत्सु = पूज्य पिताजी के जीवित रहते हुए। दारपरिग्रहे नवे = विवाह के नवीन होते हुए। मातृभिः = माताओं द्वारा। चिन्त्यमानानां = देखभाल किये जाते हुआँ के। नः = हमारे। ते = वे, पूर्वानुभूत। दिवसाः = दिन। गताः = बीत गये। हि = निश्चयसूचक अव्यय।

अनुवाद :- लक्ष्मण— अब हम अयोध्या में पहुँच गये हैं। राम— (आँसुओं सहित मुझे याद हैं, शोक, मुझे याद है। पूज्य पिताजी के जीवित रहते हुए, विवाह के नवीन होते हुए, माताओं द्वारा चिन्ता किये जाते हुए हमलोगों के वे दिन बीत गये हैं, यह निश्चित है।

व्याकरण :- जीवत्सु—√जीव् १ प० + शतृ, स० ब० व०, ‘यस्य च भावेन भावलक्षणम्’ (पा० २।३।३७) इति सप्तमी। परिग्रह (पुं०)—परिगृह्यते परि ग्रहणं च

परिग्रहः परि-√ ग्रह + अप् ('ग्रहवृद्धनिश्चिगमश्च' पा० ३।३।५८)। चिन्त्यमानानाम्-
√ चिन्त् + कर्मणि शानच्, ष० ब० व०, 'नः' का विशेषण।

उत्तररामचरितम् के प्रथम अंक
की व्याख्या

टिप्पणी (Notes)

स्मरामि स्मरामिः— यहाँ द्विरुक्ति विषादसूचक है; दे०—'कथितं च पदं पुनः।
विहितस्यानुवाद्यत्वे विषादे विस्मये क्रुधि॥ दैन्येऽयं लाटानुप्रासेऽनुकम्पायां प्रसादने।
अर्थान्तरसंक्रमितवाच्ये हर्षेऽवधारणी॥' (सा० द०)

तातपादेषु— पूज्ये पितरि। यहाँ बहुवचन में प्रयुक्त 'पाद' शब्द 'अतिपूज्यत्व'
का द्योतक है। प्रशंसावाची 'पाद' शब्द समास के उत्तर पद में ही प्रयुक्त होता है।
और इससे नित्यसमास अर्धेवा अस्वपदविग्रह समास बनता है। प्रशंसावचन शब्दों
का संग्रह निम्नलिखित श्लोक में किया गया है—“मतल्लिकोद्धमिश्राः
प्रकाण्डस्थलभित्तयः। हस्तपाश तटाः पादपालीमर्चिकादयः॥”

{४०} राम— इयमपि तदा जानकी।

'प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः'

दर्शनमुकुलैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।

ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै—

रकृतं मधुरैरम्बानां मे कुतूहलमङ्गकैः ॥२०॥

अन्वयः— तदा प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः, दर्शनमुकुलैः {चि}
मुग्धालोकं मुखं दधती शिशुः इयं जानकी अपि ललितललितैः ज्योत्स्नाप्रायैः
अकृत्रिमविभ्रमैः मधुरैः अङ्गकैः मे अम्बानां कुतूहलम् अकृत।

{४०} शब्दार्थः— तदा = उस समय। प्रतनुविरलैः = अत्यन्त सूक्ष्म तथा
विरल, (एक दूसरे से न मिले हुए) प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः = (कपोलों) पर
लहराते हुए सुन्दर केशों से। {चि = और} दर्शनमुकुलैः = कलियों (मुकुल) के
समान दाँतों से। मुग्धालोकं मुखम् = सुन्दर दीखनेवाले मुखको। दधती = धारण
करती हुई। शिशुः—शैशव अवस्था में वर्तमान। इयम् जानकी अपि = यह सीता भी।
ललितललितैः = अत्यन्त सुन्दर। ज्योत्स्नाप्रायैः = चाँदनी (ज्योत्स्ना) के सदृश
(लावण्ययुक्त)। अकृत्रिमविभ्रमैः = स्वाभाविक विलासों वाले। मधुरैः = रुचिर।

१. कुङ्कुमैः (वी० रा०)

२. कुसुमैः (वी० रा०)

३. मन्दालोकं

४. अङ्गनाम्।

अंगकैः = छोटे-छोटे अंगों से। मे अम्बानाम् = मेरी माताओं के। कुतूहलम् = दर्शनौत्सुक्य अथवा आनन्दको। अकृत = करती थी।

अनुवादः—राम— उस समय अति सूक्ष्म तथा विरल एक दूसरे से न सटे हुए और (मुखकै) प्रांत भागों (कपोलों) पर लहराते हुए केशों से, (तथा) कलियों के समान दाँतों से, सुन्दर दिखाई पड़ने वाले मुख को धारण करती हुई, शैशव अवस्था में वर्तमान, यह जानकी भी अत्यन्त सुन्दर, चाँदनी के सदृश, स्वाभाविक विलासो से युक्त तथा प्यारे लगनेवाले छोटे-छोटे अंगों से मेरी माताओं के दर्शनौत्सुक्यको उत्पन्न करती थी।

व्याकरणः— उन्मीलत्—उद्—√ मील १. प० + शतृ। मुग्ध—√ मुह ४. प० + क्त। दधती—√ धा ३. उ० + शतृ डीप्; 'नाभ्यस्ताच्छतुः' (पा० ७१७८) इस सूत्र के अनुसार नुम् का आगम न होने से 'पचन्ती' के समान 'दधन्ती' न होकर 'दधती' हुआ। ललितललितैः—ललितेभ्योऽपि ललितैः, सुप्सुपा समास। ज्योत्स्नाप्रायैः—ज्योतिरस्थस्याम् इति ज्योत्स्ना, 'ज्योत्स्नातमिस्रा—' (पा० ५।२।११४) इति निपातः, ज्योत्स्नया प्रायाणि (तुल्यानि), सुप्सुपा। अकृत्रिम—न कृत्रिमः अकृत्रिमः, नञ् समास; कृत्रिम—क्रियया निर्वृत्तम्, √ डकृञ् (√कृ) + क्त्रि (ङितः क्त्रिः पा० ३।३।८८) + मप् ('क्त्रेर्मन्तित्यम्' पा० ४।४।२०)।

टिप्पणी (Notes)

इत्यमपि जानकी :- इसका अन्वय अगले श्लोक के साथ होगा। उस श्लोक के 'अकृत' पदका कर्ता 'जानकी' है।

प्रतनुविरलैः—यह 'कुन्तलैः' का विशेषण है; ऐसा मानने से 'दशनमुकुलैः' के बाद में 'च' का अध्याहार करना होगा। 'प्रतनुविरलैः' को अनेक टीकाकारों ने 'दशनमुकुलैः' का विशेषण माना है; शिशु होने के कारण सीता जी के दांत उस समय छोटे तथा विरल थे; काले महोदय ने 'प्रतनु यथा स्यात् तथा विरलैः' (अर्थात् बहुत ही कम विरल) इस अर्थ को अधिक युक्त माना है; उनके अनुसार सीता जी उस समय ६ वर्ष की थीं, और उनके दूध के दाँत भी तब तक नहीं दूटे थे, अतएव वे बहुत ही कम-विरल थे (अतः एक दूसरे से प्रायः मिले हुए थे)। 'प्रतनुविरलैः' ऐसा पाठ होने पर 'सीताजी के दाँत गिरने के कारण विरल थे'; ऐसा अर्थ होगा; परन्तु इससे मुख की शोभा बढ़ती नहीं घट जाती है, अतः उनके मुख के लिए 'मुग्धालोक' ऐसा विशेषण ठीक नहीं बैठेगा।

प्रातोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः— अनेक टीकाकारों ने इसको 'दशनमुकुलैः' का विशेषण माना है—'प्रान्तयोः उन्मीलन्तः (शोभमानाः) मनोहराः कुन्तलाः येषां तैः। अथवा 'मनोहरकुन्तलैः प्रान्तयोः गण्डयोः उन्मीलत् शोभमानम्' (मुखम्) ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है। वीरराघव ने 'कुन्तलैः' के स्थान में 'कुड्मलैः' तथा 'दशनमुकुलैः'

के स्थान पर 'दशनकुसुमैः' पाठ रक्खा है, और 'अत्र उन्मीलच्छब्दः प्ररोहदन्तपरः, दशनकुसुमैरिति रूपक साहचर्यात्' ऐसा लिखा है।

अकृत्रिमविभ्रमैः— सीता जी के शिशु होने के कारण उनके अंग उस समय सहज विलासों को ही प्रकट करते थे, युवती के समान कृत्रिम विलासों को नहीं, अतएव उनके अंगों में एक नैसर्गिक माधुर्य था, जिसके कारण राम को माताओं के मन में उन्हें देखने के लिए कुतूहल बना रहता था। प्रस्तुत स्थल में हरिणी छन्द तथा लुप्तोपमा अलंकार हैं।

{४१} लक्ष्मणः—एषा मन्थरा।

रामः—(“सत्त्वरमन्यतो दर्शयन्”) देवि वैदेहि!

इङ्गुदीपादपः सोऽयं शृङ्गवेरपुरे पुरा।

निषादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत् समागमः॥२१॥

अन्वयः— अयम् सः शृङ्गवेरपुरे इङ्गुदीपादपः, यत्र पुरा स्निग्धेन निषादपतिना समागमः आसीत्।

{४१} **शब्दार्थः**— सत्त्वरम् = जल्दी से। अन्यतो दर्शयन् = दूसरी ओर दिखाते हुए। अयं = यह। सः = वह। शृङ्गवेरपुरे = शृंगवेरपुर में। इङ्गुदीपादपः = इङ्गुदी वृक्ष हैं। निषादराज (गुह) से। समागमः = सम्मिलन। आसीत् = हुआ था।

अनुवादः—लक्ष्मण— यह मन्थरा है। राम— (जल्दी से दूसरी ओर दिखाते स्नेहयुक्त निषादराज (गुह) से भेंट हुई थी।

टिप्पणी (Notes)

मन्थराः— कैकेयी की प्रसिद्ध कुब्जा दासी, जिसने राम के राज्याभिषेक के समय कैकेयी को राजा दशरथ से पहले दिये हुए दो वरदान मांगने को प्रेरित किया, जिनमें से एक भरत को युवराज पद पर नियुक्त करना, तथा दूसरा राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास देना था, दे० रामा० अयोध्या० ७-११।

सत्त्वरं.....दर्शयन्—धीरोदात्त होने के कारण रामः कैकेयी के विरुद्ध कोई शब्द कहना अथवा सुनना नहीं चाहते थे, साथ ही दोहदकाल में गर्भिणी के किसी बीभत्स, भयानक या करुण दृश्य देखने, सुनने और स्मरण करने से गर्भ पर बुरा असर पड़ता है, अतः उन्होंने तुरंत ही अन्य स्थल की ओर सीता का ध्यान आकर्षित कर दिया।

इङ्गुदी०— तुल०—रामा० आयोध्या० सर्ग ५०, श्लोक २६—२८ तथा ३३।

शृङ्गवेरपुरः— निषादराज गुह का यह नगर आधुनिक मिर्जापुर के निकट गंगातट पर स्थित था।

स्निग्धेन निषादपतिनाः—निषादों का राजा गुह राम का परम मित्र था, दे०—“तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा। निषादजात्यो बलवान्स्थपतिश्चेति विश्रुतः।।” रामा० अयोध्या०। ‘स्निग्ध’ शब्द का अर्थ स्नेहवान्, अथवा वयस्य होत है—‘वयस्यः स्निग्धः सवयाः’ अ० को०। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

{४२} लक्ष्मणः— (विहस्य स्वगतम्) अये मध्यमाम्बावृत्तमन्तरितमार्येण।

सीता— अहो एसो जडासंजमणवुत्तन्तो। {अहो एष जटासंयमन— वृत्तान्तः}

लक्ष्मणः— पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्।

धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम्॥२२॥

अन्वयः— पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः वृद्धेक्ष्वाकुभिः यद् {व्रतं} धृतम्, तत् पुण्यम् आरण्यकव्रतम् आर्येण बाल्ये धृतम्।

{४२} शब्दार्थः— स्वगतम् = अपने मन में। मध्यमाम्बा = बिचली माता कैकेयी। वृत्त = चरित। अन्तरितम् = छिपा लिया है। जटासंयमन = जटाबंधन पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः = पुत्रों के पास चली गई है लक्ष्मी जिनकी ऐसे। वृद्धेक्ष्वाकुभिः = इक्ष्वाकुवंश के वृद्ध राजाओं द्वारा। यत् = जो {व्रत}। धृतम् = धारण किया गया है। तत् = वह। पुण्यम् = पवित्र। आरण्यकव्रतम् = वानप्रस्थ व्रत। आर्येण = पूज्य {राम} द्वारा। बाल्ये = बाल्यावस्था में {ही}।

अनुवादः— लक्ष्मण— (मुस्कराकर मनही मन) अरे, मझली माता (कैकेयी) का {वनप्रस्थापनरूप} चरित आर्य द्वारा छिपा दिया गया है। सीता—अहो, यह जटा बाँधने का वृत्तान्त है। लक्ष्मण— {निराश्रित होने के कारण} पुत्रों के पास चली गई है लक्ष्मी जिनकी ऐसे, वृद्ध इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं ने जो {व्रत} धारण किया था, वह पवित्र वैखानस व्रत, आर्य (राम) द्वारा बाल्यावस्था में ही धारण किया गया।

व्याकरणः—अन्तरितम्—‘अन्तरयति’ इति नामधातोः कर्मणि क्तः। संक्रान्तसम्—√ क्रम् + कर्तरि क्तः, उपधादीर्घः ‘अनुनासिकस्य क्लिङलोः विङिति’ (पा० ६।४।१५)। इक्ष्वाकवः—इक्ष्वाकोः गोत्रापत्यानि पुमांसः, अञ् प्रत्ययस्य (तद्राजस्य) बहुत्वे लुक् (एकवचन में ‘ऐक्ष्वाकः’ होगा)। बाल्य (न०)—बालस्य भावः, बाल + घ्यञ्। आरण्यकं—अरण्ये भवाः आरण्यकाः, अरण्य + वुञ् (‘अरण्यान्मनुष्ये’ पा० ४।२।१२९), आरण्यकानामिदम् आरण्यकम्, अण्।

वृत्तमन्तरितम्:— इसके स्थान पर 'वृत्तान्तोऽन्तरितः' अथवा 'वृत्तान्तमन्तरितम्' ऐसा पाठ ही मिलता है। 'वृत्तान्त' शब्द पुलिंग है, नपुंसक नहीं ('वार्ताप्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' अ० को०), अतः 'वृत्तान्तम्' (ऐसा पाठ शुद्ध नहीं है, वीरराघव तथा घनश्याम दोनों ने इस पाठ को प्रामादिक माना है, और इसके स्थान पर 'वृत्तम्' पाठको ही शुद्ध माना है। 'वृत्तान्तम्' ऐसा पाठ होने पर इसका अर्थ इस प्रकार होगा—वृत्तस्य आचरितमस्य अन्तः स्वरूपम् (स्वरूपार्थक 'अन्तः' शब्द क्लीब होता है)।

जटासंमयनः — शृङ्गवेरपुर में ही राम तथा लक्ष्मण ने अपनी जटाएँ बाँधी थीं, तुल०—'जटाः कृत्वा गमिष्यामि न्यग्रोधक्षीरमानय। तत्क्षीरं राजपुत्राय गुहः क्षिप्रमुपाहरत्॥ लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामस्तेनाकरोज्जटाः॥' (रामा० अयोध्या० सर्ग ५२)।

(विशेष):— यह श्लोक महावीर चरित (४/५१) में भी आया है। अपि च तुल०—रघु० ३।७०। इस श्लोक में राम के चरित का अन्य इक्ष्वाकुवंश के चरित्र से जो भेद प्रदर्शित किया गया है, वह ध्यान देने योग्य है। इक्ष्वाकुवंश के अन्य राजा लोग तो स्त्री पुत्र इत्यादि का सांसारिक सुख भोगकर वृद्धावस्था में इंद्रियों के शिथिल होने पर ही आरण्यक व्रत को धारण करते थे, किन्तु राम ने बाल्यकाल में ही इस कठोर व्रत को धारण किया।

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः— वृद्धावस्था में पुत्र को राज्य भार सौंपकर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करना इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का कुलव्रत था, तुल०—रघु० ३।७०।

संक्रान्तः— लक्ष्मी स्वतः वृद्ध इक्ष्वाकुओं के पुत्रों के पास चली जाती थी (तुल०—रघु० ३।३६, ५।३८)। अथवा 'संक्रान्त' शब्द में अन्तर्भावितण्यर्थ मानकर 'पुत्रे संक्रान्ता संक्रामिता लक्ष्मीः येः' ऐसा अर्थ करना चाहिए।

43. सीता— एसा पसण्णपुण्णसलिला भवदी भाईरही। [एणा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती भागीरथी।]

रामः— देवि रघुकुलदेवते, नमस्ते।

तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे

कपिलमहसामर्षात् प्लुष्टान् 'पुरा प्रपितामहान्।

अगणिततनूतापं तप्त्वा तपांसि भगीरथो

भगवति, तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुददीधरत्॥२३॥

सात्वमम्ब स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भव।

१. पितुश्च पितामहान्, पितुः प्रपितामहान् (घ० श्या०), पितृप्रपितामहान् (वी० रा०)

२. उदतीतरत्

अन्वयः— पुरा सगराध्वरे तुरगविचयव्यग्रान्, उर्वीभिदः, अमर्षात् कपिलमहसा प्लुष्टान् प्रपितामहान् भगीरथः अगणिततनूतापं तपांसि तप्त्वा, हे भगवति तव अद्भिः स्पृष्टान् चिरात् उददीधरत्।

{४३} शब्दार्थ :- प्रसन्नपुण्यसलिला = स्वच्छ तथा पवित्र जलवाली। भागीरथी = 'भागीरथद्वारा लाई हुई', गंगा। पुरा = पूर्व समय में। सगराध्वरे = सगर नामक राजा के {अश्वमेध} यज्ञ में। तुरगविचयव्यग्रान् = अश्व के अन्वेषण में व्यापृत। उर्वीभिदः = पृथ्वीको खोद डालने वाले। अमर्षात् = रोष के कारणत् कपिलमहसा = कपिल के तेज से। प्लुष्टान् = दग्ध हुए। प्रपितामहान् = प्रपितामहों को। भगीरथः = भगीरथ ने। अगणिततनूतापं = शरीर के कष्टों का विचार किये बिना। तपांसि = तपों को। तप्त्वा = तपकर। भगवति = हे भगवति। तव = तेरें। अद्भिः = जल से। स्पृष्टान् = छुए हुआओं को। चिरात् = बहुत काल के पश्चात्। उददीधरत् = उद्धार किया। स्नुषा = पुत्रवधू। शिवानुध्याना = मंगल कामना वाली।

अनुवाद :- सीता— यह स्वच्छ तथा पवित्र जलवाली भगवती भागीरथी (गंगा) हैं। राम— हे देवि, हे रघुकुल की देवते, तुझे नमस्कार है। पूर्वकाल में सगर के {अश्वमेध} यज्ञ में, {आश्वमेधिक} अश्व को ढूँढ़ने में संलग्न {और तदर्थ} पृथ्वी को खोदने वाले तथा क्रोध के कारण कपिल के तेज से दग्ध हुए जो हमारे प्रपितामह (सगर के साठ हजार पुत्र) थे, भगीरथ ने शरीर के कष्टों का विचार किए बिना तपों को तपकर, हे भगवति, तेरे जल से स्पर्श किये हुआओं {उन प्रपितामहों} का, चिरकाल के पश्चात् उद्धार किया। वह तू हे माता, पुत्रवधू सीता के लिए, अरुन्धती के समान, मंगल का चिन्तन करने वाली हो।

व्याकरण :- प्रसन्न—प्र—√ सद १ प० + क्त। विचयः— वि—√ चि ५ उ० + अच्। उर्वीभिदः—उर्वी भिन्दन्ति, तान् √भिद ७ उ० + क्तिप् ('सत्सूद्विष—' पा० ३।२।६१)। प्लुष्ट—√ प्लुष् (दाहे) १, ४ प० + क्त। उददीधरत्—उद्—√ धृ—णिच्—लुङ्।

टिप्पणी (Notes)

सगर :- अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय राजा थे। केशिनी तथा सुमति इनकी दो स्त्रियाँ थीं। भृगुऋषि के वरदान से केशिनी का एक पुत्र 'असमंजस' हुआ, जिससे आगे वंश चला तथा सुमति के साठ हजार पुत्र हुए। सगर के आश्वमेधि एक अश्व को इन्द्र पाताल में चुराकर ले गये और वहाँ तपस्या करते हुए कपिल मुनि के आश्रम में छोड़ दिया। सगर के साठ हजार पुत्र अश्व को ढूँढ़ते हुए पृथ्वी को खोदकर पाताल में पहुँचे। जहाँ वे अपनी धृष्टता के कारण कपिल के तेज से दग्ध हो गये। असमंजस का पुत्र अंशुमान (सगर का पौत्र) पाताल में गया और

जहाँ अपने दग्ध पितृव्यों की भस्म देखकर उनकी जलक्रिया करनी चाही, किन्तु कपिल ने उसे बतलाया कि गंगा के जल से उनकी भस्म का स्पर्श होने पर ही वे स्वर्ग जा सकेंगे। अंशुमान् ने अश्व को लाकर सगर को दिया तब सगर ने अपना अश्वमेध पूर्ण किया। आगे चलकर असमंजस का पुत्र दिलीप हुआ और दिलीप का पुत्र भगीरथ, जिसने गोकर्ण नामक स्थान में दीर्घकाल तक तपस्या करके गंगाजी का पृथिवी पर अवतरण कराया और अपने प्रतिपामहों का उद्धार किया (दे०—रामा० आदि०, अ० ३९, वि० पु० अंश ४, अ० ४ तथा भा० पु० ९।८, ९)।

प्रपितामहान् :- घनश्याम ने 'पितुः प्रपितामहान्' ऐसा पाठ माना है किन्तु यह पाठ शुद्ध नहीं है, क्योंकि सगर के पुत्र भगीरथ के ही प्रपितामह थे।

अगणिततनूपां :- इसके स्थान पर 'अगणिततनूपातं' पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ है अपने शरीर के 'नाश की भी उपेक्षा करके', किन्तु भगीरथ की इच्छा गंगावतरण पर्यन्त जीवित रहने की थी, अतः '०पातं' की अपेक्षा '०तापं' पाठ ही अधिक युक्त है।

उददीधरत् :- इसके स्थान पर 'उदतीतरत्' (उद्-√ तृ-णिच्-लुङ्) पाठ भी मिलता है, तुल०—“अथ तद्भस्मनां राशिं गंगासलिलमुत्तमम्। प्लावयत् पूतपाप्मानः स्वर्गं प्राप्तं रघूत्तमम्।।..... तारिता नटशार्दूलं दिवं याताश्च देववत्।” (रामा०)

सा त्वमम्ब.....भव :- गंगा ने ही बनवास के समय सीता तथा उसके दोनों पुत्रों की देखभाल की और अन्त में सकुशल उनको राम को सौंपकर, चित्रदर्शन के समय कहे हुए राम के इन वचनों का पूर्णरूप से पालन किया।

शिवानुध्याना :- शिवस्य (शिवे वा) अनुध्यानं अनुचिन्तनं यस्याः सा (व्यङ्गिाकरण बहुव्रीहि)। इसके स्थान पर 'शिवानुध्यानपरा' ऐसा पाठ भी है, जिसका विग्रह इस प्रकार होगा—शिवस्य अनुध्यानं शिवानुध्यानं तदेव परं प्रधानं यस्याः सा (समानाधिकरण बहुव्रीहि)। इस श्लोक में हरिणी छन्द है।

{४४} लक्ष्मणः— अयमसौ भरद्वाजावेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पतिः कालिन्दीतटे वटः श्यामो नाम।

रामः— (सस्पृहमवलोकयति)।

सीता—सुमरेदि वा एदं पदेसं अज्जउत्तो। {स्मरति वैतं प्रदेशमार्यपुत्रः}।

रामः— अयि कथं विस्मर्यते?

शब्दार्थ :- भरद्वाजावेदितः = भरद्वाज द्वारा बतलाया हुआ। चित्रकूटयायिनि चित्रकूट को जानेवाले। वर्त्मनि = मार्ग में। वनस्पतिः = ऐसा वृक्ष जिसपर पुष्प के

बिना ही फल लगे। सस्पृहम् = उत्साहपूर्वक।

अनुवाद :- लक्ष्मण- भरद्वाज द्वारा बतलाया हुआ, चित्रकूट को जाने वाले मार्ग में यमुना तट पर [स्थित], यह (चित्र में लिखा हुआ) वह (पूर्वदृष्ट) 'श्याम' इस नाम से प्रसिद्ध वट वनस्पति है। राम- (उत्सुकता से देखते हैं)। सीता- आर्यपुत्र को इस प्रदेश का स्मरण है? राम-अरे, किस प्रकार भुलाया जा सकता है।

व्याकरण :- आवेदितः-आ-√ विद् (ज्ञाने) २. प०-णिच् + क्त। चित्रकूटयायिन्-चित्रकूटं याति, चित्रकूट-√ या २. प० + णिनि, युक् च [आतोयुक्चिष्कृतोः पा० ७।३।३३]। वनस्पतिः- वनस्य पतिः, पारस्करादित्वात् सुट (पा० ३।१।५७)।

टिप्पणी (Notes)

भरद्वाज :- भरद्वाज मुनि का आश्रम प्रयाग में था, जहाँ वन को जाते हुए राम, लक्ष्मण तथा सीता का आतिथ्य सत्कार किया। और इन्होंने ही राम को चित्रकूट को जाने वाला मार्ग बतलाया। रामायण के अनुसार, गंगायमुना के संगम से १० कोश पश्चिम की ओर चित्रकूट पर्वत था (दे० दशकोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन्निवत्स्यसि।चित्रकूट इति ख्यातो गन्धमादनसन्निभः।। रामा० अयोः या०, सर्ग ५४)। भरद्वाज मुनि बृहस्पति के पुत्र बतलाये जाते हैं और अनेक वैदिक ऋचाओं के द्रष्टा हैं।

वटः श्यामो नामः- तुल०-"त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वट श्याम इति प्रतीतः।" रघु० १३।५३।

{४५} रामः- अलसं लुलितमुग्धात्यध्वसंजातखेदात्

दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि।

परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यंगकानि

त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता।।२४।।

अन्वयः- यत्र अध्वसंजातखेदात् अलसलुलितमुग्धानि, अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि, परिमृदितमृणालीदुर्बलानि अंगकानि मम उरसि कृत्वा त्वं निद्राम् अवाप्ता।

{४५} शब्दार्थ :- यत्र = जिस प्रदेश में। अध्वसंजातखेदात् = मार्ग से उत्पन्न हुई थकावट के कारण। अलसलुलितमुग्धानि = जड़ीभूत, शिथिल, तथापि

मनोहर। अशिथिलपरिरम्भैः = गाढ आलिंगनों द्वारा। दत्तसंवाहनानि = दिया गया है संवाहन (अंगसंमर्दन) जिनको ऐसे। परिमृदितमृणालीदुर्बलानि = पूर्णरूप से मसले हुए पतले कमलनाल के समान कृश। अंगकानि = कोमल अंगों को। मम = मेरे। उरसि = वक्ष पर। कृत्वा = करते। त्वम् = तू। निद्राम् = निद्रा को। अवाप्ता = प्राप्त हुई।

अनुवाद :- राम— जिस स्थान पर, मार्ग से उत्पन्न थकावट के कारण जडीभूत, शिथिल और मनोहर, गाढ आलिंगनों से दबाये हुए, तथा मसले हुए पतले कमलनाल के समान दुर्बल (कोमल) अंगों को मेरे वक्षस्थल पर रखकर तुम निद्रा को प्राप्त हुई [वह प्रदेश किस प्रकार भुलाया जा सकता है]।

व्याकरण:- परिरम्भैः—परि—√रम् + भावे घञ्, 'रभेरशब्दितोः' (पा० ७.१.६३) इति नुम् च, करणे तृतीया। संवाहन (न०)—सम्—√वह + णिच् + ल्युट्। अवाप्ता—अव—√आप् + कर्तरि क्तः, गत्यर्थत्वात्।

टिप्पणी (Notes)

अलसलुलितमुग्धनिः— जडीभूत, म्लान तथापि मनोहर। 'लुलित' के स्थान में 'ललित' पाठ घनश्याम तथा वीरराघव दोनों ने माना है। घनश्याम ने 'ललितेन विलासेन' (मुग्धानि) ऐसा अर्थ किया है, तथा वीरराघव ने 'ललितानि मृदूनि' ऐसा अर्थ किया है। यदि यहाँ 'ललित' का अर्थ विलास गति चेष्टा) मानें, तो मार्ग के श्रम से परिश्रान्त सीता के लिए विलास कैसे सम्भव है, और यदि इस शब्द का अर्थ मनोहर मृदु आदि मानें, तो इस अर्थ का द्योतक शब्द 'मुग्ध' तदनन्तर ही प्रयुक्त हुआ है। अतः 'लुलित' पाठ अधिक उचित प्रतीत होता है।

अध्वसंजातः— 'संजात' के स्थान पर 'संपात' पाठ भी मिलता है। वीरराघव ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है—“अध्वनि मार्ग संपातः सम्यग्गमनं, रामलक्ष्मणापेक्षयात्वरितगमनमिति भावः, अग्रतस्ते गमिष्यामि मृदनन्ती कुशकण्टकान् इत्युक्तत्वात्।”

मृणाली :- यहाँ अपचय (अल्पत्व) की विवक्षा में स्त्री प्रत्यय (मृणाल + डी) हुआ है, दे० स्त्री स्यात् काचिन्मृणाल्यादि— विवक्षाऽपचये यदि' (अ० को०)।

{४६} लक्ष्मणः— एष विन्ध्याटवीमुखे विराधसंरोधः।

सीता— अलं दाव एदिणा। पेक्खामि दाव २अज्जउत्तासहत्तारिद— तालवुन्तादवत्तनिवारिदादपं ३अत्तणो दक्खिणारण्णप्पवेसारम्भम्। [अलं

१. संवादः

२. उत्तहत्य

३. अत्तणो अच्चाहितं (अत्याहितं) दक्खिणारण्णपहिअन्तणम्

तावदेतेन । प्रेक्षे तावदार्यपुत्रस्यहस्तधृततालवृन्तातपत्रनिवारिता— तपमात्मनो दक्षिणा रण्यप्रवेशारम्भम्} ।

{४६} शब्धार्थ :- मुखं ≡ द्वार, प्रारम्भ । विराधसंरोधः ≡ विराध द्वारा किया हुआ [हमारा] निरोध । तालवृन्तातपत्रनिवारितातपम् ≡ व्यजनरूपी छत्रद्वारा निवारण की गई है धूप जिसमें ऐसा । दक्षिणारण्यप्रवेशारम्भम् ≡ दक्षिण के जंगलों में प्रवेश का उद्योग ।

अनुवाद :- लक्ष्मण— यह विन्ध्यवन के [प्रवेश] द्वार पर विराध द्वारा [हमारा] निरोध है । सीता— इसे रहने दीजिये । अब मैं आर्यपुत्र द्वारा अपने हाथ में धारण किये हुए ताड़ के पंखे रूपी छत्र से निवारण की गई है धूप जिसमें ऐसा, अपना दक्षिण वन में प्रवेश का उद्योग देखती हूँ ।

व्याकरण :- संरोधः—सम्—√ रुध् + घञ् भावे । आतपत्रं — आतपात् त्रायते यत् तत् आतपत्रं, √ त्रै + क । निवारित—नि √वृ + णिच् + क्त ।

टिप्पणी (Notes)

विराध :- यह एक भयंकर राक्षस था, जिसने विन्ध्यवन में प्रवेश करते हुए राम तथा लक्ष्मण को पकड़ लिया था । (दे० "तावारोप्य ततः स्कन्धं राघवौ रजनीचरः । विराधो निनवन् घोरं जगामाभिमुखोवनम् ।।" रामा० अरण्यकाण्ड) ।

संरोधः — इसके स्थान में 'संवादः' ऐसा पाठ भी है । 'विराध संवादः' का अर्थ होगा 'विराध का वृत्तान्त' अथवा 'विराध का मिलना', 'विराध के साथ बातचीत' ऐसा अर्थ करना यहाँ ठीक नहीं होगा, क्योंकि 'बातचीत' का चित्र में प्रदर्शित करना सम्भव नहीं है ।

तालवृन्तः— यद्यपि 'तालवृन्त' शब्द व्यजन मात्र के लिए प्रयुक्त होता है । (तालस्येव वृन्तं बन्धनं यस्य तत्), परन्तु यहाँ, वन में सुलभ होने के कारण तालपत्र से बनाये हुए व्यजन (पंखे) के लिए यह शब्द प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है ।

दक्षिणारण्यप्रवेशारम्भम् :- 'आरम्भ' शब्द का अर्थ यहाँ उद्योग है । इसके स्थान पर 'दक्षिणारण्य पथिकत्वम्' ऐसा पाठ भी है, पन्थानं नित्यं गच्छतीति पथिकः, तस्य भावः पथिकत्वम् । वीरराघव ने 'आत्मनऽत्याहितं दक्षिणारण्यपथिकत्वम्' ऐसा पाठ रक्खा है, 'अत्याहितं' का अर्थ है 'जीवनापेक्षि कर्म' (प्राणों की उपेक्षा करके किया हुआ कर्म, अर्थात् साहस), अथवा महाभय (दे० 'अत्याहितं महाभीतिः कर्म जीवनापेक्षि च' अ० को०) । पूरे वाक्यांश का अर्थ हुआ अपना साहसरूप अथवा महाभय को प्राप्त कराने वाला दक्षिणवन में मार्गगमन ।

{४७} रामः— एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु

वैखानसाश्रिततरुणि तपोवनानि ।

येष्वातिथेयपरमा शमिनो भजन्ते

नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि ॥२५॥

अन्वयः— गिरिनिर्झरिणीतटेषु वैखानसाश्रिततरुणि एतानि तानि तपोवनानि,
येषु आतिथेयपरमाः शमिनां नीवारमुष्टिपचनाः गृहिणः गृहाणि भजन्ते ।

शब्दार्थः— गिरिनिर्झरिणीतटेषु = पर्वत की नदियों के तटों पर [स्थित] ।
एतानि तानि = ये वे । वैखानसाश्रिततरुणि = वैखानसों (वानप्रस्थ मुनियों) द्वारा
[गृहरूप में] आश्रित हैं वृक्ष (अर्थात् वृक्षमूल) जहाँ पर ऐसे । तपोवनानि =
तपस्वियों के आश्रम हैं । येषु = जिन तपोवनों में । आतिथेयपरमाः = आतिथेय
(अतिथिसत्कार) ही है मुख्य कार्य जिनका ऐसे । शमिनः = शान्त चित्तवाले ।
नीवारमुष्टिपचनाः = मुड़ीभर नीवार (एक प्रकार का जंगली अन्न) पकानेवाले ।
गृहिणः = सस्त्रीक मुनि लोग । गृहाणि भजन्ते = पर्णशालाओं में निवास करते हैं ।

अनुवाद :— राम— पर्वत की नदियों के तटों पर [स्थित], तथा वानप्रस्थों
द्वारा आश्रित हैं वृक्ष (अर्थात् वृक्षमूल) जहाँ पर ऐसे, ये (चित्रों में अंकित) वे तपोवन
हैं, जिनमें अतिथिसत्कार परायण (अथवा अतिथिसत्कार करने वालों में श्रेष्ठ),
शान्त चित्तवाले, तथा मुड़ीभर नीवार (मुन्यन्न) को पकानेवाले गृहस्थी (सस्त्रीक)
मुनिजन [पर्णशाला रूपी] गृहों में निवास करते हैं ।

व्याकरणः— निर्झरिणी—निर्झरः (वारिप्रवाहः) अस्ति अस्याः इति, निर्झर +
इनि + डीप् । अतिथि—अतति सातत्येन गच्छति, √ अत् (सातत्यगमने) १. पा०
+इथिन् (उणा० ४।२) । आतिथेय—अतिथि + ढञ् (तत्रसाधुः इत्यर्थे) पथ्यतिथि (पा०
४।४।१०४), एय । शमिनः—शमोऽस्ति एषां ते, शम + इनि, अथवा √ शम् + घिणुन्
(‘शमित्याष्टाभ्यो घिणुन्’ पा० ३।२।१४१) । नीवारमुष्टिपचनाः— नीवारमुष्टेः पचनं
(पाकः) येषां ते, √ पच् = भावे ल्युट् । नीवार—नितरां त्रियन्ते मुनिभिः इति नीवाराः,
नि—√ वृ (वरणे) ५. उ० + घञ् कर्मणि (‘नौ वृ घञ्’ पा० ३।३।४८), ‘निको दीघ
(‘उपसर्गस्य घञि—’ पा० ६।३।१२२) ।

टिप्पणी (Notes)

वैखानसः— दे० गौतमधर्मसूत्र ३।२ पर हरदत्त—‘वैखानसो वानप्रस्थः ।
विखनसा प्रोक्तेन मार्गेण वर्तते इति । तेन हि स आश्रमः प्राधान्येन प्रतिपादितः ।’
‘विखनस’ एक प्राचीन ऋषि थे, जिन्होंने सम्भवतः वानप्रस्थाश्रम के धर्मों पर एक
ग्रन्थ लिखा था ।

शमिनः— शान्त चित्तवाले, आत्मसंयमी, तुल०—‘शमप्रधानेषु तपोवनेषु’ शाकु०
२।७ । इसके स्थान पर ‘यमिनः’ ऐसा पाठ भी है, जिसका अर्थ है—अहिंसादि नियमों

का पालन करने वाले, परन्तु यमादि नियमों का पालन तो गृहस्थ भी कर सकते हैं, अतः 'शमिनः' ऐसा पाठ ही अधिक युक्त है।

नीवारमुष्टिपचनाः— 'मुष्टि' शब्द उनका 'अल्पाहारी' होना सूचित करता है, जो तपस्या का एक आवश्यक अंग है, तुल०—'विविक्तसेवी लध्वाशी यतवाक्कायमानसः' भ० गी० १८।

गृहिणः— सस्त्रीक मुनिजन। गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करते समय द्विज लोग प्रायः अपनी स्त्रियों को भी अपने साथ तपोवन में ले जाया करते थे, और वहाँ संयमपूर्वक उनके साथ-साथ तपस्या करते थे (दे० म० स्मृ० अध्याय ६— 'गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।.....पुत्रेषु निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा। इत्या०)। इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

[४८] **लक्ष्मणः**— अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्य परिणाद्ध— गोदावरी 'मुखरकन्दरः सततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमा जनस्थानमध्यगो^१ गिरिः प्रस्रवणो नाम।

[४८] **शब्दार्थ** :— अविरल = निबिड, घन, अवकाशरहित। अनोकह = वृक्ष। निवह = समूह। स्निग्ध = चिकना, चमकदार, मनोहर। परिसर = पर्यन्तभूमि, पर्वत अथवा नदी के समीप की भूमि। अरण्य = वन। परिणाद्ध = विस्तार को प्राप्त, परिवेष्टित। मुखर = शब्दायमान। सततम् = निरन्तर, अविरत, लगातार। अभिष्यन्दमान = झरता हुआ, बरसता हुआ। मेदुरितः = अत्यन्त स्निग्ध (चिकना अथवा चमकदार) किया हुआ। नीलिमा = नीलापन। जनस्थान = दण्डकवन का एक भाग।

अनुवाद :— लक्ष्मण—यह जनस्थान के बीच में फैला हुआ प्रस्रवण नाम का पर्वत है, जो घने वृक्षों के समूहों से अविच्छिन्न (पूर्ण), चिकने तथा नीले पर्यन्त भागों वाले वनों से परिवेष्टित अथवा विशाल बनी हुई गोदावरी से शब्दायमान गुफाओं वाला है, तथा जो निरन्तर टपकते हुए बादलों से स्निग्ध बनी हुई (अथवा बड़ी हुई) नीलिमा (नीलत्व) वाला है।

व्याकरण :— अनोकहः अनसां शकटानाम् अकं गतिं हन्ति इति अनोकहः, अनस् + अक + √ हन् + ड कर्तरि। परिणाद्ध—परि—√ नह + क्त। मुखर—मुख + र, 'स्वमुखकुंजेभ्यो वक्तव्यम्' (वा०) इति रः। अभिष्यन्दमान—अभि—√ स्यन्द (प्रस्रवणे) १. आ० + शानच्, अप्राणिकर्तृकत्वात् वैकल्पिकं षत्वम् ('अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु' पा० ८।३।७२)। मेदुरित—मेदुरं करोति मेदुरयति, 'तत्करोति तदाचष्टे'

१. मुखकन्दरः

२. मध्यमः

इति णिच्, 'मेदुरय्' इति नामधातोः कर्मणि क्तः । √ मिद् (स्नेहने) १. आ० + घुरच् = मेदुर । नीलिमा (पुं०)—नीलस्य भावः, नील + इमनिच् ।

टिप्पणी (Notes)

प्रस्रवणो नाम :- यहाँ कवि ने प्रस्रवण (चूता हुआ) नाम को सार्थक करने के लिए जिस शब्दावली का प्रयोग किया है उससे प्रस्तुतः पाठक के मन में उस दृश्य का चित्र—सा खिंच जाता है । महाकवि का यह अनुपम काव्यकौशल है । दण्डकारण्य का ही एक भाग जनस्थान कहलाता था और उसमें फैला हुआ यह प्रस्रवण पर्वत, प्राचीन भारत के हिमवद्, विन्ध्य निषध, हेमकूट आदि मुख्य पर्वतों में गिना जाता था ।

[४९] रामः— स्मरसि सुतनु तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन

प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि ।

स्मरसि 'सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा

स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि ॥२६॥

अन्वयः— हे सुतनु, तस्मिन् पर्वते लक्ष्मणेन प्रतिविहित— सपर्यासुस्थयोः आवयोः तानि अहानि स्मरसि किम् ? अथवा तत्र सरसनीरां गोदावरीं स्मरसि ? तस्याः उपान्तेषु आवयोः वर्तनानि च स्मरसि?

[४९] **शब्दार्थ :-** सुतनु = हे सुन्दर शरीरवाली । तस्मिन्पर्वते = उस पर्वतपर । लक्ष्मणेन = लक्ष्मण द्वारा । प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोः = की हुई पूजा—सेवा से सुखी रहते हुए हम दोनों के । तानि अहानि = उन दिनों को । स्मरसि = याद करती हो । तत्र = वहाँ, प्रस्रवण पर्वत के निकट । सरसनीराम् = स्वादुजलवाली । गोदावरीम् = गोदावरी को । तदुपान्तेषु च = और उसके पर्यन्त भागों में । आवयोः = हम दोनों के । वर्तनानि = भ्रमणों को ।

अनुवाद :- राम— हे सुन्दर शरीरवाली, उस पर्वत पर लक्ष्मण द्वारा की हुई सेवा से सुखी होकर रहते हुए हम दोनों के उन दिनों को याद करती हो? अथवा वहाँ (उस प्रस्रवण गिरि के निकट) मधुर जलवाली गोदावरी को याद करती हो? और उस {गोदावरी} के तटों पर हम दोनों के भ्रमणों को याद करती हो ।

व्याकरण :- प्रतिविहित—प्रति—वि—√ धा + क्त । वर्तन—√ वृत् १ आ० + ल्युट् । सुस्थयोः—सु—√ रथा + क = सुस्था च सुस्थश्च तौ सुस्थौ तयोः, 'पुमान् स्त्रिया' (पा० १.१२.६७) इति पुंलिंगैकशेषः ।

टिप्पणी (Notes)

सुतनु :- शरीर का पर्यायवाची 'तन' (अथवा 'तनु') शब्द स्त्रीलिंग है (दे० 'स्त्रियां मूर्तिस्तनुरतनूः' अ० को०)।

सपर्या :- इसका अर्थ पूजा, अर्चा इत्यादि है ('पूजा नमस्यापचितिः सपर्यार्चार्हणा समः' अ० को०)।

सरसनीरां :- इसके स्थान पर 'सरसतीरां' ऐसा पाठ भी है, सरसतीरा = सरसं सुखसेव्यं तीरं यस्याः सा।

वर्तनानि :- 'वर्तन' शब्द का अर्थ 'चक्राकार गति से घूमना' है, किन्तु यहाँ इसका अर्थ 'घूमना' अर्थात् 'भ्रमण' है। इस श्लोक में मालिनी छन्द है।

{५०} राम:- किमपि किमपि मन्दं 'मन्दमासत्तियोगा-

'दविरलितकपोलं' जल्पतोरक्रमेण।

अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो

रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥२७॥

अन्वय:- आसत्तियोगात् अविरलितकपोलम् अक्रमेण मन्दं मन्दं किमपि किमपि जल्पतोः, तथा अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोः [आवयोः] अविदितगतयामा रात्रिः एव व्यरंसीत्।

{५०} शब्दार्थ :- आसत्तियोगात् = परस्पर की समीपता के होने से। अविरलितकपोलं = व्यवधानरहित (परस्पर एक दूसरे से सटे हुए) कपोल हैं जिस कर्म में, इस प्रकार। मन्द-मन्दं = धीरे धीरे। अक्रमेण = बिना किसी क्रम के। किमपि किमपि = चाहे जो कुछ। जल्पतोः = बोलते हुए (पूर्व श्लोक के 'आवयोः' पद का विशेषण)। अशिथिल.....दोष्णोः = गाढ आलिंगन में निरत (व्यापृत) है एक एक बाहु (दोस्) जिनका ऐसे। आवयोः = हम दोनों की। अविदितगतयामा = नहीं जाने गये हैं बीते हुए प्रहर (याम) जिसके ऐसी। रात्रिः एव = रात ही। व्यरंसीत् = विरत (समाप्त) हो गई।

अनुवाद :- राम- [परस्पर की] समीपता के योग से सटे हुए हैं कपोल जिस कर्म में इस प्रकार, धीरे-धीरे तथा बिना किसी क्रम के चाहे जो कुछ बोलते हुए और गाढ आलिंगनों में निरत है एक एक बाहु जिनका ऐसे हम दोनों की, नहीं जाने गये हैं बीते हुए प्रहर जिसके ऐसी रात्रि ही विरत (समाप्त) हो गई [किन्तु बातें समाप्त नहीं हुई]।

१. आसक्ति

२. अविच्छिन्न

३. रैव

व्याकरण :- आसक्ति-आ-√ सद १ पा० + तिन्। अविरलित-विरलं करोति विरलयाति, णिच्, विरलय (ना०धा०) + कर्मणि क्त = विरलितः न विरलितः अविरलितः। जल्पतोः- जल्पत्- जल्प (वक्तायां वाचि)? पा० + शतृ (ष०दि०)। व्यापृत- वि- आ √ पृ (व्यापारे ६ आ० + क्त, एकैक-यहाँ कर्मव्यतिहार में 'एक' शब्द की द्विरुक्ति है, तथा बहुव्रीहियद्गाय हैं, (दे० पा० ८।१।९), सीता का एक हाथ राम के आलिङ्गन में व्यापृत और इसी प्रकार राम का एक हाथ सीता के आलिङ्गन में व्यापृत था यहीं यहाँ कर्मव्यतिहार है। दोष्णोः- 'दोस्' (बाहु) शब्द को द्वितीया के बहुवचन से लेकर सप्तमी के बहुवचन तक की विभक्तियों में विकल्प से 'दोषन्' आदेश हो जाता है ('पद्मो.....' पा० ६।१।६३)। व्यरंसीत्- वि-√ रम्-लुङ्, 'व्याङ्परिभ्यो रम्' (पा० १।३।८३) इति परस्मैपदम्।

टिप्पणी (Notes)

आसक्तियोगात्:- धनश्याम तथा वीरराघव दोनों टीकाकारों ने 'आसक्तियोगात्' पाठ रक्खा है और दोनों ने ही 'आसक्ति' शब्द का अर्थ 'स्वर्गनिवेश' किया है। परन्तु इस प्रकार के अर्थों के वाच्य होने से काव्य का घमत्कार जाता रहता है, अतएव यहाँ 'आसक्ति' पाठ ही उपादेय है। 'आसक्ति' शब्द का जो अर्थ है वह तो 'अविरलितकपोल' तथा 'अशिथिलपरिभ्रमेत्यादि' शब्दों द्वारा व्यंग्य ही है।

याम :- 'याम' शब्द का अर्थ है 'प्रहर'। दिन रात में ८ प्रहर होते हैं और एक प्रहर तीन घण्टे का होता है।

रात्रि:- यहाँ 'जातो' एकवचन है, अतएव 'अनेक रातें' ऐसा अर्थ होगा।

एव- भवभूति ने पहले 'एवं' लिखा, किन्तु कालिदास के सुझाव पर 'एव' कर दिया, ऐसी किंवदन्ती प्रचलित है।

(विशेष) :- इस श्लोक का रस संभोग श्रृंगार है, इसका स्थायी भाव रति है, जो 'अविरलितकपोल' इत्यादि से व्यंग्य है। यह श्लोक संभोगश्रृंगार के उदाहरण के रूप में दशरूपक (४।६९) में उद्धृत है। इस श्लोक में मालिनी छन्द एवं स्वभावोक्ति अलंकार है।

[५१] लक्ष्मण:- एषा पंचवट्यां शूर्पणखा।

सीता- हा अज्जउत्ता, एत्तिअं दे दंसणां। [हा आर्यपुत्र, एतावर ते दर्शनम्।]

राम:- अयि विप्रयोगतस्ते चित्रमेतत्।

सीता- जहा तहा होदु। दुज्जणो असुहं उप्पादेइ। [यथा तथा भवतु। बुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।]

रामः— हन्त वर्तमान इव मे जनस्थानवृत्तान्तः प्रतिभाति ।

[५१] शब्दार्थ :- विप्रयोगत्रस्ते = हे वियोग से डरी हुई। असुखम् = दुःख। हन्त = खेदसूचक अव्यय।

अनुवाद :- लक्ष्मण— यह पंचवटी में शूर्पणखा है। सीता—हाय आर्यपुत्र, इतने ही तक आपका दर्शन है। राम— हे वियोगभीते, यह [केवल] चित्र है। सीता— जो भी हो। दुष्टजन दुःख उत्पन्न करता है, [अतः चित्र में अंकित हुआ भी वह भय उत्पन्न करता है] राम— खेद है, जनस्थान का वृत्तान्त मुझे वर्तमान—सा लग रहा है।

व्याकरणः—पंचवटी—पंचानां वटानां समाहारः पंचवटी, समाहारद्विगु, 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' इस वार्तिक के अनुसार स्त्रीलिंग अकारान्त समाहारद्विगुः स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है, तथा 'द्विगोः' (पा० ४१।२१) इस सूत्र के अनुसार उसमें स्त्री—प्रत्यय डीप् जुड़ता है। शूर्पणखा—शूर्पवत् नखाः यस्याः सा। 'नख' स्वांगवाची असंयोगोपध शब्द है, अतः यहाँ डीप् प्रत्यय भी विकल्प से प्राप्त था (दे० पा० ४१।५४), किन्तु 'नखमुखात् संज्ञायाम्' (पा० ४१।५८) इस सूत्र के अनुसार डीप् का निषेध होकर केवल 'टाप्' ही हुआ, और 'पूर्वपदात्संज्ञाया.....' (पा० ८।४।३) इस सूत्र के अनुसार णत्व हो गया।

टिप्पणी (Notes)

पंचवटी :- (अश्वत्थ, विल्व, वट, धात्री अर्थात् आँवला तथा अशोक इन पाँच वटों का समाहार)। परन्तु यहाँ 'पंचवटी' शब्द दण्डकारण्य के एक भाग के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो गोदावरी के उदगम के समीप था, और अगस्त्य के आश्रम से दो योजन की दूरी पर था (दे० रामा० अरण्य० सर्ग १४)। सम्भवतः उपर्युक्त पाँच वटों के कारण ही इस प्रदेश का नाम पंचवटी पड़ गया हो। वनवास के समय राम, लक्ष्मण तथा सीता यहाँ चिरकाल तक रहे और यहीं सीताहरण हुआ। नासिक के समीप पंचवटी नाम से प्रसिद्ध एक प्रदेश अब भी है, कदाचित् यही प्राचीनकाल का पंचवटी प्रदेश हो।

शूर्पणखा— रावण की भगिनी, जो उस समय अपने भाइयों, खर तथा दूषण के साथ दण्डकारण्य में रहती थी। इसकी कथा के लिए (दे० रामा० अरण्य० सर्ग १७, १८)।

एतावत्तेदर्शनम् :- शूर्पणखा के चित्र को देखने से सीता के चित्त में रावण द्वारा अपने हरण किये जाने की स्मृति जागृत हो उठी और उसको वे सभी घटनाएँ प्रत्यक्ष—सी प्रतीत होने लगीं। उसको ऐसा प्रतीत हुआ। मानो अब राम से उसका वियोग होने वाला है। सीता के ये शब्द उसके भावी निर्वासन के लिए भविष्यवाणी जैसे प्रतीत होते हैं।

{५२} लक्ष्मणः— अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये 'विकलकरणैरायचरितै'
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्॥२८॥

अन्वयः— अथ इदं पापैः रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना तथा वृत्तं, यथा क्षालितम् अपि व्यथयति। शून्ये जनस्थाने विकलकरणैः आर्यचरितैः अपि ग्रावा रोदिति, अपि वज्रस्य हृदयं दलति।

{५२} शब्दार्थः— अथ = तदनन्तर। इदम् = यह (चित्रनिर्दिष्ट सीताहरण)। पापैः रक्षोभिः = पापी राक्षसों से। कनकहरिणच्छद्मविधिना = स्वर्ण मृग के रूप में छल के विधान द्वारा। तथा = ऐसा। वृत्तम् = किया गया। यथा = जो। क्षालितम् अपि = धोया हुआ भी (अर्थात् बदला लिया हुआ भी)। व्यथयति = पीडा दे रहा है। शून्ये जनस्थाने = जनसंचाररहित जनस्थान में {किए हुए}। विकलकरणैः = अपने अपने व्यापार में असमर्थ (विकल) हो गई हैं इन्द्रियाँ (करण) जिनमें ऐसे। आर्यचरितैः = राम के {रोदन आदि} व्यापारों से। ग्रावा = पाषाण, शिला। रोदिति = रोता है। अपि = सम्भवतः। वज्रस्य = कुलिश का। हृदयं = हृदय (अर्थात् मध्यभाग)। दलति = फटता है।

अनुवादः— लक्ष्मण— {शूर्पणखा वृत्तान्त के} अनन्तर यह (चित्रनिर्दिष्ट सीता हरण), पापी राक्षसों से स्वर्णमृग के रूप में कपट के अनुष्ठान द्वारा इस तरह किया गया, जो बदला (प्रतिकार) लिया हुआ भी व्यथा पहुँचाता है। निर्जन जनस्थान में {किए हुए} अपने-अपने व्यापार में असमर्थ हो गई हैं इन्द्रियाँ जिनमें ऐसे, आर्य के {रोदन आदि} चरितों से, पाषाण भी रोता है, तथा वज्र का भी हृदय फटता है।

व्याकरणः— छद्म—छाद्यतेऽनेन रूपमिति छद्म, √ छाद् (णिजन्त) + मानिन्, ह्रस्व (पा० ६।४।९७)। विधि—वि—√ धा + कि; 'उपसर्गे धोः किः' (पा० ३।३।९२)। छद्मविधिना—छद्मनः विधिना 'छद्मनः' इसमें क्रियार्थक कृदन्त (विधि) के योग में कर्मणि षष्ठी है, परन्तु 'कर्मणि च' (पा० २।२।१४) सूत्र के अनुसार कर्मणि षष्ठी के साथ समास नहीं होता, अतः यह प्रयोग चिन्त्य है। चरित—√ चर् १.५०+ भवे क्तः।

टिप्पणी (Notes)

कनकहरिणः— रावण के आदेश पर ताडका का पुत्र मारीच स्वर्णमृग का रूप धारण कर राम को उनकी कुटी से दूर ले गया, और राम के वाण से मरते

समय राम के स्वर में 'हा सीता, हा लक्ष्मण' ऐसा कहा, जिसे सुनकर सीता ने लक्ष्मण को राम की रक्षा के लिए भेजा। इसी बीच में सीता को अकेली पाकर तपस्वी वेषधारी रावण सीता को हरकर ले गया। (दे० रामा० अरण्य० सर्ग ४२)।

क्षलितम् :- रावणकुल का नाशकर राम ने सीता हरण का प्रतीकार किया।

विकलकरणैः:- सीतावियोग जनित शोक से राम इतने अभिभूत हुए कि उनकी इन्द्रियाँ अपने-अपने व्यापार में असमर्थ हो गईं। विकलकरुणैः (पाठा०)-विकलानि च तानि करुणानि च तैः, विह्वलतापूर्ण तथा शोकोद्दीपक। करुणकरुणैः (पाठा०)-करुणादपि करुणैः, अतिकरुणैः इत्यर्थः, सुप्सुपा समास।

अपि ग्रावा रोदित्यपि० :- भवभूति ने करुणरसप्रधान काव्य की रचना में जो सफलता प्राप्त की है उसी की ओर इन शब्दों में निर्देश किया है। उनका रचा हुआ करुणरसमय काव्य पाषाणों को भी रुला देता है, तथा वज्र के हृदय को भी विदीर्ण कर देता है, यही कवि का आशय है। भवभूतिरचित करुणरस का यह श्लोक अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। इसके अन्तिम चरण पर मुग्ध हो आर्यासप्तशतीकार गोवर्द्धनाचार्य ने भवभूति की प्रशंसा में लिखा है—“भवभूतेः संबन्धाद्भूधरभूरेव भारती भाति। एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा।” इस श्लोक में शिखरिणी छन्द एवं अतिशयोक्ति अलंकार है।

{५३} सीता—(सास्रमात्मगतम्।) अयि देव रघुकुलानन्द, एवं मम कालणादो किलन्तो आसि। {अयि देव रघुकुलानन्द, एवं मम कारणात्क्लान्त आसीः।}

{५३} शब्दार्थ :- सास्रम् = अश्रुयुक्त होकर। रघुकुलानन्द = रघुकुल को आनन्द देने वाले। क्लान्तः = क्लिष्ट, दुःखी।

अनुवाद :- सीता— (अश्रुयुक्त होकर, स्वगत) हे देव, हे रघुकुल को आनन्द देनेवाले, मेरे कारण से {आप} इस प्रकार क्लेशयुक्त हुए।

टिप्पणी (Notes)

एवं क्लान्त आसीः:- इस प्रकार दुःख उठाया, इतना क्लेश सहा। 'क्लान्त' शब्द का अर्थ ग्लानियुक्त, परिश्रान्त, म्लान (मुरझाया हुआ) तथा क्लेशयुक्त है।

{५४} लक्ष्मणः— (रामं निर्वर्ण्य साकूतम्।) आर्य किमेतत्—

अयं ते^१ वाष्पौघस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो

विसर्पन् धाराभिर्लुठति^२ धरणीं जर्जरकणः।

१. तावद्

२. गलति

परेषामुन्नेयो भवति च^१ भराध्मातहृदयः॥२९॥

अन्वयः— अयम् ते वाष्पौघः त्रुटितः मुक्तामणिसरः इव धाराभिः विसर्पन् जर्जरकणः सन् धरणीं लुठति चिरम् आध्यात्महृदयं आवेगः निरुद्धः अपि स्फुरद— धरनासापुटतया परेषाम् उन्नेयः भवति ।

{५४} शब्दार्थ :- निर्वर्ण्य = देखकर। साकूतम् = अभिप्राय सहित, अथवा आवेगसहित। अयम् ते = यह तुम्हारा। वाष्पौघः = अश्रुसमूह। त्रुटितः मुक्तामणिसरः इव = टूटे हुए मुक्तामणियों के हार के समान। धाराभिः विसर्पन् = अविच्छिन्न प्रवाहों से फैलता हुआ (अर्थात् गिरता हुआ)। जर्जरकणः = टूटे हुए कणों (विन्दुओं) वाला {होकर}। धरणीं लुठति = पृथ्वी पर लोटता है। भराध्मातहृदयः = {अपनी} अधिकता (भर) से आपूरित कर दिया है हृदय को जिसमें ऐसा। आवेगः = शोकावेग। निरुद्धः अपि = रोका जाता हुआ भी। स्फुरद— धरनासापुटतया = फड़कते हुए (स्फुरत्) होठ तथा नासापुट से। परेषाम् = दूसरों का (दूसरों द्वारा)। उन्नेयः = अनुमेय, अनुमान किये जाने योग्य। भवति = होता है।

अनुवाद :- लक्ष्मण— (राम को देखकर, अभिप्राय सहित) आर्य, यह क्या—यह आपका अश्रुसमूह टूटे हुए मुक्तामणियों के हार के समान अविच्छिन्न प्रवाहों के रूप में गिरता हुआ, टूटे हुए कणों (विन्दुओं) वाला {होकर} भूमिपर लोटता है और अपने आधिक्य से आपूरित कर दिया है हृदय को जिसने ऐसा [आपके शोक का] आवेग, फड़कते हुए होठ तथा नासापुटों से दूसरों द्वारा अनुमेय (अनुमान किये जाने योग्य) हो रहा है।

व्याकरण :- विसर्पन्—वि- + सृप् १ प०+शतृ। निरुद्धः = नि-√ रुध् + क्त। आवेगः—आ-√ विज् + घञ्। स्फुरत्—√स्फुर् ६ प० + शतृ। उन्नेय—उद्-√ नी + यत् (कर्मणि)। परेषाम्—कृत्य 'उन्नेय' के योग में कर्म विकल्प से कर्तरि षष्ठी ऋक्ष में 'परैः' भी होगा (दे० पा० २।३।७१)। आध्यात—आ-√ ध्मा १ प० + क्त (कर्मणि)।

टिप्पणी (Notes)

भराध्मातहृदयः— 'भर' शब्द का अर्थ है भार (अर्थात् बोझ), अतएव आधिक्य, 'आध्मात' = फुलाया हुआ, आपूरित। चिराध्मा० (पाठा०)— चिरकाल से आपूरित है हृदय जिससे ऐसा (आवेग)।

इस श्लोक से राम का स्थैर्य तथा सहृदयत्व सूचित होता है। इस श्लोक में शिखरिणी छन्द तथा उपमा एवं अनुमान अलंकार है।

{५५} रामः— वत्स,

तत्कालं प्रियजनविप्रयोगजन्मा

तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवांछया विसोढः।

दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो

हृन्मर्मव्रण इव वेदनां करोति॥३०॥

अन्वयः— प्रियजनविप्रयोगजन्मा, तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवांछया तत्कालं विसोढः दुःखाग्निः मनसि पुनः विपच्यमानः हृन्मर्मव्रण इव वेदनां करोति।

{५५} शब्दार्थः— प्रियजनविप्रयोगजन्मा = प्रियजन (सीता) के वियोग से जन्म है जिसका ऐसा। तीव्रः अपि = दुःसह [होने पर] भी। प्रतिकृतिवांछया = प्रतीकारकी इच्छा से। तत्कालं = उस समय। विसोढः = किसी प्रकार सहन किया हुआ। दुःखाग्निः = शोकानल। मनसि = मन में। पुनः = फिर। विपच्यमानः = स्वयमेव पाक को प्राप्त होता हुआ। हृन्मर्मव्रण इव = हृदय के मर्मस्थान में उत्पन्न फोड़े के समान। वेदनाम् = वेदना को। करोति = [उत्पन्न] कर रहा है।

अनुवाद :— राम— वत्स, प्रियजन (सीता) के वियोग से उत्पन्न, दुःसह होने पर भी प्रतीकार (बदले) की इच्छा से उस समय किसी प्रकार सहा हुआ शोकानल, मन में फिर (आग) स्वयमेव पाक को प्राप्त होता हुआ (उद्बुद्ध होता हुआ) हृदय के मर्मस्थान में [उत्पन्न हुए] फोड़े (व्रण) के समान वेदना को उत्पन्न कर रहा है।

व्याकरणः— प्रियजनविप्रयोगजन्मा—प्रियजनेन (प्रियजनस्य वा) यो विप्रयोगः तस्माज्जन्म यस्य, व्यधिकरणो बहुव्रीहिः ('अवर्ज्यो बहुव्रीहिव्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदः' इति वामनः, अवर्ज्यः—अनिवार्यः)। विसोढः—वि—√ सह + क्त (कर्मणि) 'परिनिविभ्यः सेवसि—' (पा० ८।३।७०) सूत्र के अनुसार यद्यपि 'वि' उपसर्ग से परे √ सह के सको ष हो जाता है (जैसे विषहते), परन्तु √ सह के कृदन्तरूप 'सोढ' के सोको षो नहीं होता। दुःखाग्निः—दुःखम् अग्निरिव इति उपमितकर्मधारयः ('उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' पा० २।१।५६)। विपच्यमानः—वि—√ पच् + कर्मकर्तरि शानच्।

टिप्पणी (Notes)

प्रियजनः— अर्थात् सीता। प्रतिकृति०—तुल० ३।४४। विपच्यमानः— यह विशेषण 'दुःखाग्नि' तथा 'व्रण' दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। (दे०—इदं च

मध्यमणिन्यानेन पूर्वोत्तराभ्यामन्वेति' वी० रा०)। करोति—इसके स्थान में 'तनोति' पाठ भी है, तनोति = विस्तारयति। इस श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द एवं उपमा अलंकार है।

{५६} सीता— हृद्धी हृद्धी। अहं वि अदिभूमिं गदेण रणरणेण अज्जउत्तसुण्णं विअ अत्ताणं पेवखामि। [हा धिक् हा धिक्। अहमप्यतिभूमिं गतेन रणरणकेन आर्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि।]

लक्ष्मणः— (स्वगतम्।) भवत्वन्यतः क्षिपामि। (चित्रं विलोक्य प्रकाशम्।) अथैतन्मन्वन्तरपुराणगृध्रराजस्य तत्रभवतस्तात—जटायुषश्चरित्रविक्रमोदाहरणम्।

सीता— हातद, णिव्वूढो दे अवच्चसिणेहो। [हा तात, निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेहः।]

रामः— हा तात काश्यप शकुन्तराज, क्व नु खलु पुनस्त्वादृशस्य महतस्तीर्थस्य^१ साधोः सम्भवः।

शब्दार्थः— अतिभूमि = आधिक्य। रणरणक = उद्वेग, उत्कण्ठा। अन्यतः क्षिपामि = अन्य स्थल की ओर [इनके मन को] संचारित करता हूँ। मन्वन्तर = एक मनुका शासनकाल (= 71 दिव्ययुग, अर्थात् ३०८४४८००० मानवीय वर्ष)। चरित्रविक्रमोदाहरणम् = सद्वृत्त तथा पराक्रम का वर्णन (अर्थात् चित्रण)। निर्व्यूढः = 'निश्शेष (पूर्ण) रूप से विशेष तथा धारण किया हुआ', अपत्यस्नेहः = संतान पर प्रेम। काश्यप = कश्यप के वंश में उत्पन्न। शकुन्त = पक्षी। त्वादृशस्य = तेरे जैसे का। तीर्थ = हितोपदेष्टा, गुरु अथवा पावन। सम्भवः = जन्म।

अनुवाद :- सीता— हा धिक्! हा धिक्! मैं भी आधिक्य को प्राप्त हुए उद्वेग के कारण आर्यपुत्र रहित—सी अपने आपको देखती हूँ। लक्ष्मण— (स्वगत) अच्छा दूसरे विषय की ओर [इनको] प्रेरित करता हूँ। (चित्र देखकर प्रकट में) अब यह एक मन्वन्तर पुराने, पूज्य पितृतुल्य, गृध्रराज जटायु के चरित्र तथा पराक्रम का चित्रण है। सीता— हा तात, आपका सन्तान प्रेम पूर्णरूप से निबाहा गया। राम— हा तात, कश्यपकुलोत्पन्न पक्षिराज फिर आप जैसे महान्, पावन साधुका जन्म कहाँ होता है।

व्याकरण :- रणरणक—रण्यते शब्द्यते यत्र इति रणः, √ रण् + अप् ('वशिरणयोरुपसंख्यानम्' वा०), रणः शब्दः, तत्प्रकारः (तत्सदृशः) रणरणः (प्रकारे द्वित्वम्), ततः संज्ञायां कन्। निर्व्यूढ— निस्-वि-√ वह् + क्त, सम्प्रसारण। काश्यपः कश्यपस्य गोत्रापत्यं पुमान् (अण्)। त्वादृशः—त्वमिव दृश्यते इति त्वादृशः, त्वत् + √ दृश् + कन् ('त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कंच' पा० ३।२।६०), 'आ सर्वनाम्नः' पा० ६।३।९१ (दृग्, दृश् वतुप् परे होने पर सर्वनाम को आकार अन्तादेश

होता है) इस सूत्र के अनुसा 'त्वत्' को 'त्वा' होकर 'त्वादृशः' शब्द बनता है।
तीर्थ— $\sqrt{\text{त}} १ \text{ प०} + \text{थक्}$ (उणा० २।७)। साधु— (पु०)— साध्नोति परकार्यम्, $\sqrt{\text{साध्}}$
[५ प० + उण (उणा० १।१)। सम्भवः— सम्— $\sqrt{\text{भू}} १ \text{ प०} + \text{अप}।$

टिप्पणी (Notes)

आर्यपुत्रशून्यमिवा० :- सीता के इन बचनों में अचिरभाविनी विपत्ति की छाया है। मन्वन्तर— चारों युगों का एक चतुर्युग (अथवा दिव्ययुग) होता है, ऐसे ७१ दिव्ययुगों का एक मन्वन्तर होता है। ('मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः' अ० को०) और १४ मन्वन्तरों अथवा १००० चतुर्युगों का ब्रह्मा का एक दिन अर्थात् सृष्टिकाल होता है। एक-एक मन्वन्तर में एक-एक मनुका अधिकार रहता है। पहला मन्वन्तर स्वायम्भुव मनुका था। अब सातवाँ अर्थात् वैवस्वत मन्वन्तर है जो विवस्वान् के पुत्र वैवस्वत् मनु का अधिकार काल है। वैवस्वत मन्वन्तर के आरम्भ में ही कश्यप तथा विनता के पुत्र अरुण के दो पुत्र—सम्पाति तथा जटायु हुए। अतः जटायु कश्यप का पौत्र था जो वैवस्वत मन्वन्तर के आरम्भकाल से लेकर राम के समय तक जीवित रहा (दे० रामा० अरण्य० सर्ग० १४।३२-३३)।

तीर्थस्थः— यहाँ तीर्थ शब्द का अर्थ 'गुरु' (हितोपदेष्टा) अथवा पुण्यक्षेत्र के समान 'पावन' है (दे० तीर्थ शास्त्रे गुरौ यज्ञे पुण्यक्षेत्रावतारयोः हे० को०)।

{५७} लक्ष्मणः—अयमसौ जनस्थानस्य 'पश्चिमतश्चित्रकुंजवान्नाम' दनुकबन्धाधिष्ठितो दण्डकारण्यभागः। तदिदमृष्य 'मूकपर्वते मतंग— स्याश्रमपदम्। इयं च स्त्रमणा नाम 'सिद्धा शबरतापसी। तदेतत् पम्पाभिधानं 'पद्मसरः।

सीता— एतय किल अज्जउत्तरेण 'विच्छिन्नमरिसधीरतणं पमुक्ककण्ठं रुण्णं आसि। [अत्र किलार्यपुत्रेण विच्छिन्नामर्षधीरत्वं प्रमुक्तकण्ठं रुदितमासीत्।]

{५७} शब्दार्थ :- दनुकबन्धाधिष्ठितः = दनुकबन्ध (शिरोहीन शरीरवाले एक राक्षस) से अधिष्ठित (अपने अधिकार में किया हुआ, बसा हुआ)। सिद्धा = तपस्याद्वारा जिसने सिद्धि प्राप्त कर ली है। शबरतापसी = शबर जाति की तापसी। विच्छिन्नामर्षधीरत्वं = क्रोध (अमर्ष) तथा धैर्य नष्ट हो गया है जिस कर्म में इस प्रकार से, 'रुदितम्' का क्रि० वि०। प्रमुक्तकण्ठं = गला फाड़कर, ऊँचे स्वर से।

१. जनस्थानपश्चिमः

२. कुंजवान्नामपर्वतो

३. अमृष्यपरिसरे

४. सिद्धशबरी

५. सरः

६. विसज्जिदा० (विसृष्टा०), विच्छिन्नामरिसाधीणं (विच्छिन्नामर्षधीनम्)।

अनुवाद :- लक्ष्मण— यह वही जनस्थान के पश्चिम में चित्रकुंजवान् नामवाला, दनुकबन्ध से बसा हुआ, दण्डक बन का भाग है। यह वही ऋष्यमूकपर्वत पर मतंग [ऋषि] का आश्रम स्थान है और यह 'स्त्रमणा' नामवाली, शबर जाति की, सिद्धा तापसी है। यह वही 'पम्पा' नामक पद्मसरोवर है। **सीता—** यहाँ, सुनते हैं, आर्यपुत्र क्रोध तथा धैर्य को खोकर अत्यन्त उँचे स्वर से रोये थे।

टिप्पणी (Notes)

दनुकबन्धः— यह पहले विश्वावसु नामक गन्धर्व था। स्थूलशिरस नामक महर्षि के शाप से यह राक्षस हो गया। युद्ध में इन्द्र ने उसके सिर पर वज्र का प्रहार किया, जिससे उसका सिर उसके उदर में चला गया, तभी से उसका नाम दनुकबन्ध पड़ गया (दे० महावी० ५।३४), शिरोरहित क्रियायुक्त शरीर को कबन्ध कहते हैं। मतंग के आश्रम के निकट दनुकबन्ध की राम से मुठभेड़ हुई और राम ने उसके दोनों हाथ काट दिये, तथा उसी की प्रार्थना पर उसके शरीर को अग्नि में जला दिया, अग्नि में से वह दिव्य पुरुष के रूप में निकला और राम को सुग्रीव से मित्रता करने का परामर्श दिया।

ऋष्यमूक— इसी पर्वतपर सुग्रीव रहता था।

मतंगस्याश्रमपदम्— यह पम्पा सरोवर के पश्चिम में था, दे०—“ततस्तद्राम पम्पायास्तीरमाश्रित्य पश्चिमम्। आश्रमस्थनमतुलं गुह्यं काकुत्स्थ पश्यसि।।..... ऋषेस्तस्य मतंगस्य विधानात्तत्र काननम्। मतंगवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन।।” (रामा० अरण्य० ७३।२८—३०)।

स्त्रमणानामः— रामायण में इसका नाम 'शबरी' दिया हुआ है ('श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी।' अरण्य० ७३।२६)। श्रमणा अथवा श्रमणी का अर्थ है तापसी। यह मतंग के शिष्यों की परिचर्या किया करती थी और वहीं रहकर तपस्या भी करती थी। आधुनिककाल के भीलों के समान शबर एक पहाड़ी जंगली जाति थी। ('भेदाः किरातशबरपुलिन्दा म्लेच्छजातयः' अ० को०)।

सिद्धा— तपस्या तथा योगाभ्यास के कारण इसको अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो गई थीं, अतः यह सिद्धा कहलाती थी (दे० “तौ दृष्टा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः।” (अरण्य० ७४।६) “अहं हि श्रमणानाम सिद्धा शबरतापसी। मातंगाश्रमवास्तव्या रामान्वेषिष्युपागता।।” (महावी० ५।२७)।

पम्पा :- ऋष्यमूक पर्वत के निकट यह एक प्रसिद्ध पुष्करिणी थी, जिसमें कमल तथा दूसरे पुष्प खिले रहते थे, इसी के पश्चिम की ओर शबरी का आश्रम था। दक्षिण भारत में बिलारी के निकट आधुनिक हम्पी नामक स्थान पम्पा था, ऐसा कहा जाता है।

वाच्छन्नामषः— विसृष्टः (पाठा०)— 'विसृष्ट' का अर्थ है परित्यक्त, विच्छर्दितामर्षाधीनम् (पाठा०)—विच्छर्दितः विवर्द्धितः अमर्षः असहिष्णुता, धैर्यविगमः, इति यावत् तस्य अधीनम्।

{५८} रामः— देवि, १०२रमणीयमेतत्सरः।

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष—

व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः।

वाष्पाम्भः परिपतनोदगमान्तराले

संदृष्टाः कुवलयिनो १०३भुवो विभागाः॥३१॥

अन्वयः— एतस्मिन् मदकलमल्लिकाक्षपक्षव्याधूतस्फुरदुरुदण्ड पुण्डरीकाः भुवः विभागाः वाष्पाम्भः परिपतनोदगमान्तराले {मया} कुवलयिनः संदृष्टाः।

{५८} शब्दार्थः— एतस्मिन् = इस {पम्पा सरोवर} में। मदकल..... पुण्डरीकाः = हर्ष अथवा यौवन मद के कारण अव्यक्त मधुरध्वनि (कल) करते हुए मल्लिकाक्ष हंसों के पंखों से कम्पित अतएव चंचल तथा बड़े नालों वाले श्वेतकमल (पुण्डरीक) हैं जिनमें ऐसे। भुवो विभागाः = भूमि के भाग। वाष्पाम्भःपरिपतनोदगमान्तराले = आँसुओं के गिरने तथा (पुनः) निकलने के बीच वाले समय में। कुवलयिनः= नीलोत्पलवाले। संदृष्टाः = दिखाई पड़ते थे।

अनुवाद :- राम— देवि, यह {पम्पा} सरोवर रमणीय (मनोहर) है। इसमें, यौवनमद से अव्यक्तमधुरध्वनि वाले मल्लिकाक्ष हंसों के पंखों से कंपाये हुए {अतएव} चंचल बड़े नालों वाले श्वेतकमलों के युक्त भूमि के भाग, आँसुओं के गिरने तथा निकलने के बीच वाले समय से {अश्रुकलुषित दृष्टि होने के कारण मुझे} नीलकमलों से युक्त दिखाई पड़े।

टिप्पणी (Notes)

पम्पा सरोवर की शोभा का वर्णन कादम्बरी में भी किया गया है। टीकाकारों ने इस श्लोक की भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की है। अकेले वीर राघव ने ही चार प्रकार की व्याख्याएँ दी हैं। इनमें से अनेक व्याख्याओं में शब्दों के अर्थों की खींचातानी की गई है। पम्पा में स्थित भूभाग यद्यपि पुण्डरीकों से युक्त हैं, किन्तु उनमें उत्पलों की बहुलता है, वे 'कुवलयिनः' हैं। सीता के विरह से शोक-संतप्त राम के नेत्रों से अविच्छिन्न अश्रुप्रवाह होता रहता है, अतएव आँसुओं के गिरने और निकलने के बीच में जो क्षणभर का अवकाश मिलता है

१. परं रम०

२. मया

उसमें राम जब पम्पा सरोवर के इन भागों को देखते हैं तब उन्हें पुण्डरीक युक्त तथा कुवलययुक्त भूभाग अलग-अलग नहीं प्रतीत होते, उनके नेत्र अश्रुकलुषित होने से पुण्डरीकों तथा कुवलयों में विवेक नहीं कर पाते, अतएव कवि ने 'संदृष्टाः' शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार भी इस श्लोक की व्याख्या की जाती है। दूसरी व्याख्या के अनुसार पम्पा के पुण्डरीकयुक्त प्रदेश अश्रुकलुषित दृष्टि के कारण राम को धूसरवर्ण के प्रतीत होते हैं अतः वे 'कुवलयिनः' दिखाई पड़ते हैं, किन्तु राम यह समझते हैं कि उनकी दृष्टिदोष के कारण ही ऐसा हो रहा है, वास्तविकता से वे अनभिज्ञ नहीं हैं। अतः उन्होंने 'संदृष्टाः' शब्द का प्रयोग किया है। इसीलिए इसमें भ्रान्तिमान् अलंकार नहीं है। इस श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है।

{५९} लक्ष्मणः— अयमार्यो हनूमान्।

सीता— एसो सो चिरनिर्विण्णजीवलोअपच्चुद्धरणगुरुओवआरी महानुभावो मारुदी। {एष स चिरनिर्विण्णजीवलोकप्रत्युद्धरणगुरु— कोपकारी महानुभावो मारुतिः}।

{५९} शब्दार्थः— चिरनिर्विण्ण = चिरकाल से दुःखित। प्रत्युद्धरण = उद्धार, दुःखमोचन। गुरुकोपकारी = भारी उपकार करनेवाला। अनुभाव = तेजोविशेष, प्रभाव।

अनुवाद :- लक्ष्मण— ये पूज्य हनूमान हैं। सीता— ये वे, चिरकाल से दुःखित प्राणियों का उद्धार (दुःखमोचन) करने वाले महोपकारी, महानुभाव (महाप्रभाववाले) मारुति (मरुत् के पुत्र हनूमान) हैं।

व्याकरण :- हनूमान्—प्रशस्तौ हनू अस्य स्तः, हनु + मतुप् (प्रशंसायाम्), 'शरादीनां च' (पा० ६।३।१२०) इति संज्ञाया दीर्घः। चिरनिर्विण्ण—निर्-√ विद् + क्त। मारुतिः—मरुतोऽपत्यंपुमान्, मरुत् + इञ् ('बाह्वादिभ्यश्च' पा० ४।१।९६)।

टिप्पणी (Notes)

हनूमान् :- केसरी नामक वानर की पत्नी अंजना से मरुत (वायुदेवता) द्वारा उत्पन्न।

चिरनिर्विण्णा० :- रावण के अत्याचार से सम्पूर्ण लोक चिरकाल से पीड़ित थे। हनूमान् ने रावणवध में राम की सहायता करके उन दुःखित प्राणियों का उद्धार किया।

चिरनिर्व्यूढः— (पाठा०)— चिरात् निर्व्यूढं (निष्पादितं) जीवलोकस्य प्रत्युद्धरणम् एव गुरुकः उपकारः, सः अस्य अस्ति इति गुरुकोपकारी। वीरराघव के अनुसार सीता ने इन शब्दों में अपने ही उद्धार की ओर निर्देश किया है ('दशमासपरिमितरावणगृहवास— स्यातिभूयस्त्वाभिसंधिना चिरादित्युक्तम्' वी० रा०)।

{६०} रामः— दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुर्अञ्जनानन्दवर्धनः।

यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च॥३२॥

अन्वय— दिष्ट्या अयं सः महाबाहुः अञ्जनानन्दवर्धनः, यस्य वीर्येण वयं कृतिनः, भुवनानि च कृतीनि।

{६०} शब्दार्थ :- दिष्ट्या = हर्षसूचक अव्यय। अयम् = यह। सः = वह। महाबाहुः = बड़ी बाहुओं वाला, महापराक्रमशाली। अञ्जनानन्दवर्धनः = अञ्जना के आनन्द को बढ़ानेवाला, अर्थात् अंजना का पुत्र [हनूमान है]। यस्य = जिसके। वीर्येण = पराक्रम (अथवा वीरतापूर्ण कार्यों) से। वयं = हम। भुवनानि च = और सब लोक। कृतिनः = कृतार्थ [हो गये]।

अनुवाद :- राम— हर्ष है, यह वह महाबाहु (पराक्रमशाली), अञ्जना के आनन्द को बढ़ानेवाला (हनूमान) है, जिसकी वीरता से हम और सब लोग कृतार्थ (सफल मनोरथ) हो गये।

व्याकरण :- वर्धनः— वृध् १ आ० + ल्युः ('नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' पा० ३१२१३४)। वीर्य (न०)—वीरस्य भावः कर्म वा, वीर + यत्। कृतिन् (वि०)—कृतमस्यास्तीति कृती, कृत + इनि।

दिष्ट्या :- 'दिष्टि' (स्त्री०) शब्द का तु० ए० व०, जो क्रि० वि० अव्यय के रूप में प्रयुक्त होता है। 'दिष्टि' शब्द का अर्थ है, सौभाग्य से आनन्द की बात है।

अञ्जना— केसरी की पत्नी का नाम, हनुमान की माता।

कृतिनो वयं च भुवनानि च :- वयं च कृतिनः, भुवनानि च कृतीनि। सीता ने हनूमान् द्वारा किये हुए सामान्यतया सभी जीवों के उद्धार की बात कही थी, राम ने सीता के उस कथन में 'वयं च कृतिनः' ऐसा और जोड़कर हनूमान् के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है। जब भिन्न-भिन्न लिङ्गवाले अनेक विशेष्यों का एक ही विशेषण हो, तब उस विशेषण का लिङ्ग सन्निहित विशेष्य के अनुसार ही होता है, जब उस विशेषण को शेष विशेष्यों के साथ लगाना होता है तो उसका लिङ्ग उस-उस विशेष्य के लिङ्ग के अनुसार बदल जाता है, जिसे लिङ्ग विपरिणाम कहते हैं। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

{६१} सीता— वच्छ, एसो कुसुमिदकदम्बतरुतण्डविअबंहिणो किंणामहेओ गिरी जत्थ अणुभाव सोहणमेत्तपरिसेस धूसरसिरी मुच्छन्दो तुए परुदिएण अवलम्बिदो तरुअले अज्जउत्तो आलिहिदो? [वत्स, एष कुसुमितकदम्बतरुतण्डवितर्हिणः किंनामधेयो गिरिर्यत्रानुभावसौभाग्य— मात्रपरिशेषधूसरश्रीमूर्च्छस्त्वया प्ररुदितेना—वलम्बितस्तरुतल आर्यपुत्र

आलिखितः?}

{६१} शब्दार्थः— कुसुमित = पुष्पित। ताण्डवितबर्हिणः = नाचते हुए मयूर हैं जहाँ पर ऐसा। किंनामधेयः = किस नामवाला। गिरिः = पर्वत। अनुभाव = प्रभाव, एक प्रकार का तेज। सौभाग्य = उत्कर्ष, सौन्दर्य। परिशेष = अवशेष, जो कुछ बचा हो। धूसर = धूल के रंगवाली, मटियाली। श्रीः = शोभा, कान्ति। प्ररुदितेन त्वया = रोते हुए तुझसे। अवलम्बितः = सहारा दिया हुआ, थामा हुआ। आलिखितः = चित्रित।

अनुवाद :- सीता— वत्स, यह पुष्पित कदम्ब वृक्षों पर नाचते हुए मयूरोंवाला किस नाम का पर्वत है, जहाँ तेजोविशेष के उत्कर्षमात्र के रूप में बची हुई मटियाले वर्ण की शोभा से युक्त, मूर्छित होते हुए, {और} मुझ रोते हुए से सहारा दिये हुए, वृक्ष के नीचे, आर्यपुत्र चित्रित हैं?

व्याकरणः— ताण्डवित — 'ताण्डवं प्रकृताः इति ताण्डविताः' ताण्डव + णिच् (ना० धा०) + क्तः (आदिकर्मणि कर्तरि, दे० पा० ३।४।७१), अथवा ताण्डवानि संजातानि येषां ते ताण्डविताः, तारकादित्वात् इतच्। बर्हिण—बर्हमस्या स्तीति, बर्ह + इनच् ('फलबर्हाभ्यामिनच्' वा०) प्ररुदित = प्र-√ रुद् + क्त (आदिकर्मणि कर्तरि), अथवा प्रकष्टं रुदितं (नपुंसक भावे क्तः) यस्य सः प्ररुदितः।

टिप्पणी (Notes)

ताण्डवित :- वर्षा ऋतु में मेघों की स्निग्ध गम्भीर ध्वनि सुनकर तथा कदम्ब पुष्पों की सुगन्ध से उन्मत्त होकर मयूरों का नृत्य करना कवि समय के अनुसार प्रसिद्ध हैं ताण्डु मुनि ने ताण्डव नृत्य का आविष्कार किया। आरम्भ में ताण्डव एक विशेष प्रकार के नृत्य को कहते थे ('तुल०—“उद्धतकरणांगहारनिर्वर्त्य—मारभटीवृत्तिप्रधानं गीतकानुसारित्वादादौ ताण्डुमुनिना प्रणीतं ताण्डवम्।” क्षी० स्वा०), किन्तु बाद में यह शब्द 'नृत्य' शब्द का पर्यायवाची बन गया (दे०—अ० को०)। पुरुष के नृत्य को ताण्डव तथा स्त्री के नृत्य को लास्य कहते हैं, ऐसा भी उल्लेख मिलता है ("पुं नृत्यं ताण्डवं प्रोक्त स्त्रीनृत्यं लास्यमुच्यते")।

अनुभाव० :- एक विशेष प्रकार के तेज अथवा प्रभाव को कहते हैं, जो दूसरों के हृदय में संप्रभ (आदरयुक्त भय) को उत्पन्न करता है।

प्ररुदितेन :- मूर्छित राम को धारण करते समय लक्ष्मण रो रहे थे, रोदन क्रिया समाप्त नहीं हुई थी, अतएव यहाँ भूतकाल में 'क्त' प्रत्यय नहीं हो सकता, इसीलिए यहाँ आदिकर्मणि क्तः मानना होगा। आदिकर्म अर्थात् क्रिया का आरम्भ।

{६२} लक्ष्मणः— सोऽयं शैलः ककुभसुरभिर्माल्यावान्नाम यस्मिन्नीला स्निग्धः श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाहः।

रामः—..... विरमविरमातः^१ परं न क्षमोऽस्मि

प्रत्यावृत्तः^३ पुनरिव स मे जानकीविप्रयोगः॥३३॥

अन्वयः—अयं सः ककुभसुरभिः माल्यवान् नाम शैलः, यस्मिन् नीलःस्निग्धः नूतनः तोयवाहः शिखरं श्रयति । अस्मिन् आर्येण

{६२} शब्दार्थः— अयं सः = यह वही । ककुभसुरभिः = अर्जुन के पुष्पों से सुगन्धित । माल्यवान् नाम = माल्यवान् नाम का । शैलः = पर्वत है । यस्मिन् = जिसमें । नीलः = नील वर्णवाला । स्निग्धः = चिकना, अथवा नेत्रों को आनन्द देने वाला । नूतनः = नया । तोयवाहः = मेघ । शिखरं श्रयति = शिखर का अवलम्बन लेता है, पर्वतशृंग पर ठहरता है । विरम = ठहर, निवृत्त होना । अतः परम् = इससे आगे [दिखने के लिए] । क्षमः = समर्थ । न अस्मि = नहीं हूँ । सः = वह, पूर्वानुभूत । मे = मेरा । जानकीविप्रयोगाः = सीताविरह । पुनः = फिर । प्रत्यावृत्तः इव = मानों लौट आया है ।

अनुवाद :- लक्ष्मण— यह वही अर्जुन पुष्पों से सुगन्धित, माल्यवान् नामका पर्वत है, जहाँ पर श्यामवर्णवाला, चिकना, नया [वर्षा के आरम्भ का] मेघ शिखर पर ठहरता है । आर्य द्वारा यहाँ पर राम— रुको, रुको, इसके आगे और कुछ [सुनने में] समर्थ नहीं हूँ । वह (पूर्वानुभूत) मेरा जानकी-विरह फिर मानों लौट आया है ।

व्याकरण :- शैलः—शिलानाम् अयं, शिलाः सन्त्यस्येति वा, शिला + अण् । ककुभ—ककुभाः वृक्षविशेषाः तेषां पुष्पाणि ककुभानि, ‘पुष्पमूलेषु बहुलम्’ इस वार्तिक के अनुसार विकारार्थक ‘अण्’ प्रत्यय का लुप् हो गया । तोयवाहः—तोयं वहति तोयवाहः, कर्मण्यण् । विरम—वि—√ रम् १. प०—लोट् म० पु० ए० व०, ‘व्याङ्परिभ्यो रमः (पा० १।३।८३) इति परस्मैपदम् । प्रत्यावृत्तः—प्रति—आ—√ वृत् + क्त ।

टिप्पणी (Notes)

ककुभसुरभिः— अर्जुननामक वृक्षों के पुष्पों की सुगन्ध से युक्त, तुल०—‘एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरभिवासितः’ रामा० किष्किन्धा०, सर्ग २८।९।

माल्यवान् :- यह गिरि सम्भवतः किष्किन्धा के निकट स्थित था, तथा ‘प्रस्रवण’ पर्वत श्रेणी का एक भाग था । यहाँ पर निवास करते हुए, राम को सीताविरहजनित शोक असह्य हो उठा था, तुल०—रामा० किष्किन्धा० २७।३१, ३२,

१. एतन्नास्ति क्वचित्

२. वत्सैतस्माद्विरम्

३. पुनरपि

तथा रघु० १३।२६, २९ ('नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्च समं विसृष्टम्।' इत्या०)

आर्येणास्मिन् :- इससे आगे लक्ष्मण माल्यवान् पर्वत पर निवास के समय की सीताविरहजनित राम की शोकपूर्ण दशा का वर्णन करने वाले थे, किन्तु राम ने उन्हें बीच ही में रोक दिया। लक्ष्मण के इन शब्दों से मिलकर रामद्वारा कहा हुआ श्लोक का तीसरा चरण पूरा होता है। पाठा० में लक्ष्मण के ये शब्द नहीं हैं, किन्तु इनके स्थान पर रामद्वारा कहे हुए 'वत्सैतस्माद' शब्द हैं।

पुनरिव :- यह पाठ 'पुनरपि' (पाठा०) की अपेक्षा अधिक मान्य है, क्योंकि 'अपि' का अर्थ तो 'प्रत्यावृत्तः' में ही सन्निविष्ट है।

प्रत्यावृत्तः- इससे निकट भविष्य में होने वाले सीता विरह की सूचना मिलती है।

{६३} लक्ष्मणः- अतः परमार्यस्य तत्रभवतां कविराक्षसानां चासंख्यातान्युत्तरोत्तराणि कर्माश्चर्याणि। परिश्रान्ता चेयमार्या। तद्विज्ञापयामि विश्राम्यतामिति।

सीता- अज्जउत्ता, एदिणा चित्तदंसणेण पच्चुपण्णादोहलाए अत्थि मए विण्णप्पं। {आर्यपुत्र, एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्नदोहदाया अस्ति मम विज्ञाप्यम्।}

रामः- नन्वाज्ञापय।

सीता- जाणो पुणोवि पसण्णगम्भीरासु वणराइसु विहरिस्सं पवित्तसोम्मसिसिरावगाहां भअवदि भाईरहिं ओगाहिस्संति। {जाने पुनरपि प्रसन्नगम्भीरासु वनराजिषु विहरिष्यामि पवित्रसौम्य- शिशिरावगाहां भगवतीं भागीरथीमवगाहिष्य इति।}

{६३} शब्दार्थ :- असंख्यातानि = अगणित। उत्तरोत्तराणि = आगे-आगे होने वाले, अथवा क्रम से उत्कृष्टता को प्राप्त हुए। कर्माश्चर्याणि = अद्भुत कर्म। परिश्रान्ता = क्लान्त, थकी हुई। दिज्ञापयामि = निवेदन करता हूँ। दोहद = मनोरथ, अथवा गर्भिण्यभिलाष। प्रसन्न = प्रसादयुक्त, अनुद्वेगजनक। गम्भीर = गहन। राजि (अथवा राजी) = पंक्ति, श्रेणी। पवित्र = पवित्रताकारक, पावन। सौम्य = सुखकारक। शिशिर = शीतल, संतापनाशक। अवगाह = स्नान, मज्जन।

अनुवाद :- लक्ष्मण- इससे आगे आर्य के (अर्थात् आपके) तथा पूज्य कपि और राक्षसों के, क्रम से उत्कृष्ट होते हुए, अद्भुत कर्म {चित्रित} हैं और ये आर्या (सीता) थक गई हैं। अतः निवेदन करता हूँ कि विश्राम किया जावे। सीता- आर्यपुत्र, इस चित्रदर्शन से उत्पन्न हुए मनोरथवाली मैं कुछ निवेदन करती हूँ।

राम— हाँ, हाँ, आज्ञा कीजिए। सीता— सोचती हूँ, फिर भी शान्त तथा गहन वनश्रेणियों में विहार करूँ, [तथा] भागीरथी में गोता लगाऊँ, जहाँ का स्नान पावन, सुखकर तथा शीतल (संतापहारक) है।

व्याकरणः— असंख्यातानि—अविद्यमानं संख्यातं एषात्, बहुव्री०। आश्चर्य (न०)—आ (आङ् -√ चर् + यत्, 'चरेराङि चागुरौ' (वा०) इति ण्यतोऽपवादः, 'आश्चर्यमनित्ये' (पा० ६११४७) इति सूत्रेण अद्भुतेऽर्थे लुट्। विज्ञाप्यम्—वि-√ ज्ञापि (√ ज्ञा—णिच्, पुक्) + यत्। ये विज्ञाप्यम्—कृत्ययोगे विकल्पेन कर्तरि षष्ठी (कृत्यानां कर्तरि वा' पा० २।३।७१), पक्षे मया विज्ञाप्यम्। जाने—√ ज्ञा १-उ०—लट्, 'अनुपसर्गाज्ज्ञः' पा० (१।३।७६) इति कर्त्रभिप्राये क्रियाफले आत्मने० प्रसन्न—प्र-√ सद् १ प० + क्त। गम्भीर—पवित्र पूयतेऽनेन, √ पू + इत्र।

टिप्पणी (Notes)

नन्वाज्ञापयः— सीता ने 'अस्ति में विज्ञाप्यं' कहा था। 'आज्ञापय' ऐसा कहने में राम का अभिप्राय यह है कि ऋष्यशृङ्ग के आश्रम से गुरुजनों ने सीता के दोहद को तुरन्त पूरा करने का आदेश भेजा है अतः सीता का निवेदन राम के लिए आज्ञा के समान है।

जाने इत्या० :— सीता के इन शब्दों में निकट भविष्य में होने वाले सीता—निर्वासन की तथा शोकविधुरा सीता के भागीरथी में आत्मविसर्जन की सूचना है।

{६४} रामः— वत्स लक्ष्मण!

लक्ष्मणः— एषोऽस्मि।

रामः—वत्स, 'अचिरं संपादनीयोऽस्या दोहद इति संप्रत्येव गुरुभिः संदिष्टम्। तदस्खलितसुखसंपातं रथमुपस्थापय।

सीता— अज्जउत्त, तुह्य हिं वि तहिं गन्दव्यं। [आर्यपुत्र, युष्माभिरपि तत्र गन्तव्यम्।]

रामः— अयि कठिनहृदये, एतदपि वक्तव्यमेव।

सीता— तेण हि पिअं मे। [तेन हि प्रियं मे।]

लक्ष्मणः— यथाज्ञापयत्यार्यः।

(इति निष्क्रान्तः)

१. अचिरादेव

२. वक्तव्यम्

३. पिअं मे पिअं मे

[६४] शब्दार्थ :- अचिरं = तुरन्त। संपादनीयः = पूरा करना चाहिए।
संप्रति = अभी, कुछ ही समय पूर्व। अस्खलितसुखसंपातं = अबाध (अस्खलित)
तथा सुखकर गति (संपात) वाला। उपस्थापय = उपस्थित करो, लाओ। प्रियं =
प्रीतिकर।

अनुवाद:- राम- वत्स लक्ष्मण! लक्ष्मण- मैं उपस्थित हूँ। राम- वत्स,
'शीघ्र इस [सीता] का मनोरथ पूरा किया जाना चाहिए' इस प्रकार अभी गुरुजनों
द्वारा संदेश दिया गया है अतः अबाध तथा सुखकर गतिवाले रथ को तैयार करो।
सीता- आर्यपुत्र, आपको भी वहाँ चलना चाहिए। राम- अयि, कठोर हृदयवाली,
यह भी कहना ही पड़ेगा। सीता- तब तो मेरे लिए बड़ी प्रसन्नता की बात है।
लक्ष्मण- जैसी आर्य आज्ञा दें। (ऐसा कहकर चले जाते हैं)।

व्याकरण :- सम्पादनीय- सम्-√ पद ४. आ० + णिच् + अनीय।
अस्खलितः- न स्खलितः इति अस्खलितः (नञ् समास), यद्वा नास्ति स्खलितं
यस्य सः। स्खलितं-√ स्खल् १. प० (संचलने) + नपुंस के भावे क्तः। सम्पात-सम्-√
पत् + घञ् भावे। उपस्थापय-उप-√ स्था + णिच्, पुक् + लोट्। वक्तव्यम्-√
वच् २. प० (वक्ति) + तव्य।

टिप्पणी (Notes)

अस्खलितमुख :- रथ-पूर्णगर्भा सीता के लिए ऐसा ही रथ होना उचित
था।

कठिनहृदये :- सीता के बिना कहे ही राम उसके साथ वन को जाते,
इस विषय में सीता के हृदय में शंका ही क्यों उठी, इसी विचार से राम ने सीता
को 'कठिनहृदया' कह कर उपालम्भ दिया है।

[65] राम:- प्रिये, अत्र 'वातायनोपकण्ठे मुहुर्त्तं^१ संविष्टौ भवावः।

सीता- एवं होदु। ओहीरिज्जामि क्खु परिस्समजणिदाए णिद्दाए। {एवं
भवतु। अपह्रिये खलु परिश्रमजनितया निद्रया}।

राम:- तेन हि निरन्तरमवलम्बस्व^३ भामत्र शयनाय।

[६५] शब्दार्थ :- वातायन = 'वायु का मार्ग (अयन)' दीवार में बने हुए
झरोखे, जिनमें से होकर वायु घर में प्रवेश करे, गवाक्ष। उपकण्ठे = समीप में।
संविष्टौ = शयन करते हुए, विश्राम करते हुए। अपह्रिये = अपहरण की जा रही
हूँ, अभिभूत हो रही हूँ। निरन्तरम् = अन्तर रहित, गाढ़। अवलम्बस्व = सहारा लो।

१. वातायनावर्तके

२. संविष्टा भव

३. मामनुगमनाय

अनुवाद :- राम- प्रिये, यहाँ खिड़की के समीप मुहूर्त भर के लिए [हम दोनों] विश्राम करें। सीता- ऐसा ही होवे। थकावट से उत्पन्न हुई निद्रा से मैं खिंची जा रही हूँ। राम- इसी कारण से, यहाँ सोने के लिए अपने और मेरे शरीर के बीच में अवकाश न रखते हुए मेरा सहारा लो।

व्याकरण :- वातायन-वातस्य अयनम् आगमनं येन यस्मात् वा, √ अय् + ल्युट् उपकण्ठे-कण्ठस्य समीपे उपकण्ठे (सामीप्ये अव्ययीभावः), उपकण्ठम्, उपकण्ठे वा, 'तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्' (पा० ३।४।८४) इस सूत्र द्वारा सप्तम्यर्थ अकारान्त अव्ययीभाव का विकल्प से सप्तमी में भी रूप हो सकता है। संविष्ट-सम्-√ विश् ६. प० + क्त कर्तरि। अवलम्बस्व-अव-√ लम्ब १. आ०-लोट, म० पु० ए० व०। शयनाय-√ शी २. आ० (शेते) + ल्युट् भावे, 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' (पा० २।३।१५) इति चतुर्थी, शयितुमित्यर्थः।

टिप्पणी (Notes)

वातायनोपकण्ठे :- खिड़की के समीप के स्थान में।

वातायनावर्तके (पाठा०):- वातायन के समीप के परदेवाले स्थान में, जहाँ दूसरे न देखे, 'अपवर्तक' शब्द का भी यही (परदा या परदेवाला स्थान) अर्थ होता है।

संविष्टौभ्वाव:- सो जावें, विश्राम करें। सम् पूर्वक विश् धातु (संविस) का अर्थ लेटना, सोना, विश्राम करना इत्यादि होता है।

{६६} राम:- जीवयन्निव ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम्।

बाहुरेन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः॥ ३४॥

अन्वय:- ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुः, ऐन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दि-चन्द्रमणिहारविभ्रमः, बाहुः जीवयन् इव अधिकण्ठम् अर्प्यताम्।

{६६} शब्दार्थ :-ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुः = भय तथा थकावट से उत्पन्न पसीनों की बूँदों से युक्त। ऐन्दव = इन्दु सम्बन्धी। मयूख = किरण। स्यन्दिन् = द्रवित होने वाला। चन्द्रमणिहर = चन्द्रकान्तमणियों से बना हुआ हार। विभ्रम = विलास, शोभा। जीवयन् इव = जीवित करता हुआ सा। बाहु = भुजा। अधिकण्ठम् = कंठ में, गले में। अर्प्यताम् = अर्पित किया जावे, डाला जावे।

अनुवाद :- राम-भय तथा श्रमजनित स्वेद बिन्दुओं से युक्त, [और] चंद्रमा की किरणों द्वारा छुए हुए [होने से] चूते हुए चन्द्रकांतमणिनिर्मित हार के समान शोभित बाहु [मुझे] जीवित करता हुआ सा, [मिरे] गले में डाला जावे।

व्याकरण :- जीवयन्-√ जीव् १. प० + णिच् + शतृ। अर्प्यताम्-√ ऋ (गतिप्रापणयोः) १. प० + णिच् (Causal)-कर्मणि लोट्। ऐन्दव-इन्दोः इमे ऐन्दवाः,

इन्दु + अण् 'तस्येदम्' पा० ४।३।१००)। स्वन्दिन—√ स्यन्द (प्रस्रवणे) १. आ० +
णिनि ('नन्दिग्रहि—' पा० ३।१।१३४), अथवा स्यन्दः क्षरणं विद्यतेऽस्य, स्यन्द + इनि।

टिप्पणी (Notes)

यह श्लोक मालती० (८।३) में भी है।

जीवयन्निव :— यहाँ पर 'हेतु' (फल) में शतृ प्रत्यय है (दे० पा० ३।२।१२६ 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः'), अतः इसका अर्थ हुआ 'जीवयितु' (मुझे जीवन प्रदान करने के लिए)। वीरराघव ने 'इव' शब्द को यहाँ ईषदर्थक माना है ('मत्संजीवनफलकं यदीषदर्पणं तत्कर्म क्रियतामित्यर्थः')। अथवा 'इव' शब्द सादृश्यसूचक है, जिससे बाहु तथा चन्द्रमणिहार इन दोनों में सादृश्य सूचित होता है, और 'जीवयन्' इस पद से बाहु की विशेषता प्रकट होती है, अतः यहाँ व्यतिरेकालंकार है।

साध्वसं :— साधु अस, साधु सम्यक् अस्यति विक्षिपति चित्तं, साध्वसं = भयं, 'दरत्रासौ भीतिर्भीः साध्वसं भयम्' (अ० को०)।

ऐन्दवमयूखचुम्बितः— यद्यपि 'इन्दुमयूखचुम्बित' से भी इष्ट अर्थ का बोध हो जाता, परन्तु दाक्षिणत्यों को तद्धित प्रिय होता है, अतः दाक्षिणात्य कवि नवभूति ने 'इन्दु' के बदले 'ऐन्दव' शब्द का प्रयोग किया है, ('प्रियतद्धिता हि दाक्षिणात्याः' पत०)।

चुम्बित— √ चुम्ब (१. प०) का मुख्य अर्थ 'वक्त्रसंयोग' अर्थात् चूमना है, परन्तु यहाँ इस मुख्य अर्थ के अर्थान्तर में संक्रमित हो जाने से 'चुम्बित' का अर्थ 'स्पष्ट' है।

चन्द्रमणिहारविभ्रमः— 'विभ्रम' शब्द का अर्थ 'विलास' अथवा 'भ्रान्ति' है, अतः इसका अर्थ हुआ—चन्द्रमणिहार के समान विलास (शोभा) वाला, अथवा चन्द्रमणिहार की भ्रान्तिवाला (चन्द्रमणिहारसदृश)।

३७] रामः— (तथा कारयन्। सानन्दम्।) प्रिये, किमेतत्।

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा।

प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।

तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो

विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च॥३५॥

अन्वयः— तव स्पर्शे—स्पर्शे परिमूढेन्द्रियगणो विकारो हि मम चैतन्यं भ्रमयति

शक्ये
आबोधे
समुन्मीलयति।

च संमीलयति च, [अतोऽयं विकारः] सुखं वा दुःखं वा प्रमोहो वा निद्रा वा विषविसर्प किमु, इति विनिश्चेतुं न शक्यः।

{६७} शब्दार्थ :- सानन्दम् = आनन्द सहित। तव = तेरे। स्पर्श स्पर्श = प्रत्येक स्पर्श में। मम = मेरा। परिमूढेन्द्रियगणः = अपने-अपने विषय के ग्रहण में असमर्थ हो गई हैं इन्द्रियाँ जिससे ऐसा, (विकार का विशेषण)। विकारः = चित्त का अन्यथा भाव, चित्त की एक विशेष अवस्था। चैतन्यं = चेतना को। भ्रमयति = भ्रांत बना देता है। संमीलयति = बंद कर देता है, संकुचित कर देता है। सुखम् इति वा = 'वह सुख है' इस प्रकार से। दुःखम् इति वा = अथवा 'दुःख है' इस प्रकार से। प्रमोहः = गाढ़ मूर्च्छा है। निद्रा वा = अथवा निद्रा है। किमु = क्या, अथवा। विषविसर्पः = विषका प्रसार है। किमु = क्या। मदः = मद्यजन्य नशा है। विनिश्चेतुं न शक्यः = विशेष रूप से निश्चय किये जा सकने योग्य नहीं है।

अनुवाद :- राम— (वैसा करते हुए। आनन्द से।) प्रिये, यह क्या ? तेरे प्रत्येक स्पर्श में, स्वविषय के ग्रहण करने में सर्वथा असमर्थ बना दिया है इन्द्रियों का समूह जिसने ऐसा, मनोविकार क्योंकि मेरी चेतना को भ्रान्त बना रहा है तथा संकुचित कर रहा है, [अतः यह] 'सुख है, अथवा दुःख है, गाढ़ मूर्च्छा है, अथवा निद्रा है, अथवा क्या यह [शरीर में] विष का प्रसारण है, अथवा [मद्य के नशे के समान कोई] नशा है, इस प्रकार विशेषरूप से निश्चय किये जा सकने योग्य नहीं है।

व्याकरण :- कारयन्-√ कृ-णिच् (Causal) + शतृ। णिजन्त √ कृ का प्रयोज्य कर्ता द्वि० वि० अथवा तृ० वि० में रक्खा जाता है ('ह्रक्रोरन्यतरस्याम्' पा० १।४।४३), अतः 'कारयन्' के साथ 'सीता' अथवा 'सीतया' का अध्याहार करना चाहिए। प्रमोहः-प्र-√ मुह (वैचित्ये) ४ प० + भावे घञ् । विसर्पः-वि-√ सृप् (गतौ) १ प० + घञ् । स्पर्श स्पर्श-यहाँ वीप्सा में द्विरुक्ति है (वीप्सा का अर्थ है-व्याप्ति का बोध कराने की इच्छा)। परिमूढः-परि-√ मुह + क्त। विकारः-वि-√ कृ + घञ् भावे। चैतन्यं- चेतना एव चैतन्यं (स्वार्थे ष्यञ्)। चेतना-√ चित् (संज्ञा ने) १ प० + भावे युच्, स्त्रियां टाप् ! संमीलयति-सम्-√ मील् (संकोचे) १ प० + णिच् (Causal) लट्।

टिप्पणी (Notes)

यह श्लोक संभोग श्रृंगार के उदाहरण के रूप में दशरूपक में उद्धृत है। (तुल० मालती० १।३३)।

प्रमोहः- इसके स्थान में 'प्रबोधः' पाठान्तर है, यह पाठ निद्राके साथ अष्टि एक युक्त प्रतीत होता है, किन्तु तीसरे चरण के 'परिमूढेन्द्रियगणः' के साथ इसकी संगति नहीं होती, अतः 'प्रमोहः' पाठ ही उचित है।

समीलयति— सम्यक् मीलयति संकोचयति। (पाठा०)

समुन्मीलयति— विकासयति। परन्तु इस पाठकी 'प्रमोहः' तथा 'परिमूढेन्द्रियगणः' के साथ संगति नहीं बैठती।

{६८} सीता— स्थिरप्रसादा तुम्हे, इदो दाणि किं अवरं । {स्थिरप्रसादा यूयम्, इत इदानीं किमपरम् ।}

रामः— म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि

संतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।

एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि

कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि॥३६॥

अन्वयः— हे सरोरुहाक्षि, एतानि ते सुवचनानि म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि, संतर्पणानि, सकलेन्द्रियमोहनानि, कर्णामृतानि, मनसः रसायनानि च।

{६८} शब्दार्थः— स्थिरप्रसादाः = अचल अनुग्रहवाले। इतः = अस्मात्, इससे। अपरं = अन्य। सरोरुहाक्षि = हे कमल के समान नेत्रवाली। एतानि = ये। ते = तेरे। सुवचनानि = मधुर वचन। म्लानस्य = मुरझाये हुए। जीवकुसुमस्य = जीवनरूपी पुष्प के। विकासनानि = खिलानेवाले। संतर्पणानि = सम्यक् प्रकार से तृप्त करने वाले। सकलेन्द्रियमोहनानि = इन्द्रियों को विह्वल करने वाले। कर्णामृतानि = कानों में अमृतरूप। मनसः रसायनानि च = और मन के रसायन (पुष्टिकारक भेषज) हैं।

अनुवाद :- सीता— आप {मुझपर} अचल अनुग्रहवाले हैं, अब इससे अन्य क्या {चाहिये} ? राम— हे कमल के समान नेत्रवाली, ये तेरे मधुरवचन मुरझाये हुए जीवन-पुष्प को विकसित करने वाले, सम्यक् प्रकार से तृप्त करने वाले, सब इन्द्रियों को विह्वल करने वाले, कानों में अमृतरूप और मन की पुष्टि कारक भेषज हैं।

व्याकरण :- प्रसादः—प्र-√ सद् १. प. + घञ् ! म्लान-√ म्लै (हर्षक्षये) १. प० + क्त। विकासनानि—वि-√ कस् (गतौ) १. प०—णिच् + ल्यु (कर्तरि)। संतर्पणानि—सम्-√ तृप् (तृप्तौ) ४. प०—णिच् + ल्यु। मोहनानि—√ मुह् ४. प०—णिच् {मोहयति} + ल्यु। सरोरुहाक्षी—यह बहुव्रीहि समास है, इसके अन्त में अक्षि शब्द है, 'अक्षि' अन्तवाले बहुव्रीहि समास में, प्राणिवाचक होने पर षच् समासान्त प्रत्यय जुड़ता है (दे० पा० ५।४।१३— 'बहुव्रीहि समास है, इसके अन्त में अक्षि शब्द है, 'अक्षि' अन्तवाले बहुव्रीहि समास में, प्राणिवाचक होने पर षच् समासान्त प्रत्यय

जुड़ता है (दे० पा० ५।४।११३—‘बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वागात्षच्’), और षित् प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीलिंग में डीप् प्रत्यय होता है (पा० ४।१।४१)। अप्राणिवाचक होने पर अच् समासान्त जुड़ता है (‘अक्ष्णोऽदर्शनात्’ पा०), और उसमें स्त्री० में टाप् जुड़ेगा, जैसे, रथूलाक्षा वेणुयष्टिः।

टिप्पणी (Notes)

स्थिरप्रसादाः— सीता के इस उत्तर से उसकी शालीनता सूचित होती है, उसके कहने का अभिप्राय यह है कि ‘आपका मुझपर अटल अनुग्रह है, इसीलिए आप ये वचन [श्लोक ३२] कह रहे हैं।’

सुवचनानि :— इस शब्द से सीता के वचनों के विकासनत्व संतर्पणत्व आदि गुण सूचित नहीं होते, परन्तु मालती० (६।८) में दिये हुए इस श्लोक में ‘वचोऽमृतानि’ पाठ है, जो इन गुणों को सूचित करता है।

रसायनानि :— जराव्याधिविध्वंसी भेषज को रसायन कहते हैं (‘यज्जराव्याधि विध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्’ चरक)। ‘रस’ शब्द का अर्थ पारद है, और आयुर्वेद के अनुसार शुद्ध पारद औषधरूप में आयुर्वर्धक है। इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द एवं रूपक अलंकार है।

{६९} सीता— प्रियंवद, एहि संविसम्ह [प्रियंवद, एहि संविशावः]। (इति शयनाय समन्ततो निरूपयति)।

रामः— अयि किमन्वेष्टव्यम् ?

आविवाहसमयाद् गृहे वने शैशवे तदनु यौवने पुनः।

स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया रामबाहुरुपधानमेष ते ॥३७॥

अन्वयः— आविवाहसमयाद् गृहे वने शैशवे तदनु पुनः यौवने स्वापहेतुः, अन्यया अनुपाश्रितः, एषः रामबाहुः ते उपधानं, वर्तते।

{६९} **शब्दार्थ** :— प्रियंवद = हे प्रिय बोलने वाले। एहि = आइये। संविशावः = हम दोनों सो जायें। किम् अन्वेष्टव्यम् = क्या ढूँढना है। आविवाहसमयाद् = विवाह के समय से लेकर। गृहे = घर में। वने = बन में। शैशवे = बचपन में। तदनु = तत्पश्चात्। पुनः = फिर। यौवने = यौवन में। स्वापहेतुः = निद्रा का साधन। अन्यया = अन्य स्त्री द्वारा। अनुपाश्रितः = सहारा न लिया हुआ। एषः = यह। रामबाहुः = राम की भुजा। ते = तेरा। उपधानं = शिरोधान (तकिया) {हैं}।

अनुवाद :— सीता— हे प्रिय बोलने वाले, आइये हम दोनों शयन करें। (ऐसा कहकर सोने के लिए चारों ओर देखती हैं)। राम—अयि, क्या ढूँढना है विवाह के समय से लेकर, घर में, बन में बचपन में और फिर यौवन में, निद्रा क

उपकारणभूत, [तथा] अन्य स्त्री द्वारा [निद्रा के उपकरण के रूप में] अनालम्बित, यह राम का बाहु तेरा शिरोधान (तकिया) है।

व्याकरण :- प्रियंवदः—‘प्रियं वदति’ इति प्रियंवदः, प्रियं—√ वद् १. प० + खच् (‘प्रियवशेवदः खच्’ पा० ३।२।३८, मुम् (पा० ६।३।६७)। संविशावः—सम्—√ विश् ६. प०, लट् उ० पु० द्वि० व०।√ विश्.का अर्थ ‘प्रवेश करना’ है; किन्तु सम्पूर्वक ‘विश्’ धातु का अर्थ ‘शयन करना’ है (दे० अ० को०—‘स्यान् निद्रा शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि’)। अन्वेष्टव्यः—अनु—√ इष् (गतौ) ४ पा० + तव्य। अविवाहसमयात्—[‘आङ् मर्यादावचने’ (पा० १।४।८९) इति कर्मप्रवचनीय संज्ञा; ‘पंचमयपाङ्परिभिः’ (पा० २।३।१०) इति आङ्योगे पंचमी]। शैशव।—शिशोर्भावः, शिशु + ष्यञ्। भावे। यौवनं — यूनाः भावः, युवन् + अण्। उपधानं—उपधीयतेऽस्मिन् शिरः, उप—√ धा ३. उ० + अधिकरणे ल्युट्।

टिप्पणी (Notes)

अपि सन्देष्टव्यम् (पाठा०) :- किं संदेशः कर्तव्यः—क्या उपधान इत्यादि लाने के लिए किसी सेवक के पास संदेश भेजा जाना चाहिए।

तदनु :- शैशवमनु— शैशव के पश्चात्; यहाँ ‘अनु’ कर्मप्रवचनीय है (दे० पा० १।४।८४); इसके योग में द्वितीया विभक्ति (तद) का प्रयोग हुआ है; जैसे, जपमनु प्रावर्षत।

रामबाहुः— ‘मद्बाहुः’ के स्थान में ‘रामबाहुः’ पद के प्रयोग से राम के एक पत्नीव्रत की प्रसिद्धि सूचित होती है। इस श्लोक में रथोद्धता छन्द है।

{७०} सीता— (निद्रां नाटयन्ती) अत्थि एदं अज्जउत्त अत्थि एदं। [अस्त्येतदार्यपुत्र अस्त्येतत्]। (इति स्वपिति)।

रामः— कथं प्रियवचना मे वक्षसि प्रसुप्तैव। (निर्वर्ण्य सस्नेहम्)।

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो—

रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।

अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः

किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः॥३८॥

अन्वयः— इयं गेहे लक्ष्मीः, इयं नयनयोः अमृतवर्तिः, अस्याः अरसौ स्पर्शः वपुषि बहुलः चन्दनरसः, अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणः मौक्तिकसरः। अस्याः किं न प्रेयः यदि....., परं विरहः असह्यः तु।

{७०} शब्दार्थ :- निद्रां नाटयन्ती = निद्रा का अभिनय करती हुई। वक्षसि = छातीपर। निर्वर्ण्य = देखकर। इयं = यह (सीता)। गेहे = घर में। लक्ष्मी

= लक्ष्मी। नयनयोः = नेत्रों में। अमृतवर्तिः = अमृत की बनी हुई अंजनशलाका [है]। अस्याः = इस (सीता) का। असौ स्पर्शः = यह स्पर्श। वपुषि = शरीर में। बहुलः = प्रभूत, प्रचुर, गाढ़। चन्दनरसः = चन्दन का रस। अयं = यह। बाहुः = भुजा। कण्ठे = गले में। शिशिर = शीतल। मसृण = कोमल, चिकना। मौक्तिकसरः = मुक्ताहार। अस्याः = इसका (सीता-सम्बन्धी)। किं न = क्या नहीं। प्रेयः = अतिशय प्रिय [है]। विरहः = वियोग। असह्यः = न सहन करने योग्य। तु = ही।

अनुवाद :- सीता— (निद्रा का अभिनय करती हुई।) ऐसा ही है, आर्यपुत्र ऐसा ही है। (ऐसा कहकर सो जाती है)। राम—क्या प्रियवचनवाली मेरे वक्षःस्थल पर सो ही गई। (देखकर, स्नेह से) यह (सीता) घर में लक्ष्मी है, यह नेत्रों में अमृत की अंजनशलाका है, इसका यह स्पर्श शरीर में गाढ़ा चन्दन का रस है, यह भुजा कण्ठ में शीतल तथा चिकना मुक्ताहार है। इसका क्या नहीं अतिशय प्रिय है, यदि अत्यन्त असहनीय है तो केवल इसका विरह ही।

व्याकरण :- नाटयन्ती—√ नट् (नाट्ये) १ प० + स्वार्थे णिच् + शतृ + डीप्, नुम् (पा० ७१८०, ८१)। प्रसुप्ता—प्र—√ स्वप् २ प० कर्तरि क्तः 'वचिस्वपियजादीनां किति' (पा० ६११५) इति सम्प्रसारणम्। नयनयोः—विषयाधिकरणे सप्तमी, यद्वा शेषे षष्ठी। स्पर्शः—√ स्पृश् ६ प० + घञ् भावे मौक्तिकसरः—मौक्तिकस्य सरः, मुक्ता एव मौक्तिकं (स्वार्थे ठक्, 'क्वचित्स्वार्थिकाः प्रकृतितो लिंगवचनान्यतिवर्तन्ते' इस वचन के अनुसार 'मुक्ता' शब्द (प्रकृति) स्त्रीलिंग होने पर भी उसका स्वार्थिक रूप 'मौक्तिकं' नपुंसक होता है। प्रेयः—(प्रेयस) (न०)—प्रिय + ईयसुन्, 'प्रिय' शब्द को 'प्र' आदेश (पा० ६१४५७) यहाँ पर 'ईयसुन्' प्रत्यय 'अतिशयमात्र' का द्योतक है, 'दो में से एक का अतिशय द्योतक नहीं। असह्यः—न सह्यः, √ सह १ आ० + कर्मणि यत् ('शकिसहोश्च' पा० ३११९९)। विरहः—वि—√ रह (त्यागो) १० उ० + घञ् (धातुपाठ में—√ रह अदन्त है, अतएव घञ् प्रत्यय के जुड़ने पर वृद्धि नहीं हुई)।

टिप्पणी (Notes)

प्रसुप्तैव :- 'एव' आश्चर्यसूचक है, सीता को इतनी शीघ्र निद्रा प्राप्त हो जाने के कारण राम को आश्चर्य हुआ। इस श्लोक के प्रथम तीन चरणों में रूपक अलंकार है और वामन द्वारा काव्या० सू० वृ० (४।३।६) में उद्धृत किया गया है।

किमस्या न प्रेयो यदि :- 'किमस्या न प्रेयो यदि तु विरहो न स्यात्' इस प्रकार राम पूरा वाक्य कहने वाले थे, किन्तु विरह का ध्यान आते ही उनकी विचारधारा अवरुद्ध हो गई और 'यदि' शब्द पर ही उनका वाक्य रुक गया। परमसह्यस्तु विरहः—'परन्तु विरह तो असह्य ही है'। अनेक टीकाकारों ने 'परम्' शब्द का अर्थ 'अत्यन्त' किया है और इसको 'असह्यः' का क्रियाविशेषण माना है,

किन्तु यहाँ 'परम्' शब्द का अर्थ 'केवल' अथवा 'परन्तु' (वाक्यसंयोजक अव्यय, Conjunction) मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। 'तु' शब्द यहाँ अवधारणार्थक है और 'असह्यः' से अन्वित है।

यदि परमसह्यस्तु विरहः— घनश्याम ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—'तु' किन्तु विरहो यदि विरहश्चेत्, परम् अत्यन्तम् असह्यः।'

यदि पुनरसह्यस्तु विरहः (पाठा०):— यदि पुनर्विरहाः स्यात्, स तु असह्यः, अथवा 'यदि तु पुनः असह्यः विरहः स्यात्सर्वमेवेदमप्रियतरनं स्यात्।' (काले)।

किमपरमसह्यस्तु विरहः (पाठा०):— किमन्यद्वक्तव्यम्, अस्याः सर्वमेव प्रेयः, केवलं विरहः असह्यः। (अपरम् = अन्यत्)। विद्यासागर ने 'यदि पुनरसह्यो न विरहः' इस पाठ की कल्पना की है, यद्यपि इस पाठ से अर्थ की संगति हो जाती है, परन्तु इस पाठ की कोई भी हस्तलिखित प्रति आधार नहीं है, इस बात को स्वयं विद्यासागर ने माना है। "किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः इति चतुर्ष्वेव पुस्तकेषु पाठो श्यते स तु न संगच्छते इति मत्वा पाठान्तरं कल्पितम्।" इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है।

(प्रविश्य)

{७१} प्रतीहारी— देव, उवद्विदो। {देव उपस्थितः।}

रामः— अयि, कः ?

प्रतिहारीः— आसन्नपरिआरओ देवस्स दुम्मुहो। {आसन्नपरिचारको देवस्य दुर्मुखः}।

रामः— (स्वगतम्) शुद्धान्तचारी दुर्मुखः। स मया पौरजानपदेष्वपसर्पः प्रहितः। (प्रकाशम्) आगच्छतु। (प्रतिहारी निष्क्रान्ता)

{७१} शब्दार्थ :— आसन्नपरिचारकः = निकटवर्ती सेवक (Personal Attendant)। दुर्मुखः = 'दुर्मुख' नामवाला। शुद्धान्तचारी = अन्तःपुर में भी विचरण करने वाला (अर्थात् अतीव विश्वासपात्र)। पौराः = अयोध्यानगर में रहनेवाले। जानपदाः = जनपद (राष्ट्र) के निवासी। अपसर्पः = गुप्तचर (Spy)। प्रहितः = प्रेषित, भेजा हुआ था। प्रतीहारी = {अन्तःपुर की} द्वारपालिका।

अनुवाद :— (प्रवेश करके) प्रतीहारी— महाराज, आ पहुँचा है। राम—अरे, कौन? प्रतीहारी—महाराजका निकटवर्ती सेवक, दुर्मुख। राम— (स्वगत) दुर्मुख अन्तःपुर में आनेजानेवाला है। उसे मैंने पुरवासियों तथा जनपदनिवासियों में गुप्तचर के रूप में भेजा था। (प्रकाश) आ जावे।

व्याकरण :- आसन्न-आ-√ सद + क्त। परिचारकः-परि-√ चर् + ण्वुल्। शुद्धान्तः-शुद्धेन अम्यते गम्यते यत्र, (√ अम् १. प० + क्त), अथवा शुद्धाः उपधाशुद्धाः रक्षकाः अन्त समीपे यस्य। पौराः-पुरे भवाः, पुर + अण्। जानपदाः-जनानां पदं जनपदः प्रदेशः, जनपदे भवाः जानपदाः, अण्। अपसर्पः-अप पृष्ठत (प्रच्छन्न) सृपति चरति, अप-√ सृप् १. प० + अप्। प्रहितः-प्र- हि ५ प० + क्त। प्रतीहारी-प्रतिहियते निवार्यते प्रवेशोऽनया, प्रति-√ ह् + घञ्, वादीर्घः (पा० ६।३।१२२-उपसर्गस्य घञमनुष्ये)।

टिप्पणी (Notes)

देव उपस्थितः- कवि ने जानबूझकर यहाँ 'उपस्थितः' शब्द का प्रयोग किया है इसका अन्वय दोनों ओर लग सकता है। प्रतीहारी का तात्पर्य था 'दुर्मुखः उपस्थितः', किन्तु राम द्वारा कहे हुए पूर्वश्लोक के अन्त में स्थित 'विरहः' पद के साथ मिलकर इसका अर्थ 'विरहः उपस्थितः' ऐसा भी हो जाता है, जो अमंगलसूचक है, तथा समनन्तरभावी सीता विरह की सूचना देता है। साहित्यदर्पण के अनुसार यह तृतीय पताकास्थान है। (दे० सा० द० ६।४८)। जहाँ प्रयोग करने वाले पात्र को तो अन्य अर्थ अभिलषित हो, किन्तु सादृश्यादि के कारण कोई दूसरा ही अर्थ प्रतीयमान हो उसे पताकास्थान कहते हैं। संस्कृतनाटकों में इस प्रकार के पताकास्थान का प्रयोग बहुत मिलता है (दे० वेणीसंहार तथा मुद्राराक्षस)। धनंजय ने दशरूपक में उत्तररामचरित के इस अंश को गण्डनामक प्रस्तावना अङ्क के उदाहरण रूप में उद्धृत किया है।

दुर्मुखः- कालिदास तथा रामायण के अनुसार इस गुप्तचर का नाम 'भद्र' था (दे० रघु० १।४।३१), किन्तु सीताऽपवादरूप दुर्वचन के कथन से इसका नाम लोक में दुर्मुख पड़ गया, अथवा कवि ने ही इस अन्वर्थ नाम की कल्पना की हो।

अपसर्पः प्रहितः- वीरराघव तथा घनश्याम इन दोनों ने यही पाठ माना है। इसके स्थान पर 'पौरजानपदानपसर्पितुं प्रहितः' ऐसा भी पाठान्तर है; 'अपसर्पितुं' का अर्थ होगा 'प्रच्छन्नं चरितुं, गुप्तरूपेण तेषां मनोगतभावं परीक्षितुं'। व्याकरण के अनुसार 'अपसर्पितुं' के स्थान में 'अपसर्पु' अथवा 'अपस्रप्तु' होना चाहिए।

(प्रविश्य)

{७२} दुर्मुखः- (स्वगतम्) हा कहं दाणि देवीमन्तरेण ईदिसं अचिन्तणिज्जं जणाववादं देवस्य कहइस्सं। अहवा णिओओ कखु मे ईदिसो मन्दभाअस्स। हा कथमिदानीं देवीमन्तरेण ईदृशमचिन्तनीयं जणापवादं देवाय कथयिष्यामि। अथवा नियोगः खल्वीदृशो मे मन्दभाग्यस्य।]

सीता— (उत्स्वप्नायते) हा अज्जउत्त सोम्म कहिं सि ? [हा आर्यपुत्र सौम्य कुत्रासि ?]

राम— अये सैवेयं रणरणकदायिनी चित्रदर्शनाद्विरहभावना देव्याः स्वप्नोद्वेगं करोति । (सस्नेहमंगमस्याः परामृशन्) ।

[७२] शब्दार्थ :- देवीमन्तरेण = महारानी के विषय में। अचिन्तनीयं = जिसकी मन में कल्पना भी नहीं की जा सकती, अथवा अतर्कित (Unexpected) । जनापवादं = लोकापवाद, लोकनिन्दा को। नियोगः = नियुक्त, अधिकार (कर्तव्य कर्म), अथवा, प्रभु का आदेश। उत्स्वप्नायते = उत्स्वप्ना (उत्कट स्वप्नवाली, स्वप्न में बड़बड़ानेवाली) के समान आचरण करती है। (अर्थात् स्वप्न में प्रलाप करती है)। सौम्य = सोम (चन्द्र) के समान मृदु स्वभाववाला, अनुग्र, अथवा मनोज्ञ, सुन्दर। रणरणकः = प्रिय के लिए उत्कंठा, विक्षोभ, उद्वेग। विरहभावना = विरह का ध्यान। स्वप्नोद्वेगं = स्वप्न में घबराहट को। [स्वप्नोद्वेगं (पाठा०)—स्वप्न में वचन आदि के प्रयत्न को।] परामृशन् = छूते हुए।

अनुवाद :- दुर्मुख— (स्वगत) हाय, कैसे अब देवी के विषय में इस प्रकार के, कल्पना में भी न लाने योग्य, लोकापवाद को महाराज से कहूँगा। अथवा मुझ अभागे का इस प्रकार का अधिकार ही है (अर्थात् मैं अभागा इसी प्रकार के कर्तव्य कर्म पर नियुक्त किया गया हूँ)। सीता— (स्वप्न में प्रलाप करती है) हाय आर्यपुत्र, मृदुस्वभाववाले, आप कहाँ हैं? राम— अरे, चित्रदर्शन से उत्पन्न हुई वही ग्रह विक्षोभकारिणी विरह चिन्ता देवी को स्वप्न में घबराहट कर रही है। (स्नेह से इसके अंग पर हाथ फेरते हुए)।

व्याकरण :- देवीमन्तरेण—अन्तराऽन्तरेण युक्त (पा० २।३।४ इति द्वितीया)। ईदृश् (क) अथवा ईदृश—अस्य इव दर्शन यस्य, इदम्—√ दृश् + किम् (ईदृश) अथवा कम् (ईदृश) ('त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च' पा० ३।२।६०, चात्किञ्चन); इदम् को 'ई' आदेश। नियोगः — नि— √ युज् (युजिर् योगे) ७. उ० + घञ्, हुत्वम्। उत्स्वप्नायते—उत्स्वप्न इव आचरतिः उत्स्वप्न + क्यङ् = उत्स्वप्नाय, 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' (पा० ३।३।११)} लट् । उद्वेगं—उद्—√ विज् + भावे घञ् । परामृशन्—परा—√ मृश् ६. प० + शतृ ।

टिप्पणी (Notes)

अथवा नियोगः— तुल० शाकु० (अंक 5) में कंचुकी के वचन— 'यावन्नियोग—नुतिष्ठामि' ।

उत्स्वप्नायते :- सीता का यह स्वप्नोद्वेग भावी विपत्ति का सूचक है।

रणरणक :- यह शब्द पुं० तथा न० दोनों है, इसका अर्थ उत्कंठा,

अरति, विक्षोभ आदि है ('आयल्लकमुत्कण्ठा स्यादुत्कलिकाऽरतिश्च रणरणकम् ।
औत्सुक्यं हल्लेखः' हलायु0)।

{७३} अद्वैतं सुखदुखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य-

द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।

कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं

भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥३९॥

अन्वयः- यत् सुखदुःखयोः अद्वैतं [तथा] सर्वासु अवस्थासु अनुगतं, यत्र हृदयस्य विश्रामः, यस्मिन् जरसा रसः अहार्यः, यत् कालेन आवरणात्ययात् परिणते स्नेहसारे स्थितं, एकं तत् कथमपि प्राप्यते हि। तस्य सुमानुषस्य भद्रं (येन तादृशं प्रेम लब्धम्)।

{७३} शब्दार्थ :- यत् = जो। सुखदुःखयोः = सुख तथा दुःख में। अद्वैतं = द्वैत (भेद) रहित, एकरूप। सर्वासु अवस्थासु = सभी अवस्थाओं में। अनुगतं = अनुसरण करने वाला। यत्र = जिसमें। हृदयस्य = हृदय का। विश्रामः = विश्रान्ति, सुख। यस्मिन् = जिसमें। जरसा = वृद्धावस्था द्वारा। रसः = प्रीति, रति, आह्लाद। अहार्य = हरण न किया जा सकने वाला। यत् = जो। कालेन = [कुछ] समय में। आवरणात्ययात् = संकोचादिरूप रुकावट के हट जाने से। परिणते = परिपाक को प्राप्त हुए स्नेहसारे = स्नेह (अनुराग के सारभाग (उत्कृष्ट अंश) में। स्थितं = अवस्थित। एकं = औरों से विलक्षण। तत् = वह (प्रसिद्ध अथवा अनिर्वचनीय) [प्रेम, दाम्पत्य]। कथमपि = किसी प्रकार से, बड़ी कठिनता से। प्राप्यते = प्राप्त किया जाता है। तस्य सुमानुषस्य = उस सत्पुरुष का। भद्रं = कल्याण, सौभाग्य।

अनुवाद:- जो (दाम्पत्य) सुखदुःख में एकरूप, [तथा सम्पद्विपदरूप] सभी दशाओं में अनुसरण करने वाला है, जिसमें हृदय की विश्रान्ति है, जिसमें वृद्धावस्था से भी रस (प्रीति) का हरण नहीं किया जा सकता, जो समय में [संकोचादि रूप] प्रतिबन्ध के हट जाने से परिपाक (गाढता) को प्राप्त हुए स्नेहसार (स्नेह के उत्कृष्ट भाग) में स्थित है, सबसे विलक्षण (एक) वह (अनिर्वचनीय दम्पती प्रेम) किसी प्रकार से (अर्थात् बड़ी कठिनता से) प्राप्त किया जाता है। उस सत्पुरुष का सौभाग्य (भद्र) है [जिसको ऐसा प्रेम प्राप्त है]।

व्याकरण :- अद्वैतं-द्वयोर्भावः द्विता (द्वि + तल्), द्विता एव द्वैतं (द्विता + अण् स्वार्थे), अविद्यमानं द्वैतमस्मिन् अद्वैतम् (नञ् बहुव्रीहिः)। विश्रामः-वि-√ श्रम् ४. प० + घञ् = विश्रमः [नोदात्तोपदेशस्य मानतस्यानाचमेः (पा० ७।३।३४) के अनुसार अित् णित् कृत्प्रत्यय के परे होने पर यहाँ वृद्धि नहीं हुई], विश्रमः एव

विश्रामः, स्वार्थेऽण् प्रज्ञादित्वात्। वोपदेव के अनुसार घञ् प्रत्यय जुड़ने पर विकल्प से वृद्धि होती है, अतः विश्रामः, तथा विश्रमः दोनों रूप बनते हैं। अत्ययः— अति—√ इ (इण् गतौ) + अच्। परिणते—परि—√ नम् + क्त, अनुनासिकलोपः ('अनुदात्तोपदेश—' पा० ६।४।३७), णत्वम् (पा० ८।४।१४)।

टिप्पणी (Notes)

इस श्लोक की भिन्न-भिन्न टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की है। इसका प्राकृत विषय क्या है, इसमें भी सब एकमत नहीं हैं। वीरराघव के अनुसार इसमें 'दाम्पत्य' का वर्णन है, और घनश्याम 'सौजन्य' को इसका प्रकृत विषय मानते हैं। काणे ने 'सुखदःखयोः अद्वैत' को इसका विषय माना है, किन्तु ऐसा मानने से 'जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः' इत्यादि वाक्य व्यर्थ हो जाते हैं। इस श्लोक के दूसरे तथा तीसरे चरण का विचार करने से तो 'दाम्पत्य' (दम्पति प्रेम) ही इसका उक्त विषय प्रतीत होता है। अस्तु। सर्वास्ववस्थासु अनुगतं—सभी अवस्थाओं में वर्तमान रहने वाला। अनुगुणं (पाठा०)—अनुकूल, अनुलोम।

जरसा० :— बुढ़ापे में इन्द्रियों की शक्ति के क्षीण होने पर वासनामूलक प्रेम घट जाता है, परन्तु भवभूति ने इस श्लोक में अत्यन्त पवित्र तथा स्वर्गीय दाम्पत्य प्रेम का आदर्श उपस्थित किया है। इस प्रेम में वासना की गन्ध तक नहीं है, अतः बुढ़ापे में भी अक्षुण्ण बना रहता है। कालेन—कालक्रम से, यहाँ अपवर्ग में तृतीय है।

आवरणात्ययात्० :— नवविवाहित दम्पती में लज्जा, संकोच आदि के कारण दाम्पत्य का स्वच्छन्द आविर्भाव नहीं होने पाता, किन्तु कालक्रम से संकोच का वह आवरण उनके हृदय से हट जाता है और उनके हृदय में दाम्पत्य प्रेम पूर्णरूप से परिस्फुटित हो जाता है। आवरणात्ययात्—ऐसा पाठ मानकर भी इसकी व्याख्या की गई है, वरणं = विवाह, अत्ययः = मृत्यु; आ = पर्यन्त, विवाह से लेकर मृत्युपर्यन्त (दे० वी० रा०)।

तस्य सुमानुषस्यः :— वीरराघव ने 'सुमानुष' का अर्थ 'दाम्पत्य' माना है, और 'सुमानुषं तु दाम्पत्यम्' इस कोषवचन को उद्धृत किया है। कुछ लोगों ने 'तस्य' शब्द से प्रकरण से प्राप्त 'दाम्पत्य' अर्थ लिखा है और 'सुमानुषस्य' को 'दाम्पत्यस्य' का विशेषण माना है (शोभनो मानुषो मानुषत्वं येन)। घनश्याम ने 'सुमानुषस्य' का 'सौजन्यस्य' इस प्रकार भावप्रधान अर्थ माना है।

प्रेम (पाठा०) :— 'तस्य' के स्थान में विद्यासागर ने 'प्रेम' इस पाठ की कल्पना की है। इस पाठ से अर्थ तो सरल हो जाता है, किन्तु यह पाठ किसी हस्तलिखित प्रति पर आधारित नहीं है। प्राथ्यते (पाठा०)—याच्यते, अभिलष्यते। प्रोप्यते पाठ अधिक उचित प्रतीत होता है। यह श्लोक दशरूपक में अनुकूल नायक के उदाहरण रूप में उद्धृत है, जिसमें चौथे चरण में 'भद्रं तस्य सुमानुषस्य'

पाठ है।

{७४} दुर्मुखः— (उपसृत्य) 'जेदु देवो। [जयतु देवः।]

रामः— ब्रूहि यदुपलब्धम्।

दुर्मुखः— उवत्थुवन्ति देवं पैरजाणपदा विस्मुरिदा अम्हे 'महाराजदसरहस्स रामभद्रेणति। [उपस्तुवन्ति देवं पौरजानपदाः विस्मारिता वयं महाराजदशरथस्य रामभद्रेणेति।]

रामः— अर्थवाद 'एषः। दोषं तु मे कंचित्कथय येन स प्रतिविधीयते।

दुर्मुखः— (सास्रम्) सुणादो देओ। (कर्णे) एव्वं 'विअ। इति। [शृणोतु देवः। (कर्णे) एवमिव।]

रामः— अहह 'तीव्रसंवेगो वाग्वज्रः। (इति मूर्च्छति)

दुर्मुखः— आस्ससदु देवो। [आश्वसितु देवः।]

{७४} शब्दार्थः— यद् उपलब्ध = जो ज्ञात हुआ है। विस्मारिताः = भुला दिये गये हैं। अर्थवादः = प्रशंसामात्र (न कि वास्तविक अर्थ का कथन)। प्रतिविधीयते = [दोषका] प्रतीकार किया जावे। सास्रम् = अश्रुसहित। तीव्रसंवेगः = तीव्र (दुःसह) संवेग (आघात) वाला। वाग्वज्रः = वाणीरूपी वज्र।

अनुवाद :- दुर्मुख— (समीप आकर) महाराज की जय हो। राम— कहो, जो ज्ञात हुआ है। दुर्मुख— नगरवासी तथा जनपदवासी लोग महाराज की प्रशंसा करते हैं कि "महाराज रामद्वारा हमसे महाराज दशरथ भुलवा दिये गये हैं।" राम— यह तो केवल प्रशंसा है। मेरे किसी दोष को बतलाओं, जिससे उसका प्रतीकार किया जावे। दुर्मुख— (आंसू भरकर) महाराज सुनें। (कान में) इस प्रकार। राम— अहह, यह वाणीरूपी वज्र दुःसह वेगवाला है। (ऐसा कहकर मूर्छित हो जाते हैं) दुर्मुख— महाराज सुस्थित हों।

व्याकरणः— उपलब्धं— उप-√ लभ्+कर्मणि क्त। विस्मारिताः— वि-√ स्मृ 1. प० + प्रयोज्ये कर्मणि क्तः। प्रतिविधीयते—प्रति-वि-√ धा 3. उ० + कर्मणि लट्। आश्वसितु—आ-√ श्वस् 2 प० [श्वसिति]—लोट्।

१. जअदि, जअदि जअदि, जेदु जेदु

२. महाराजं दसरहं रामदेव्वेणति

३. एवैषः।

४. एव्वम्।

५. अतितीव्रोऽयम्।

अर्थवाद :- अर्थ्यते इत्यर्थः (प्रयोजन), तस्य वादः कथनम्, यद्वा 'कस्यचिदर्थस्य स्तुतेर्निन्दाया वा यो वादः सोऽर्थवादः। 'अर्थवादः' यह पूर्वमीमांसा दर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है, इसमें प्रायः किसी वैदिक विधि के प्रयोजन का कथन अथवा उसकी प्रशंसा होती है, अतः बाद में 'अर्थवाद' शब्द प्रशंसामात्र के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा।

एवमिति :- दे० रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग ५३ "एवं बहुविधा वाचो वदन्ति पुरवासिनः। नगरेषु च सर्वेषु राजन् जनपदेषु च।"

[७५] रामः— (आश्वस्य)

हा हा धिक्परगृहवासदूषणं य—

द्वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।

एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाका—

दालर्क विषमिव सर्वतः प्रसृप्तम्॥४०॥

अन्वयः— हा हा। धिक्। वैदेह्याः यत् परगृहवासदूषणम् अद्भुतैः उपायैः प्रशमितं, तद् एतत् दैवदुर्विपाकात् आलर्क विषमिव सर्वतः प्रसृप्तम्।

[७५] शब्दार्थ :- वैदेह्या = वैदेही (सीता) का। यद् परगृहवासदूषणं = जो पराये घर में रहने का दोष (कलंक)। अद्भुतैः उपायैः = अद्भुत उपायों से। प्रशमितं = शांत कर दिया गया था। तत् एतत् = वही यह। पुनः अपि = फिर भी। दैवदुर्विपाकात् = दैव (भाग्य) के दुर्विपाक (विपरीतपरिणाम) से। आलर्क विषम् इव = पागल कुत्ते के विष के समान। सर्वतः = सर्वत्र। प्रसृप्तम् = फैल गया है। सक्तं (पाठा०) = संसक्त हो गया है, लग गया है।

अनुवाद :- राम— (सुस्थित होकर)। हा हा। धिक्कार है। सीता का पराये घर में रहने का जो कलंक [अग्नि में शुद्धि आदि] अनोखे उपायों से शांत कर दिया गया था, वही यह भाग्य के दुष्परिणाम से फिर भी पागल कुत्ते के विष के समान सर्वत्र फैल गया है।

टिप्पणी (Notes)

परगृहवासदूषणं :- परगृहे वासः तेन दूषणं (कलंकारोपः), यद्वा परगृहवास व दूषणं, नान्यदिति भावः (वीर राघव)।

अद्भुतैः उपायैः— अग्निपरीक्षण रूप अद्भुत उपायों से; दे० रामायण युद्धकाण्ड सर्ग ११५—११८ ("एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम्। विवेश ज्वलनं दीप्तं शंकेनान्तरात्मना।" "विधूयाथ चितां तां तु वैदेहीं हव्यवाहनः। उत्तरथौ मूर्तिमानाशु

गृहीत्वा जनकात्मजाम् ।।"....."अब्रवीत्तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः । एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ।।" ।

आलर्क विषमिव :- पागल कुत्ते (अलर्क) का विष दशनकाल में तो कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाता, किन्तु कुछ काल के पश्चात् (कभी-कभी तो एक दो वर्ष के बाद) सारे शरीर में फैलकर रोगी को मार डालता है। इस श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द एवं उपमा अलंकार है।

{७६} राम:- तत्किमत्र मन्दभाग्यः करोमि । (विमृश्य सकरुणम्) अथवा किमन्यत् ।

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम् ।

यत्पूरितं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता ।।४१।।

सम्प्रत्येव च भगवता वसिष्ठेन सन्दिष्टम् ।

अन्वय:- केनापि कार्येण लोकस्याराधनं सतां व्रतम्, यत् तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता सतां पूरितम् ।

{७६} शब्दार्थ :- विमृश्य = ध्यानपूर्वक विचारकर । सकरुणम् = शोक के साथ । सताम् = सज्जनों का । केनापि = किसी भी । कार्येण = कार्य से (उपाय से) । लोकस्य आराधनम्-प्रजा का अनुरंजन । व्रतम् = व्रत है । यत् = जो । माम् = मुझको । प्राणान् च = और प्राणों को । मुञ्चता = त्याग करते हुए । तातेन = पिताने । पूरितं = पूरा किया । सम्प्रत्येव = अभी । सन्दिष्टम् = सन्देश दिया गया है ।

अनुवाद :- राम- तो इस विषय में मैं भाग्यहीन क्या करूँ? (ध्यानपूर्वक विचारकर, शोक के साथ) या फिर और क्या [विचार करना है] किसी भी उपाय से लोक का अनुरंजन करना सज्जनों का व्रत है, जो पिताद्वारा मुझको तथा प्राणों को छोड़ते हुए पूरा किया गया और अभी भगवान् वसिष्ठ द्वारा भी संदेश दिया गया है ।

व्याकरण :- विमृश्य-(वि-√ मृश् ६. प०) + क्तवार्थे ल्यप् । सत्-√ अस २ प० + शतृ । लोकस्य-कृद्योग लक्षण कर्मणि षष्ठी । आराधनं-आ- राध् ५ प० + ल्युट् । पूरितं-√ पुर १० उ० + कर्मणि क्तः । मुञ्चता-√ मुच् ६ पु० + हेतो शतृ ('लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' पा० ३।२।१२६) ।

टिप्पणी (Notes)

सतां:- उत्तम राजाओं का, (न तु असताम्) । इस लोकापवाद के लिए राम अपनी प्रजा को दोष नहीं देते (दे० श्लो० ४४) ।

केनापि कार्येण :- किसी भी उपाय से हो, तुल० श्लो० १२ ('स्नेहं दयां च')।

लोकस्याराधनं व्रतम्—तुल० श्लो० १२। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द तथा अर्थान्तरन्यास एवं तुल्योगिता अलंकार है।

[७७] रामः— अपि च—

यत्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालैः—

लोकश्रेष्ठैः साधु शुद्धं चरित्रम्।

मत्संबन्धात्कश्मला किंवदन्ती

स्याच्चेदस्मिन्हन्त धिक्मामधन्यम् ॥४२॥

अन्वयः— यत् साधु शुद्धं चरित्रं लोकश्रेष्ठैः सावित्रैः भूमिपालैः दीपितं, अस्मिन् मत्सम्बन्धात् कश्मला किंवदन्ती स्यात् चेत् हन्त माम्। अधन्यं धिक्।

{७७} शब्दार्थः— साधु = प्रशस्त। शुद्धं = पवित्र। चरित्रं = चरित्र। लोकश्रेष्ठैः = भुवनों में अथवा जनों में श्रेष्ठ। सावित्रैः भूमिपालैः = सूर्यवंशीय भूपालोंद्वारा। दीपितं=उज्ज्वल बनाया गया। अस्मिन्= इस (चरित्र) में। मत्संबन्धात् = मेरे कारण से। कश्मला = कुत्सिता, मलिना। किंवदन्ती = जनश्रुति। स्यात् चेद = यदि होवे। हन्त = खेद। अधन्यं माम् = मुझ पुण्यहीन को। धिक् = धिक्कार है।

अनुवादः— राम— और भी—जो प्रशस्त तथा पवित्र चरित्र, लोकों में श्रेष्ठ सूर्यवंशीय भूपालों द्वारा उज्ज्वल बनाया गया, इसमें (इस चरित्र के विषय में) मेरे सम्बन्ध से कुत्सित जनश्रुति यदि हो, तो खेद है, मुझ पुण्यहीन को धिक्कार है।

व्याकरण :- सावित्रैः—सवितुः अपत्यानि पुमांसः इति सावित्राः तैः, सवितु + अण्। भूमिपालैः —भूमिं पालयन्ति तैः, भूमि—√ पाल् + अण् ('कर्मणयण्' पा० ३।२।१)। दीपितं—√ दीप् (दीप्तो ४ आ०—णिच् + कर्मणि क्तः। (अणि—जन्त—दीप्त)। कश्मला—√ कश् (गतिशासनयोः) + कल (अल) (उणा०), मुट्। किंवदन्ती—(किं वदन्ति जनाः) किम्—√ वद् + अच् (अन्त) + डीप् (स्त्रीयाम्)। अधन्य—धने साधुः धन्यः (धन + यत्), न धन्यः अधन्यः।

टिप्पणी (Notes)

दीपितं :- उज्ज्वल बनाया हुआ, निष्कलंक किया हुआ, तुल० 'ज्ज्वाल लोकस्थितये स राजा' भट्टि० १।४।

मत्संबन्धात् :- ऐसे उज्ज्वल चरित्र के साथ मेरे संबंध के कारण। मत्संबन्धा (पाठा०)—(किंवदन्ती का विशेषण) मया संबन्धो यस्याः, यद्वा मम संबन्धो यस्यां। मत्संबन्धा (पाठा०)—('किंवदन्ती'का विशेषण) मुझसे सम्बन्ध रखनेवाली मद

विषयक। कश्मला (किंवदन्ति का विशेषण) मलिना ('कश्मलं मलिनं म्लानं मलीयसमुदाहृतम्' हला० को०), तुल० रघु० १४।३७, (अमरकोश में 'कश्मलं' शब्द का अर्थ 'मोहः' है, अपि च तुल० 'कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्' भ० गी० २।२}। इस श्लोक में शालिनी छन्द है।

{७८} रामः— हा देवि देवयजनसंभवे, हा स्वजन्मानुग्रहपवित्रित— वसुन्धरे, हा 'निमिजनकनन्दिनि, हा पावकवसिष्ठारुन्धतीप्रशस्त' शीलशालिनि, हा 'राममयजीविते, हा महारण्यवासप्रियसखि, हा तातप्रिये, हा 'स्तोकवादिनि, कथमेवंविधायास्तवायमीदृशः परिणामः।

{७८} शब्दार्थ :- देवयजनं = यज्ञभूमि। अनुग्रहः = प्रसाद, कृपा। वसुन्धरा = पृथिवी। निमिः = जनकवंश का प्रवर्तक एक राजा। जनकः = निमि का पुत्र (जो निमि के मृत शरीर के मथने से उत्पन्न हुआ), और जिससे जनकवंश चला, नन्दिनी = आनन्द देनेवाली (अर्थात् सन्तान)। पावकः = अग्नि। प्रशस्त = प्रशंसा किया हुआ। शीलशालिनी = शुद्धचरित्र से शोभित। तातप्रिये = हे पिता (दशरथ) की प्यारी। स्तोक = अल्प। एवंविधायाः = इस प्रकारवाली का। तव = तेरा। अयमीदृशः = यह ऐसा। परिणमः = दशाविपर्यास।

अनुवाद :- राम— हा देवि यज्ञभूमि से हुए जन्मवाली, हा निजजन्मरूप अनुग्रह (प्रसाद) से पवित्र कर दिया है वसुन्धरा को जिसने ऐसी, हा निमि [के कुल] को तथा जनक को आनन्द देने वाली, हा अग्निदेव वसिष्ठ तथा अरुन्धती द्वारा प्रशंसित शुद्ध चरित से शोभित, हा राम ही है जीवन जिसका ऐसी, हा महावन (दण्डकारण्य) में वास के समय प्रिय सहचरी, हा पिता (दशरथ) की प्रीतिकारिणी, हा मितभाषिणी, किस कारण से तुझ इस प्रकारवाली का ऐसा परिणाम (दशाविपर्यास) हुआ।

व्याकरणः— देवयजन—अधिकरणे ल्युट्। पवित्रित—पवित्रं करोति पवित्रयति (ना० धा०), 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्, ततः कर्मणि क्तः। वसुन्धरा—वसून् धारयति, वसु—√ धृ + खच् (पा० ३।२।४६), मुम्। प्रशस्त—प्र—√ शंस् १ पा० + क्तः कर्मणि। शालिनी—शालते शोभते, ताच्छील्ये णिनिः, ततो डीप्, यद्वा न्त्स्वा शाङ् (शलाघायाम्) + कर्मणि णिनि, डीप्, डलयोरेकत्वम्। परिणामः—परि—√ नम् + घञ् णत्व ('उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य' पा०)।

१. मुनिजनक।

२. शीले।

३. रामैक।

४. आयस्तोक०।

निमिजनकन्दिनि :- 'निमि' से तात्पर्य यहाँ 'निमिवंश' से हैं, और 'जनक' तात्पर्य 'सीता के पिता' से है। 'निमि' जनकवंश के प्रवर्तक एक राजा थे जो सैष्ठ के शाप से विदेह हो गये थे, उनके पुत्र का नाम जनक (अथवा वैदेह) था, नकवंश में जितने राजा हुए वे भी जनक कहे जाते हैं, सीताजी के पिता 'जनक' निजी नाम तो 'सीरध्वज' था।

स्तोकवादिनि :- तुल० 'सत्याय मितभाषिणां' रघु० १।७।

ईदृशः परिणामः :- दे० अगला श्लोक 'त्वमनाथा विपत्स्यसे'।

१} राम:- त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः।

नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥४३॥

अन्वयः:- त्वया जगन्ति पुण्यानि, त्वयि विषये अपुण्याः जनोक्तयः। त्वया काः नाथवन्तः, त्वम् अनाथा सती विपत्स्यसे।

{७९} **शब्दार्थ :-** त्वया = तुझसे। जगन्ति = भुवन, लोक। पुण्यानि = यवाले, पवित्र। त्वयि = तेरे विषय में। अपुण्याः = अपवित्र। जनोक्तयः = मनुष्यों वचन। त्वया = तुझसे। लोकाः = जन, प्रजा। नाथवन्तः = स्वामीवाले। त्वम् तू, सीता। अनाथा {सती} = स्वामीरहित होती हुई। विपत्स्यसे = विपत्ति में जनेवाली है।

अनुवाद :- राम-तुझसे {तीनों} लोक पुण्यवान् (पवित्र) हैं, {किन्तु} तेरे अर्थ में अपवित्र लोकवाद है। तुझसे लोक स्वामीवाले हैं, {किन्तु} तू स्वामीरहित ती हुई} नाश को प्राप्त होने वाली है।

टिप्पणी (Notes)

त्वया जगन्ति पुण्यानि:- राम ने इससे पूर्व 'देवयजनसंभवे..... लशालिनि' जो विशेषण दिये हैं वे सब इसमें हेतु हैं। सीता देवयज्ञ में प्रादुर्भूत हैं, साधारण मनुष्यों की तरह योनिजा नहीं हैं इसलिए देवरूपा हैं। संसार में वर्षण से त्राहि त्राहि मची थी उस समय ऋषियों के आदेश से राजाजनक ने ऋणमय हल लेकर भूमिकर्षण किया जिससे सीता की उत्पत्ति हुई और वर्षा हो । इसलिए सीता ने जन्म लेकर भूमि पर अनुग्रह किया, राम साक्षात् परब्रह्म हैं र सीता पराशक्ति, इसलिये उनके पृथ्वी पर अवतीर्ण होने से संसार पवित्र हो ॥ आदि कई हेतु हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि सीता लोक को पवित्र करने की हैं।

त्वय्यपुण्या जनोक्तयः— ऐसी पुण्यरूपा के विषय में लोग इस प्रकार की अपवित्र (दोषरूपा) वाणी बोलते हैं, महान् आश्चर्य है।

नाथवन्तस्त्वया लोकाः— मैं लोकों का नाथ (स्वामी हूँ), तू गृहाधिदेवता होने के कारण मेरी भी नाथा है, अतएव वस्तुतः तो तुझसे ही लोक 'नाथवन्तः' हैं। यहाँ 'धान्येन धनवान्' के समान अभेदे तृतीया है।

त्वमनाथा विपत्स्यसे :— राम ने इस समय तक सीता के सम्बन्ध में अपना निश्चय कर लिया है, अतः अब निकट भविष्य में सीता का विनाश अवश्यम्भावी है।

इस श्लोक में असामञ्जस्य प्रदर्शित किया गया है; जो सीता स्वयं पावनी है, उसे अपवित्र बनाया जा रहा है, तथा जो लोकनाथा है वह स्वयं अनाथा बन रही है। अतः इसमें 'विषम' अलंकार है—'विरूपयोः संघटना या च तद्विषमं मतम्।' किसी ने इसमें 'विरोधाभास' माना है, और वीरराघव इसमें एक प्रकार की 'विभावना' मानते हैं। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द और विरोधाभास अलंकार है।

{८०} रामः— (दुर्मुखं प्रति) दुर्मुख, ब्रूहि लक्ष्मणम् एष ते नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति (कर्णो) एवमेवम् । इति।

दुर्मुखः— हा कहं दाणिं अग्निपरिसुद्धाए गम्भद्विद पवित्तरहुकुलसंताणाए देइए दुज्जणावअणादो एव अणज्जं अज्झवसिदं देव्वेण । {हा कथमिदानीमग्निपरिशुद्धाया गर्भस्थित— पवित्ररघुकुलसंतानाया देव्या दुर्जनवचनादेवमनार्यमध्यवसितं देवेन।}

रामः— शान्तम् । कथं दुर्जनाः पौरजानपदाः ।

{८०} शब्दार्थ :— नूतनः = नवीन। दुर्जनवचनाद् = दुष्टजनों के वचन से (वचन को सुनकर)। अनार्यम् = गर्हित, असाधुजनोचित। अध्यवसितं = निश्चित किया गया है। शान्तम् = ऐसा मत कहो।

अनुवाद :— राम—(दुर्मुख से) दुर्मुख लक्ष्मण से कहो— यह तेरा नवीन राजा राम आज्ञा देता है। (कान में) इस प्रकार। दुर्मुख—हा, कैसे इस समय अग्निद्वारा शुद्ध [घोषित] की हुई तथा गर्भ में स्थित है रघुकुल की पवित्र संतान जिसके ऐसी महारानी के [सम्बन्ध में] दुर्जनों के वचन से महाराजद्वारा ऐसा असाधुजनोचित निश्चय किया गया है। राम—शान्त। किस प्रकार पुरवासी तथा जनपदवासी लोग दुर्जन हैं?

व्याकरण :— नूतनः—नव + तनप् (तद्धितप्रत्ययः), नवस्य 'नू' आदेशः ('नवस्य नू आदेशस्त्वनपन्पखाश्च प्रत्यया वक्तव्याः' वा०), नूतनम्, नवीनं भी रूप विकल्प से बनते हैं। अध्यवसितम्—अधि—अव—√ सो ४ प० {अध्यवस्यति} + भावे

टिप्पणी (Notes)

नूतनः राजा :- राम ने इसमें अपने प्रति व्यंग्योक्ति की है, अब तक रघुवंश में इतना नृशंस कार्य करने वाला कोई भी राजा नहीं हुआ, राम ही एक नया राजा है जो ऐसा निष्ठुर कार्य कर रहा है। 'राजा' शब्द से यह सूचित किया गया है कि राम का वचन राजाज्ञा के समान पालन करना पड़ेगा।

[८१] राम:- इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां

जातं च दैवाद्वचनीयबीजम्।

यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले

प्रत्येतु कस्तद्धयतिदूरवृत्तम् ॥४४॥

तद्गच्छ।

[मुख:- हा देई। {हा देवि।}]

(इति निष्क्रान्तः)

अन्वय:- इक्ष्वाकुवंशः प्रजानाम् अभिमतः दैवात् च वचनीयबीजं जातम्।
वैशुद्धिकाले च यद् अद्भुतं कर्म तत् कः प्रत्येतु, हि अतिदूरवृत्तम्।

[८१] शब्दार्थ:- इक्ष्वाकुवंशः = इक्ष्वाकुवंश, सूर्यवंश। प्रजानाम् = प्रजाओं का। अभिमतः = अभीष्ट, प्रिय। दैवात् च = किन्तु दैववश, दुर्भाग्यसे। वचनीयबीजं = लोकापवाद का कारण। जातम् = उत्पन्न हो गया है। विशुद्धिकाले = अग्निशुद्धि के समय। यत् = जो। अद्भुतं कर्म = विचित्र (अलौकिक) कर्म (हुआ)। कः = कौन। प्रत्येतु = विश्वास करे। हि = क्योंकि। तद् = वह। अतिदूरवृत्तम् = बहुत दूरपर हुआ।

व्याकरण :- अभिमतः-अभि-√ मन् + त्तः वर्तमाने, पूजार्थे 'तिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' पा० ३।२।१८२। प्रजानां- 'क्तस्य च वर्तमाने' (पा० ३।६७) इस सूत्र के अनुसार वर्तमानार्थ 'ल' प्रत्ययान्त शब्द 'अभिमतः' के योग कर्ता में षष्ठी है। जातं-√ जन् ४ आ० + कर्तरि क्तः। प्रत्येतु-प्रति-√ इ २ ० लोट्।

टिप्पणी (Notes)

इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानाम् :- सारी प्रजा को इक्ष्वाकुवंश प्रिय था, स वंश की समृद्धि तथा ख्याति ही प्रजा को इष्ट थी, अतः इसकी विशुद्ध ख्याति किसी प्रकार का भी कलंक प्रजा को असह्य था।

जातं च दैवाद वचनीयबीजम् :- किन्तु दैवदुर्विपाक से लोकापवाद का कारण उत्पन्न हो गया। सीता को दस मास तक रावण के घर में रहना पड़ा। 'वचनीय' (√ वच् + अनीय) शब्द का अर्थ है लोकवाद (जिसकी लोगों में चर्चा की जाती हो), अर्थात् निन्दा।

अद्भुतं कर्म :- अग्निशुद्धिकाल में सीता के प्रदीप्त अग्नि में प्रविष्ट होने पर भी उसका केश तक न जला। अतिदूरवृत्तम् — यह अग्निशुद्धिरूप अद्भुत कर्म लंकाद्वीप में हुआ, जो अयोध्या से अति दूर है। इस श्लोक में इन्द्रवज्रा छन्द एवं काव्यालिङ्ग अलंकार है।

{८२} रामः— हा कष्टम्। अतिबीभत्सकर्मा नृशंसोऽस्मि संवृत्तः।

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां

सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम्।

छद्मना परिददामि मृत्यवे

सौनिको गृहशकुन्तिकामिव ।।४५।।

अन्वयः— शैशवात्प्रभृति सेवितां प्रियां सौहृदात् अपृथगाश्रयाम् इमां सौनिकः गृहशकुन्तिकाम् इव छद्मना मृत्यवे परिददामि।

{८२} शब्दार्थः— बीभत्स = घृणित। नृशंस = क्रूर। शैशवात्प्रभृति = बालकपन से लेकर। पोषितां = यत्नपूर्वक पालन की हुई। प्रियां = प्रिया, प्यारी। सौहृदात् = अतिशय प्रीति के कारण। अपृथगाश्रयाम् = अभिन्न आश्रयवाली (केवलमात्र मेरे ही आश्रित रहने वाली)। इमां = इस (सीता) को। छद्मना = छल से (दोहदपूरण के बहाने से)। मृत्यवे = मृत्यु के लिए। परिददामि = अर्पण कर रहा हूँ। गृहशकुन्तिकां = घर की (पालतू) चिड़िया को। सौनिकः इव = जैसे मांस बेचनेवाला।

अनुवाद :- राम—हा कष्ट [की बात] है। मैं अत्यन्त घृणित—कर्मवाला, क्रूर बन गया हूँ। बचपन से लेकर यत्नपूर्वक पाली हुई, प्यारी, [तथा] अतिशय प्रीति (सौहृद) के कारण अनन्य (केवल मेरे ही) आश्रयवाली इस (सीता) को [दोहदपूरण के] बहाने से मृत्यु को अर्पित कर रहा हूँ, जैसे मांसविक्रयी [बचपन से लेकर पाली हुई, प्यारी तथा अनन्य आश्रयवाली] घर की बेचारी चिड़िया को [मृत्यु को अर्पित करता है।]

व्याकरण :- बीभत्स—√बध्-सन् + अच्। 'बध्' धातु चित्तविकार (जुगुप्सा, घृणा) के अर्थ में नित्य सन्नन्त होती है ('बधेश्चित्तविकारे' वा०)। नृशंसः—नृन् शंसति, नृ-√शंस् + अच्। शैशवात् प्रभृति—'कार्तिक्याः प्रभृति' इस महाभाष्य के प्रयोग के अनुसार प्रभृति के योग में पंचमी। सौहृदात्—शोभनं हृदयं यस्य सः

[हृदयः, सुहृदयस्य भावः सौहृद। तस्माद्धेतोः, सुहृदय + अण्, 'हृदयस्य ल्लेख्यदणलासेषु' (पा० ६।३।१०) इस सूत्र के अनुसार अण् प्रत्यय परे होने पर 'हृदय' को 'हृद्' आदेश हो जाता है। 'हृद्गसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' (पा० ७।३।१९) स सूत्र के अनुसार यहाँ उभयपद वृद्धि होकर 'सौहार्दात्' होना चाहिये था, किन्तु स्कृत वाङ्मय में 'सौहृद' तथा 'सौहार्द' दोनों ही शब्दों का प्रयोग मिलता है जैसे, 'निसर्ग सौहृदेन' मालती० १, विक्रमो० १।९, इत्या०), वामन ने व्यालंकारसूत्रवृत्ति (२।८३) में कहा है— 'सौहृददौर्हृदशब्दावणि हृद्वावात्' अर्थात् अण् प्रत्यय परे होने पर 'हृदय' शब्द को जब 'हृद्' आदेश होता है तब उभयपदवृद्धि न होकर केवल आदि अच् की ही वृद्धि होती है, अतः सुहृदयस्य वः सौहृदं (प्रेम) किन्तु सुहृदः (मित्रस्य) भावः सौहार्दम् (मित्रता)। सौनिकः सूना य प्राणिवधस्थानं, तथा जीवति सौनिकः, सूचना + ठक्। शकुन्तिका— शकुन्ति (अनुकम्पायां) + टाप्।√ शक् धातु से उन, उन्त, उन्ति, तथा उनि प्रत्यय णादि) लगकर शकुनः, शकुन्तः, शकुन्तिः, तथा शकुनिः शब्द बनते हैं, इन सबका ही 'पक्षी' है (शकैरुनोन्तोन्त्युनयः उणा०)

टिप्पणी (Notes)

प्रियैः (पाठा०)— घनश्याम ने 'प्रियां' के स्थान पर यही पाठ रक्खा है, यह पाठ तथा शकुन्ति का दोनों के ही पक्ष में संगत है। अपृथगाश्रयाम्—यह विशेषण पाठ तथा 'शकुन्तिका' दोनों के लिए प्रयुक्त है। अपृथगाशयां पाठा०— दे० १। सीता के लिए तो यह विशेषण उचित ही है किन्तु 'शकुन्तिका' के पक्ष में विशेषण नहीं लग सकता। सैनिकः— कसाई (Butcher) सौनिके— (पाठा०)— नेकाय (चतुर्थ्यर्थे सप्तमी)। 'सौनिकः' पाठ अधिक उचित है।

} रामः— तत्किमस्पर्शनीयः पातकी देवी दूषयामि। (इति सीतायाः स्वैरभुन्नमय्य बाहुमाकर्षणम्)।

अपूर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे विमुञ्च माम्।

श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम्॥४६॥

अन्वयः— अयिमुग्धे, अपूर्वकर्मचण्डालं मां विमुञ्च। [त्वं] चन्दनभ्रान्त्या माकं विषद्रुमं श्रिता असि।

{८३} शब्दार्थः— पातकी = पापी। स्वैर = शनैः, धीरे से। उन्नमय्य = को उठाकर। अयिमुग्धे = अरी भोली, सरलहृदये। अपूर्वकर्मचण्डालं = अपूर्व किसी से न किया गया हो ऐसे) कर्म के कारण चण्डाल (चण्डाल तुल्य), यद्वा (जिसके समान पहले कोई न हुआ हो ऐसा) कर्मचण्डाल (कर्म से चण्डाल, ५ जन्म से) विमुञ्च = छोड़ दे। चन्दनभ्रान्त्या = चन्दन वृक्ष के धोखे से। पाकं = दुष्ट परिणामवाले (अर्थात् प्राणसंहारक)! विषद्रुमं = विष वृक्ष को।

श्रिता असि = तूने आश्रित किया है।

अनुवाद:- राम- तब क्यों स्पर्श न किये जाने योग्य, पापी [मैं] देवी को [अपने स्पर्श से] दूषित करूँ। (ऐसा कहकर सीता के सिर को धीरे से ऊपर को उठाकर बाहुको खींचते हुए-)

अरी सरलहृदये, मुझ अश्रुतपूर्व कर्म के कारण चण्डाल को छोड़ दे। चन्दन वृक्ष के धोखे से तूने प्राणसंहारक विषवृक्ष को आश्रित किया है।

व्याकरण :- अस्पर्शनीयः-न स्पर्शनीयः, √ स्पृश् ६ प० + अनीय। पातकी-पातकं विद्यतेऽस्य, इति। दूषयामि-√ दुष् ४ प०-णिच्-लट्। स्वैरं-स्वेन ईर्ते, स्वस्य ईरः वा, 'स्वादीरेरिणोः' (वा०) इति वृद्धयेकादेशः। उन्नमय्यउद्-√ नम्-णिच् + ल्यप्, 'मितां ह्रस्वः' (पा० ६।४।१२) इति ह्रस्वः। चण्डाल-√ चण्ड (चण्डि रोषे) १ आ० + आ लञ् (उणा० १।१२२), प्रज्ञादित्वात् स्वार्थेऽणि चाण्डालः। भ्रान्त्या-√ भ्रम् + क्तिन् 'अनुनासिकस्य क्क्लिङ्गलो. किङ्कति' (पा० ६।४।१५) इस सूत्र के अनुसार उपधादीर्घ। 'प्रकृतयादिभ्यश्चोपसंख्यानम्' इति तृतीया।

टिप्पणी (Notes)

स्वैरं :- 'स्वैर' शब्द विशेषण तथा क्रियाविशेषण दोनों के रूप में प्रयुक्त होता है, इसका अर्थ 'स्वच्छन्द' तथा 'मन्द' है (मन्दस्वच्छन्दयोः स्वैरः)।

अपूर्वकर्मचण्डालः- इसकी व्याख्या दो प्रकार से हो सकती है-अपूर्वकर्मणा चण्डालः {कर्मचण्डाल-असूयको वा पिशुनः कृतघ्नो दीर्घरोषकः। चत्वारः कर्मचाण्डालाः जन्मतश्चापि पंचमः।।" (वसिष्ठ)}। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द तथा काव्यालिङ्ग एवं निदर्शना अलंकार है।

[८४] रामः- (उत्थाय) हन्त विपर्यस्तः संप्रति जीवलोकः। १२४पर्य-वसितमद्यजीवितप्रयोजनं रामस्य। शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। असारः संसारः। १२५काष्ठप्रायं शरीरम्। अशरणोऽस्मि। किं करोमि का गतिः। अथवा-

दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम्^{१२६}।

मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं^{१२७} हृदि।।४७।।

अन्वयः- दुःखसंवेदनाय एव रामे चैतन्यम् आहितम्, मर्मोपघातिभिः प्राणै हृदि वज्रकीलायितम्।

१. अद्यावसितम्।

२. काष्ठ।

३. अर्पितं, आगतम्।

४. स्थिरैः।

{८४} शब्दार्थ :- जीवलोकः = प्राणियों का लोक, जगत्। विपर्यस्तः = दल गया है। पर्यवसितम्-परिसमाप्त हो गया है। जीर्णारण्यं = जीर्ण (सूखा) न। असारः = सारहीन, शून्य। कष्टप्रायं = कष्टरूप अथवा कष्टप्रचुर। अशरणः शरणरहित, निराश्रय। गतिः = {शान्ति का} उपाय। दुःखसंवेदनाय = दुःख के अनुभव के लिये। एव = ही। रामे = राम में। चैतन्यं = चेतना, संज्ञा। आहितं = प्रापित है। मर्मोपघातिभिः = मर्मों (हृदयादि जीवरथानों) पर प्रहार करने वाले। जैः = प्राणों से। हृदि = हृदय में। वज्रकीलायितम् = वज्र की कील के समान आचरण किया गया है।

अनुवाद :- राम- (उठकर) खेद, अब जगत् और का और (विपर्यस्त) गया है। आज राम के जीवन के प्रयोजन का अन्त हो गया है। अब जगत् शून्य ण्य (शुष्क वन) है। संसार सारहीन (अरमणीय) है। शरीर कष्टरूप है। मैं राश्रय (अशरण) हो गया हूँ। क्या करूँ? क्या उपाय है? अथवा दुःख के अनुभव लिए ही राम में चेतना स्थापित है। कर्म पर प्रहार करने वाले प्राणों द्वारा हृदय वज्रकील के समान आचरण किया गया है।

व्याकरण :- विपर्यस्तः-वि-परि-√ अस् (क्षेपणे) ४ प० + क्त। विसितम्-परि-अव-√ सो (अन्तकर्मणि) ४ प० + क्त। कष्टप्रायं-प्रायेण कष्टं टप्रायं, 'सुप्सुपा' इति समासः, 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' (पा० १।२।४८) इति य' शब्दस्य परनिपातः {'प्राय' शब्द बाहुल्य के अर्थ में सदा तृ० वि० (प्रायेण) में प्रयुक्त होता है, अतः यह एकविभक्ति शब्द है, एकविभक्ति शब्द समास के पद के रूप में प्रयुक्त नहीं होते, तुल० 'एवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः' (शकु०)}, यद्वा, टानां प्रायो बाहुल्यं यत्र तथाभूतं, सुप्सुपा। संवेदनं- सम्-√ विद् (ज्ञाने) २ प० भावे ल्युट्। आहितं-आ-√ धा ३ उ० + कर्मणि क्त। मर्म- म्रियतेऽस्मिन्नाहते। मर्म, √ मृ + मनिन्। उपघातिभिः- उप-√ हन् + ताच्छील्ये णिन्। वज्रकीलायितं- कीलवद् आचरितं, वज्रकील + क्यङ् = वज्रकीलाय ('कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' ३।१।११), ततः भावोक्तः।

टिप्पणी (Notes)

कष्टप्रायं- प्रायेण कष्टं कष्ट रूपं, यद्वा कष्टानां प्रायो बाहुल्यं यत्र भूतं।

काष्ठप्रायं (पाठा०):- काष्ठेन तुल्यं {'प्रायो मरणानशने मृत्यौ बाहुल्यतुल्ययोः' को०}। अशरणः-रक्षकरहित, अनाथ, निराश्रय {'शरणं गृहरक्षित्रीः' अ० को०}।

वज्रकीलायितं- उपमानवाची कर्ता सुबन्त से 'आचरति' इस अर्थ में इ प्रत्यय जुड़कर नामधातु बना है, इसका अर्थ है वज्रकील वनकर हृदय में जा से गड़े हुए हैं, अतः इतने कष्ट का अनुभव करने पर भी शरीर रा नहीं

नेकलते ("प्राणव्याजाच्छंकवो हृदि निखाता इत्यर्थः, अतएव अद्यापि मम चैतन्यं वर्तते इतिभावः" घनश्याम)। इस श्लोक में स्थोद्धता छन्द एवं पूर्णोपमा अलंकार है।

{८५} रामः— हा अम्ब अरुन्धति! हा भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ! हा भगवन्पावक! हा देवि भूतधात्रि! हा तात जनक! हा तात! हा मातः! हा प्रियसख सुग्रीव! हा सौम्य हनूमन्! हा परमोपकारिन् लंकाधिपते विभीषण! हा सखि त्रिजटे! परिमुषिताःस्थ परिभूताःस्थ रामहतकेन अथवा को नाम तेषामहमिदानीमाह्वाने।

ते हि मन्ये महात्माः कृतघ्नेन दुरात्मना।

मया गृहीतनामानः स्पृश्यन्ते इव पाप्मना॥४८॥

अन्वयः— हि ते महात्मानः कृतघ्नेन दुरात्मना मया गृहीतनामानः पाप्मना, स्पृश्यन्ते इव {इति} मन्ये।

{८५} शब्दार्थ :- अम्ब = हे माता। पावक = अग्नि। भूतधात्रि = प्राणियों को धारण करने वाली, पृथिवी। तात = पिता। सौम्य = मृदुल, साधु (Gentle)। त्रिजटे = हे त्रिजटे। परिमुषिताः स्थ = तुम लूट लिये गये हो, ठग लिये गये हो। परिभूताः स्थ = तुम तिरस्कृत किये गये हो। आह्वान = पुकारना। हि = क्योंकि। ते महात्मानः = वे महाशय। कृतघ्नेन = अकृतज्ञ। दुरात्मना = दुष्ट स्वभाववाले। मया = मुझसे। गृहीतनामानः = ग्रहण किया गया है नाम जिनका ऐसे {होते हुए}। पाप्मना = पापी से। स्पृश्यन्ते इव = जैसे छुए जा रहे हों। मन्ये = {ऐसा} मैं मानता हूँ।

अनुवाद :- राम— हा माता अरुन्धती! हा भगवन् वसिष्ठ तथा विश्वामित्र! हा भगवन् अग्नि! हा देवी वसुधा! हा तात जनक! हा पिता! हा माता! हा प्रियमित्र सुग्रीव! हा साधु हनूमान्! हा महा उपकारी लंकेश्वर विभीषण! हा सखी त्रिजटा! तुम सब इस नीच रामद्वारा ठगे गये हो, तुम सब तिरस्कृत किये गये हो। अथवा मैं अब उनको पुकारने वाला कौन हूँ? क्योंकि वे पुण्यात्मा लोग अकृतज्ञ तथा दुष्ट स्वभाववाले मुझसे नाम लिए हुए, पाप से मानों छुए जा रहे हों {ऐसा} मैं मानता हूँ।

व्याकरण :- उपकारिन्-उप-√ कृ-णिनि। सखि (स्त्री०) —'सखी' शब्द का संबोधन। सखी-सखि (पुं० + स्त्रियाँ डीप् (पा० ४१।६२)। परिमुषिताः-परि-√ मुष् (स्तेये) ९ पा० + कर्मणि क्तः। रामहतकेन-हत इव हतकः (इवार्थे कन्), रामश्चासौ हतकश्च (कर्मधा०), 'कुत्सितानि कुत्सनैः' (पा० २१।५३) इति समासः, विशेष्यस्य पूर्वनिपातश्च (दे० इस सूत्र पर काशिका)। आह्वान-अ√ ह्वे १ उ० + ल्युट् भावे। कृतघ्न-कृतं (उपकारं) हन्ति, कृत-√ हन् + क्त। स्पृश्यन्ते-√ स्पृश्

टिप्पणी (Notes)

त्रिजटा :- रावण द्वारा सीता की देखभाल के लिए अशोक वाटिका में युक्त की हुई एक राक्षसी, जिसका सीता पर विशेष स्नेह था ।

कोनाम अहम् :- 'नाम' शब्द यहाँ अव्यय है और कुत्सा के अर्थ में प्रयुक्त आ है [नामप्रायाश्च सम्भाव्यक्रोधोपगमकुत्सने अ० को०] । इस श्लोक में उत्प्रेक्षा लंकार है । 'इव' तथा 'मन्ये' पद उत्प्रेक्षा द्योतक हैं, उत्प्रेक्षाद्योतन के लिए इनमें कोई एक पद भी पर्याप्त होगा । इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द एवं उत्प्रेक्षा लंकार है ।

६} राम:- योऽहम्- विस्रम्भादुरसि निपत्य लब्धनिद्रा

मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य शोभाम् ।

आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुवी

क्रव्याद्भयो बलिमिव निघूर्णः क्षिपामि ॥४९॥

गोतायाः पादौ शिरसि कृत्वा) देवि! देवि! अयं पश्चिमस्ते रामशिरसा दपङ्कजस्पर्शः ।

(इति रोदिति)

अन्वय:- (योऽहम्) निर्घृणः विस्रम्भाद् उरसिनिपत्य लब्धनिद्रां, गृहस्य शोभां, तंकस्फुरितकठोरगर्भगुर्वी प्रियगृहिणीम् उन्मुच्य क्रव्याद्भयः बलिमिव क्षिपामि ।

{८६} शब्दार्थ :- निर्घृणाः = क्रूर । विश्रम्भात् = विश्वास से । उरसि = तीपर । निपत्य = पड़कर । लब्धनिद्राम् = प्राप्त की है निद्रा जिसने ऐसी । स्य शोभां = घर की शोभा । आतंकस्फुरितकठोरगर्भगुर्वी = आतंक (स्वप्नजनित ग) से स्फुरित (फड़कता हुआ) जो कठोर (पूर्ण) गर्भ, उससे गुर्वी (भारवती, द-मन्द चलने वाली), प्रियगृहिणीं = प्रिय पत्नी को । उन्मुच्य = उठाकर । याद्भयः = कच्चा मांस (क्रव्य) खाने वाले व्याघ्रादि हिंस्र पशुओं के लिए । बलिम् = उपहार के समान । क्षिपामि = फेंकता हूँ । पश्चिमः = अन्तिम । पादपङ्कजस्पर्शः चरणकमल का स्पर्श ।

अनुवाद :- राम जो मैं निष्ठुर, विश्वास से छाती पर पड़कर प्राप्त की है । जिसने ऐसी घर की शोभा तथा [चित्रदर्शनजनित अथवा स्वप्नदर्शन जनित] ग के कारण फड़कते हुए गर्भ [के भार] से भारी प्रियपत्नी को उठाकर हिंस्रों के लिए ग्रासोपहार के समान फेंक रहा हूँ । (सीता के पैरों को शिर पर कर) देवि! देवि! राम के शिर द्वारा तेरे चरणों का यह अन्तिम स्पर्श है । (ऐसा

व्याकरण :- विस्रम्भः-वि-√ सम्भ्र (विश्वा से) 1 आ० + घञ् निपत्य-नि-√ पत् 1 प० + ल्यप्। उन्मुच्य-उद्-√ मुच् 6 प० + ल्यप्। शोभा-शोभयतीति शोभा, √ शुभ् 1 आ-णिच् + कर्तरि अच्। आतंकः-आ-√ तङ्क (तकि कृच्छजीवने) 1 प० + घञ्। गुर्वी-गुरु (भारी) + स्त्रियां डीप् ('वोतो गुणवचनात्' पा० 4।1।144), पक्ष में 'गुरु' भी। क्रव्याद्-क्रव्यम् आममांसम् अस्ति इति क्रव्याद्, क्रव्य-√ अद् 2 प० + विट् ('क्रव्ये च' पा० 3।2।69)। [पक्षमांसभक्षी के लिए 'क्रव्याद्' (-√ अद् + अण्) शब्द प्रयुक्त होता है, दे० इस सूत्र पर काशिका]। निर्घृणः-निर्गता घृणा (दया) यस्मात्, (प्रादि बहुव्रीहि पश्चिमः-पश्चात् + डिमन्। रामशिरसा-कर्तृकर्मणे कृति' (पा० 2।3।65) इस सूत्र के अनुसार कृदन्त के योग में कर्ता तथा कर्म में षष्ठी होती है, किन्तु 'उभयप्रातौ कर्मणि' (पा० 2।3।66) इस सूत्र के अनुसार यहाँ कृदन्त के योग में षष्ठी न होकर तृतीया हुई। [कात्यायन के अनुसार यहाँ विकल्प से षष्ठी भी हो सकती है]।

टिप्पणी (Notes)

पूर्व श्लोक में राम ने अपने आपको कृतघ्न तथा दुरात्मा कहा है, और इस श्लोक में उन्होंने अपने आपको कृतघ्न तथा दुरात्मा बतलाने के लिए हेतु दिये हैं। जो सीता राम पर पूर्णविश्वास रखकर निश्चिन्ता से उनके वक्षस्थल पर सोई हुई थी, जो उनके घर की शोभा थी तथा जो उनकी परमप्रिय सहधर्मिणी थी, उसका त्याग करना कृतघ्नता की पराकाष्ठा है और उस कठोरगर्भा सीता को हिंस्र पशुओं के लिए मांसपिण्ड के समान बन में फिंकवा देना तो घोर पातक है।

निर्घृणः- निष्करुणः निष्ठुरः। 'घृणा' शब्द का अर्थ जुगुप्सा तथा करुणा दोनों हैं। ('जुगुप्साकरुणे घृणे' अ० को०), यहाँ पर करुणा के अर्थ में है। 'अपश्चिमः' शब्द का भी यही अर्थ है-'नास्ति पश्चिमः यस्य', तुल० 'अनुत्तम' हितो० १। 'अपश्चिमः' शब्द बहुधा नाटकों में प्रयुक्त हुआ है (दे० नागानन्द अंक ४)। इस श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द एवं उपमा अलंकार है।

(नेपथ्ये)

[८७] अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम्।

रामः- ज्ञायतां भोः किमेतत्।

(पुनर्नेपथ्ये)

लवणत्रासितः स्तोमः शरण्य त्वामुपस्थितः ॥५०॥

अन्वयः— यमुनातीरवासिनाम् उग्रतपसाम् ऋषीणां स्तोमः लवणत्रासितः सन् शरण्यं त्वाम् उपस्थितः ।

{८७} शब्दार्थ :- नेपथ्य = वेशरचना गृह । अब्रह्मण्यम् = अवध्योक्ति (अवध्य ब्राह्मण मारा जा रहा है, अरे रक्षा करो) । यमुनातीरवासिनाम् = यमुना तटपर निवास करने वाले । उग्रतपसाम् = कठोर तपवाले । ऋषीणाम् = ऋषियों का । स्तोमः = समूह । लवणत्रासितः = 'लवण' नामक असुर से त्रास दिया हुआ । शरण्यं = रक्षा करने वाले । त्वाम् = तुम्हारे । उपस्थितः = निकट आया है ।

अनुवाद :- (नेपथ्य में) अब्रह्मण्य, अब्रह्मण्य (अवध्य ब्राह्मण मारे जा रहे, रक्षा करो, रक्षा करो) । राम—अरे, पता लगाया जावे, यह क्या है ? (फिर नेपथ्य में) यमुना तटवासी कठोर तपवाले ऋषियों का वृन्द लवणसुर से आतंकित होकर आ करने वाले आपके पास आया है ।

व्याकरण :- अब्रह्मण्यम् ब्रह्मणे हितं ब्रह्मण्यं (ब्रह्मन् + यत्), न ब्रह्मण्यम् ब्रह्मण्यम् । ज्ञायताम्—√ ज्ञा (ज्ञाने) १ प० कर्मणि लोट् । त्रासितः—√ त्रस् (उद्देगे) ४ प० णिच् + कर्मणि क्तः । शरण्यं—शरणे साधुः शरण्यः तम्, शरण + यत् । उपस्थितः—उप—√ स्था १ प० + कर्तरि क्तः, उपसर्गपूर्वक होने से सकर्मक है, वाम् इसका कर्म है ।

टिप्पणी (Notes)

अब्रह्मण्यम् :- यह एक नाट्योक्ति है, जो अवध्य की रक्षा के लिए करने के अर्थ में प्रयुक्त होती है ।

ऋषीणां इत्या० :- श्लोक का यह पूर्वार्ध रामा० उ० का० ६०१५ में भी आया है ।

लवण :- यह मधुनामक दैत्य तथा कुम्भीनसी (रावण की भगिनी) का पुत्र तथा मधुरा (मधुवन) का राजा था ।

उग्रतपसाम् ऋषीणां स्तोमः— 'उग्रतपसां' शब्द से उन ऋषियों की अपदानादिद्वारा राक्षस विनाश की योग्यता सूचित होती है, किन्तु ऐसा करने से गेहानि की सम्भावना है (तुला 'त्राणाभावे हि शापास्त्रा कुर्वन्ति तपसो व्ययम्' १०)

{८} रामः— आः कथमद्यापि राक्षसत्रासः । तद्यावदस्य दुरात्मनो कुम्भीनसीपुत्रोन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि । (कतिचित्पदानि गत्वा पुनर्निवृत्त्य) हा

देवि, कथमेदंगता भविष्यसि। भगवति वसुन्धरे, सुश्लाघ्यां दुहितामवेक्षस्व
जानकीम्।

जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्।

यां देवयजने पुण्ये पुण्यशीलामजीजनः॥५१॥

(इति वदन्निष्क्रान्तः)

अन्वयः— यत् जनकानां रघूणां च कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्, पुण्यशीलां यां पुण्ये
देवयजने त्वम् अजीजनः।

{८८} शब्दार्थः— राक्षसत्रासः = राक्षसों से भय। उन्मूलन = उखाड़ना,
उच्छेदन, नाश। निवृत्य = लौटकर। एवंगता = इस प्रकार की दशा को प्राप्त
सुश्लाघ्यां = प्रशस्त चरितवाली। दुहितरम् = पुत्री को। अवेक्षस्व = देखभाल
रखना। जनकानाम् = जनक कुलवालों का। रघूणाम् च = और रघुकुलवालों का।
यत् = जो। कृत्स्नं = समग्र। गोत्रमङ्गलम् = (दोनों) वंशों का मङ्गल (कल्याण) है।
पुण्यशीलां = पवित्र चरित वाली। यां = जिस {सीता} को। पुण्ये = पवित्र।
देवयजने = यज्ञभूमि में। अजीजनः {तूने} उत्पन्न किया है। रुदन् = रोता हुआ।

अनुवाद :- राम—ओह! क्या अब भी राक्षसों से भय है। तो पहले इस
दुष्ट स्वभाववाले कुम्भीनसी के पुत्र के उन्मूलन के लिए शत्रुघ्न को भेजता हूँ।
(कुछ पद चलकर, फिर लौटकर) हाय देवी, ऐसी दशा को प्राप्त हुई तुम कैसे
रहोगी! भगवति वसुन्धरे, इस शुभ प्रशंसा के योग्य पुत्री की देखभाल रखना। जो
जनक कुलवालों के तथा रघुकुलवालों के वंशों का समग्र मङ्गल (कल्याण) है,
जिस पवित्र आचरणवाली को पवित्र यज्ञभूमि तूने उत्पन्न किया है। (इस प्रकार
रोते हुए निकल गये)।

व्याकरण :- कुम्भीनसी—कुम्भी (स्थाली) इव नासिका अस्याः इति
कुम्भीनसी, 'पद्मत्रोमास्—' (पा० ६१।६३) इति 'नासिका' शब्दस्य 'नस' आदेशः,
ततो डीप्। सुश्लाघ्यां—सुष्ठु श्लाघ्यां, श्लाघाम् अर्हति या सा श्लाघ्या, श्लाघा +
यत्: यद्वा √ श्लाघ् १ आ० + ण्यत् + टाप्। अवेक्षस्व—अव—√ ईक्ष् १ आ०—लोट्
म० पु० ए० व०। अजीजनः—√ जन् ४ आ० {जायते}—णिच् {जनयति}—लुङ्।

टिप्पणी (Notes)

यद्यपि:— रावण तथा अन्य राक्षसों के नाश कर दिये जाने पर भी
दुरात्मनो माधुरस्य (पाठा०)—माधुरस्य मधुरा निवासोऽस्य, मधुरा + अण् (सोऽस्य
निवासः पा० ४।३।८९) लवण के पिता मधु के नाम पर मधुरा (आधुनिक मथुरा) नाम
पड़ा। इसी को 'मधुवन' भी कहते थे। अवेक्षस्व—'अव' पूर्वक ईक्ष् धातु का अर्थ है
ध्यान रखना, देखभाल करना {'अवेक्षा प्रतिजागरः' अ० को०} यत्कृत्स्नं

त्रिमंगलम्—यहाँ पर विधे । गोत्रमंगलम् के अनुगुण्य से 'यत्' नपुंसक लिंग में
युक्त हुआ है । गोत्रमंगलम्—अर्थात् दोनों बंधों के आनन्द तथा कल्याण का हेतु ।

९} सीता— हा सौम्य अज्जउत्त कहिं सि ? {हा सौम्य आर्यपुत्र
त्रासि।} (सहसोत्थाय) हद्दी हद्दी दुस्सविणेन विप्पलब्धा अहं अज्जउत्तं
क्रन्दामि । {हा धिक्, हा धिक्, दुःस्वप्नेन विप्रलब्धाऽहमार्यपुत्रमा— क्रन्दामि।}
(लोक्य) हद्दी हद्दी एआइणिं मं पसुत्तं उज्झिअ गदो अज्जउत्तो! किं
णी एवं। ओदु से कुप्परस जइ तं पेक्खत्ती अरणो पहविस्सं। को एत्थ
रेअणो ? {हा धिक्, हा धिक्, एकाकिनीं मां प्रसुप्ताम् उज्झित्वा गत
र्यपुत्रः। किमिदानीमेतत् ? भवतु तस्मै कोपिष्यामि, यदि तं प्रेक्षमाण
त्मनः प्रभविष्यामि । कोऽत्र परिजनः ?}

{89} शब्दार्थ :- विप्रलब्धा = वञ्चिता, ठगी हुई । आक्रन्दामि = चिल्ला
हूँ, जोर से पुकार रही हूँ । एकाकिनीं मा = मुझ अकेली (असहाया) को ।
ज्झित्वा = छोड़कर । प्रेक्षमाणा = देखती हुई । आत्मनः प्रभविष्यामि = अपने ऊपर
बू रख सकूंगी । परिजनः = अनुचर वर्ग, अनुचर ।

अनुवाद :- सीता—हा सौम्य आर्यपुत्र! आप कहाँ हैं । (एकदम से उठकर)
धिक्, हा धिक्, बुरे स्वप्न से ठगी हुई मैं आर्यपुत्र को पुकार रही हूँ । (देखकर)
धिक्, हा धिक्, मुझ अकेली को सोती हुई छोड़कर आर्यपुत्र चले गये । अब यह
{हुआ}? अच्छा, उनपर कोप करूंगी, यदि उनको देखती हुई अपने ऊपर काबू
सकूंगी तो । यहाँ पर कौन परिजन है?

व्याकरण :- विप्रलब्धा—वि—प्र—√ लभ् १ आ० + कर्मणि क्त + टाप् ।
किनी—एका एव एकाकिनी, एक + आकिनिच् + डीप् {‘एकादाकिनिच्चासहाये’
(पा० ५।३।४२)} । तस्मै कोपिष्यामि— ‘क्रुधद्रुहेर्ष्यासूर्यार्थानां यं प्रति कोपः’ (पा०
३।७) इस सूत्र के अनुसार यहाँ सम्प्रदान में चतुर्थी है । प्रेक्षमाण—प्र—√ ईक्ष् १
+ शानच् + टाप् । आत्मनः प्रभविष्यामि—‘अधीगर्थदयेषां कर्मणि’ (पा० २।३।५२)
कर्मणि शेषे षष्ठी ।

टिप्पणी (Notes)

दुःस्वप्नेन— सीता को स्वप्न हुआ कि राम उसको छोड़कर चले गये हैं,
वह सहसा बैठी और अपने चारों ओर राम को देखने लगी ।

यदि आत्मनः प्रभविष्यामि— सीता के ये शब्द उसका राम के प्रति
प्रेम सूचित करते हैं ।

एकाकिनीं माम् इत्यादि— सीता के ये शब्द कितने मर्मस्पर्शी हैं, उसे
मालूम कि उसके ऊपर कितनी भारी विपत्ति आनेवाली है ।

{१०} दुर्मुखः— देइ, कुमारलक्ष्मणो विष्णवेदि—सज्जो रहो, आरुहदु देईति।
[देवि, कुमारलक्ष्मणो विज्ञापयति—सज्जो रथः, आरोहतु देवीति।]

सीता— इअं आरुहामि। (उत्थाय परिक्रम्य) फुरइ मे गब्भभारो। सणिअ गच्छम्ह। [इयमारोहामि।.....स्फुरति मे गर्भभारः। शनैर्गच्छावः।]

दुर्मुखः— इदो इदो देई। [इत इतो देवी।]

सीता— णमो तपोधणाणां, णमो रहुउलदेअदाणां, णमो अज्जउत्त-
चरणकमलाणं, णमो सअलगुरुअणाणं। [नमस्तपोधनेभ्यो नमो रघुकुलदेवताभ्यो
नमो आर्यपुत्रचरणकमलेभ्यो नमः सकलगुरुजनेभ्यः।]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति महाकवि श्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते चित्रदर्शनाय
प्रथमोऽङ्कः।

{१०} शब्दार्थ :- विज्ञापयति = निवेदन करता हूँ। स्फुरति = फड़कता है। तपोधनेभ्यो नमः = तप ही है धन जिनका उन ऋषियों को नमस्कार है।

त]रु अनुवाद :- (प्रवेश करके) दुर्मुख—हे देवि, कुमार लक्ष्मण निवेदन करते हैं कि 'रथ तैयार है, देवी चढ़ जायें'। सीता—अच्छा चढ़ती हूँ। (उठकर, घूमकर) मेरा गर्भ—भार फड़क रहा है। हम दोनों धीरे—धीरे चलें। दुर्मुख—देवी, इधर से [आएँ], इधर से। सीता—तप ही है धन जिनका उन [ऋषियों] को नमस्कार, रघुकुल के देवताओं को नमस्कार, आर्यपुत्र के चरणकमलों को नमस्कार, सब गुरुजनों को नमस्कार। (अन्त में सब निकल जाते हैं)।

व्याकरण :- विज्ञापयति—वि-√ ज्ञा ९ उ०—णिच्—लट्। णिच् प्रत्यय परे हो तो आकारान्त धातु में पुक् (प्) आगम होता है (पा० ७।३।३६) सज्जः—√ सस्ज् (गतौ) १ प० + अच्। पहले चवर्ग (ज) के योग में स्को श् हुआ, और फिर शको 'झलां जश् झशि' पा० सूत्र के अनुसार ज् हो गया।

टिप्पणी (Notes)

कुमारलक्ष्मणः— देव (महाराज राम) की अपेक्षा से लक्ष्मण को उनसे छोटा होने के कारण 'कुमार' कहा गया है। स्फुरति०—इस पर घनश्याम लिखते हैं—“इत्थं पुरुषसमक्षं निस्संकोचतया कथनं कवेरचातुर्यम्। अस्माकं तु निर्भाति— (स्वगतम्) फुरइ मे गब्भभारो। (प्रकाशम्) साणिअं गच्छामः। इति पाठक्रमः कल्पनीयः।

रघुकुलदेवताभ्यः— “रघुकुलदेवते लक्ष्मीनारायणविति प्रसिद्धमेव। तन्नमस्कारो यात्राकाले विहितः, 'आदित्यमण्डलं विष्णुं ध्यात्वा यात्रां प्रवर्तयेत् इति स्मरणात्”

वेरराघव) अनेकपुस्तकों में 'णमो रहुउलदेअदाणां' केवल इतना ही पाठ है, और नश्याम तथा डॉ० विल्वावलिकर ने भी केवल इतना ही पाठ माना है।

महाकवि श्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरित में 'चित्रदर्शन' नामक प्रथम अंक समाप्त।

2 अभ्यास प्रश्न—

क) अतिलघुत्तरीय प्रश्न—

उत्तररामचरितम् का मङ्गलाचरण किस प्रकार का है?

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।

आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति में व्यथा।।

यह श्लोक किसके द्वारा कहा गया है।

चित्रकार का क्या नाम था?

जनक के पुरोहित का क्या नाम था?

माण्डवी कौन है?

ख) निम्न श्लोकों को व्याख्या कीजिए—

श्लोक संख्या— 9, 10, 14, 25, 26, 28, 35, 38, 39।

ग) विस्तृत प्रश्न—

प्रथम अंक का सारांश लिखिए।

प्रथम अंक का नाटकीय दृष्टि से समीक्षा कीजिए।

चित्रदर्शन का महत्व बताइए।

